देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
August 2022
Issue 16, Vol. -2

Impact Factor
5.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी विशेषांक

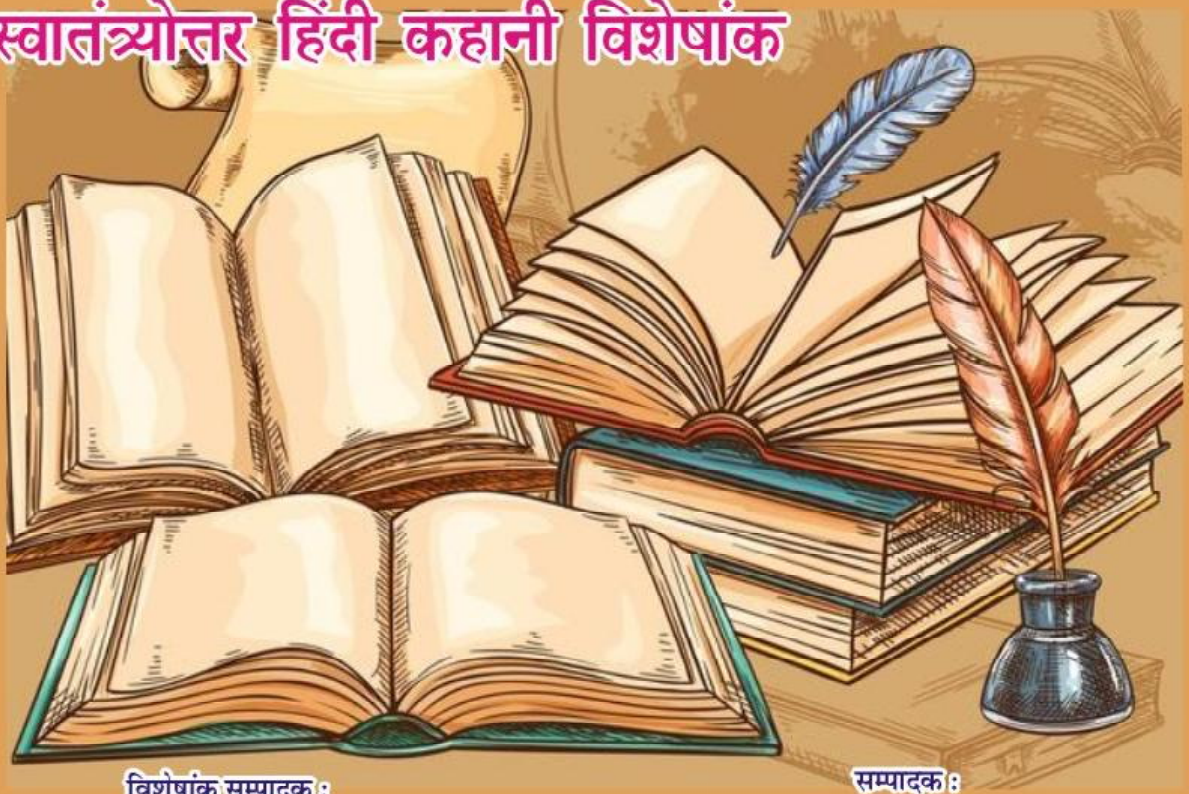

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. पवन कुमार
मीरा विश्वकर्मा

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग,
एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 16 ISSUE- 2 (अगस्त 2022) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादक :

डॉ. पवन कुमार
एम.ए. हिंदी, अंग्रेजी, शिक्षाशास्त्र, समाजशास्त्र,
मनोविज्ञान, राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा, पी.जी.डी.सी.ए.,
बी. एड., पी.एच. डी.–हिंदी

मीरा विश्वकर्मा
एम.ए. (हिंदी, समाज शास्त्र),
बी. एड., एम. एड.

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी–127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुद्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्जे
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. पवन कुमार	10–10
2.	रामकुमार ओझा का कथा साहित्य एवं युग प्रभाव	डॉ. कृष्ण कुमार	11–15
3.	स्वातंत्र्योत्तर कहानी में चित्रित वेश्या जीवन : ''नत्थी टूट गयी थी'' कहानी के संदर्भ में	डॉ. श्रीकांत राठोड़	16–21
4.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का परिदृश्य	डॉ. लूनेश कुमार वर्मा	22–30
5.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में गाँव	रंजना गुप्ता	31–32
6.	हिंदी कहानी आन्दोलन की विकास सरणियाँ	डॉ. जिनु जॉन	33–37
7.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में वृद्ध विमर्श	डॉ. अमिता प्रकाश	38–43
8.	स्वातंत्रोत्तर हिंदी कहानियों में गांव	Dr. SIBI M. M.	44-46
9.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी लेखन परंपरा का विकास	राजश्री भारद्वाज	47–51
10.	समकालीन हिंदी कहानी में आदिवासी चेतना	रंजिता राजन पी	52–54
11.	जम्मू कश्मीर में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियाँ	कुलदीप कुमार पुष्पाकर	55–58
12.	स्वातंत्र्योत्तर कहानी में स्त्री विमर्श (सूर्यबालाकृत गृहप्रवेश कहानी संग्रह के संदर्भ में)	डॉ. बलवंत बी.एस.	59–60
13.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आदिवासी कहानी 'टोना' में वर्णित आदिवासी स्त्रियाँ : एक अध्ययन	मीरा विश्वकर्मा	61–67
14.	Impact of Social Media on the Mental Health & Academic Achievement of Secondary School Students	Dr. Rekha Soni, Neeru Bathla	68-72
15.	''राम का स्वरूप'' – प्रमुख रचनाओं के संदर्भ में	डॉ० निशा मलिक	73-80
16.	B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा और साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन	महावीर प्रसाद, डॉ. रेखा सोनी	81–87
17.	राष्ट्रीय आन्दोलन और 'त्रिकाल संध्या'	अमित कौर	88–93
18.	कुबेरनाथ राय कृत 'प्रिया नीलकण्ठी' निबन्ध संग्रह का अध्ययन	तलब जेबा	94–102
19.	दलित कथा संवेदना और विषय वस्तु में स्त्री संदर्भ	डॉ. सुधा	103–107
20.	हिमांशु जोशी के 'समय साक्षी है' उपन्यास में राजनीतिक परिदृश्य	प्रतिमा	108–111
21.	भारत का संपर्क सेतु– हिंदी	डॉ. एम. आर. सिद्दगंगम्मा	112–116
22.	प्रेमचंद : राष्ट्रवाद और राष्ट्र-भाषा	डॉ. एस.बी.एन. तिवारी	117–124
23.	पृथ्वी पर पांचवां सबसे गर्म वर्ष– 2021 का परिदृश्य	डॉ० वेदप्रकाश	125–131
24.	RIGHT TO BAIL : AN ANALYSIS OF RECENT BAIL TRENDS IN INDIA	Dr. Shakeel Ahmad, Maryam Azhari	132-142
25.	श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में शिल्पगत वैविध्य	सोनम शुक्ला, डॉ. ज्ञानेन्द्र मणि त्रिपाठी	143–150
26.	Trajectory of Indian Drama	Dr. Preeti Singh	151-154
27.	मीडिया के विज्ञापन और स्त्री छवि	दीक्षा देशपांडे	155–158

28.	डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' द्वारा अनूदित डा. सी. वीरण्णा का मूल कन्नड़ नाटक 'जनता के राजा शाहू' : प्रकाशक की ओर से	अजिता कुमारि के. डी, डॉ. जयलक्ष्मी पाटील	159–164
29.	कामायनी महाकाव्य में प्रसाद की पर्यावरणीय चेतना	श्रीमती पार्वती	165–170
30.	भारतीय ग्रामीण जीवन	डॉ. अशोक कुमार मीणा	171–174
31.	स्त्रियों की एक सशक्त आवाज़ : रजनी तिलक	नीलम शर्मा	175–178
32.	भाषा और समाज का अंतर्संबंध	अंकित कुमार राय	179–182
33.	पलटू साहिब की वाणियों में गुरू का स्वरूप एवं गुरू की महत्ता	डॉ० सविता	183–187
34.	शारीरिक शिक्षा तथा योग का अन्तर्सम्बंध	रमेश कुमार	188–191
35.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में नगरीय परिवेश	डॉ. बड्लाद श्रीनिवास राव	192–194
36.	स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा-साहित्य में ग्राम जीवन	दिवाकर शर्मा	195–197
37.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आदिवासी कहानियों में वर्णित जल, जंगल, जमीन और बेबसी : समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पवन कुमार	198–203
38.	गुप्तकाल में कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था का संरचनात्मक विकास	डॉ. अवध नारायण	204–209
39.	हिन्दी कहानी का यह दौर	राजेश 'कमाल'	210–213
40.	हिन्दी भारत के माथे की बिंदी	दीप्ति अग्रवाल	214–222
41.	मध्यकालीन कवियों की कथानक रूढ़ियाँ	गौरव वर्मा	223–233
42.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में विविध विमर्श (संजीव कृत – 'खुली आँखें' कहानी के संदर्भ में)	डॉ. बलवंत बाळासाहेब शिवाजी	234–236
43.	**Domestic Violence : Psychological Effects on Children**	**Dr. Geeta Pandey**	**237-240**
44.	विकास के खोखलापन के बीच आरोहण का भ्रम (संदर्भ : संजीव की कहानी 'आरोहण')	रजनी चावला	241–247
45.	डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के भक्ति-काव्य में माया का स्वरूप	सुरेन्द्र दलाल	248–253
46.	जायसी के 'पदमावत' में काव्य प्रयोजन परम्परा	डॉ. नीलाक्षी जोशी	254–258
47.	करूणा भाभी	कमलेश तोमर	259–261
48.	मुस्लिम बंजारा समुदाय की परिवर्तनशील परिस्थिति का आर्थिक अध्ययन	नाजमीन	262–265
49.	सुषम बेदी की कहानियों में अपनत्व की खोज में छटपटाता मन और अजनबियत से जूझती हकीकत की जिंदगी	राधारानी भट्टाचार्य	266–268
50.	**Matriarchy**	**Dr. Deepshikha Sharma**	**269-271**
51.	राष्ट्र निर्माण में छत्तीसगढ़ी गजल	डॉ. (श्रीमती) हरिणी रानी आगर, श्रीमती माग्रेट कुजुर	272–276

सम्पादक की कलम से.....

हिंदी गद्य विधाओं में कहानी सबसे सशक्त विधा के रूप में विकसित हुई। हिंदी साहित्य की अन्य सभी विधाओं में कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय है। विगत 100 वर्षों से अधिक की यात्रा हिंदी कहानी करके अपने परिपक्व स्वरुप में आ चुकी है। पाठकों एवं श्रोताओं की संख्या अत्यधिक है, इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि इन्टरनेट के इस युग में विभिन्न एप्स सक्रिय जो हिंदी कहानियों को ऑडियो के रूप में हमारे समक्ष लेकर उपस्थित होते हैं, यू ट्यूब पर अनेक ऐसे चैनल है जो कहानी सुनाने में माहिर हैं और फैन फोलोविंग लाखों में है। युग में खड़ी बोली के विकास के साथ ही हिंदी कहानी का विकास प्रारंभ हो चुका था परन्तु कोई हिंदी कहानी में कोई कालजयी रचना नहीं हो पाई, उत्तर भारतेंदु युग में देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी ने तिलिस्म गल्प गढ़ कर हिंदी कथा साहित्य में पाठकों की संख्या बढ़ा दी।

हिंदी कहानी की विकास यात्रा का प्रारंभ 1900 ई. से मानना समीचीन होगा। हिंदी की प्राथमिक कहानियों में मुंशी इंसा अल्ला खां की रानी केतकी की कहानी, शिव प्रसाद सिंह कृत रजा भोज का सपना, किशोरी लाल गोस्वामी कृत इन्दुमति, बंगमहिला कृत दुलाई वाली, मधावसप्रे कृत एक टोकरी भर मिट्टी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत ग्यारह वर्ष का समय प्रमुख है। भारतेंदु हिंदी कहानी की बात प्रारंभ हो और प्रेमचंद का उल्लेख न हो ऐसा संभव नहीं। कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने तीन सौ से अधिक कहानियों की रचना की और कहानी विधा के पाठकों में अभिवृद्धि की। वृन्दावन लाल वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', यशपाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, अज्ञेय, रांगेय राघव, इलाचंद्र जोशी, भगवती चरण वर्मा इत्यादि ने आदर्शवाद के स्थान पर मानवतावादी और यथार्थवादी कहानियाँ लिखकर कहानी विधा को समृद्ध किया। स्वातंत्र्योतर हिंदी कहानी में बदलाव होने लगा– आज़ादी से पहले जिस समाज की परिकल्पना की जा रही थी, उसका विकृत रूप सामने आने लगा। प्रेमचन्द्र युगीन कहानी (1916 से 1936), प्रेमचंद्रोत्तर कहानी (1936 से 1950) के पश्चात नई कहानी (1950 के बाद) का उदय हुआ। नई कहानी शिल्प और कथ्य की दृष्टि से पूर्ववर्ती कहानियों से भिन्न है, पूर्वाग्रह, रूमानियत, नैतिकता इत्या पुराने सभी चश्मों से मुक्त भोगे गए यथार्थ पर आधारित है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में ग्रामीण अंचल, नगर बोध, यौन समस्याओं का चित्रण, व्यंग्य तो है और साथ है– अकेलापन, मूल्यहीनता, कुंठा, निराशा, मौन और अनसुनी चीख।

दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, किसान विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श एवं समकालीन विमर्शो को गति स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों के माध्यम से मिली है। अनछुए सामाजिक मुद्दों पर चेतना का संचार होता प्रतीत हो रहा है। नई कहानी, सचेतन कहानी, अचेतन कहानी, सठोत्तरी कहानी, अकहानी, सामान्तर कहानी, समकालीन कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी से जन कहानी आन्दोलन स्वातंत्र्योत्तर कहानी के अंतर्गत आते है, अभी प्रबल संभावनाएँ है कि नए–नए कहानी आंदोलनों का विकास होगा एवं कहानी विधा में उनको भी वाणी मिलेगी जो सदियों से हैं चुप..

–डॉ. पवन कुमार, विशेषांक सम्पादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 11-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामकुमार ओझा का कथा साहित्य एवं युग प्रभाव

डॉ. कृष्ण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर– हिंदी, वार्ड न. 28 शुभम हॉस्पिटल के पीछे नोहर, हनुमानगढ़।

कथा–कहानी का कथ्य एवं शिल्प भी जीवन में आने वाले परिवर्तनों के साथ बदलता गया। इस सन्दर्भ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है– ''जीवन में क्रमशः जितने विकास, जितने परिवर्तन आते हैं, उतने ही परिवर्तन और विकास कथा–कहानी की शिल्प विधि में देखे जा सकते हैं।''[1]

रामकुमार ओझा ने आधुनिक कथाकारों में अपना अलग स्थान बनाया है। पाठकों के बीच उनकी लोकप्रियता आज भी अपनी पराकाष्ठा को छूती है। उनकी कहानियों के प्रसिद्ध संग्रह हैं– 'करवट', 'सूरज अभी मरा नहीं', (अप्रकाशित) 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', 'कौन जात कबीरा', 'तन धूलि धूसर मन गौरी शंकर',(अप्रकाशित) 'निशीथ' (काव्य संग्रह), 'अश्वत्थामा', 'रावराजा' उपन्यास आदि प्रमुख है।

रामकुमार ओझा के कथा साहित्य विशेषकर कहानी विधा में व्याप्त विभिन्न समाजों की सामाजिक और सांस्कृतिक झलक ने ही उनके साहित्य को एक विशेष पहचान दिलायी थी। उनके उपन्यासों में विभिन्न समाजों का जीवन्त वर्णन, उनके धार्मिक विचार, रीति–रिवाज, परम्परा, भाषा, बदलाव पर्वों आदि का वर्णन पाठकों को निकटता से विविध समाजों से परिचित कराता हैं।

कहानी' साहित्य : व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से, आधुनिक युग तक जिन विधाओं का उद्‌भव एवं विकास हुआ, उनमें कहानी का प्रमुख स्थान है। यह सभी विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, 'कहानी' शब्द के लिए प्राचीन काल में 'आख्यान्', 'आख्यायिका', 'कथा', 'गल्प' आदि शब्द प्रचलित थे। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक काल से ही किसी–न–किसी रूप में 'कहानी' बुनता और सुनता आया है। कहानी के प्रारम्भ के विषय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं– ''मैं कहानी को आदि विधा मानता हूँ, वह गद्य में लिखी गई हो या पद्य में या इससे भी पहले संकेतों में पद्य या गीतों के माध्यम से स्वयं उनका रस ग्रहण करते हुए भी इन सबके पीछे नेपथ्य में चलने वाली कहानी ही प्रमुख रही है।''[2]

भारत वर्ष में बच्चों को दादा–दादी, नाना–नानी द्वारा कहानी सुनाने एवं माँ द्वारा लोरी सुनाने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का साहित्यिक विधा के रूप में प्रथम साक्षात्कार 'कहानी' से ही होता है। बच्चा तो स्वभावतः कहानी सुनना पसन्द करता ही है। अच्छा–भला मनुष्य भी कहानी के रूप में कही जाने वाली बातों को ध्यानपूर्वक श्रवण करता है। रोचकता तथा कौतूहल के कारण कहानी बालमन पर गहरा प्रभाव डालती है। इसी कौतूहल की प्रवृत्ति ने ही कहानी को जन्म दिया। अतः कहानी का यह मूल तत्व 'कौतूहल' मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है।

हिंदी कथा साहित्य का विकास :-

(क) कहानी साहित्य -

आधुनिक युग में कथा–साहित्य ने अन्य विधाओं की अपेक्षा सबसे अधिक विकास किया है, यों तो साहित्य की सभी विधाओं में कथा–तत्व प्रधान है, इसके बिना ललित साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती, तथापि कथा–साहित्य के सबसे निकट इस तत्व को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने वाले रूपों में उपन्यास और कहानी ही मुख्य हैं। यही कारण है कि कथा–साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास–कहानी का ही उल्लेख किया जाता है। यह शब्द अंग्रेजी के 'फिक्शन' का पर्याय है।

प्रेमचन्द पूर्व युग :-

यह हिंदी कहानी का आरंभिक काल था। इसमें कहानी अपने शैशवावस्था में थी। कहानी का सूत्रपात सन् 1800 से 1808 के मध्य सैयद इंशा अल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। इस दिशा में युगीन पत्रिकाओं ने विशेष प्रयत्न किये। इन पत्रिकाओं में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1873), 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' (1874), 'हिंदी प्रदीप' (1877), 'ब्राह्मण' (1880), 'भारत मित्र' (1877), 'सरस्वती' (1900), और 'इंदु' (1909), 'हिंदी गल्पमाला' (1918) आदि प्रमुख हैं। भारतेंदु युग में कहानी का कोई रूप निर्धारित न हो सका। इस दिशा में 1900 ई0 में प्रयाग से प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल 'सरस्वती' के योगदान को इन शब्दों में याद करते हैं– ''हिंदी कहानी कला की उत्पत्ति, प्रयोग और आरम्भ इन तीनों क्रमों अथवा चरणों के प्रकाश में 'सरस्वती' का नाम कहानी शिल्प विधि के आरम्भ और विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा।''[3]

प्रेमचन्द एवं प्रसाद युग (1916 से 1936 तक) :-

सन् 1916 से 1936 ई0 तक का काल हिंदी कहानी में प्रेमचन्द युग कहा जाता है। यह हिंदी कहानी के विकास का वह उत्कृष्ट काल था। इस युग में कहानी में प्रौढ़ता, परिपक्वता आने लगी थी। सन् 1916 से प्रेमचन्द भी हिंदी कहानियाँ लिखने लगे। उर्दू में तो वे बहुत पहले से लिख रहे थे।

(1916 से 1936 तक) ही प्रेमचन्द युग के नाम से जाना जाता है। हिंदी कथा–साहित्य में पहली बार प्रेमचन्द ने विविध सामाजिक बुराईयों तथा समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया, समस्याओं को उन्होंने पर्याप्त व्यापक रूप में विश्लेषित करके उनके उचित समाधान भी प्रस्तुत किए। प्रेमचन्द आरम्भ में आदर्शों के चितेरे थे, लेकिन उनके रचनात्मक विकास के साथ–साथ यह संकेत मिलता है कि उनकी आदर्खात्मक भावनाएँ धीरे–धीरे आहत होती चली गईं और वे यथार्थ की ओर उन्मुख हुए। 1916 ई0 से 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रय', 'कायाकल्प' आदि उपन्यासों के बाद 'गबन' फिर 'पंच परमे वर', (1916ई0) 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। 'आत्माराम', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों के बाद 'सज्जनता का दण्ड' आदि कहानियों में उनकी आदर्शात्मक आस्था टूटती हुई दिखाई देती हैं। 'पूस की रात' तथा 'कफन' कहानियों में यह आस्था एकदम टूटी हुई दिखाई देती हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग (1937 ई. से 1950 ई.) :-

कहानी साहित्य के इतिहास में 1937 ई० से 1950 ई० तक का तृतीय विकास काल 'प्रेमचन्दोत्तर युग' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस युग में कहानी साहित्य के क्षेत्र में सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक,

मनोविश्लेषणात्मक आदि प्रवृत्तियों के साथ बौद्धिक, प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुए। अकाल जैसी अभिशप्त परिस्थितियों के कारण मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रश्रय मिला। भारतीयों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासों के कारण इस युग की कहानियों में क्रांति तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के स्वर दिखाई देते हैं।

संग्रहों में (1938) में प्रकाशित 'धूपरेखा' (सन् 1942) में प्रकाशित 'दीवाली और होली' (सन् 1943) में प्रकाशित 'रोमांटिक छाया', (सन् 1945) में प्रकाशित 'आहुति' (सन् 1948) में प्रकाशित 'खंडहर की आत्माएँ' आदि प्रमुख है।

नई कहानी :-

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जहाँ देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ, वहीं जनमानस के मानसिक एवं वैचारिक स्वरूप में भी जबरदस्त परिवर्तन आया। औद्योगिक और ग्रामीण क्षेत्रों हेतु बनने वाली विकास योजनाओं से नागरिकों के मन में एक नई चेतना का उदय हुआ, वहीं देश विभाजन जैसी भयावह दुर्घटना ने नागरिकों के मन–मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया। हिंदी कहानी भी ऐसे समय में इन परिर्वतनों से अछूती न रह सकी। (1950) ई० के आस–पास की कहानियों का नया स्वरूप दिखाई देने लगा। डॉ० सविता मोहन के शब्दों में– ''सन् 1950 के आस–पास से ही वैचारिक और स्वरूप के स्तर पर एक नितान्त नई तरह की कहानियाँ हिंदी में आने लगी थीं। भले ही उसका नामकरण दो–चार वर्षों बाद हुआ हो। तब से हम कहानी को नई कहानी के रूप में जानते हैं और वह सन् 1960–62 तक चलती हैं।''[4]

समकालीन कहानी :-

स्वतंत्रता के पश्चात् भी देश में जनमानस की आकांक्षाओं के अनुकूल परिवर्तन नहीं होने तथा सन् 1962 ई० में चीन के हाथों हुई पराजय ने देश में निराशा, हीनता, अपमान जैसी भावनाओं के साथ रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, महँगाई, गरीबी, बेरोजगारी तथा बाह्य आक्रमणों जैसी राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के आक्रोश ने नई कहानी के लेखकों को आक्रोश शील बना दिया। ऐसे में कहानी लेखकों का अतीत से मोह भंग हुआ। अब कहानी का तेवर व्यवस्थाओं के प्रति आक्रोशात्मक हो गया। जीवन मूल्यों के प्रति भी कहानीकार की दृष्टि बदल गई।

सचेतन कहानी :-

सचेतन कहानी नई कहानी के युग में जब पाश्चात्य सभ्यता ने दस्तक दी। तब समाज के जीवन मूल्य भर–भराकर गिरने लगे। ऐसे में नई कहानी के कुछ लेखकों में वितृष्णा का भाव उत्पन्न हो गया, जिसने 'सचेतन कहानी' को जन्म दिया। 'सचेतन कहानी' अथवा 'जीवन्त कहानी' व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से समष्टि की ओर उन्मुख हुई। डॉ. महीप सिंह' को सचेतन कहानी का जनक माना जाता है। सन् 1964 ई. में महीप सिह के सम्पादन में 'आधार' पत्रिका का 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकला, जिसमें 'सचेतना' को कहानी का प्रतिष्ठित आन्दोलन स्थापित करने के ठोस तर्क दिए गए। डॉ. महीप सिंह के शब्दों में– ''सचेतन दृष्टि आधुनिकता की एक गतिशील स्थिति है और हमारे सक्रिय जीवन–बोध पर निर्भर है। सचेतन आन्दोलन सामूहिक चेतना का फल है।''[5]

सहज कहानी :-

सहज कहानी नई कहानी की परिपाटी को जटिल, उबाऊ और जीवन से दूर बता कर इसी दौरान कुछ लेखकों ने 'सहज कहानी आन्दोलन' चलाया। 'सहज कहानी' का प्रणेता अमृतराय को माना जाता है। यह कोई नया आन्दोलन न होकर जीवन का 'सहज' अकृत्रिम रूप से कहानी का कथ्य बनाने की सहज दृष्टि थी। इस संबंध में डॉ० पुष्पलाल सिंह लिखते हैं – ''सर्वत्र ही यह आग्रह रहा कि कहानी जीवन–यथार्थ को कल्पित न करे, जीवन–यथार्थ की भयावहता से साक्षात्कार करे।''[6]

'सहज कहानी' कथा–रस की प्राप्ति के लिए कहानी में सहजता, सरलता जैसे मूल तत्व आवश्यक मानती हैं। वह सरल एवं सहज जीवन मूल्यों को उजागर करना अपना ध्येय समझती हैं। इंद्रलाल मदान के शब्दों में– ''सहज कहानी कोई आन्दोलन नहीं है, सहज कहानी से हमारा अभिप्राय उस मूल कथा–रस से है, जो कहानी की अपनी खास चीज है और जो बहुत सी नई कही जाने वाली कहानियों में एक सिरे से नहीं मिलती।''[7]

अकहानी :–

समकालीन कहानी के दौर में अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर एक और कहानी आन्दोलन 'अकहानी' नाम से जाना जाता है। कई आलोचक इस आन्दोलन को अस्तित्ववाद से प्रभावित तथा फ्राँस में जन्मी 'एंटी स्टोरी' पर आधारित मानते हैं। 'अकहानी' में परम्परागत प्रवृत्तियों के विरुद्ध छटपटाहट है। इसमें विद्रोह एवं निषेध की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। गंगा प्रसाद 'विमल' का विचार हैं कि– ''वस्तुतः अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा इसी तरह के मूल्य स्थापना का अस्वीकार है। इस आधार पर वे कहानियाँ जो स्वीकृत मनोधारणाओं और आरोपित प्रपत्तियों के स्वीकार से अलग हैं, हमारे विवेचन के अन्तर्गत आ सकती हैं या फिर उनके विश्लेषण की यही संगति हमें उपयुक्त जान पड़ती है।''

ओझा ने साहित्य में विकसित हो रही शिल्पगत नवीनता पर भी प्रकाश डाला है। साहित्य का निर्माण, समाज का ही कोई जाग्रत व्यक्ति, समाज में ही घटित किसी घटना के आधार पर करता है। उस घटना को यथार्थ रूप देने के लिए भाषा–शैली पर भी ध्यान देना पड़ता है। ओझा जी की भाषा शैली यथार्थ के या मानव जीवन के काफी करीब है। इन्होंने अपने उपन्यासों में प्रतीक, रस आदि को नये सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। ओझा संस्कृतनिष्ठ भाषा को संस्कारित कर नये रूप में ढालते हैं। जिससे ये भाषा–शैली को नवीनता, सजीवता एवं सरसता प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ओझा जी केवल एक साहित्यकार ही नहीं अपितु युग द्रष्टा, युग स्रष्टा एवं युग चेतना भी हैं। किसी भी कलाकार की अहम् भूमिका समाज को अपनी कला के माध्यम से उचित अनुचित का बोध कराना तथा समाज में व्याप्त बुराईयों से अवगत कराके सद्‌गुणों का प्रसार एवं प्रचार करना होता है। ओझा ऐसे ही साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी चिन्तन शक्ति, बौद्धिक क्षमता एवं विचारों की भावुकता से समाज को जाग्रत किया ओर साथ ही मानव जाति का आधार तत्त्व अर्थात् हमारी संस्कृति के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। इन्हीं विशिष्टताओं ने उनके साहित्य को अमर बना दिया है। ओझा की रचनाओं का स्वर आशावादी और आस्थावादी है। उनमें कोरा शब्दजाल नहीं है बल्कि कोई–न–कोई दिशा, कोई–न–कोई मार्ग–दर्शन या कोई–न–कोई सन्देश अवश्य निहित है। वास होता है व अपनी कहानियों को पाठकों तक पहुँचाकर अपना

सन्देश साहित्यकार के रूप में व्यक्त किया है।

सन्दर्भ सूची :-

1. 'हिंदी कहानियों की शिल्प–विधि का विकास', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 1
2. 'कहानी : स्वरूप एवं संवेदना', राजेन्द्र यादव, पृ. 8
3. 'कुछ विचार', मुंशी प्रेमचन्द्र, पृ. 53
4. 'नई कहानी की पोस्टमार्टम रिर्पोट', सुदर्शन चोपड़ा (सरिता, जून 1954 ई0)
5. 'हिंदी कहानी, पहचान और परख', सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ. 13
6. 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि', डॉ. धनंजय, पृ. 36
7. 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि', डॉ. धनंजय, पृ. 48
8. 'हिन्दी कहानी : फिलहाल' डॉ. चन्द्रभान रावत, पृ. 35

मोबाइल–97855–76966

Email : krishankasotia28@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 16-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर कहानी में चित्रित वेश्या जीवन : ''नत्थी टूट गयी थी'' कहानी के संदर्भ में

डॉ. श्रीकांत राठौड़, सहायक प्राध्यापक, श्री जी आर गांधी कला,
श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम एफ दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, कर्नाटक–586209

विगत दो तीन दशकों में भारत जिस प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक, आर्तिक, संस्कदुनिया भर में देह व्यापार के निकृष्टतम रूपों को झेलने वाले वे लोग हैं जो जटिल बहुआयामी समाज व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर है। यह स्त्रियां गरीब समुदाय के गरीब परिवारों की सदस्य हैं निकृष्ट मानी गई नस्लों और जातीय अल्पसंख्यकों की सदस्य हैं। उन्हें अपमान एवं शोषण से रोज गुजारना पड़ता है उनमें से कुछ जबरन यौन कर्म के क्षेत्र में धकेली गई हैं कुछ अपनी गलती से इस दलदल में फसीं हैं। वास्तव में कोई वेश्या ऐसी हो सकती है जिसने अपनी मर्जी से इस व्यवसाय को अपनाया हो। अधिकांश वेश्या ऐसी होती हैं जो किसी मजबूरी के कारण या धोखे से इस बाजार में आती है। वैश्वीकरण के चलते आज वेश्या व्यवसाय का स्वरूप बदल गया है। गणिका, देवदासी एवं कोठेवाली से होते आज कल–गर्ल के रूप में स्त्रियां अपनी देह बेच रही हैं। आजकल पुरुष भी इस व्यवसाय में अपनी देह बेच रहे है। दिल्ली जैसे बड़े–बड़े शहरों जिगोलो (पुरुष वेश्या) की मंडी लगती है। में युवा लेखक राकेश शंकर भारती का कहानी संग्रह 'कोठा नंबर 64' दिल्ली के जी.बी. रोड़ पर वेश्या व्यवसाय करने वाली वेश्याओं के जीवन के बारे में लिखित एक अनोखा कहानी संग्रह है।

बीज शब्दावली :– राकेश शंकर भारती, कोठा नंबर 64, योन कर्म, वेश्या, दलाल, कोठा, नत्थी।

प्रस्तावना :–

21वीं सदी के आधुनिक समाज में वेश्याओं की स्थिति बद से बदतर बनती जा रही है। यूरोप में जो कोई लड़की जिस्मफरोशी के धंधे में आती है, वह खुद अपनी इच्छा से आती है। परंतु भारत में माता–पिता या रिश्तेदार नाबालिक लड़कियों को बिचौलिए के हाथ बेच देते हैं और उनकी दुर्दशा होती है। अक्सर यह देखा गया है कि लड़कियां प्रेम जाल में फंस कर वेश्या बनने पर मजबूर हो जाती है। 'नत्थी टूट गई थी' एक ऐसी ही वैश्या की कहानी है जो गर्भधारण करने के बाद अपने प्रेमी से तिरस्कृत होकर कोठे पर पहुंचती है। अंत में उसी व्यक्ति से उसकी बेटी की नत्थी टूटती है। कहानीकार राकेश शंकर भारती वेश्याओं के जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

'वेश्या' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है–"नाच गाना तथा करतब कर जीविका चलाने वाली स्त्री।"[1] 'वेश्या' के लिए अंग्रेजी में' प्रॉस्टिट्यूट' शब्द है जो लैटिन के प्रोस्टिबुला अथवा प्रोसीड़ा से बना है। भारत में रंडी, गणिका, वारंगना, कोठेवाली आदि शब्दों का प्रयोग है। भारत के प्रत्येक राज्य में ऐसा एक इलाका अवश्य होता

है जो वेश्यावृत्ति के लिए प्रसिद्ध होता है। देश की राजधानी दिल्ली में भी 'जीबी रोड' ऐसा इलाका है जो वेश्यावृत्ति के लिए बदनाम है, इस इलाके में खुलेआम वेश्या व्यवसाय चलता है। युवा कहानीकार राकेश शंकर भारती ने इसी इलाके को केंद्र में रखकर 'कोठा नंबर 64' कहानी संकलन का सृजन किया है। 'नत्थी टूट गई थी' इस संग्रह की विशिष्ट कहानी है। कहानी की नायिका भंवरी अपने प्रेमी से गर्भ धारण करती है उससे तिरस्कर वेश्या बनने पर मजबूर हो जाती है। जब उसकी बेटी जवान होती है, उसे भी अपनी वृत्ति में धकेल देती है। विडंबना यह है कि भंवरी जिस व्यक्ति से प्यार में धोखा खाती है वही व्यक्ति पाँच लाख रुपये देकर भंवरी की बेटी की नत्थी तोड़ता है। लेखक इस कहानी में वेश्याओं के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

स्त्री–पुरुष संबंध मानव समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। समाज का अस्तित्व इसी पर आधारित है। यही मानव समाज की नींव है। स्त्री पुरुष के बिना न समाज चल सकता है और ना ही साहित्य। अतः स्त्री पुरुष संबंध सूक्ष्म गहरा और गहन विचारों से पूर्ण होता है। समाज के हर वर्ग में इसके स्वरूप में थोड़ी सी ऊपरी भिन्नता तो देखी जा सकती है। परंतु विचार करने पर ज्ञात होता है कि संबंध का मूल उद्देश्य आवश्यकता हर वर्ग में एक ही है। बाली उम्र में स्त्री पुरुष के बीच का आकर्षण अधिक होता है। इस उम्र में किया जाने वाला प्यार जीवन के अंत तक भुलाए नहीं भूलता। भंवरी अपने बाली उम्र में जयवीर सिंह से प्रेम करती है, उससे गर्भ धारण करती है। अंततः जय वीर सिंह उसे तिरस्कृत कर देता है, परंतु भंवरी अपने पहले मोहब्बत को अपने जेहन के एल्बम में कैद करके रखती है। अपने पहले प्यार को, पहले मोहब्बत के साथ बिताए लम्हों को हमेशा याद करते रहती है।" हर कोई बाली उम्र में हुए इश्क को जीवन भर याद रखता है, बाली उम्र के इश्क में जो मजा है जो उमंग है यह कभी भी जिंदगी में लौट कर नहीं आते हैं। जिंदगी में कितने महबूब आते जाते रहते हैं और इनकी यादें भी साए की तरह है होती है।"[2] जय वीर सिंह से तिरस्कृत होकर भंवरी कोठे पर पहुंचती है। वह जब भी ग्राहकों के साथ हमबिस्तर होती हैं तो अपने ग्राहकों में जयवीर सिंह को देखती है– "जितने भी मर्द उससे बिस्तर साझा करते थे, तमाम मर्दों में अपने प्यरे महबूब जयवीर सिंह की परछाई झलकने लगती थी। चाह कर भी यह परछाई उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाती थी।"[3]

कोई भी स्त्री चाहकर इस व्यवसाय को नहीं अपनाती, उसके इस व्यवसाय को अपनाने के पीछे अलग कारण हो सकते हैं। गरीबी, तस्करी या अपने महबूब से तिरस्कृत स्त्रियां ही इस धंधे में अधिक आती है। कहानी की नायिका भंवरी भी अपने प्रेमी से तिरस्कृत होकर इस धंधे में आती है। कोई स्त्री वेश्या व्यवसाय में आती है तो उसके पीछे समाज का भी पूरा–पूरा हाथ होता है। समाज में जयवीर जैसे पुरुषों की संख्या कम नहीं है जो मोहब्बत के नाम पर अपनी काम तृष्णा को मिटाते हैं और अपनी प्रेमिका को वेश्या करने पर मजबूर कर देते हैं।

वैसे तो वेश्याओं के बच्चे नहीं होते हैं, अगर होते भी हैं तो असुरक्षित यौन संबंध के कारण या अपने प्रेमी से उपहार के रूप में मिले होते हैं। 'नत्थी टूट गई थी' कहानी की नायिका भंवरी को भी अपने प्रेमी से मिले उपहार के रूप में एक बेटी है जिसे वह बहुत प्यार करती है। वेश्याओं के जीवन की एक विडंबना यह भी है कि उनकी कोख से जन्म लेने वाले बच्चें को पता नहीं रहता कि उनके पिता कौन है। वेश्याओं को भी इसका अंदाजा नहीं होता कि उनकी कोख में किसका बच्चा पल रहा है। मधु कांकरिया कृत सलाम आखरी उपन्यास के एक दृष्टांत में गायत्री अपने बच्चे को लेकर कहती है– "यह बच्चा किसी ग्राहक का ही है, किंतु बोल नहीं सकती है वह यह बच्चा किसका है.....आमी बुझते पहला ना पाए (मैं समझ नहीं पाई)"[4] और एक संदर्भ में पिंकी

सुकीर्ति से कहती है– "मेरा पता नहीं किसकी औलाद हूं। औलाद का पता नहीं किस बाप से है, साला बाप नहीं कोई खुदा हुआ, बस सुना ही सुना, देखा तो आज तक नहीं.....।"[5] भंवरी की बेटी शीला की भी यही स्थिति है उसे भी अपने पिता के बारे में पता नहीं है।

दुनिया में सभी धंधों या नौकरी में उम्र के साथ–साथ लोगों की पदोन्नति होती है और तनख्वाह में भी इजाफा होता है, लेकिन वेश्या व्यवसाय के अलावा शायद ही कोई ऐसा व्यवसाय हो जिसमें बढ़ती उम्र के कारण .....और तनख्वाह में गिरावट आए। राकेश शंकर भारती की कहानी' कोठा नंबर 64' में पार्वती के जेहन में विचार करती है "दुनिया के हर किसी धंधे में उम्र के साथ–साथ लोगों को पदोन्नति मिलती है, तनख्वाह में भी इजाफा होता है। कारोबार में भी समय के साथ साथ आमदनी भी बढ़ोतरी होती है। लेकिन दुनिया में वेश्यावृत्ति ही एक ऐसा पेशा है, ऐसा धंधा है, जहां अनुभव और समय बढ़ने के साथ–साथ आमदनी में और जिस्मफरोशी की शुल्क में गिरावट होती जाती है। पदोन्नति भी नहीं मिल पाती है।"[6]

वेश्याएं अपनी बढ़ती उम्र को लेकर बहुत परेशान रहती है। वेश्याओं के पास आने वाले ग्राहक कम उम्र की लड़कियों के साथ हम बिस्तर होना पसंद करते हैं। भंवरी की उम्र बढ़ने के साथ उसके पास आने वाले ग्राहकों की संख्या भी धीरे–धीरे कम होने लगी थी। वह ग्राहकों को पटाने के लिए एड़ी चोटी का पसीना बहाया करती परंतु उसके पास एक भी ग्राहक नहीं आते। वह अपनी जवानी के दिनों को याद करती है– "उस जमाने में जिस तरह से मेरे हुस्न के दरवाजे पर भीड़ रहती थी और कितने निराश हो जाते थे तो मेरे दिल में दर्द होने लगता था। काश आज वह ग्राहक फिर से मेरे पास आ जाए तो मैं किसी को भी लौटकर यहां से जाने नहीं दूं। सभी ग्राहकों को बड़े प्यार से सवारी कराओ सबको जी भर कर संतुष्टि दूं।"[7]

एक वेश्या जाने अनजाने में इस दलदल में फंस जाती है। जब एक बार कोई स्त्री इस दलदल में फंस जाती है तो लाख कोशिश करने पर भी इस दलदल से बाहर नहीं निकल पाती और वेश्या समाज में अपने साथ होने वाले व्यवहार के कारण इस दलदल से बाहर नहीं निकलना चाहती। वेश्याओं की विडंबना यह है कि जिस दलदल में फंस कर अपमानित जीवन व्यतीत करती रहती है उसी व्यवसाय में अपनी बेटियों को भी लगा देती है। भंवरी अपनी बेटी को भी इसी व्यवसाय में लगाना चाहती है और कहती है– "बेटी, जिंदगी की सच्चाई कबूल करना सीखो। यही जिंदगी है, यही तो हम जैसे रंडियों और हंसकर औरतों की सच्चाई है।"[8]

वेश्याओं के पास आने वाले ग्राहकों में कम उम्र के लड़कियों की अधिक मांग होती है। ग्राहकों की धारणा रहती है कि कम उम्र की लड़कियों के साथ हमबिस्तर होने से अधिक सुख प्राप्त होता है और अधिक मजा आता है। यही कारण है कि आज कोठे पर 15/16 साल की लड़कियां अधिक दिख पड़ती है, अधिक पैसों की लालच में 13 साल की अपनी बेटियों को इस धंधे में लाने का प्रयत्न करती है। अपनी बेटियों का जीवन बर्बाद करने में उन्हीं का बहुत बड़ा हाथ होता है। अजय कुमार शर्मा की कहानी ' वेश्या एक प्रेरणा' में वेश्या राकेश से कहती है–"होती होंगी मां ममता की मूरत, होते होंगे पापा अपनी बेटियों के हीरो.....मगर मेरे मां–बाप ने मुझे बुरे ख्याल के अलावा और कुछ नहीं दिया। 13 साल की उम्र में मेरे मां–बाप ने मुझे अधेड़ उम्र के मर्दों के आगे डाल दिया। मेरा बचपन मेरे बाप के उम्र वाले मर्दों के साथ गुजारने को मजबूर कर दिया। जो उम्र बच्चों के साथ छुआ.. ....खेलने की थी, उस उम्र में मैं कुछ और ही खेल–खेल रही थी।"[9]

भारत के कोठों पर कुंवारी लड़कियों को वेश्या व्यवसाय में उतारने से पहले नत्थी तोड़ने की रस्म से

गुजारना पड़ता है। एक विशिष्ट त्यौहार की तरह बनाया जाता है। यह रस्म का आयोजन उसी लड़की के लिए आयोजित किया जाता है जो पहली बार इस व्यवसाय में उतरती रहती है कुंवारी लड़कियों की नत्थी तोड़ने के लिए बड़े–बड़े सेठ, साहुकार लाखों रुपए खर्च करने के लिए राजी हो जाते हैं। कई जगहों पर तो लड़कियों की बोली भी लगाई जाती है। नत्थी तोड़ने में और कुंवारी लड़कियों के साथ रात गुजारने के दौरान मिलने वाले पैसों को देखकर एक ही लड़की को कुंवारी बता कर एक से अधिक बार ग्राहकों के पास भेजी जाती है। भंवरी शीला से इस संदर्भ में कहती है– "बेटी, यह तो मर्दों का भ्रम है कि नत्थी तोड़ने में सबसे ज्यादा आनंद मिलता है। नथी टूट भी जाए तो क्या फर्क पड़ता है। एक ना एक दिन कोई न कोई मर्द नथी तोड़ ही देगा।"[10]

बढ़ती उम्र में जब वेश्याओं के पास आने वाले ग्राहकों की संख्या कम हो जाती है तो वो आर्थिक रूप से टूट जाती है। उनके पास आने वाले ग्राहक भी ऐसे होते हैं जो कम पैसों में काम चलाने की कोशिश करते हैं। ऐसे संदर्भ में मजबूर वेश्या ऐसे ग्राहकों के साथ हो लेती है लेकिन इस प्रकार के ग्राहकों से मिलने वाले पैसों से गुजरा मुश्किल होता है। ऐसे संदर्भ में सहारे की तलाश करने लगती है। किसी वेश्या की बेटी हो तो उसी को अपना उत्तरदाई मानने लगती है और जल्द से जल्द उसे इस बाजार में लाने का प्रयत्न करती है। उनकी यही इच्छा रहती है कि' नत्थ उतराई' के दौरान एक अच्छा सेठ मिल जाए और अधिक से अधिक पैसे लुटाए जिससे उसकी आर्थिक स्थिति सुधर जाए। भंवरी के पास आने वाले ग्राहकों की संख्या कम हो जाने पर वह सोचती है–"खैर, कोई बात नहीं, शीला की नत्थी तोड़ने के एवज में सेठ जी से जो पैसे मिलेंगे, उनसे हम दोनों को काफी राहत मिलेगी। हम दोनों की गरीबी हमेशा के लिए दूर हो जाएगी। फिर शीला भी धंधे में कूद जाएगी। मुझसे भी ज्यादा कमाएगी।"[11] भंवरी का इस प्रकार सोचना वेश्याओं की आर्थिक स्थिति के यथार्थ को प्रस्तुत करता है जो अपनी आर्थिक दुरावस्ता के कारण अपनी ही बेटियों को ऐसे दलदल में धकेलती है जिससे उनका जीवन नर्क बन जाएगा।

सामान्यतः यह देखा जाता है कि प्रत्येक माँ अपनी बेटी के प्रति यही इच्छा रखती है कि वह पर लिखें अच्छी नौकरी करें और एक अच्छे वर के साथ उसकी शादी हो जाए। वह सुख से रहे, कोई कष्ट ना आए। परंतु एक वेश्या अपनी बेटी के प्रति कुछ और ही सोचती है। वह अपनी बेटी को भी उसी व्यवसाय में लाने के सपने देखती है जिस व्यवसाय में सलग्न है। विशेषकर एक वेश्या की दृष्टि अपनी बेटी की 'नथ उतराई' पर होती है। यह वह अवसर होता है जब एक वेश्या लाखों पैसे कमाती है। भंवरी वीर बहादुर नामक दलाल से अपनी बेटी शीला की नत्थू उतराई का सौदा पटाने के लिए कहती है तो दलाल वीर बहादुर कहता है– '"हां एक सेठ जी से बात हुई है। दिल्ली का ही कोई बड़ा बिजनेसमैन है। उसे अपने मोबाइल से शीला का फोटो दिखाया। उसे माल पसंद है। मैंने उसे बताया कि लड़की बिल्कुल वर्जिन (कुंवारी) है। काफी टंच माल है। किसी ने अभी तक उसे स्पर्श तक नहीं किया है। 4 लाख देने को तैयार है।"[12]

वेश्याओं की बेटियों को ना चाहते हुए भी अपनी माँका ही व्यवसाय को आगे बढ़ाना पड़ता है। शीला अपनी माँ के व्यवसाय में रुचि नहीं रखती परंतु अपनी मां के लिए वेश्या व्यवसाय अपनाने के लिए तैयार हो जाती है। भंवरी कहती है– "तो बेटी सुन मेरी बात, सेठ जी के साथ 2 हफ्ते किसी तरह से गुजार ले। इसी बहाने हम दोनों की गरीबी भी दूर हो जाएगी। उसके बाद मन करें तो धंधा करना।"[13] एक वेश्या ही अपनी बेटी को इस प्रकार घिनौना कार्य करने के लिए मजबूर कर सकती है।

भंवरी शीला के ग्राहकों को खुश करने के दाव पेच सिखाते हुए कहती है – "मोटा सेठ जी है। बेटी अच्छा से खातिरदारी करना। सेठ जी खुश हो जाएंगे तो हमें बार–बार होटल में बुलाएंगे और मूंह मांगे पैसे देंगे। छोटे ग्राहकों से सेठ जी लाख गुना अच्छे हैं छोटे ग्राहक बस पेट भात के लिए है। लेकिन मलाई सेठ के पास होती है।"[14]

वेश्या व्यवसाय में नाबालिक और कुंवारी लड़कियों की मांग अधिक होती है। ग्राहक इन लड़कियों के साथ हमबिस्तर होकर परम सुख पाने की सपने देखते रहते हैं। कोठे पर भी ग्राहकों की मांग को देखते हुए कम उम्र की लड़कियों को अधिक रखा जाता है। कम उम्र की लड़कियों को कोठे पर रखने से कोठे की आमदनी भी बढ़ती है कुंवारी लड़कियों पर लाखों रुपए खर्च करने वाले ग्राहकों की भी कमी नहीं है। सेठ शीला के लिए चार लाखदेने के लिए राजी हो जाता है जब वह शीला को देखता है तो उसे ऐसा एहसास होता है कि पैसे बर्बाद नहीं हुई है। बिल्कुल टंच माल मिला ठीक वैसा ही जैसा मोबाइल में देखा था। वसंत ऋतु में खिलने वाली कोई कली मेरे हाथ लग गई है।"[15] सेठ के यह वाक्य वेश्या व्यवसाय में बढ़ती कम उम्र और कुंवारी लड़कियों की मांग को समझने के लिए काफी है।

कुछ स्त्रियां अपने परिवार की आर्थिक समस्या के कारण इस धंधे में आती है परंतु ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत कम होती है। इस धंधे में आने वाली अधिकतर स्त्रियां या तो धोखे से इस बाजार में लाई जाती है या फिर नाजायज संबंध या बाली उम्र में प्यार में मिले धोखे के कारण इस व्यवसाय को अपनाती है। भारतीय समाज में नाजायज संबंधों से जन्मे बच्चों या कुंवारी लड़की के कोख से जन्मे बच्चों को अपमान की दृष्टि से देखा जाता है। इसी अपमान से बचने के लिए वेश्यालयों का दरवाजा खटखट आती है। उनकी कोख से जन्म लेने वाले बच्चों को यह तक पता नहीं रहता कि उनके पिता कौन है। भंवरी भी अपनी बाली उम्र में जयवीर सिंह से प्रेम करती है उसे अपना तन मन सब अर्पित करती है उसके बदले उसे उपहार के रूप में तिरस्कार मिलता है। अपनी कोख से जन्मे बच्ची के लिए वह कोठा नंबर 64 पहुंचती है। शीला बड़ी होने के बाद अपनी माँ से अपने पिता के बारे में पूछते हुए कहती है "माँ मेरे बाप देखने में कैसे थे वह अब कहां रहते हैं मेरी हार्दिक इच्छा है कि एक बार अपने बाप का मुंह देखो। बस एक बार। मैं उससे कुछ भी नहीं बोलूंगी मेरा एक ही सपना है। वह देखने में कैसा है वह कैसे बातें करता है उसकी आवाज कैसी है वह कैसे हंसता है वह कैसे चलता है।"[16]

वेश्याओं के बच्चों को अपने पिता कौन है इसके बारे में कुछ जानकारी नहीं होती। यहां तक कि कभी–कभी यह भी देखने को मिलता है कि स्वयं वेश्या उनको भी पता नहीं रहता है कि उनकी कोख से जन्म लेने वाले बच्चे का पिता कौन है। राकेश शंकर भारती ने इस यथार्थ को अपनी कहानी नथी टूट गई थी मैं प्रस्तुत किया है, भंवरी ने अपनी बाली उम्र में जिस व्यक्ति से प्रेम किया था जिससे उपहार के रूप में शीला का जन्म हुआ था 16–17 साल बाद वही जयवीर सिंह सेठ बनकर शीला की नत्थ उतराई के लिए चार लाख रुपये देने के लिए तैयार होता है और उसकी नथी तोड़ भी देता है। जब भंवरी जयवीर को देखती है तो वह कहती है जयवीर सिंह तू यहां। कैसे और कहां से? निकल जा यहां से दोबारा हमें मूंह मत दिलाना। मर जा चुल्लू भर पानी में डूब कर। सूअर का औलाद। भाग यहाँ से चुल्लू भर पानी में मूंह रगड़।"[17]

भारत में जहां एक और मानवीय मूल्यों और पारिवारिक संबंधों को अधिक महत्व दिया जाता है वहीं दूसरी ओर पारिवारिक संबंधों के पतन की पराकाष्ठा की घटनाएं सामने आती रहती है। इस कहानी में जयवीर सिंह

अपनी जवानी में भंवरी से संबंध बनाता है और अपने बुढ़ापे में भंवरी की बेटी शीला की नथी तोड़ता है। यह प्रश्न उठता है कि असल में गलती किसकी थी। भंवरी की या जयवीर सिंह की जिसका परिणाम शीला को भुगतना पड़ा। आज समाज में इस प्रकार की घटना घटती है जिससे मानवीय संबंध और पारिवारिक संबंधों का पतन हो रहा है।

संदर्भ सूची :-

1. हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वेश्या जीवन, डॉ. मारुती. द.सिंदे, पृ. ११, अन्नपूर्णा प्रकाश, कानपुर
2. कोठा नं ६४, राकेशशंकर भारती, पृ ६७, अमन प्रकाशन।
3. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ ६७, अमन प्रकाशन।
4. सलाम आखिरी, मधु काँकरिया, पृ ७, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सलाम आखिरी, मधु काँकरिया, पृ १०३ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १६४ अमन प्रकाशन।
7. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०२ अमन प्रकाशन।
8. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०० अमन प्रकाशन।
9. "वांग्मय" त्रैमासिक, सं. डॉक्टर फिरोज अहमद, पृ १२०
10. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०० अमन प्रकाशन
11. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०३ अमन प्रकाशन
12. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ ६६ अमन प्रकाशन
13. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ ६६ अमन प्रकाशन
14. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०६ अमन प्रकाशन
15. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०७ अमन प्रकाशन
16. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०५ अमन प्रकाशन
17. कोठा नं ६४, राकेश शंकर भारती, पृ १०८ अमन प्रकाशन।

संपर्क 9663517448

coolshree555@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 22-30

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का परिदृश्य

डॉ. लूनेश कुमार वर्मा

व्याख्याता, शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय छछानपैरी, जिला रायपुर (छत्तीसगढ़)

कहानी की कहानी मानव सभ्यता की तरह अत्यंत प्राचीन है। इसका अस्तित्व सर्वकालिक व सार्वभौमिक रही है। आदिम काल में मनुष्य के संप्रेषण के माध्यमों की पृष्ठभूमि में कोई न कोई कहानी अवश्य रही है। इसका इतिहास मानव जाति के इतिहास से प्रारंभ होकर उसकी आदिम संस्कारों और वासनाओं से युक्त है।''कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मानव की आदिम प्रवृत्तियों में से एक है।''[1] मनुष्य के बनैलेपन में भी क्रूर शासकों और आश्रमवासी ऋषि–मुनि परंपरा में भी कहानी और कहानी कहने वाले सदियों से जनप्रिय रहे हैं। कहानी का जन्म मनुष्य के से ही है। कालक्रम से परिवर्तित जन्म वैदिक रूप से ही माना जाता है। ईश्वर की ओर मनुष्य के प्रति किए गए आचरण का वर्णन जीवन के सामान्य अनुभवों को यथार्थ में चित्रण करने का आग्रह पाया जाता है।

कहानी का मानव जीवन से अटूट संबंध है। अतः मनुष्य जीवन में जब–जब परिवर्तन हुआ, कहानी कहने का ढंग, विषयवस्तु और संवेदना में भी अपेक्षित परिवर्तन हुआ है। ''जीवन के समस्त आनन्द, समस्त अंतर्द्वन्द्व और सम्पूर्ण रस कहानी के विस्तृत क्षेत्र में आकर सिमट जाते हैं।''[2] हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए जितने भी साहित्यरूपों का उदय हुआ, उनमें कहानी किसी न किसी रूप में सदैव विद्यमान रही है। प्राचीन परंपरा मार्ग से सतत् गतिमान कहानी, अब आधुनिक हिंदी कहानी प्रतिष्ठित है।

स्वातंत्र्योत्तर युग–1947 में भारत की स्वतंत्रता का भारतीय जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक प्रभाव पड़ा। हिंदी कहानी साहित्य की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण समय है। हिंदी कहानी में नए स्वर, नयी आशा, नया भावबोध आया। नए भारत में सामाजिक विषमता, आशा–निराशा, अवसाद एवं संतोष–असंतोष की अभिव्यक्ति, देश विभाजन की पीड़ा, मानवतावादी दृष्टिकोण, स्वदेश प्रेम और हिंदी प्रेम का सजग और कलात्मक चित्र कहानी लेखन में परिलक्षित होने लगा। इस तरह स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी कहानी अनेक धाराओं में विकसित होने लगी। ''सन् 1950 में नयी कहानी आंदोलन का सूत्रपात हुआ।''[3] नयी कहानी में समाज के स्थान पर व्यक्ति की प्रधानता रही। नयी कहानी का लक्ष्य नये भावबोध पर आधारित भोगे हुए यथार्थ का चित्रांकन करना रहा। नयी कहानी आंदोलन में राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर और मोहन राकेश की भूमिका मुख्य थी।

नए लेखकों ने स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् समाज में हो रहे परिवर्तनों को अनुभूत किया था। समाज में इस समय अनेक परिवर्तनों को व्यक्त करने के लिए कहानी के परंपरागत शास्त्रीय स्वरूप में परिवर्तन अपेक्षित था, क्योंकि नए भावों को व्यक्त करने के लिए रूप में परिवर्तन आवश्यक होता है। अतः कहानी के स्वरूप, कथानक और शिल्प भी परिवर्तन हुआ। कहानी के कथानक के मूल में बहुत परिवर्तन हुआ। ''कहानी में जो चीज

पहले कथानक के नाम से जानी जाती थी, उसमें कहीं न कहीं कोई मौलिक परिवर्तन हुआ है। इसे यों भी कहा सकता है कि कथानक की धारणा (कन्सेप्ट) बदल गई है; किसी समय मनोरंजन, नाटकीय और कौतुहलपूर्ण घटना–संघटन को ही कथानक समझा जाता था और आज घटना–संघटन इतना विघटित हो गया है कि लोगों को अधिकांश कहानियों में कथानक नाम की चीज ही नहीं। इसी को कुछ लोग 'कथानक का ह्रास' कहते हैं, परंतु वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं, बल्कि कथा का हुआ है और जीवन का एक लघु प्रसंग, प्रसंग–खण्ड, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति चरित्र ही कथानक बन गया है अथवा उसमें कथानकता मान ली गयी है।''[4] यथार्थ को कथावस्तु में गढ़कर प्रभावी रीति से व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसा करने पर वह यथार्थ न होकर बनावटी ही प्रतीत होगा। अतः नयी कहानी में कथावस्तु के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। आज की बहुत सी कहानियों के कथानक बिना किसी उतार–चढ़ाव के सपाट हैं। कहानीकार जिस यथार्थ को अनुभूत कर रहा होता है, उसी को शब्दबद्ध कर देना उसका ध्येय रहा। इसमें भाषा बनावटी नहीं वरन् सहज, सरल, बोधगम्य प्रयोग किया गया। पात्र और परिवेश भी कहानीकार का परिचित रहा। नयी कहानी प्रगतिवाद और मनोविश्लेषणवाद नहीं वरन् अनुभूत यथार्थ से ओत–प्रोत है।

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय समाज पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने लगा। फलतः समाज की नींव परिवार और व्यक्ति संबंधों में विघटन आने लगा। परंपरा पर आधुनिकता का रंग चढने लगा था। शहरों में मध्य वर्ग के उदय से पारिवारिक संबंध टूटने लगे। नयी कहानी में इसे प्रियंवदा की 'वापसी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में प्रभावपूर्ण रीति से चित्रित किया गया है। पश्चिमीकरण के प्रभाव से स्त्री–पुरुष संबंधों में भी बदलाव होने लगा। स्वतंत्र भारत में आर्थिक दृष्टि से स्त्रियों के सशक्त होने और पुरुषों में सामंती संस्कारों के फलस्वरूप स्त्री–पुरुषों में तनाव जैसी स्थितियाँ निर्मित होने लगी थीं। नयी कहानी में मोहन राकेश की 'एक और जिंदगी', धर्मवीर भारती की 'सावित्री नंबर दो', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', राजेंद्र यादव की 'अपने–अपने ताजमहल', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' और निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' कहानी में इस तनाव और टूटन को चित्रित किया गया है। नयी कहानी परिस्थितियों से न टकराकर, उसे नियति मान उसके आगे आत्मसमर्पण कर उसमें घुल–मिल जाती है। स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संस्कृति की आड़ में पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने वाले धर्म और आधुनिकता की ओट में कुमारियों के यौवन से खेलने लगे।

अतः नैतिकता को किनारे रख, यौन नैतिकता की नयी अवधारणा सामने आने लगी। नयी पीढ़ी यह मानने लगी कि नैतिकता की व्याख्या यौन संबंधों से नहीं की जा सकती। समाज में सेक्स के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित होने लगा। व्यक्ति की स्वतंत्रता से स्त्री–पुरुषों के संबंध विविध पक्षीय होने लगे। नैतिकता किनारे रख आधुनिकता का रंग चढने लगा। अतः नयी कहानी में विविध सामाजिक प्रसंगों का भी स्वाभाविक चित्रण होने लगा। अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', 'जिन्दगी और जोंक', भीष्म साहनी की 'पिकनिक', धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' कहानी में व्यक्ति की स्वतंत्रता और यौन प्रसंगों का स्वाभाविक चित्रण देखने को मिलता है।

नयी कहानी के नए कहानीकारों का सम्बन्ध प्रायः मध्यवर्गीय या निम्न मध्यवर्गीय परिवारों से है। इन कहानीकारों ने जिस यथार्थ को बहुत नजदीक से देखा और भोगा उसे ही उन्होंने अपनी कहानियों में उठाया है। अतः ये कहानियाँ अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती हैं। मध्यवर्ग आजादी से पहले भी और बाद में भी उपेक्षित

रह अनेक कठिनाईयों को झेला है। मध्यवर्गीय मनुष्य ने स्वतंत्रता के पश्चात् निर्मित विभिन्न परिस्थितियों के कारण अनास्था, अकेलापन, उदासी, अजनबीपन, खोखलापन, तनाव, विडम्बना, संत्रास, कुण्ठा, ऊब, निरर्थकता–बोध, मृत्यु–बोध आदि अनेक कठिनाइयों की पीड़ा को भोगा है। नयी कहानी ने मध्यवर्गीय जीवन की पीड़ा को यथार्थ रूप में स्वर दिया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति आजादी के बाद अपने अधिकार और न्याय के प्रति आशान्वित होता है, किंतु उसकी आशाओं पर पानी फिर जाता है। अमरकांत की 'डिप्टी डायरेक्टरी', मोहन राकेश की 'मिस पाल', 'आर्द्रा' कमलेश्वर की 'मानस के हंस', राजेंद्र यादव की 'टूटना' मन्नू भंडारी की 'अकेली', 'मैं हार गयी' कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की इन्हीं समस्याओं को चित्रित किया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् नयी कहानी के कहानीकारों ने गाँव, कस्बा, अंचल विशेष, पहाड़ का जीवन इन विषयों पर कहानियाँ लिखीं जो ग्राम जीवन या आँचलिक विशेषता लिए हुए थी। स्वतंत्रता के फलस्वरूप ग्राम जीवन में आ रहे बदलाव, शिक्षा का प्रसार, शासन की योजनाओं का प्रभाव, सामाजिक रुढियों और अंधविश्वासों का चित्रण कहानीकारों ने किया। कहानीकार स्वयं उस अंचल विशेष का अंग था। अतः इस समय लिखी गयी कहानियों में अंचल का सजीव चित्रण हुआ। आंचलिकता को केंद्र में रखकर लिखी गयी कहानियों में फणीश्वर नाथ रेणु की 'तीसरी कसम', शैलेश मटियानी की 'प्रेत मुक्ति', 'माता', शिवप्रसाद सिंह की 'नीच जात', 'धारा', राजेन्द्र अवस्थी की 'अमरबेल', लक्ष्मीनारायण लाल की 'माघ मेले का ठाकुर', रामदरश मिश्र की 'एक औरत की जिंदगी' प्रमुख है। इन कहानियों में अंचल विशेष की संस्कृति, लोक रंग, धार्मिक मान्यता, ग्रामीण समस्याएँ ग्रामीण परिवेश में रची–बसी बोली आदि विशेषताएँ समाहित हैं। नगरीय परिवेश पर आधारित कहानियों में कृत्रिम जीवन परिवार और समाज के स्वरूप में नवीनता, स्त्री–पुरुषों में तनाव, अकेलापन, उदासी, विघटन का चित्रण कहानीकारों ने किया है। निर्मल वर्मा की 'पराये शहर में', 'परिंदे', मोहन राकेश की 'वासना', मन्नू भंडारी की 'वापसी', रमेश बक्षी की 'आया गीत गा रही थी' आदि में नगरीय बोध से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है।

नयी कहानी में नए बिंब, प्रतीक, संकेत, मिथ के साथ समाज में व्याप्त सड़ी–गली मान्यताओं के प्रति विद्रोह का चित्रण किया गया है। ''विद्रोह नयी कहानी के लेखकों की सबसे बड़ी पहचान थी। परंपरा के प्रति विद्रोह, सड़ी–गली मान्यताओं के प्रति विद्रोह, समाज और उसके स्वीकृत आदर्शों के प्रति, मूल्यों और मान्यताओं के प्रति विद्रोह।''[5] नयी कहानी में लेखकों नए पुराने संस्कारों की टकराहट, मुखौटा के पीछे छिपे व्यक्ति की वास्तविकता का चित्रण किया गया। व्यक्ति की अंतःरंगता और मनोभावों का विश्लेषण नयी कहानी की विशेषता रही। नयी कहानी की भाषा सृजनात्मक, सशक्त और बिंब बहुला है। कहानियों का शीर्षक कविता की तरह प्रतीकात्मक है। जैसे–'फौलाद का आकाश', 'उलझते धागे', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' आदि। चरित्रों को नए रूप में प्रस्तुत कर मानव मूल्य और मर्यादा को समकालीन जीवन में सन्निहित कर आधुनिक संचेतना की अभिव्यक्ति नवीन स्थितियों के अनुकूल कर गरिमा युक्त बनाया है।

नयी कहानी के विषय अब तक के अछूते विषय रहे हैं। कहानी को वैचारिक जड़ता से मुक्त कर यथार्थ की अनुभूति से युक्त कर गरमाहट प्रदान किया गया है। इस तरह नयी कहानी, कहानी की विकास धारा में महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ते हुए उसका महत्वपूर्ण पड़ाव बनते हुए वयस्कता प्रदान करने में महती भूमिका का निर्वहण करने में समर्थ हुई है।

छठे दशक में कहानी लेखन :-

स्वतंत्रता के बाद सन् 1950 में हिंदी कहानी में नयी कहानी प्रतिष्ठित हुई, किंतु कुछ ही अंतराल में नयी कहानी के पश्चात् अनेक कहानी आंदोलन अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहानी से लेकर समकालीन कहानी तक कहानी विकास यात्रा समय के साथ बदलती मानसिकता को रेखांकित करने वाली सिद्ध हुई। इन कहानी आंदोलनों का अस्तित्व दीर्घकाल तक नहीं रहा, किंतु हिंदी कहानी के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ''छठे सातवें दशक में नयी कहानी की प्रतिक्रिया और पश्चिम के 'एंटी स्टोरी 'के अनुसरण में अकहानी का जन्म हुआ।''[6] नयी कहानी का लक्ष्य जहाँ नए भावबोध पर आधारित यथार्थानुभूति का चित्रण रहा, वहीं अकहानी आंदोलन में अनुभव की प्रामाणिकता के सूत्र को 'अनुभव की वैयक्तिकता' के रूप में स्वीकार किया गया। अकहानी अतिशय आधुनिकता पर जोर देने के कारण शीघ्र ही समाज से कट गई।

अकहानी– 'ज्या भाल सात्र' और 'कामू' जैसे अस्तित्ववादी चिंतकों के विचारधारा से प्रभावित इस आंदोलन में रोमानियत, आदर्शीकरण और काव्यात्मक भाषा का विरोध कर परंपरागत, आदर्श, और मानव मूल्यों, विशेषकर स्त्री–पुरुष संबंधों की नैतिकता में सन्निहित नैतिक आचरण के खिलाफ विद्रोह करती है। अकहानी आंदोलन की प्रमुख कहानियाँ श्रीकांत वर्मा की 'शवयात्रा, कृष्ण बलदेव बैद की त्रिकोण, मणिका मोहिनी की एक ही बिस्तर, रवींद्र कालिया की त्रास, दूधनाथ सिंह की रीछ, ज्ञानरंजन की पिता, विजय मोहन सिंह की कुछ महीने, रमेश बख्शी की पिता दर पिता, गंगा प्रसाद विमल की विध्वंस आदि हैं। इस आंदोलन में आत्मपीड़न, संत्रास, मनुष्य की जैविक नियति इत्यादि नकारात्मक पक्षों को ही सच मानकर जीवन को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया गया।

सचेतन कहानी–सन् 1964 के आस–पास सचेतन कहानी आंदोलन का प्रादुर्भाव महीप सिंह की अगुवाई में हुआ। इस कहानी आंदोलन से कहानी में बौद्धिक प्रतिबद्धता की एक चिन्तनपरक यथार्थता की प्रवृत्ति को जन्म दिया। किंतु यह नया दृष्टिकोण अधिक विकसित न हो सका। इसने कहानीकारों का ध्यान जीवन की अनुभूति की ओर आकर्षित कराया। इसने अराजक हो रही कहानी को जीवन के सराकारों से प्रतिबद्ध करने का काम किया। ''सचेतनता एक दृष्टि है, जिसमें जीवन जीया भी जाता है और जाना भी जाता है।''[7] सचेतन कहानी सक्रिय भावबोध की, जीवन की स्वीकृति की कहानी है। इसने जीवन और रचना में तादात्म्य स्थापित कर स्वस्थ रचनात्मकता का मार्ग प्रशस्त किया। सचेतन कहानी की प्रमुख कहानियाँ महीप सिंह की सुबह के फूल, उजाले के उल्लू, हिमांशु जोशी की आदमी जमाने की, मनहर चौहान की बकीस सुबहों के बाद, सुदर्शन चोपड़ा की हल्दी के दाग, राजकुमार भ्रमर की लौ पर रखी हथेली हैं। सचेतन कहानी ने आधुनिकता को अपने परिवेश के साथ स्वीकार कर आशावाद की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति स्वर जगाया।

सहज कहानी आंदोलन के प्रस्तोता अमृतराय अच्छी कहानी के सृजन की वकालत करते हैं। इसमें कोई आडंबर, कृत्रिमता, ओढ़ी हुई मुद्रा, आत्मप्रशंसा, अन्धानुकरण नहीं है। इसमें कहानी को अपने परिवेश, समाज और विविध समस्याओं से मुक्त करने का आग्रह है। अमृतराय के अनुसार– ''सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्राकोष नहीं है, आइने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने ही अंग–प्रत्यंग को अलग–अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है, और किसी का अंधानुकरण भी नहीं है।''[8] सहज कहानी में परिवेश समाज और विविध समस्याओं को सहजता से जोड़ने का आग्रह करती है।

सचेतन कहानी में वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण कहानी की जो सहजता छुप सी गयी थी, सहज कहानी उसका तिरस्कार करती है, साथ ही विविध नारों और कल्पना की अनुभूतियों का विरोध कर सहजता की पहल करती है।

समकालीन कहानी आंदोलन गंगा प्रसाद विमल के नेतृत्व में सामने आया। समकालीन कहानी रचना के अंतर्गत जीवन दृष्टि और प्रतिबद्धता के प्रतिमानों का मूल्यांकन किया गया है। समकालीन कहानी अपने प्रदर्शन, क्रियाहीन स्वभाव और स्वयं में अव्यवस्थित रहने के गुण से नयी कहानी से पृथक है। इसमें जीवन के परिवेश और उसकी स्थितियों से सीधा साक्षात्कार करते हुए यथार्थ का निर्मम और बेबाकी से चित्रण किया गया है। मूल्य, आदर्श, रूढ़, परंपरा और संवेदनशीलता के नाम पर जो छल–प्रपंच किया जा रहा है, उसके प्रति इस काल की कहानियों में आक्रोश व्यक्त किया गया है। इस काल की प्रमुख कहानियाँ हैं– ज्ञानरंजन की 'फेंस के इधर उधर', रवींद्र कालिया की 'बड़े शहर का आदमी' दीप्ति खंडेलवाल की 'मूल्य', राजकमल चौधरी की 'दांपत्य', निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत' आदि।

सातवें दशक में कहानी लेखन :–

छठे दशक में जो सत्ता पक्ष से जो लगाव और आशा बंधी थी, जिसके कारण मोह उत्पन्न हुआ था, वह सातवें दशक में समाप्त हो गया। ''सातवें दशक को मोह भंग का दशक कहना उचित होगा।''[9] इस दशक में मूल्यों के विघटन से व्यक्ति का विखण्डन हुआ। सन् 1962 में चीन के आक्रमण से मोह भंग हुआ। पुरानी पीढ़ी के प्रति आक्रोश उत्पन्न हुआ। पुरानी पीढ़ी से संवाद की स्थिति न रहने से अकेलेपन और निर्वासन से अधिक नकारात्मक ऊब में विघटनात्मक और विद्रोहात्मक स्वर अधिक प्रतीत होता है। कटाव, अलगाव और निर्वासन अपने चरम पर पहुँच गए। आधुनिकता बोध से संपृक्त व्यक्ति में नैतिकता का औचित्य नहीं रह जाता। जीवन जड़ता और व्यर्थता की ओर अग्रसर होती है। आधुनिकता बोध के कारण स्त्रियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व में सेक्स के संबंध में भी किसी तरह झिझक या संकोच नहीं रह गया।

आठवें दशक में कहानी लेखन :–

आठवें दशक के प्रारंभ होते–होते सामाजिक दृष्टि से विशेष महत्व रखने वाले आम आदमी की स्थिति उपेक्षित सी होने लगी। अतएव कहानीकारों ने इस उपेक्षित आम आदमी को ध्यान में रखकर कहानी लेखन किया, जो समांतर कहानी के रूप में जाना गया।

समांतर कहानी :–

सामाजिक चेतना के धरातल पर व्यक्ति, समाज, राजनीति और अर्थनीति के अनेक पक्षों के उद्घाटन का आधार समांतर कहानी था। इस कहानी आंदोलन प्रारंभ सन् 1972 से माना जाता है। इस आंदोलन के अगुवा कमलेश्वर थे। समांतर कहानी के केंद्र में आम आदमी था, जो गाँवों, कस्बों, नगरों, महानगरों आदि स्थानों पर विसंगति, विषमता और विडंबना का शिकार था। ''सन् 70 के बाद की कहानियों में निम्न मध्य वर्ग पर अधिक बल दिया जा रहा है और उसमें वास्तविक परिस्थिति और सर्जनात्मक विचार की टकराहट है, वास्तविकता की पहचान है। इसी वर्ग के आदमी को या कृषक मजदूर वर्ग के आदमी को ही 'आम आदमी' माना गया है– यद्यपि उच्च वर्ग से संबंधित कहानियों का अभाव नहीं है। इसके अतिरिक्त सन् 70 के बाद की कहानी का स्वर अधिक तीखा है, उसमें जिंदगी की हरकत बताई जाती है।''[10] आम आदमी का संघर्ष पहले से अधिक बढ़ गया है। अतः कहानी के शिल्प में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। कथानक की रुढ़ियों के टूटने से कथात्मकता में ह्रास

होने लगा। पात्रों की अवधारणाएँ बदलने लगीं। कहानी में सांकेतिक सूक्ष्मता का संचार होने लगा।

समांतर कहानी आंदोलन की प्रमुख कहानियाँ कमलेश्वर की 'जोखिम', 'मानस के हंस', जितेन्द्र भाटिया की 'साजिश', आशीष सिन्हा की 'अनुराग', आलम शाह खान की 'पराई प्यास का सफर', स्वदेश दीपक की 'तमाशा', सतीस जमाली की 'प्रथम पुरुष', श्रवण कुमार की 'बवंडर', सनत कुमार की 'टोपी का रंग', सुदीप की 'अंतहीन', विभुकुमार की 'यात्रा : शवयात्रा', अरविन्द की 'इत्यादि', मधुकर सिंह की 'पूरा सन्नाटा', इब्राहीम शरीफ की 'दिग्भ्रमित', हिमांशु जोशी की 'जलते हुए डेने', मृदुला गर्ग की 'हरी बिन्दी', राम अरोड़ा की 'ऋतुशेष', शीला राहेकर की 'चौथी दीवार', निरुपमा सेवती की 'कुछ होने की स्थिति' आदि हैं। इस समय की कहानियों में कहानीकारों की संवेदना के अनुसार विविध रूपता है।

सक्रिय कहानी :–

'मंच' पत्रिका सन् 1978 के माध्यम से राकेश वत्स ने सक्रिय कहानी की अवधारणा का सूत्रपात किया। सक्रिय कहानी का तात्पर्य आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी है। सक्रिय कहानी देश की राजनीति में स्वार्थी और महत्वाकांक्षी राजनेताओं के कारण आम जन को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से मुक्ति दिलाकर स्वयं के भीतर बैठी हुई कमजोरियों के विरुद्ध संघर्ष करने की चेतना जागृत कर रही थी। ''जब समाज दो वर्गों–शोषक और शोषित में विभाजित हो तो शोषक वर्ग का समर्थन करने वाले कवि, कथाकार, चिंतक और दार्शनिक प्रतिक्रियावादी कहलाते हैं और शोषितों का पक्ष लेने वाले प्रगतिशील।''[11] समाज में जिस कारण से जड़ता व गतिहीनता आती है, वह प्रतिक्रिया और इसका विरोध ही प्रगति है। सक्रिय कहानी आम आदमी को उसके अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए मानसिक व व्यावहारिक स्तर पर दिशा बोध कराते हुए संघर्ष के लिए सक्रिय करने का प्रयास है जिससे पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर नयी व्यवस्था स्थापित किया जा सके। इस प्रकार सक्रिय कहानी विचार और व्यवहार के मध्य सेतु का कार्य करते हुए आम जन को सचेत और सक्रिय करने की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण करती है। ''यह कहानी मुर्दा आदमी की जगह सक्रिय आदमी चाहती है।''[12] आर्थिक–सामाजिक शोषण के विरुद्ध आम आदमी के संघर्ष के प्रति सक्रिय करना सक्रिय कहानी का उद्देश्य है। सक्रिय कहानी की प्रमुख कहानियाँ राकेश वत्स की 'काले पेड', सुरेंद्र कुमार का 'उसका फैसला', रमेश बत्रा का 'जंगल ज्युग्राफिया', धीरेन्द्र आस्थाना का 'लोग हाशिए पर', कुमार संभव का 'आखिरीशाम' आदि हैं।

जनवादी कहानी :–

जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक में हो गया था किंतु इसका वास्तविक विकास आठवें दशक में दिखता है। मार्क्सवादी दर्शन और जनवाादी वैचारिकता, जागरुकता, सजगता एवं पक्षधरता से युक्त जनवादी कहानी आंदोलन सक्रिय रही। समांतर कहानी के आम आदमी के स्थान पर सर्वहारा वर्ग को ध्यान में रखकर लिखी गयी जनवादी कहानी में वर्ग संघर्ष की चेतना को स्वर दिया गया है।''सर्वहारा शब्द एक निश्चित अर्थ का वाहक है। आम आदमी से इसके अर्थ को पकड़ा नहीं जा सकता। कारण, आम आदमी के अंतर्गत ग्रामीण मध्यम वर्ग था, शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग तक के लोग आ जाते हैं। सर्वहारा और मध्यम वर्ग निम्न पूंजीवादी वर्ग तक की आर्थिक, राजनैतिक स्थिति और समझ भिन्न होती है।''[13] जनवादी कहानी में उपेक्षित, शोषित, दमित, दलित पात्रों के माध्यम से मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की विसंगति और उनके संघर्ष को कहानी में

स्थान दिया गया है।

जनवादी कहानी में संघर्षरत और चुनौतियों का सामना करने वाले पात्रों को आमने–सामने रखकर शोषकों के छद्म रूप को उजागर किया गया है। शोषित पात्र जो सदियों से उपेक्षित और पीड़ित है, को कहानी में प्रतिष्ठित किया गया है। ''जनवादी साहित्य वह इंकलाबी साहित्य है, जो आम जनता के निर्मित इतिहास से आगे बढ़ता हुआ, वर्तमान को सचेतन रूप में बदल देने में कटिबद्ध और मनुष्य की अनन्त सम्भावनाओं के विकास के महान् भविष्य के प्रति गहरी आशा और दृढ़ विश्वास में, जनता के जटिल वीरता पूर्ण प्रयत्नों के बीच निर्मित होता है।''[14] सर्वहारा वर्ग की कमजोरियों को सीमाओं की वास्तविकता को प्रकाश में लाया गया।

वामपंथी विचारधारा से ओत–प्रोत जनवादी कहानी जीवन और रचना में भेद नहीं मानती है। जीवन और रचना के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करने वाले युवा रचनाकारों ने असहाय गरीब मजदूरों के संघर्ष से अपने संघर्ष के अनुभवों को जोड़ते हुए नए कथ्य और शिल्प के साथ जनवादी कहानी रचने लगे। इन कहानीकारों में उदय प्रकाश, संजीव, स्वयं प्रकाश, पंकज बिष्ट, विजेंद्र अनिल, असगर वजाहत, पंकज सिंह, मिथिलेश्वर, नमिता सिंह, रमेश उपाध्याय, रामधारी सिंह दिवाकर, सुरेश कांटक, राजी सेठ, शिवमूर्ति, कामतानाथ, सतीश जमाली, इसराइल, रमेश बत्रा आदि ने अपनी अलग छाप छोड़ते हुए वर्ग संघर्ष को अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

जन सामान्य की समस्याओं के प्रति प्रतिबद्ध जनवाद भ्रष्ट तंत्र की शक्तियों के चरित्र का उद्घाटन करते हुए उनसे संघर्ष का मार्ग प्रशस्त करती है। जनवादी कहानी इस अर्थ में नक्सलवादी आंदोलन से प्रेरित है। शोषित मजदूरों, गरीब किसानों के प्रति नक्सलवादियों के मन में भी सहानुभूति थी। जिनके आंदोलन को सत्ता पक्ष द्वारा क्रूरता से दमन किया गया। ''नक्सलवाड़ी या नक्सलवादी आंदोलन से सीधा प्रभाव ग्रहण कर लिखी जाने वाली काशीनाथ सिंह की सुधीर घोशाल जनवादी कहानी आंदोलन की पहली कहानी है।''[15] नक्सलवादी आंदोलन ने समाज और संस्कृति को भी प्रभावित किया।

सर्वहारा वर्ग के विद्रोह को उदय प्रकाश की कहानी 'टेपचू' में देखा जा सकता है। उदय प्रकाश की कहानी 'टेपचू' में टेपचू ऐसा चरित्र है जिसे जीवन पर्यन्त संघर्ष करना पड़ता है। उसे संघर्ष से ऊर्जा मिलती है, और उसका व्यक्तित्व संघर्ष से निखरता जाता है। ''आज की शासन व्यवस्था में अपना हक लेने वालों पर धनी वर्ग जुल्म करता है और सरकार जुल्म करने वालों का ही साथ देती है। ऐसी व्यवस्था के खिलाफ लड़ने के लिए टेपचू जैसे फौलादी व्यक्तित्व की जरुरत है।''[16] 'टेपचू' जुल्म करने वालों के विरुद्ध संघर्ष के साथ जीने की कला सिखाती है। पंकज बिष्ट ने 'सोवेल' कहानी में फैंटेसी के माध्यम से जनवादी विचारधारा को अभिव्यक्त किया है। संजीव ने 'अपराध' कहानी में बुद्धिजीवी, पूंजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है।

आठवें दशक की कहानियों में भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों एक साथ गतिमान है और सतत् मनुष्य को उद्वेलित, प्रेरित करता है। इस समय की कहानी में प्रसार नहीं वरन् गहराई है। यथार्थ के अनेक रूपों को उदय प्रकाश के 'टेपचू', रमेश उपाध्याय के 'आत्म समर्पण', श्रीकांत के 'टुकड़ों में बंटी जिन्दगी', धीरेन्द्र आस्थाना के 'अपनी दुनिया', वेद राही के 'हर रोज' कहानियों में अभिव्यक्त किया गया है। ''अब कहानीकार भाषा में लिखता नहीं है, अपितु बोलता है।''[17] भाषा कहानीकार के हृदय स्थल से आक्रोश के रूप में फूट पड़ी है। इस दशक

की कहानियों का कथ्य संवाद तत्व में नाटकीयता, प्रतीकात्मकता के कारण रोचक बन पड़ा है।

आठवें दशक की कहानी में समय सत्य की अभिव्यक्ति हुई है। शोषक तंत्र के अनेक पक्षों का उद्‌घाटन सामाजिक चेतना के आधार पर की गई है। यह दशक कहानी की आने वाली पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में कहानी के विकास क्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण पड़ाव है। स्वातंत्रयोत्तर काल में हुए विविध आंदोलनों से होते हुए हिंदी कहानी सहज मार्ग अपनाते हुए अपना स्वरूप प्राप्त करते हुए लोकोन्मुखी हो रही है। हिंदी कहानी साहित्य के अन्य विधाओं की तुलना में अधिक प्राणयुक्त, विकासशील और सही अर्थों में जीवन जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली विधा बन गयी है। विविध आंदोलनों से हिंदी कहानी को गति मिली और निरंतर इसके स्वरूप में जीवंतता के साथ निखार आया है।

समकालीन कहानी :–

सन् 1980 के पश्चात् लिखी जा रही कहानी को समकालीन कहानी के रूप में जाना जा रहा है। ''समकालीन शब्द अपने आप में काल और परिवेश सूचक शब्द है। अतः एक समय खण्ड और एक विशिष्ट परिवेश के बीच जो समस्याएँ उठती हैं, लेखक उनसे अनिवार्य रूप से गुजरता है और अपने इन अनुभूत संघर्षों को आधार मानकर वह उनके समाधान खोजने की कोशिश करता है।''[18] समकालीन कहानी किसी आंदोलन विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है। इसमें जीवन की सापेक्षता है। अतः कहानीकार अपनी पूरी निष्ठा और लगन से रचनाकर्म के प्रति प्रतिबद्ध हो गया है। समकालीन कहानी में जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया गया है। चित्रण में चमत्कार प्रदर्शन नगण्य है। हिंदी कहानी में कथ्य, तथ्य, शिल्प, भाषा संवेदना पहले की तुलना में अधिक व्यापक हो गयी है। घटना, पात्र, दृश्य और भाषा का कहानी के अंतर्वस्तु के अनुरूप विधान किया जाने लगा है।

समकालीन कहानीकारों ने कहानी सृजन की नयी दिशाओं की ओर संकेत किया है। अपनी पीढ़ी अपने समय के कटु यथार्थ और सच्चाई को संवेदनात्मक लगाव के साथ देखकर रचना कर्म के प्रति प्रतिबद्धता दिखाया है। उदय प्रकाश की 'तिरिछ', पंकज बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', संजीव की 'तीस साल का सफरनामा', मिथिलेश्वर की 'गाँव के लोग', हृदयेश्वर की 'इतिहास', सृंजय की 'कामरेड का कोट', काशीनाथ सिंह की 'सदी का सबसे बड़ा आदमी', गोविंद मिश्र की 'पगला बाबा', शिवमूर्ति की 'केसर कस्तूरी', धीरेन्द्र आस्थाना की 'लोग हाशिये पर', अब्दुल बिस्मल्लाह की 'रैन बसेरा', प्रियंवद की 'एक अपवित्र पेड़', पुन्नी सिंह की 'जुगलबंदी', बटरोही की 'आगे–पीछे', ओमप्रकाश वाल्मिकी की 'घुसपैठिये', अरुण प्रकाश की 'विषम राग', ममता कालिया की 'उसका यौवन', मृदुला गर्ग की 'शहर के नाम', चित्रा मुद्‌गल की 'अपनी वापसी', सुधा अरोड़ा की 'काला शुक्रवार', सूर्यबाला की 'यामिनी कथा', मेहरुननिशा परवेज की 'अंतिम चढ़ाई, उर्मिला शिरीष की 'निर्वासन', मुक्ता की 'पलाश के घुंघरु', नासिरा शर्मा की 'पत्थर गली', मैत्रेयी पुष्पा की 'चिन्हार', नमिता सिंह की 'नील गाय की आँखें', अलका सरावगी की 'कहानी की तलाश में' जैसे अनेकानेक कहानीकारों की कहानियों में रचनाधर्मिता का परिचय व अपने समय के सच का उद्‌घाटन हुआ है।

इस समय की अधिकांश कहानीकार मध्यम वर्गीय हैं। अतः इस समय की कहानियों में मध्यम वर्गीय जीवन और उनकी समस्याएँ चित्रित हुई हैं। मध्यवर्ग की सबसे बड़ी समस्या है–आर्थिक समस्या। ''समकालीन हिंदी कहानीकार आत्मकेंद्रित हुआ है, लेकिन उसने अपनी आँखें खुली रखी हैं और मध्यवर्गीय दुनिया के बाहर की दुनिया को भी देखा है और उसकी सुध ली है। इसीलिए सुदूर ग्रामांचलों का बड़ा वैविध्यपूर्ण चित्रण उसने किया

है।''[19] इस समय के कहानीकारों की चेतना में उसका व्यक्तिगत अनुभव छाया रहा, जिसके केंद्र में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था रहा है। आज व्यक्ति का महत्व बढ़ गया है, समाज हाशिये पर चला गया है। आज कहानी के पात्रों को अपनी पहचान, अस्मिता, स्वायत्तता, विशिष्टता के लिए जूझना पड़ रहा है, विशेषकर स्त्री पात्रों को।

समकालीन कहानी में यथार्थांकन, अनुभव आत्मसात करने की क्षमता, शोषण और अत्याचार का प्रतिरोध व प्रतिवाद, शिल्प की दृष्टि से कहानी में कसाव, शब्दाडंबरहीनता, प्रभावोत्पादक चित्रण, मार्मिकता की अभिव्यक्ति, प्रभावी कथा संयोजन के आधार पर कहा जा सकता है। हिंदी कहानी का भविष्य समकालीन और उदीयमान कहानीकारों के हाथों न केवल सुरक्षित है, वरन् निरंतर संवर्धित और विकसित हो रही है।

संदर्भ :-

1. चातक एवं शर्मा, राजकुमार, हिंदी साहित्य का इतिहास, जयपुर : कॉलेज बुक डिपो. संस्करण : 1983, पृष्ठ 400.
2. शर्मा, हरिचरण. समीक्षात्मक निबंध. गाजियाबाद : के. एल. पचौरी प्रकाशन. संस्करण : 2005, पृष्ठ 278.
3. सुधींद्र कुमार, हिंदी साहित्य का इतिहास, भजनपुरा दिल्ली : नवलोक प्रकाशन. संस्करण : 2009.
4. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास. इलाहाबाद : सुमित प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2009, पृष्ठ 41.
5. विवेकी राय, हिंदी कहानी : समीक्षा और संदर्भ. इलाहाबाद : राजीव प्रकाशन. संस्करण : 1985, पृष्ठ 177.
6. बंधु, राजीव रंजन एवं रसाल सिंह. हिंदी साहित्य के इतिहास पर कुछ नोट्स. गाजियाबाद : के.एल. पचौरी प्रकाशन. संस्करण : 2011, पृष्ठ 274.
7. वही. पृष्ठ 274.
8. शर्मा, हरिचरण. समीक्षात्मक निबंध. गाजियाबाद : के. एल. पचौरी प्रकाशन. संस्करण : 2005, पृष्ठ 290.
9. नगेंद्र एवं हरदयाल. हिंदी साहित्य का इतिहास. इंदिरापुरम : मयूर पेपर बैग्स. संस्करण : 2015, पृष्ठ 733.
10. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, दिल्ली : राजपाल एंड सन्ज प्रकाशन, संस्करण : 1982, पृष्ठ 99.
11. भरत सिंह (आलेख). साहित्य और राजनीति, नयी दिल्ली : भाषा प्रकाशन. संस्करण :1981, पृष्ठ 168.
12. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास. दिल्ली : राजपाल एंड सन्ज प्रकाशन, संस्करण : 1982, पृष्ठ 100.
13. शुक्ल, रामनारायण (आलेख). साहित्य और राजनीति. नयी दिल्ली : भाषा प्रकाशन. संस्करण :1981, पृष्ठ 140.
14. वही पृष्ठ 150.
15. पांडेय, बलराज. कहानी आंदोलन की भूमिका. इलाहाबाद : अनामिका प्रकाशन. संस्करण : 1989, पृष्ठ 151.
16. वहीं, पृष्ठ 155.
17. नगेंद्र एवं हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास. इंदिरापुरम : मयूर पेपर बैग्स. संस्करण : 2015, पृष्ठ 738.
18. बटरोही. कहानी : संवाद का तीसरा आयाम. नयी दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस. संस्करण : 1983, पृष्ठ 102.
19. नगेंद्र एवं हरदयाल. हिंदी साहित्य का इतिहास. इंदिरापुरम : मयूर पेपर बैग्स. संस्करण : 2015, पृष्ठ 753.

डॉ. लूनेश कुमार वर्मा (व्याख्याता)
(रामालय) म.नं. 3349 वार्ड– 61, काजल किराना के पास, शुक्ल वंशम के पीछे, रावतपुरा कालोनी फेस–01
मठपुरैना. पोस्ट– सुंदर नगर, तह+जिला– रायपुर (छत्तीसगढ़) पिन 492001
मोबाइल नंबर– 8109249517, ई मेल–luneshverma@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 31-32

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में गाँव

रंजना गुप्ता
शोधार्थी, जैन विश्वविद्यालय बेगंलूरू।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी अर्थात आधुनिक काल या नई कहानी। १९५० के बाद का लेखन यर्थात के धरातल पर लिखा गया था, यूँ कहे भोगे हुए यर्थात की पृष्ठ भूमि पर कहानियाँ लिखी जाने लगी। स्वतंत्रता के बाद हमारा जीवन बदला, हमारे सोचने में परिवर्तन आया। हम आधुनिकीकरण की तरफ बढ़ने लगे। आधुनिकी करण आया तो नगरी करण हुआ। गाँव से लोग शहर की चकाचौध की तरफ बढने लगे। अब प्रेमचन्द्र के उपन्यास 'गोदान' जैसा गाँव नहीं रह गया। प्रेमचन्द्र ने १९३६ में यह उपन्यास लिखा था। १९५४ में फणीश्वर नाथ रेणु का उपन्यास उपन्यास 'मैला आंचल' लिखा गया। इसमें मेरी गंज गाँव है। परन्तु इसमें स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात दोनों ही स्थिति का वर्णन किया गया है। जहाँ अभी स्वतंत्रता के बाद बदलाव वहाँ तक पहुँच नहीं पाया। १९७२ में 'धरती धन न अपना' प्रकाशित हुयी। इसमें पंजाब के गाँव की कहानी है, जिसमें काली और ज्ञानों की कहानी है जिसमें स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी दलित जाति में प्रेम करना एक अपराध समझा जाता है। इसमें भारतीय जाति व्यवस्था के हाशिये में रखे गये दलित जीवन की कहानी कहती है।

यह उपन्यास पंजाब के दोआब क्षेत्र के दलितों की कहानी कहती है। घोडेवाह पंजाब का एक गाँव है। इसका मुख्य पात्र काली 6 साल बाद कानपुर से अपने गाँव वापस आता है। एक पक्का घर बनाने की इच्छा लेकर एक युवक शहर से गाँव आता है। परन्तु वह जमीन तो उसकी अपनी थी ही नहीं, वह कभी भी जमीदारों के हाथ में जा सकती थी। जब तक वह है तब तक वह रह सकता है। शिव पूर्ती की कहानी 'तिरिया चरितर' एक 'स' गाँव की कहानी है जिसमें एक स्त्री के साथ उसका ससुर दुर्व्यवहार करता है। स्त्री को इंसाफ के बदले सजा मिलती है। ऐसी सजा जिसमें गरम कल्छुल से माथे पर दाग दिया जाता है। जहाँ माथे पर टीका सजना चाहिये वहाँ उसे दाग दिया जाता है।

मन्नू भण्डारी की कहानी 'गोपाल को किसने मारा' गोपाल प्रेमचन्द्र के 'ईदगाह' का हामिद नहीं जिसे अपनी दादी अमीना के किये चिमटा खरीदने की फिक्र है। ताकि रोटी सेकते हुये उसकी दादी के हाँथ न जले। हामिद और गोपाल में लगभग सौ साल का अन्तर है। सौ साल में बहुत कुछ बदल गया। यह कहानी उसी बदलते आदमी को सामने लाती है। 'एक थी ओमज्यू' प्रकृति करगेती की कहानी है। यह पर्वतीय गाँव से सम्बन्धित कहानी है। यह ऊँच नीच, भेदभाव पर आधारित कहानी है। मैत्री पुष्पा की कहानियाँ बुन्देलखण्ड के जीवन, यहाँ के जातिय भेदभाव, स्त्री शोषण, समाज में स्त्री की स्थिति, दलित समाज पर हो रहे अत्याचारों से सम्बन्धित कहानियाँ है। उन्होंने अपनी कहानियों में गाँव के मेहनतकश समाज को प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्वयं

ग्रामीण जीवन और समाज को गहराई से देखा है, महसूस किया है। वे स्वयं बुन्देलखण्ड के झांसी से है। इसलिये उन्होंने उन स्थितियों को महसूस किया है, देखा है।

'फैसला' कहानी स्त्री संवेदना पर आधारित है। स्वतंत्रता के बाद कहानी की विषय वस्तु बदली, राजनैतिक गतिविधियों और चुनावों के कारण नगर और गाँव प्रभावित हुये। आंचलिक साहित्य सामने आया। यदि हम देखें तो प्रेमचन्द्र की कहानियों में उत्तर भारत की झलक, फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में बिहार प्रदेश के ग्रामीण अंचल, जगदीशचन्द्र माथुर की 'धरती धन न अपना' पंजाब के दोआब क्षेत्र के ग्रामीण संघर्षो की कहानी कहती है। रेणु जी की तीसरी कसम ग्रामीण परिवेश में लिखी गई कहानी है। यह कहानी हीरामन गाड़ी वाले और नर्तकी के प्रेम सम्बन्धों पर आधारित है।

अज्ञेय द्वारा लिखित 'रोज' कहानी एक अलग तरह के अकेलेपन पर लिखी गई है। कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरंबसिया' पुराने समय के कथा कहानियों के साथ आज के परिवेश को साथ लेती चलती है। हमारा ग्रामीण जीवन जीवन्त संस्कृति का मूल आधार है। मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' ग्रामीण पृष्ठ भूमि पर लिखी परन्तु राजनैतिक गतिविधियों से प्रभावित कहानी है। 'कर्मनाश की हार' में शिवप्रसाद सिंह ने बिहार प्रान्त के एक पिछड़े गाँव नई डीह जो कर्मनाश नदी के किनारे बसा हुआ गाँव है। यहाँ अंधविश्वास और दलित शोषण की जड़े फैली है।

प्रेमचन्द्र स्मृति कथा सम्मान से सम्मानित समकालीन कथाकार सत्यनारायण पटेल की कहानी 'तीतर फांद' कहानी एक नई पृष्ठभूमि पर आधारित समकालीन वर्तमान समय में सत्ता और बाजार के कुचक्र का आख्यान रचती कहानी 'तीतर फांद' हमारे चारों तरफ हो रहे अर्थात को सामने लाती है। इसमें लेखक स्वयं का भोगा हुआ यर्थात व्यक्त करते हैं। वे किस प्रकार, किन परिस्थितियों में गाँव से शहर की ओर उन्मुख होते है। 'तीतर फांद' लेखक की कल्पना शक्ति, हमारा मानव समाज, वन्य जीवन और मानव समाज अलग नहीं है। एक नये भाषा शिल्प के साथ यह कहानी हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। 'तीतर फांद' एक ऐसा कहानी संग्रह है जिसमें 'न्याव' कहानी ग्रामीण समाज पर आधारित ऐसी कहानी जिसमे सदियों से ममता और न्याय के तराजू में एक लेखक ने एक माँ की ममता और न्याय के मध्य न्याय सर्वोपरि है का संदेश दिया है। अब कहानियों में गाँव बदल रहे है। उदाहरण के लिये पटेल जी का उपन्यास "गाँव भीतर गाँव', 'आज की वर्तमान समस्याओं को समेटती है। यह कहानियाँ हमारे अन्दर अनगिनत प्रश्न जगाती है। सत्यनारायण पटेल मालवांचल प्रदेश के है। उनके कहानियों और उपन्यासों में इनकी प्रादेशिक लोक जीवन, भाषा, जीवन शैली, ज्वलन्त समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। गाँव किसी भी प्रदेश का हो हिन्दी साहित्य मे हर रंग मिल जाता है। कहानियाँ विविधिता समेटे हुये हैं।

skg9005@gmail.com
+ 91 98458 91758

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 33-37

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी कहानी आन्दोलन की विकास सरणियाँ

डॉ. जिनु जॉन

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग, मार अत्तनेशियस कॉलेज (आटोनोमस), कोतमंगलम, केरल–686666

प्रारूप :–

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का आरंभ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। अनेक मोड़ों, उतार–चढाओं से गुज़रकर यह यात्रा आगे बढ़ रही है। कथा साहित्य में कहानी का मुख्य लक्ष्य उपदेश देकर लोगों को सदपथ पर लाना था। कहानी मानव मन को प्रभावित करनेवाली सशक्त साहित्यिक विधा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी कहानी की विकास यात्रा अधिक तेज़ हो गई। इसका मुख्य कारण है कि स्वतंत्रता के बाद कहानी के क्षेत्र में विभिन्न आंदोलनों का आविर्भाव हुआ। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता का आगमन तेज़ी से हुआ। इस वक्त पुरानी रूढ़ियाँ, दृष्टिकोण व मान्यताएँ मूल्यहीन होती गयी और वैज्ञानिक दृष्टि से प्राप्त नए मूल्यों को स्वीकारना हमने सीख लिया। कहानी स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ी और कहानी का क्षेत्र मनुष्य का कर्म क्षेत्र न होकर अंतर्मन और मानस हो गया। विभिन्न सिद्धान्तों और विचारधाराओं की अभिव्यक्ति इन आन्दोलनों के द्वारा हुई। नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहानी आदि आज़ादी के बाद के प्रमुख कहानी आन्दोलन हैं।

नई कहानी

स्वतंत्रता के बाद देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। "परंपरावादी जीवन की असारता, भारतीय संस्कृति की नए युग के संदर्भ में निरर्थकता, स्वतंत्रता प्राप्ति और मोहभंग की अवस्था, जवानादर्शों की अनिश्चितता, व्यक्तिजीवन में अकेलेपन और अजनबीपन का अहसास आदि अनुभूत सत्यों के अनेक स्तरीय संदर्भों के परिणाम पर नई कहानी विकसित हो रही है।" (कहानी की संवेदन शीलता : डॉ. भगवानदास वर्मा : 195) नई कहानी जीवन परिवेश के दबाव में बनते–बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। पारंपरिक मूल्य–विघटन की तीव्र प्रक्रिया में नए मानवीय संबन्धों की तलाश नई कहानी का मुख्य सरोकार है। 1950 से 1960 तक की कहानियों में कुंठा, निराशा, संत्रास, जिजीविषा आदि मानव की अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं।

नई कहानी एक प्रक्रिया है। "नई कहानी सामायिक सीमाओं के अंतर्गत अपने यथार्थ, युग, समय, परिवेश और व्यक्ति को देखने–परखने एवं मूल्यांकित करने की प्रक्रिया है, जो यथार्थ को उचित संदर्भों में सप्रमाण अभिव्यक्ति देने का प्रयास करती है। "(नई कहानी की मूल संवेदना : डॉ. सुरेश सिन्हा : 27) भोगे हुए यथार्थ का चित्रण करने में नई कहानी विशेष ध्यान देती है। जीवन में अनुभूत सत्यों को और यथार्थ को प्रतिबद्धता के

साथ नए तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास है नई कहानी। नई कहानी मानवीय मूल्यों के संरक्षण और जीवनी शक्ति के परिपोषण की दिशा में प्रयत्नशील है। नई कहानी में जीवन की सामान्य सी स्थितियों में भी नयापन देखा गया है। नई कहानी में मध्यवर्गीय परिवार एवं निम्न–मध्यवर्गीय परिवार की पीड़ा–दर्द, दुःख, विवशता तथा संबन्धों की जटिलता का चित्रण अधिकांश रूप में होता है। पुरानी पीढ़ी के प्रति उपेक्षा, तिरस्कार के भाव की शुरुआत इसी काल में हो गई। निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' को प्रथम नई कहानी मानती है।

निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर आदि को नई कहानी के जन्मदाता माने जाते हैं। मोहन राकेश, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि भी इसके उन्नायकों में प्रमुख है। बदलते परिस्थितियों के प्रति नई कहानी सचेत है। नई कहानी की एक प्रमुख उपलब्धि यह रही है कि उसने वर्जित प्रदेशों में प्रवेश किया है और किसी बात का समर्थन महज इसलिए नहीं किया कि वह अब तक मान्य रही है। नई कहानी समाज, परिवार, धर्म, नारी आदि के प्रति नवीन दृष्टिकोण रखती है। समाज के खोखलेपन का पर्दाफाश करने में नई कहानी को विशेष सफलता मिली है। नई कहानी में ज्वलंत सामाजिक समस्याओं का कच्चा चित्रण दर्शनीय है। नई कहानी बही परिस्थितियों, परिवेशों के चित्रण की प्रधानता से दूर हटकर मानव मन के गहराई में घुसकर उसके सूक्ष्मतम मनोभावों की अभिव्यक्ति करती दिखाई देती है। नई कहानी मानव जीवन का व्यापक चित्रण करने में कामयाब हुई, इसमें संदेह नहीं। जीवन के सत्यों को अभिव्यक्त करना कहानीकार का लक्ष्य है। वास्तव में हिंदी कहानी में आदुनिकता का प्रवेश नई कहानी के द्वारा हुई।

अकहानी :–

अकहानी वास्तव में मोहभंग और निराशा की प्रतिक्रिया रूप में जनित कहानी है। 1960 के बाद युवा पीढ़ी ने अपने को अलग कर शिल्प व संवेदना की दृष्टि से नितांत नई क्रांति का आह्वान किया, जिसे 'अकहानी' की सज्ञा दिया गया। 'अकहानी' आत्मपीडा, संत्रास, भय मृत्यु, कुंठा, निराशा की संवेदनाओं को व्यक्त करती है। ये जीवन के बिखराव को आज के आदमी की नई ज़रूरतों एवं बदलते परिवेश को पूरी तरह चित्रित करती है। दूधनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, गंगाप्रसाद विमल, महेंद्र भल्ला, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह, सुधा अरोड़ा आदि इस श्रेणी के कहानीकार है।

अकहानी के पत्र घोर व्यक्तिवादी, आत्म केन्द्रित, आत्मनिष्ठ तथा अपने आप में ही सिमटे हुए हैं। अकहानी के रचनाकारों ने पश्चिम के निरर्थकता बोध को अपनाया। अकहानी व्यवस्था की पाबंदियों और पुरानी मान्यताओं को नकारती है। अकहानी क्षणवाद को महत्व देती है, वह धर्म, ईश्वर, नैतिक मूल्य आदि को भी अस्वीकार करती है।

सचेतन कहानी :–

सचेतन कहानी की शुरुआत 1964 ई में प्रकाशित 'आधार' पत्रिका के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से माना जाता है। डॉ. महीप सिंह ने इसका संपादन कार्य किया। डॉ. महीप सिंह की राय में "नई कहानी के अन्दर जो अंतर्विरोध थे, उन्हें स्पष्ट करने केलिए और जीवन के प्रति जो सचेतन दृष्टि हम चाहते थे, जिसमें हम यह अनुभव करते थे कि जीवन को मात्र प्रदत्त वस्तु के स्तर पर नहीं जीना चाहिए, बल्कि सक्रियता से भोगना और जीना आज के मनुष्य की नियति है। सचेतन कहानी की बात ने हिंदी में कहानी संबन्धी चर्चा को व्यक्तिपरकता से मुक्त कर उसे पुनः वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।" (आधार – डॉ. महीप

सिंह) सचेतन जनचेतना की वैयक्तिक एवं सामाजिक चेतना संपन्न कहानी विधा है। मानव जीवन की उथल–पुथल सचेत होकर इसमें अभिव्यक्ति पाती है, इसलिए सचेतन कहानी मानव जीवन केन्द्रित कहानी विधा है। यह आन्दोलन नई कहानी की प्रतिक्रिया रूप में शुरू हुआ था। सचेतन कहानी में जीवन को सचेतन दृष्टि से जानें और उसे अपने वैचारिक धरातल पर व्यक्त करें। सचेतनता एक दृष्टि है, जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। मनुष्य की प्रवृत्ति जीवन से भागने की नहीं रही है, जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है।

सचेतन कहानी में शिल्प गौण है और विचार प्रमुख है। सचेतन कहानी मानव जीवन को पूर्ण और स्वाभाविक रूप में पेश करने में सफल हुई है। समूचे प्रकार के बनावटीपन और खोखलेपन से सचेतन कहानी को चिढ़ है। "सचेतन कहानीकारों ने जीवन की व्यर्थता बोध का निराकरण किया है, जीवन की नई भावभूमियों जिवंत मानव लोक की रचना की है, व्यक्तिवादी आत्मदर्शन को विशद आयाम दिया है, विघटन, विसंगति, संत्रास को भी एक नई अर्थवत्ता दी है : वह सराहनीय है। कहानियों में व्यक्त आधुनिकता आयातित नहीं है। अकेलेपन, आत्मनिर्वासन, अजनबीपन आदि को मूल्य के रूप में नहीं प्रस्तुत किया।" (साठोत्तर हिंदी कहानी : उपलब्धि और सीमाएँ : डॉ. जितेन्द्र वत्स : 25) सचेतन कहानी किसी वाद या दर्शन से काफी मात्रा में प्रभावित नहीं है। ये हमेशा मानव जीवन की सच्चाईयों का चित्रण करने का प्रयास करती है। महीप सिंह की कहानी 'कील', आनंद प्रकाश जैन की कहानी 'लिपस्टिक', सुधा अरोड़ा की 'बर्फ', मनहर चौहान की 'बिस्सुबाहों के बाद' आदि उल्लेखनीय है।

सहज कहानी :–

सहज कहानी से तात्पर्य है स्वाभाविक कहानी। कृत्रिमता और बनावटीपन से दूर प्राकृतिक वातावरण में मानव जीवन का चित्रण करनेवाली कहानी है सहज कहानी। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में अमृतराय ने इसका बीजवपन किया। सहज कहानी की परिभाषा के रूप में अमृतराय कहते है कि– "सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढ़ी हुई पद्धति (मैनरिज़्म) या मुद्राकोष नहीं है, आईने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने अंग–प्रत्यंग को अलग–अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है।" (नई कहानियाँ : अमृतराय) कहानी को स्वाभाविक, आकर्षक और सुन्दर रूप में प्रस्तुत करना सहज कहनी का लक्ष्य है। सहज कहनी में कहानीकारों की निजी अनुभूतियाँ गहरी मात्रा में निहित हैं। लेकिन यौन संबन्धों के खुले चित्रण का विरोध करती है। सहज कहनी पाश्चात्य सिद्धान्तों और रीति–रिवाजों का अन्धानुकरण नहीं करती। उसमें साधारण जन–जीवन को देशी परिवेश में अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है। जीवन को उसी रूप में वह प्रस्तुत करती है जिस रूप में वह दीख पड़ता है। सहज कहनी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गुणगान करती दीख पड़ती है। अपनी संस्कृति और सभ्यता से जुड़े रहना हर वक्त और समय की आवश्यकता है। सहज कहानी में इसका प्रयास दीख पड़ता है। अपने में सिमटने के लिए मज़बूर मनुष्य का पथ प्रदर्शन करना सहज कहानी का उद्देश्य है। नई कहानियाँ शीर्षक पत्रिका बंद होने के कारण सहज कहानी का प्रचार भी बंद हो चुका था।

समान्तर कहानी :–

1972 के आसपास कमलेश्वर ने समान्तर कहानी का सूत्रपात किया। कमलेश्वर ने 'सारिका' पत्रिका के अपने संपादन काल में यह कहानी आन्दोलन की शुरुआत की। कमलेश्वर के अनुसार यातनाओं के जंगल से

गुज़रते मनुष्य के साथ और समान्तर चलने का प्रयास है समान्तर कहानी। समान्तर शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी में पैरलल है। समान्तर कहानी दृष्टि की प्रतिबद्धता से मुक्त होकर जनता के बीच जाने के आग्रह की कहानी बनकर सामने आई। यह 'पीढ़ी मुक्त लेखन' और 'बद्धमूल चिंतन' पर पुनर्विचार के आग्रह से जन्मी कहानी थी। समान्तर कहानी ने 'आम आदमी' की पक्षधरता निभाई वहीं दूसरी तरफ आम आदमी की संघर्षशील स्थितियों को रेखांकित करते हुए उन्हें एक दिशा भी प्रदान की। समान्तर कहानी ने आम आदमी को बहुत निकट से देखा है, समझा है, और उसके प्रमाणिक चित्र कहानियों में खींचे हैं। यह आम आदमी किसी एक वर्ग या पेशे का नहीं बल्कि पूरे भारतीय समाज का सामान्य जन है, जो महानगरों से लेकर गाँवों तक में विद्यमान है। समकालीन भ्रष्ट वातावरण की ज़िम्मेदार शक्तियों का पर्दाफाश करना और आम आदमी तथा जन सामान्य के साथ अपनी प्रतिबद्धता तथा संबद्धता जाहिर करते हुए उनके संघर्ष को रचनात्मक ताकत प्रदान करना जैसे दो बातें समान्तर कहानी की ओर से हमारे सामने आते हैं।

समान्तर कहानी आम आदमी के संघर्ष को पहचानने का प्रयास करती हैं, और व्यक्ति की निस्सहायता, मूल्यहीनता, विघटन और नैतिक संकट को समग्र सामाजिक प्रतिबद्धता के परिवेश में आँकने का यत्न किया है। देश के कोने–कोने में समान्तर कहानी का व्यापक प्रचार हुआ। "सत्य का दंश ही समान्तर को समान्तर नाम से जोड़ता है और भौगोलिक जड़ता से ऊपर उठा देता है, क्योंकि इसमें हिंदी ही नहीं भारत की भाषाओं के लेखक शामिल थे, खास टूर से मराठी के तमाम दलित लेखक।" (मेरा साक्षात्कार : कमलेश्वर 26) समान्तर कहानी में चित्रित आम आदमी सब कहीं दिखाई पड़ता था और अब तक उसकी उपेक्षा हो जाती थी। आम आदमी की अर्थाभावजन्य विवशता समान्तर कहानी का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। अस्तित्व संकट के इस जर्जर युग में अपने अस्तित्व की रक्षा केलिए निहत्थे लड़नेवाले आम आदमी को उसकी पूरी जीवन्तता के साथ चित्रित करने में समान्तर कहानी कामयाब हुई है।

जनवादी कहानी :–

'जनवाद' प्रगतिवाद का संस्करण है, विशेषतः हिंदी साहित्य में और मार्क्सदर्शन से अनुप्राणित है। सातवें दशक में उदित जनवादी कहानी आठवें दशक में ही इसका वास्तविक रूप धारण किया। जनवादी कहानी केवल किसानों और मजदूरों की कहानी ही नहीं कस्बे, शहर, महानगर के हरेक शोषित जन की कहानी है। ये देश के बह संख्यक वर्ग किसान, मेहनतकश सर्वहारा वर्ग के हितों के लिए इंकलाबी सन्देश देती है। ये वर्ग संघर्ष का आह्वान करती है। व्यवस्था के विरुद्ध तीव्र आक्रोश करती है। जनवादी कहानी में शोषित जनता के चित्रण के साथ–साथ शोषकों से लड़ने की प्रेरणा देती है। जनवादी कहानीकारों के अनुसार यह वक्त की माँग के रूप में जनित कहानी है। ये रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को नकारने का आह्वान करती है। वास्तव में जनवादी कहानी पुराने प्रगतिवाद का परिमार्जित रूप है। जिसके मूल में वामपंथी विचारधारा है। अधिकांश जनवादी लेखक वामपंथी सिद्धान्तों से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। जनवादी कहानी यथास्थिति में परिवर्तन के लिए आवाज़ उठाती है। जनवादी कहानी के तीन पक्ष महत्वपूर्ण है :– पहला : वर्ग संघर्ष और जुझारू चरित्रों का सृजन, दूसरा : दलित, मज़दूर, किसान की पक्षधरता तथा जन संघर्ष को तीव्र करना, और तीसरा : पूँजीपति, साम्राज्यवादी ताकतों, सामन्ती सांप्रदायिक विश्वासों, भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध, रूढ़ियों की खिलाफत।

सक्रिय कहानी :–

आठवें दशक के अंतिम काल में राकेश वत्स ने सक्रिय कहनी का बीजवपन किया। सक्रियता का अर्थ

है : रचनाकार की रचना सक्रियता, शोषित जनता को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करना, उसके वर्ग शत्रु को उसके सामने नंगा करना, वर्ग शत्रु के तमाम माध्यमों, त्रिकोण एवं उसके मूल्यों का पर्दाफाश करना एवं उनसे निपटने के लिए शोषित वर्ग को संघटनात्मक तरीके से सक्रिय करना। सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी। आम आदमी को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाकर भ्रष्ट सत्ताधारियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए तैयार करना सक्रिय कहानी का लक्ष्य है। सक्रिय कहानी केवल व्यवस्था के प्रति आक्रोश की कहनी नहीं, जनता के दुःख–दर्दों और आशा–आकांक्षाओं की कहानी भी है। ये जनता को उसके मौलिक अधिकारों के बारे में अवगत कराती है और शोषकों से मुक्ति पाने केलिए संगठित रूप में प्रयत्न करने का आह्वान करती है।

उपसंहार :–

आदुनिक हिंदी साहित्य विभिन्न आन्दोलनों, अवधारणाओं, बोध और चेतना का साहित्य है। आधुनिक हिंदी साहित्य का जन्म ही जनजागरण से हुआ। फलतः खड़ीबोली गद्य के विकास के साथ–साथ कथा साहित्य का जन्म हुआ। सामाजिक दर्शन और यथार्थ के ही आधार पर कहानियों में विविध प्रवृत्तियों और रुपबंधों का निर्माण किया है। आज के जनमानस का आक्रोश, पीड़ा, दुःख–दर्द, असंतोष आदि समकालीन कहानियों की सृजन शक्ति है। प्रेमचन्द युग के अधिकांश कहानियाँ घटना प्रधान है। इसके बाद मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी दर्शन पर आधारित कहानियों का आगमन हुआ। 1955 के आसपास देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों का मार्मिक चित्रण के साथ नई कहानी साहित्य जगत में आया। नई कहानी के बाद जनता में चेतनता और स्वाभाविकता भरने का प्रयास करते हुए सचेतन कहनी उभरा। जीवन की व्यर्थता, मानवीय संबन्धों का खोखलेपन आदि अकहानी में व्यापक मात्र में चित्रित हुए। शोषितों को संगठित होकर शोषकों का मुकाबला करने का आह्वान करती है जनवादी कहानी। सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों को दूर फेंककर सदा सक्रिय रहने का प्रयास करती है सक्रिय कहानी।

आन्दोलन के बिना कोई विधा विकसित नहीं होती। कहानी के क्षेत्र में देखा जाये तो इन आन्दोलनों के विभिन्न पहलुओं के एक साथ मिलाकर आज कई कहानियों की रचना होती हैं। आज की कहानी अपने परिवेश से ही विषय वस्तु ग्रहण करती है। एक सच्चे साहित्यकार अपने सहजीवियों के कष्टपूर्ण जीवन से कभी मुँह मोड़ सकता। वर्तमान परिस्थितियों में लेखक का दायित्व बढ़ गया है।

सहायक ग्रन्थ सूची :–

1. कहानी की संवेदन शीलता : डॉ. भगवानदास वर्मा।
2. नई कहानी की मूल संवेदना : डॉ. सुरेश सिन्हा।
3. आधार – डॉ. महीप सिंह।
4. साठोत्तर हिंदी कहानी : उपलब्धि और सीमाएँ : डॉ. जितेन्द्र वत्स।
5. नई कहानियाँ : अमृतराय।
6. मेरा साक्षात्कार : कमलेश्वर।
7. हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान : रामदरश मिश्र।
8. हिंदी कहानी : संरचना और संवेदना : डॉ. साधना शाह।
9. समकालीन हिंदी कहानी : बदलते जीवन संदर्भ : शैलजा।
10. हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश।

9526864182, jinumaryjohn1980@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 38-43

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में वृद्ध विमर्श

डॉ. अमिता प्रकाश

सहायक प्राध्यापिका– हिन्दी, रा0स्ना0 महा0 सोमे वर, अल्मोड़ा, 263136,

''खड़ खड़ खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते!
अब न तुम्हारा रहा जमाना,
शकल पुरानी ढंग पुराना
सीख पुराने ढंग पुराना।
अब न तुम्हारा रहा जमाना...।

''पंक्तियों के माध्यम से बाबा नागार्जुन ने वृद्ध व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक स्थिति तथा वृद्धों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण को चंद शब्दों के माध्यम से बखूबी रेखाकिंत कर दिया है। हिंदी साहित्य में आज विमर्शों की बाढ़ सी आ गई है। उत्तर आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जैसे कुछ पुराने हो चले विमर्शों के साथ ही कुछ नए विमर्श जैसे किन्नर विमर्श, दिव्यांग/विकलांग विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, समलैंगिक विमर्श, वैश्या, सहजीवन, के साथ ही वृद्ध विमर्श साहित्य के केंद्र में आ चुके हैं। इसका कारण साहित्य व समाज का अन्योन्याश्रित संबंध ही है। साहित्य के समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य समाज से साहित्य के संबंध की खोज करना है।

वर्तमान सदी में साहित्यकार का समाजशास्त्रीय चिंतन साहित्य को समाज से दो स्तरों पर जोड़ता है–एक ओर वह समाज को साहित्य की उत्पत्ति और उसके स्वरूप का निर्धारण करने वाली शक्ति के रूप में देखता है और दूसरी ओर वह साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में पाता है। आज समाज जितना जटिल और समस्यामूलक होता जा रहा है उसको समझने के लिए समाजशास्त्रीय कल्पना की जरूरत निरंतर बढ़ती जा रही है। इसीलिए साहित्य जीवन के किसी भी उस पक्ष को नहीं छोड़ सकता जिसे संवेदना की जरूरत है। साहित्य के समाजशास्त्र में वृद्धों के प्रति चिंतन का आरम्भ इसी एक सोच के कारण होता है। संसार भर में वृद्धों से संबंधित अनेक प्रिय–अप्रिय घटनाएं नितप्रति देखने को मिल जाती हैं। इन्हीं घटनाओं और अपने परिवेश में वृद्धों की तमाम समस्याओं को देखते हुए साहित्यकार वृद्धों को केन्द्र में रखकर रचना करने लगे इसीलिए विश्वभर के साहित्य में अविस्मरणीय रचनाएं लिखी गयी हैं।

हिंदी कहानियों में वृद्धों के प्रति चिंतन का शुभारम्भ प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' और 'ईदगाह' जैसी कहानियों में दिखाई देता है। प्रेमचंद ने अपनी कई कहानियों में बड़ी सूक्ष्मता के साथ बुजुर्ग पात्रों की

आशा–निराशा, सुख–दुख, जड़त्व–विवके, नैतिकता–अनैतिकता, मोह–त्याग, घृणा–प्रेम, कुंठा–उदारता, तथा प्रवृत्ति–निवृत्ति जैसे मनोभावों का सूक्ष्म का चित्रण किया है। नई कहानी की शुरुआत में, भीष्म साहनी जी वृद्ध जीवन की चिंता को 'चीफ की दावत' जैसी कहानी की माध्यम से उठाते हैं। इसी क्रम में उषा प्रियंवदा की 'वापसी' एवं ज्ञानरंजन की 'पिता' कहानी उल्लेखनीय है। जैसे–जैसे आधुनिकता का दबाव बढ़ता जा रहा है, वैसे–वैसे बुजुर्ग पात्रों की चिंता और उनसे संबंधित चिंतन साहित्य के केंद्र में अपना स्थान बना रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन की संवेदना और भावभूमि को अंकित करने का प्रयास लगातार जारी है। कहानी 'चीफ की दावत' में बूढ़ी माँ वैसे तो बॉस के सामने प्रस्तुत करने योग्य नहीं समझी जाती किंतु उनका फुलकारी की कला का ज्ञान जो उसके बेटे को पदोन्नति दिला सकती है, ने वृद्धा को केन्द्र में ला दिया। यह कहानी वृद्धा की परिवार में उपेक्षित स्थिति के साथ साथ यह भी दर्शाती है कि हमारी पुरानी पीढ़ी के साथ लोक कलाएं कैसे खत्म हो रही हैं? लोक–कलाओं की ही भांति वृद्धों को भी संरक्षण व देखभाल की जरूरत है।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी' में वृद्धों की प्रमुख समस्या– 'सेवानिवृत्ति और उसके बाद परिवार में उनकी कम या खत्म होती उपादेयता को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। ज्ञानरंजन की 'अमरूद का पेड', 'शेष होते हुए' तथा 'पिता' कहानी में हठी पिता का चित्रण है। इसी प्रकार काशीनाथ सिंह की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा' में वृद्ध पिता की दयनीय स्थिति का चित्रण मार्मिक ढंग से किया गया है। वृद्ध पिता बड़े ही शौक से शहर जाता है कि बेटे–बहू व पोते–पोतियों के साथ समय बितायेगा किंतु, बेटे, बहू और पोते पोतियों से मिलने वाली उपेक्षा से निराश हो जाता है। शिवानी की 'पूतोंवाली' कहानी एक ऐसी वृद्धा की कहानी है, जिसके पांच बेटे हैं किंतु वह निपूती ही मरती है।

'छप्पन तोले का करधन' उदयप्रकाश की उल्लेखनीय कहानी है जिसमें करधन के लिए वृद्धा को बेटे–बहुओं द्वारा प्रताड़ित करते हुए दिखाया गया है। इसी क्रम में मार्कण्डेय की 'गुलरा के बाबा' कहानी में अनुभवी व सशक्त वृद्ध के बारेकी कथा है। गिरीश अस्थाना की कहानी 'बुढ़ऊ का आधुनिकीकरण' में पिता को पुत्र के साथ सामंजस्य बिठाने के लिए। अनेकों प्रयास करते हुए दिखाया गया है। खुशवंत सिंह की 'दादी माँ' में दादी का प्रकृति के साथ अनूठा रिश्ता दिखता है, तो इसी प्रकार प्रभु जोशी की कहानी 'पितृऋण' में कुष्ठ रोग से ग्रसित वह अभागा पिता है जिसको छोड़कर उसका बेटा दूसरे शहर में जा बसता है। कामतानाथ की 'संक्रमण' कहानी भी इस क्रम में एक उल्लेखनीय कहानी है, जो पीढ़ियों के अंतराल को बखूबी रेखांकित करती है। अन्य कहानियों में चित्रा मुद्गल की 'दुलहिन' व 'गेंद', शानी की 'एक नाव के यात्री', हरिशंकर परसाई की 'भोलाराम का जीव', राजी सेठ लिखित 'उतनी दूर', गोविन्द मिश्र की 'साधें', गिरिराज किशोर की 'फाइल दाखिल दफ्तर', मनीशा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेतकामना', रामधारी सिंह दिवाकर की 'अपना घर' सूर्यबाला की 'सीढ़ी' मुकेश वर्मा की 'चिट्ठियाँ', अनंत में अम्मा हसती है', अरुण असफल की 'माँ', सुनीलसिंह की 'हांच', दिनेशचंद्र झा की 'उनका जाना' दयानंद पांडे की 'यक्ष प्रश्न', उर्मिला शिरीश की 'बांधो न नाव इस ठाँव बंधु' कृष्णा सोबती की 'ए लड़की' ममता कालिया की 'माँ', संजीव की 'माँ', मार्कण्डेय की 'माई', गीतांजलि श्री की 'मार्च माँ और साकुरा', कुमार अंबुज की 'माँ रसोई में रहती है', नीलाक्षी सिन्हा की 'ऐसा ही कुछ भी', नासिरा शर्मा की 'दीवारे' नवीन जोशी की 'ताऊजी', सूर्यबाला की 'दादी माँ और रिमोट', पंकज मित्र की 'पड़ताल' तथा दिव्या माथुर की ठुला किलब' आदि अनेकों कहानियाँ हैं जो वृद्ध विमर्श को एक नया आयाम देती हैं।

आधुनिकतावादी और उपयोगितावादी आज के समाज में वृद्धों की दयनीय व उपेक्षित स्थिति का रेखांकन स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में देखा जा सकता है। नवीन जोशी की 'ताऊजी' कहानी में वृद्धों की स्थिति को चित्रित किया गया है कि कैसे वही व्यक्ति जो कुछ समय पूर्व परिवार के लिए आवश्यक हुआ करता था, वह वृद्धावस्था में अनफिट सा लगने लगता है–

''ताऊ जी आते ही पूरे घर में फिट फिट लगे थे। लेकिन धीरे–धीरे अनफिट होते गए। बड़ी लड़की मिन्नी ने पाया कि बैठक का कमरा अब पहले की तरह साफ नहीं रहता। दीवान की चादर और सोफे कुर्सियों की गद्दियां ताऊ जी पैर रख–रखकर गंदी कर देते हैं। छोटी लड़की कांता को तो ताऊ जी का मलेशिया का सदाबहार पजामा और मिलिट्री वाली लंबी कमीजें बहुत भद्दी लगने लगीं। इस तरह ताऊ जी बैठक के लिए अनफिट हो गए।''[1]

वृद्ध और रिटायर्ड पुरुष के दर्द को बयां करने वाली वृद्ध विमर्श की प्रथम सशक्त कहानी उषा प्रियंवदा की 'पिता' है। पैंतीस साल तक परिवार की सुख–सुविधा में जुटे रहने वाले गजाधर बाबू बहू–बेटे तो छोड़िए स्वयं उनकी पत्नी के लिए बोझ हो जाते हैं–''बूढे आदमी हैं, चुपचाप पडें रहें, हर चीज में दखल क्यों देते हैं?''[2]

कुछ इसी प्रकार की कथा मिथिलेश्वर की कहानी 'चल खुसरो घर आपने' में दिखाई देती है जहां बूढ़ी माँ को उसके बेटे गांव से शहर अपने काम से लाते हैं– ''पति की मृत्यु की सूचना पर दाह संस्कार के लिए गांव आए उनके दोनों बेटे, अपनी नौकरी पर उन्हें शहर ले जा रहे थे। माँ को अकेले गांव पर कैसे छोड़ें, लोग क्या कहेंगे? लेकिन वे जानती थी, लोकलाज के भय से नहीं, अपनी जरूरत से वे उन्हें ले जा रहे थे। गांव के समाज के बीच तो उन्हें रहना था नहीं कि गांव की टीका टिप्पणियों का उन पर असर होता, लेकिन रविरंजन की पत्नी माँ बनने वाली थीं, इसलिए उनका जाना जरूरी था।''[3] आज के भौतिकतावादी समाज में रिश्ते भी 'यूज एंड थ्रो' वाले दौर में आ गये हैं और वृद्ध मां–बाप इसके सबसे बड़े शिकार के रूप में हिंदी कहानियों में सामने आ रहे हैं।

उदयप्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले का करधन' में वृद्धा को अपने ही बेटे–बहू न केवल अंधेरी कोठरी में बंद रखते हैं बल्कि सभी मिलकर उसे विभिन्न तरह की यातनाएं देते हैं ताकि बुढ़िया मर जाए या घबराकर छप्पन तोले की करधन उन्हें दे दे। छप्पन तोले का करधन इस बात का भी दस्तावेज है कि स्वयं की संतान कितनी अमानुषिक हो सकती है।

''कमरे का फर्श जमीन की सतह से कम से कम डेढ़ फीट नीचे था, वहाँ हमेशा अंधेरा होता था, दिन में भी। वे शायद कमरे में ही किसी कोने में पेशाब करती थीं क्योंकि अँधेरी कोठरी की बंद गाढ़ी हवा में अमोनिया की तीखी गंध मौजूद होती।''[4] उदय प्रकाश ने वृद्धा की स्थिति को दर्शाने के लिए जिस यथार्थ का वर्णन किया है वह कटु होते हुए भी सच है। कूड़े के साथ दादी की तस्वीर एक ऐसे रूपक का रचाव है जहाँ कूड़ा और बूढ़ा दोनों एक दूसरे के प्रयायवाची बन चुके हैं। वृद्धा के घर से बाहर निकलने को अपशकुन मानने वाली बहू अपने आने वाले दिनों को भूल जाती है– ''फिर किसी दिन हम देखते हैं कि आँगन के कोने में जहाँ अम्मा घर भर के कूड़े का ढेर इकट्ठा करती थीं, दादी उसी ढेर के ऊपर सफेद मैली धोती में, अपनी हथेलियों में अपना माथा थामें बैठी हुई है। चाची उन्हें देखते ही कहतीं, निकली है आज बुढ़िया फिर से, घर में जरूर कोई न कोई बीमार पड़ेगा।''[5]

संयुक्त परिवार के विघटन की वजह से वृद्धों का एकाकीपन बढ़ता जा रहा है। इस एकाकीपन ने उनमें असुरक्षा, अवसाद व मृत्युबोध की भावना को जन्म दिया है। शिवानी की कहानी 'पूतोंवाली' एक ऐसी स्त्री की विडंबना भरी जीवन गाथा है, जो पांच पांच सुयोग्य व मेधावी बेटों की माँ होकर भी अंत में निपूती ही मरती है। पांचों बेटे अच्छी नौकरियों में हैं किंतु मां–बा पके लिए समय का अभाव है– ''बहू! इतना हम समझ गए हैं कि तुम्हारी पंगत में अब हम बूढ़ों की पत्तल नहीं बिछ सकती। भलाई इसी में है कि हम सब बढ़े बूढों को जिन्हें तुम अपनी भाषा में 'ओल्डीज' कहते हो एक कतार में खड़ा कर धांय–धायं, गोली चलाकर ढेर कर दो। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।''[6]

इसी परिप्रेक्ष्य में एक और कहानी है कामतानाथ की 'रिश्ते नाते'। इस कहानी में मनहर दादा और उनके दो बेटे हैं, जिनमें से बड़ा बेटा विदेश चला गया है और जर्मनी की ही किसी लड़की से विवाह कर लेता है। दूसरा बेटा भी फिल्मों में काम करता है, वह भी कभी घर नहीं आता– ''मुझे कुछ अजीब सा लगा। दो बेटे और दोनों ही माँ की अर्थी को कंधा देने नहीं आये! चलो कंधा नहीं सही ना सही, दसवां तेरहवीं में तो आते, लेकिन वह भी नहीं।''[7]

उत्तर आधुनिकता के इस युग में जब भौतिकवाद का दबाव बढ़ रहा है, भैतिक उत्थान ही सफलता के रुप में देखा जा रहा है ऐसे में कोई भी पीछे क्यों छूटना चाहेगा? जीवन एक दौड़ हो गया है ऐसे समय में वृद्धों का अकेला रह जाना कोई बड़ी बात नहीं है, किंतु भौतिकता इतनी हावी हो जाए कि जन्मदेकर पालन–पोशण करने वाले वृद्ध मां–बाप ही खटकने लगें यह बात अखरती है। चित्रा मुद्गल की कहानी 'तर्पण' में ऐसा ही पुत्र है जो पिता को हर बात में टोकता है एवं उलहाने देता है। पुत्र को पिता का अपने घर में रहना खटकता है–''पापा जी आप ने तो हद कर दी, ये लैंडलाइन का बिल बारह सौ रुपए? इतना! हम तो कहीं करते नहीं फोन। घर में होते ही कब है? दफ्तर में खटखटाकर रात सोने भर के लिए तो घर आते हैं। हमारे रहते किसी का फोन आ गया तो उठा कर लेते हैं। जिन्हें करना होता है उन्हें दफ्तर से कर लेते हैं। अपने अपने मोबाइल हमारे पास है। आपको मोबाइल दिया नहीं क्योंकि आपको पेसमेकर लगा हुआ है।''[8]

टकराहट नैतिक मूल्यों में भी है। आज की युवा पीढ़ी स्वकेन्द्रित है जबकि वृद्धों का, समाज के प्रति एक अलग दृष्टिकोण है। 'तर्पण' कहानी में ही बहू ससुर को फ्रिज की ठंडी बोतलें लोगों को पिला देने के लिए कोसती है– ''हमसे तो मोहल्ले के जमादार, पोस्टमैन, ठेलेवाले किस्मत वाले ठहरे। उन्हें जब भी प्यास लगती है आप बोतलें खाली कर देते हैं। आप समझते क्यों नहीं पापा जी परोपकार के वे जमाने लद गए घर के सामने, जब लोग पानी के मटके रखवा दिया करते थे गर्मियों में।''[9]

इन निराशाजनक तस्वीरों के अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में कुछ आशाजनक कहानियाँ भी जुड़ती हैं, जिनमें वृद्धों को पूरा सम्मान मिलता दिखाई देता है। खुशवंत सिंह की कहानी 'दादी माँ' ऐसी ही कहानी है जिसमें लेखक का अपनी दादी से लगाव बहुत अधिक है। इस कहानी में खुशवंत सिंह ने दादी माँ के संस्कारों का वर्णन करते हुए दिखाया है कि कैसे बुजुर्ग अपने क्रियाकलापों से परिवार के बच्चों को अनायास ही तमाम संस्कार और शिक्षाएँ दे जाते हैं– ''सवेरे से शाम तक सूत कातती रहती और प्रार्थना दोहराती जाती। दोपहर को थोड़ा सा आराम करती और गौरैया को दाना डालतीं.. वे झुंड के झुंड वहाँ इकट्ठा हो जातीं और उन्हें घेरकर चहचहाने लगतीं। वे सिर्फ मुस्कुराती रहती उन्हें झटककर कभी नहीं उड़ातीं...उनके लिए तो यही दिन का सबसे

सुखद क्षण होता था।''[10]

गोविन्द मिश्र की कहानी 'साधें' एक ऐसी ही विधवा की कहानी है, जिसके पास अनुभव का संसार है और वृद्धा का अनुभवी होना उसे आदर दिलाता है– ''डॉक्टर शर्मा की बहू स्टोर में पड़ी थी। आठवें महीने में ही दर्द हो रहा था। लेडी डॉक्टर बुलवाई गई। उसने कहा सात महीने ही पूरे हुए हैं, बच्चा अभी नहीं आना चाहिए। इत्तफाक से थोड़ी देर में ही वह पहुँच गई। पैताना ऊपर देख चिड़ गई, हटाओ ईंटें। ना डॉक्टर शर्मा की चली ना लेडी डॉक्टर की। ईंट हटा दी गई। दो–तीन घंटे में बच्चा हो गया, अच्छा तंदुरस्त।''[11]

दूधनाथ सिंह की 'माई का शोकगीत' भी परंपरागत मूल्य एवं लोक संस्कृति को उजागर करती हुई कृषि संस्कृति के क्षरण को दर्शाती कहानी है। माई का शोकगीत के माध्यम से गांव में लोक संस्कृति की रक्षा का चित्रण तथा उसके बरक्स युवा पीढ़ी का अपनी संस्कृति को भूलने का उपक्रम रेखांकित हुआ है– ''तो उसी दरवाजे पर गोधन बनता है...तो अभी अभी दो दिन पहले गांव की औरतों ने मूसल से उस गोधन भगवान को कूट दिया है। हम बच्चे लोग कौड़ियां लूटकर बरगद के पेड़ तले गुड़पी खोदकर गच्चा खेलते हैं और इन्नर भगवान के क्षत विक्षत मृत शरीर का गोबर लूट कर औरतों ने हमारे घर में पिंडियां लगा लिया है।... अब लगातार एक पखवारे तक औरतें सारी रात गाएंगी, कहानी सुनेंगी, सो सकेंगी और फिर वही अपना दुख संतोष लेकर निढाल हो जाएंगी। उन्होंने इन्नर भगवान का बध जो किया है।''[12]

इसी प्रकार मार्कण्डेय की कहानी 'गुलरा के बाबा' एक बहुत ही बलशाली, धीर, गंभीर, अनुभवी और मानवता से भरे वृद्ध की कहानी है। गुलरा के बाबा अनुभव को व्यवहार में प्रयोग कर नायक की भूमिका में हैं–''कौन है रे? वह सरपत काट रहा। बाबा ने अमिलहवा के नीचे खड़े होकर अपनी लाठी कंधे से उतारते हुए कहा। आवाज सारी गुलरा में गूंज गई। बड़ी गंभीर और बड़ी बुलंद आवाज थी वहाँ। एक एक पत्ता बाबा के इस गरजन से परिचित हैं। क्यों ना हो बाबा रात दिन इन्हीं पेड़ों की सेवा सत्कार में तो लगे रहते हैं।''[13]

वृद्ध जीवन के सरोकारों की कहानी में परिवार व समाज की अपेक्षा, उपेक्षा, सहभागिता, परजीवितता, नगरीकरण, उससे उपजी संबंधों की दूरी, बीमारी, अशक्तता, वित्तीय पराधीनता आदि स्वतंत्रता बाद की कहानियों के केंद्र में रहे हैं, लेकिन बदलते परिवेश में आने वाली कहानी में वृद्ध की उपस्थिति का आकलन अभी बाकी है। मन्नू भंडारी की कहानी 'अकेली' में वृद्धा को सामंजस्य करते हुए दिखाया गया है। अपनी उपादेयता बनाने के लिए सोमा बुआ सामाजिक सहभागिता में रुचि रखती हैं। लेखिका के ही शब्दों में– ''किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करती है, मानो वे दूसरे के घर में नहीं अपने ही घर में काम कर रही हों।'' कहने का आशय यह है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श अपनी सार्थक उपस्थिति को दर्ज कराता है।

समाज और स्वयं वृद्ध का नकारात्मक रवैया वृद्धों की सामाजिक समस्याओं में से एक है। कभी कभी वृद्ध व्यक्ति बुढ़ापे की प्रक्रिया को ही स्वीकार न कर विद्रोही तेवर अख्तियार कर बुढ़ापे को सामाजिक कलंक मान लेते हैं। अवकाश प्राप्ति, स्वायत्तता का अभाव, वैधव्य, अलगाव, ऊब, अकेलापन, मृत्युबोध, सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी, शक्ति में ह्यास, नाते रिश्तेदारों से सामाजिक सहारे का अभाव, अव्यवस्था, विस्थापन, अपर्याप्त पारिवारिक समर्थन तथा देखरेख करने वालों का अभाव आदि बुढ़ापे की सामान्य समस्याएं हैं। इन समस्याओं से जूझता व अपने होने की सार्थकता को सिद्ध करता वृद्ध ही स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों के केन्द्र में है।

संदर्भ सूची :-

1. कहानियां रिश्तों की–श्रृंखला संपा0–अखिलेश, मानवता–नवीन जोशी, ताऊजी 2014, पृ0–104
2. उशा प्रियंवदा, जिंदगी और गुलाब के फूल, काशी, भारतीय ज्ञानपीठ, 1969, पृ0–34
3. मिथिलेश्वर, चल खुसरो घर आपने, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, 2012, पृ0–12
4. उदय प्रकाश, छप्पन तोले का करधन, तिरिछ कहानी संग्रह–वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ0–49
5. वही, पृ0–52
6. शिवानी, पूतोंवाली, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण. 2006 पृ0–35
7. कहानियां रिश्तों की–श्रृंखला संपा0–अखिलेश, मानवता–कामतानाथ, रिश्ते–नाते, पृ0–63
8. चित्रा मुद्गल, तर्पण, पेंटिंग अकेली है, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृ0–89
9. वही– पृ0–90
10. खुशवंत सिंह, 'दादी मां, प्रतिनिधि कहानियां, राजकमल प्रकाशन, पृ0–23
11. कहानियां रिश्तों की–श्रृंखला संपा0–अखिलेश, मानवता गोविंद मिश्र, साधें, 2014, पृ0–56
12. दूधनाथ सिंह, माई का शोकगीत, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992 पृ0–73
13. मार्कण्डेय की कहानियां– गुलरा के बाबा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2010, पृ0–3

मो0 9412314814 मेल– amitaprakash32@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 44-46

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्रोत्तर हिंदी कहानियों में गांव

Dr. SIBI M. M.

Assistant Professor in Hindi, Mar Athanasius College (Autonomous)
Kothamangalam, Kerala, Pin -683556

आजादी के बाद हिंदी कहानी को करीब 68 वर्ष हो चुके हैं। हिंदी कहानी में नई कहानी के आंदोलन के रूप में एक नई ऊर्जा का सूत्रपात हुआ। हिंदी कहानी में 1970 से पहले का दौर अकहानी के रूप में झेले गए किसी दुस्स्वप्न की तरह है जिसमें सारे मानवीय मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लग गए थे। इसके बाद ही हिंदी कहानी में गांव की वापसी हुई और रामधारी सिंह दिवाकर, शिव मूर्ति और मिथिलेश्वर जैसे चर्चित कथाकार सामने आए। बीसवीं सदी के आठवें दशक की हिंदी कहानी की एक खास उपलब्धि जनपक्षीय चेतना के साथ गांव और ग्रामीण संदर्भों की व्यापक स्वीकृति है। लेकिन प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी में कफन और पूस की रात के जैसा गांव लगभग गायब है। यही स्थिति नई कहानी के शहरी बाबू राजेंद्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर के रचना संसार में भी हैं। इस दौरान फणीश्वर नाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय और शेखर जोशी आदि गांव को लेकर आते हैं। आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में नए सिरे से गांव की व्यापक और जुझारू अभिव्यक्ति हुई, जो प्रेमचंद की कहानी कफन से आगे चलती है। ग्रामीण जीवन को रेखांकित करने की परंपरा प्रेमचंद, फणीश्वर नाथ रेणु और मार्कंडेय की कहानियों से शुरू होती हैं। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम' गांव के अनकहे हालात और दयनीय स्थिति का परिचय देती हैं।

इस परंपरा की पहचान विजयकांत, संजीव, शिव मूर्ति, मिथिलेश्वर, रवीन्द्र, श्रीकांत, शेखर, मोहर सिंह यादव, रामदेव शुक्ल और उदय प्रकाश आदि की रचनाओं में की जा सकती हैं। कहानीकार रामधारी सिंह दिवाकर ने भी ऐसी ही पहचान बनाई है। उनकी 'अलग–अलग परिचय' तथा 'संक्रमण' जैसी कहानियां ग्रामीण जीवन में उनकी गहरी पैठ का परिचय देती हैं। 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' 'परिंदे' और वापसी जैसी कहानियां सामान्य मनुष्य की गरीबी, उससे उपजी मज़बूरियां, प्रेम एवं दांपत्य संबंधों तथा समाज में नारी की बदली स्थिति आदि को उजागर करती हैं। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, अमरकांत, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शिव प्रसाद सिंह, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कंडेय, रघुवीर सहाय, शानी, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, हरिशंकर परसाई आदि अनेक कहानीकारों ने अपनी–अपनी तरह से हिंदी कहानी के संसार को समृद्ध किया।

स्त्री और दलित विमर्श के बाद गांव से जुड़ी कहानियों का नया दौर होगा ग्रामीण विमर्श। तब रामधारी सिंह दिवाकर, संजीव और शिव मूर्ति जैसे कथाकार हिंदी कहानी के केंद्र में चर्चा का विषय होंगे। प्रेमचंद की

'नमक का दारोगा' 'ईदगाह', 'पंच परमेश्वर', 'बड़े भाई साहब', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'कफन' जैसी कहानियों का विश्लेषण विश्व साहित्य में बन चुका है।

लगभग 1975 तक ग्राम जीवन पर कहानी लिखने वाले अल्पसंख्यक की कोटि में आ गए थे। इसका प्रमुख कारण गांवों और कस्बों के कहानी लेखकों का नगरों–महानगरों का प्रवासी हो जाना था। विवेकी राय और सुरेश कांटक जैसे लेखक ही शुद्ध ग्रामवासी रह गए थे। 1951 के दशक में उत्तर प्रदेश में ज़मींदारी समाप्त होने के बाद चकबंदी संपन्न हुई। पर उसके साथ ही रिश्वत और संरक्षणवाद का ऐसा दुष्चक्र चला कि वह छोटे किसानों के लिए मारक ही साबित हुआ। उसका लाभ केवल बड़े किसानों को ही मिला। 'तारीखें' इस दौर में सरकारी कर्मचारियों और बड़े किसानों द्वारा गरीब किसानों के जानलेवा शोषण और बर्बादी का चित्रण करती है। आज़ादी के बाद ज़मींदारी–उन्मूलन तो हो गया और समाज में वह बदलाव नहीं आया जो गरीब, असंगठित किसानों को भूमि पतियों, महाजनों और सरकारी आमदनों के शोषण से मुक्ति दिला पाता। आज़ादी तो भूमिपतियों, महाजनों और सरकारी अमलों को ही मिली थी। गरीब, अनपढ़ और गंवारों को तो आज़ादी के नाम पर धोखा ही हाथ लगा था।

विवेकी राय की कहानी 'खेल' ग्रामीण बच्चों के खेल पर आधारित है। उनकी कहानियों का परिवेश गांव, कस्बा अथवा कोई छोटा शहर होता है। पालिस, मोह, अपना सपना, काजल की कोठरी में आदि ऐसी ही कहानियां है। 'पालिस' में एक ऐसे जूता पालिश करने वाले बच्चे का चित्रण किया गया है जो अपनी कमाई से अपने भाई को पढ़ाता है। उसे इस बात का एहसास तो है कि पढ़ लिखकर आदमी आदमी बनता है। पर वह यह भी जानता है कि पढ़ लिखकर आदमी बेरोजगार हो जाता है। यह अपने समय का एक विरोधाभास है जिसका चित्रण इस कहानी में किया गया है। 'अपना सपना' में बड़े कौशल से राजनीतिज्ञों को भ्रष्टाचार में लिप्त दिखाया गया है। खूबी यह है कि समस्त प्रस्तुति में संकेत और व्यंजना से काम लिया गया है। 'काजल की कोठरी में' में एक नौजवान जिला मजिस्ट्रेट की ईमानदारी और कर्तव्य निष्ठा का चित्रण किया गया है।

रामधारी सिंह दिवाकर के लगभग सारी कहानियों की पृष्ठभूमि भी बिहार का ग्रामांचल है। इनमें से कुछ कहानियों में गांव से निकलकर शहर में आ जाने वाले शिक्षित और उच्च पदों पर स्थापित एकल परिवारों की मानसिकता का अच्छा चित्रण किया गया है। कुछ कहानियों में आधुनिक समय में गांव की नैतिक और सांस्कृतिक गिरावट का चित्रण किया गया है। 'मंदिर चढि कागा बोले' में सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से गिरे हुए गांव की त्रासद तस्वीर उकेरी गई है। 'अव्यय अतीत' में गांव की बदली सांस्कृतिक और नैतिक गिरावट का चित्रण किया गया है। पढ़े–लिखे लोग अपने स्वास्थ्य के प्रवाह में इस गिरावट को और भी नंगा कर रहे हैं। 'ज़हर' में गांव के नरक बन गई जिंदगी का चित्रण किया गया है। गांव में अब आदमीयत नाम की चीज नहीं रह गई है। बहुत दिनों तक शहर में रहकर गांव लौटने वाले व्यक्ति के प्रति बाहर के लोगों में एक प्रकार का शत्रु भाव पैदा हो जाता है, जिसका विश्वासनीय अंकन इस कहानी में हुआ है। 'मोहरे' कहानी में गांव में जातिवाद के नाम पर चलने वाली राजनीति का चित्रण हुआ है। 'आतंक' में गांव में फैलती अपराध का अंकन किया गया है। पुलिस और नेताओं की इन चेष्टाओं से मिलीभगत होती है और वे इन्हें अपना संरक्षण प्रदान करते हैं।

ऋता शुक्ला की अधिकतर कहानियों का परिवेश भोजपुर जिले का ग्रामीण क्षेत्र है। इस क्षेत्र की जीवन शैली, विश्वास, अमूल्य जीवन संघर्ष आदि का चित्रण इन कहानियों की विशेषता है। 'चक्षुदाह', 'सर्वहारा', 'कदली

के फूल' आदि कहानियाँ गांव से जुड़ी संवेदनाओं को प्रस्तुत करती हैं। सुरेश कांटक ने 'अपनी जोक', 'उसकी वापसी', 'एक होते हुए', 'सूरज उगने के पहले', 'किसका गांव' जैसी कहानियों में दलितों, भूमिहीनों और पिछड़ों की गरीबी और व्यवस्था का यथार्थ अंकन किया है और साथ ही उन्हें ज़मींदारों से संघर्ष करके भी चित्रित किया है।

अरुण प्रकाश की कहानी 'योगदान' में बिहार के हरिजन गांव के प्राईमरी स्कूलों की बदहाली का चित्रण किया गया है जहां स्कूल का मकान होता है और हरिजन छात्र पढ़ने के लिए नहीं आते हैं। शिक्षा तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का यथार्थ यह कहानी अंकन करती है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'भैया' एक्सप्रेस उस समय की कहानी है जब पंजाब में आतंकवाद का दौर था और बिहार के हाशिए वर्ग के लोग वहां जीविका अर्जित करने के लिए जाते थे। बहुत बार मजदूर इस आतंकवाद के शिकार भी हो जाते थे। इस कहानी में एक ऐसे ही बिहारी युवक की नियत का चित्रण किया गया है जो पंजाब में कृषि–मजदूर के रूप में जाता है और आतंकवाद का शिकार हो जाता है।

काशीनाथ सिंह की 'अपना रास्ता लो बाबा', 'प्रौढ पाठशाला', संजीव की कहानी 'पिशाच', 'दो बीघे ज़मीन', महेश कटारे की 'अग्निमुखी' तथा 'भौजी', शेखर जोशी की कहानी 'निर्णय', 'नेकलेस', शैलेश मटियानी की कहानी 'जुलूस', 'बिद्दू अंकल', शैलेश मटियानी की कहानी 'बर्फ की चट्टानें', 'लोक देवता' बटरोही की कहानी 'खड़क सिंह को रास्ता नहीं मालूम' आज़ादी के बाद बदले हुए गांवों की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं।

ग्रामीण परिवेश को लेकर कहानियां कम ही लिखी जाती हैं। कभी–कभार कुछ कहानियां सामने आती भी हैं तो निराशा ही साथ लगती है। लेखक शहर में बैठकर गांव की कल्पना करता है या गांव में बिताए गए जीवन की स्मृतियों को बुनता है। ग्रामीण वास्तविकता पर लेखक का पूरा अधिकार होना चाहिए और उसे भाषा में बाँध सकने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए। ग्राम कथाओं का हिंदी साहित्य में अपना अलग स्थान है। कई दशक तक कहानियों से गांव नदारद रहा, लेकिन कहानियों का नया पुट जब भी होगा गांव से जुड़कर ही होगा।

Mob: 9946528278
Email ID sibipreeni79@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 47-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी लेखन परंपरा का विकास

राजश्री भारद्वाज

सहायक प्राध्यापक हिन्दी,

सत्यनारायण अग्रवाल शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, कोहका नेवरा, रायपुर, छत्तीसगढ़।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय समाज की जो प्रवृत्तियां थी और साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया विश्लेषित करती है। समकालीन रचनाकारों ने भारतीय समाज में जो अनुभव किया जिन परिस्थितियों का सामना किया और उससे संघर्ष करते हुए अपने अनुभवों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। प्राचीनकाल में पशु–पक्षियों, परियों, भू–प्रेतों से लेकर मनुष्य के यथार्थ जीवन से संबंधित कहानियां मिलती है। उपनिषदों की रुपक कथाएं, महाभारत के उपाख्यान, रामायण की कहानियां, पौराणिक ग्रंथों की कथाएं साहित्य की अमूल्य निधि है। कथा परंपरा का विकास वासवदत्ता, कादंबरी, दशकुमारचरित, पंचतंत्र, हितोपदेश, बेताल–पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी और कथा सरितसागर आदि कहानियां को माना जाता है। प्राचीनकाल में लोक कथाएं प्रचलित थी जिसमें चमत्कार प्रदर्शन और मनोरंजनपरक रचनाएं लिखी गई इसके साथ ही शिक्षाप्रद कहानियां चलने लगी।

आधुनिक काल में इंशा अल्लाह की रानी केतकी की कहानी, राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की राजा भोज का सपना, राधाचरण गोस्वामी की यमलोक की यात्रा, भारतेन्दु की एक अभूतपूर्व स्वप्न, किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती, आ. शुक्ल की ग्यारह वर्ष का समय मध्यकालीन शैली में रचित मनोरंजक और भावप्रधान रचनाएं हैं। माधवराव सप्रे की एक टोकरी भर मिट्टी मौलिकता और आधुनिकता के साथ भावनात्मक चित्रण है। प्रेमचंद ने फंतासी की जगह यथार्थ जगत के विषयों पर लिखा। प्रेमचंद ने कहानी को नया प्रतिरुप दिया जिसमें घटना वर्णनात्मक तथा संयोगों का सफलता पूर्वक निर्वाह है। प्रेमचंद ने घटना विन्यास की अपेक्षा पात्रों की मनोगति को महत्वपूर्ण माना। इसलिए प्रेमचंद की कहानियों में पात्रों की मनोगति प्रधान है। प्रेमचंद की बूढ़ी काकी,पंच परमेश्वर, प्रसाद की मधुबा, अज्ञेय की रोज, चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था,जैनेन्द्र की जान्हवी, यशपाल की फूलों का कुर्ता,उषा प्रियवंदा की वापसी, निर्मल वर्मा की परिन्दे आदि रोचक कहानियों की श्रेणी में आती है।

मोहन राकेश की चीफ की दावत कहानी एक मां की संवेदना को अभिव्यक्त करती है। शामनाथ के लिए उसकी मां एक पुराने समान से ज्यादा कुछ नहीं है।जिसे छिपाना उसके लिए सबसे मुश्किल हो जाता है। आधुनिक जीवन शैली और शामनाथ का अपनी मां के प्रति हृदयहीनता को प्रकट करता है। शामनाथ जब चीफ की दावत के लिए सारी तैयारी कर रहा था। घर का पुराना सामान स्टोर रुम में ले जा रहा था तब उसे ध्यान आया, मां का क्या होगा ? घर का पुराना सामान जिसे छिपाया जा रहा था उसकी मां उनमें से एक थी। आधुनिक

जीवन शैली और मार्मिकता को प्रकट करती मोहन राकेश की कहानी चीफ की दावत आधुनिक पीढ़ी को व्यंग्य करती हुई उनकी जिम्मेदारी से अवगत कराती है।

सामान्यतः नयी कहानी का प्रारंभ 1950–51 माना जाता है। मार्कण्डेय और शिवप्रसाद सिंह की ग्राम कथाएं प्रकाशित हुई थी। 'वस्तुतः हिंदी कहानी में रुपात्मक वैविध्य स्वातंत्र्योत्तर काल में बहुत अधिक आया। कहानी के रूप को लेकर जितने प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर काल में किए गए उतने पहले कभी नहीं किए गए। अचानक छठे दशक के प्रारंभ में कहानी साहित्यिक चर्चा–परिचर्चा का केन्द्रीय विषय बन गई। दो कथा आंदोलन सामने आए 'नयी कहानी' और 'आंचलिक कहानी'।'[1] ग्रामकथा पर आधारित आंचलिक कथाकारों में अमरकांत, शेखर जोशी, रांगेय राघव, लक्ष्मीनारायण लाल और रेणु आदि हैं। परंपरागत शब्दावली और चरित्र प्रधान रेखाचित्र का प्रयोग किया। शहरों और कस्बों के जीवन पर लिखी कहानीकारों में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, नरेश मेहता और निर्मल वर्मा आदि हैं। इन कहानियों में आधुनिकता की छाप है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी मध्यवर्ग का चित्रण करती है। एक वर्ग ग्रामीण कथाकारों का है, एक वर्ग नगरीय कथाकारों का दोनों में मध्यवर्ग के संघर्ष, पीड़ा, संत्रास, कुंठा और अकेलेपन आदि की अभिव्यक्ति है।

'स्वातंत्र्योत्तर भारत में औद्योगिकीकरण के कारण देश में तत्कालीन नागरिक संस्कृति, ग्रामीण संस्कृति में परिवर्तन हुआ। मार्क्सवादी चिंतन से मिलकर उसमें अनेक परिवर्तन आए। भारत औपनिवेशक राष्ट्र होने के कारण अनेक संस्कृतियों में विभाजित हो गया। जनमानस आधुनिकीकरण के प्रभाव से देश में बढ़ती हुई विभिन्न संस्कृतियों के कारण संकटापन्न हो गया। जहां औद्योगिकी ने नगरी–संस्कृति, शहरी–संस्कृति, पश्चिमी संस्कृति को बढ़ावा दिया। उसी के साथ लोकतांत्रिक शक्तियों ने नौकरशाही–संस्कृति, अवसरवादी–संस्कृति और स्वार्थवादी संस्कृतियों का प्रचलन बहुत अधिक किया।'[2] औद्योगिकीकरण और नगरीकरण के फलस्वरूप जनजीवन में गतिमयता आई संयुक्त परिवार टूटने लगे।गांव से जाकर शहर में बसे युवक के मन में धन लिप्सा की प्रवृत्ति का जन्म हुआ जिसके लिए धन कमाना ही लक्ष्य था। फलस्वरूप नैतिकता का ह्रास हुआ मानवीय मूल्य टूटने लगे। जिससे व्यक्तिवादिता का आविर्भाव हुआ। महानगरीय जीवन शैली, यांत्रिकता, आर्थिक विपन्नता के कारण युवा मन में अनेक प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

कहानियों में नई विषय–वस्तु और शिल्प गत परिवर्तन हुए। शिल्पगत प्रयोग में प्रतीकात्मकता को महत्व दिया गया। महीप सिंह, जगदीश चतुर्वेदी, वेद राही, और मृदुला गर्ग की रचनाओं में प्रतीकात्मक प्रयोग को महत्व दिया। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी में प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करके चमत्कार की सृष्टि की। नए शिल्प और नयी भाषा के साथ फंतासी का प्रयोग किया। फंतासी का प्रयोग करते हुए दूधनाथ सिंह की कहानी 'रीछ' में वाचक मैं के रूप में अपनी पत्नी से रीछ का अस्तित्व छिपाता है। छिपाने और उस प्रवृत्ति को दबाने के लिए निरंतर लड़ता रहता है। रीछ को प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। फंतासी के अतिरिक्त पूर्व दीप्ति, मुक्त आसंग आदि का वर्णन कहानियों में किया गया। इसके अतिरिक्त अन्विता अंबी की अवांछित बेरोजगार में दंपति की निरर्थकता बोध, सुरेन्द्र तिवारी की वार्ड नं. टू में भ्रष्टाचार, उदासीनता, धीरेन्द्र अस्थाना की लोग हाशिए पर में प्रेस कर्मचारियों से संबंधित उनकी दयनीय स्थिति पर आधारित रचनाएं हैं। गंगा प्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह, रघुवीर सहाय और कुंवर नारायण की कहानियों में व्क्तिवादिता, संवेदना अनुभव की जटिलता, सामाजिक गतिशीलता, जुलूस, क्रांति, स्त्री विषयक वर्णन है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, छल–प्रपंच, बेईमानी आदि से

प्रभावित कहानीकारों में निराशा, कुंठा, घुटन, अनास्था, संत्रास, मृत्युबोध, अजनबीपन दिखाई देती है।

आठवें दशक की कहानियों में कथाकारों ने किसान, मजदूर, निम्न मध्यवर्ग, प्रगतिशीलता, गैर प्रगतिशीलता, शास्त्रीय कथाशिल्प, फंतासी, बोधकथा, मुक्त आसंग और प्रतीकात्मकता को अपनाया। जिनमें पंकज बिष्ट की खोल, असगर वजाहत की कुत्ते, रमेश उपाध्याय की नदी के साथ एक रात और बलराम की पालनहारे आदि कहानियों है। राजी सेठ की कहानी एक आइडिया जीना सुक्ष्म बनावट और जीवन के प्रति एक आदर्श प्रस्तुत करती है। अंधे मोड़ से आगे कहानी एक पिता की अपने बेटे के प्रति प्रेम, त्याग और उसके पालन पोषण के प्रति जीवन अर्पण कर देने की कहानी है। अपने पुत्र के जीवन में उसके प्रेमिका के आ जाने से पिता के जीवन में आए सूनापन, अकेलापन और अकुलाहट से गुजरते हुए अनुभव की कहानी है। मृदुला गर्ग की कहानी कितनी कैदें पूर्व दीप्ति शैली पर आधारित पति–पत्नी संबंध, यौन उत्पीड़न, शोषण तथा दुनिया का कायदा पैसे के लिए मानवीयता, आत्मसम्मान और नैतिकता के पतन की कहानी है। 1954 की कहानियों को नयी कहानी आंदोलन कहा जाता है।

डॉ. हरदयाल के अनुसार – 'इन कहानियों में बार–बार एक ही जैसे स्थल दृष्टिगत होते हैं। अधिकांश कहानियां ड्राइंग रुमों और बेडरूमों में घटती है। बाहर रेस्त्रांओं, होटलों, रेलवे स्टेशनों, दफ्तरों, छात्रावासों, प्राचीन ऐतिहासिक खंडहरों, पिकनिक स्थलों, कॉलेज–विश्वविद्यालयों और बाजारों में इन कहानियों के गिने–चुने पात्र एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं और परस्पर उलझते–सुलझते हैं। उनकी समस्याएं गिनी–चुनी होती है; जिन्हें एक शब्द 'भूख' के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। कहीं जीविका का अर्थात् नौकरी का प्रश्न सामने आता है तो कहीं सेक्स का। इनमें से भी कहानी की दृष्टि से जीविका का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना सेक्स का।'[3] समकालीन कहानियां आत्मकेंद्रित, व्यक्तिगत जीवनानुभव, नगरीय परिवेश, इमारतें, कमरें, सिगरेट, कॉफी हाऊस, रेस्तरां, यूनिवर्सिटी, कालेज, कारों, बसों, सड़कों की भीड़, मुक्त यौन संबंध, समाज से विमुख जीवन का यथा तथ्य चित्रण करती है। व्यक्तिगत अनुभव की सीमितता इसकी विशेषता है। मध्यवर्गीय जीवन और विद्रोह के स्वर है।'

स्त्री और पुरुष के बीच सारी नैतिक मान्यताओं और मूल्यों के ऊपर जैविक स्तर का शारीरिक संबंध एक अनिवार्य तथ्य है। स्त्री और पुरुष दोनों की सेक्स की भूख उतना ही महत्वपूर्ण है, जितनी जीवन की दूसरी भूखें। इस संदर्भ में अमृतराय की वासवदत्ता, रांगेय राघव की गदल से लेकर उषा प्रियवंदा की मछलियां, मार्कण्डेय की सूर्या, श्रवण कुमार की मैं और वह, निर्मल वर्मा की जलती झाड़ी, मुद्राराक्षस की मातमपुरसी, कुलभूषण की पहली सीढ़ी, मृदुला गर्ग की कितनी कैदें, गिरिराज किशोर की रिश्ता, रघुवीर सहाय की तीन मीनट आदि न जाने कितनी कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है।'[4]

प्रेमचंद के बाद पांचवें दशक से हिन्दी कहानी ग्रामीण जीवन को छोड़कर नगरीय जीवन पर लिखी जाने लगी। विवेकी राय की कहानी ग्रामीण जीवन से ही संबंधित रही। ग्रामीण किसान, कृषि मजदूरों और गांवों, कस्बों तथा नगरों में बसे अकिंचन समाज पर शेखर जोशी, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, रेणु तथा रामदरश मिश्र आदि ने ग्रामीण जीवन को अपने कहानी का विषय बनाया। ग्रामीण परिवेश को छोड़कर आए नगर में बसे लेखकों में नगरीय मध्यवर्ग की मानसिकता परिलक्षित होती है। 'राजकमल चौधरी की हिन्दी कहानियों में महानगर की जिन्दगी अपनी सारी कुरूपताओं के साथ दिखाई पड़ती है। यह वह ज़िन्दगी है, जहां स्त्री–पुरुष के संबंध

यौन–संबंध तक सीमित होते हैं। यहां हर चीज 'वस्तु' होती है, जिसे खरीदा–बेचा जा सकता है। मूल्य–आधारित पारिवारिक संबंध यहां कोई माने नहीं रखते। युवक–युवतियों की शामें होटलों में शराब, सिगरेट और निरर्थक बहसों के साथ बीतती है। पार्कों में बीतने वाली शामें भी देह–संबंध के साथ होती है।'[5] स्वातंत्र्योत्तर काल तक आते–आते साहित्य में अलग–अलग आंदोलन को लेकर साहित्य की प्रवृत्ति चल पड़ी। वर्तमान जीवन से संबंधित देखा अनुभव किया हुआ यथार्थ का साहित्य में वर्णन होने लगा। अकहानी आंदोलन में जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी और कृष्ण बलदेव वैद आदि के नाम लिए जाते हैं।

1964 में सचेतन कहानी आंदोलन शुरू हुआ। महीप सिंह, जगदीश चतुर्वेदी और वेद राही आदि की रचनाएं आती है। जिसमें अस्तित्ववादी दर्शन का विरोध और मनुष्य की सार्थकता की खोज उद्देश्य रखा गया। साठोत्तरी कहानी से अभिप्राय 1960 के बाद की कहानियों से है। 60 के बाद के कहानीकारों ने जिन परिस्थितियों को देखा जिसमें भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई–भतीजावाद, प्रांतीय संकीर्णता, बेरोजगारी, नौकरशाही समाज में व्याप्त है। नैतिक मूल्य टूट रहे हैं। ऐसी स्थितियों में मानव की त्रासदपूर्ण कृत्रिम जीवन का विरोध दिखाई देता है। दूधनाथ सिंह की कहानी रीछ प्रतीक है व्यक्ति के अंदर की उस प्रवृत्ति की जिसे वह समाज से छिपाता है। व्यक्ति का यथार्थ उसका वास्तविक यथार्थ नहीं होता। 1964 सचेतन कहानी का प्रारंभ हुआ इसके साथ अकहानी या अकथा अकविता के समान ही विद्रोहात्मक, निषेधवादी आंदोलन चला जिसमें पुरानी प्रथाओं, परंपराओं, रुढियों के प्रति नकारात्मक भाव है। अमृतराय ने सहज कहानी का प्रस्ताव रखा। इस प्रकार सचेतन कहानी, अकहानी और सहज कहानी आंदोलन साथ–साथ चले। 1971 में कमलेश्वर की समांतर कहानी आंदोलन सिनेमा से प्रेरणा ग्रहण कर प्रारंभ हुआ। जिसमें आम आदमी की समस्या और उन समस्याओं का समाधान खोजना लक्ष्य रखा गया।

वर्तमान परिस्थितियों के प्रति बदलाव और विद्रोह को स्वर देती राकेश वत्स ने सक्रिय कहानी आंदोलन चलाया। परिन्दे निर्मल वर्मा की ऐसी कृति है जिसने शहर, गांव, कस्बा और तिकोने प्रेम को लेकर कहानियों का मिथक तोड़ा। सितंबर की एक शाम बेरोजगार युवक की कहानी पर आधारित है। परिन्दे कहानी की लतिका की समस्या अतीत से मुक्ति, स्मृति की मुक्ति के साथ मानव मुक्ति को परिभाषित करती है। तीसरा गवाह कहानी यह बताती है कि अपने जीवन की घटित घटनाओं के प्रति स्वयं भी कभी–कभी समझना मुश्किल हो जाता है। माया का मर्म कहानी का नायक बेरोजगार है और बेकारी से प्रभावित अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित है। नीलम देश की राजकन्या फैंटेसी शैली पर आधारित जैनेन्द्र की कृति है। जिस प्रकार परियों की कहानी होती है, उसी प्रकार कहीं स्वर्ग, कहीं खंडहर, कहीं खोखलापन नीलम देश जैसी कल्पनाएं हो सकती है, का वर्णन है।

उषा प्रियवंदा की कहानी वापसी का नायक नौकरी से रिटायर होने के बाद घर आता है, घर में अपने परिवार के बीच अपने आप को अकेला पाता है क्योंकि घरवालों के लिए वह अब भी मेहमान है जिसे घर कार्यशैली से कोई सरोकार नहीं है जैसे पहले दिन बीतते आए थे। अंत में एडजस्ट नहीं कर पाने की वजह से फिर से नौकरी पर चला जाता है। आजादी के साथ शिक्षित मध्यवर्ग विकसित हुआ। कहानियों के शिल्प विधान में परिवर्तन हुआ। सामाजिकता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव पर आधारित कहानियों में राजेंद्र यादव की प्रतीक्षा, मोहन राकेश की फौलाद का आकाश, वैयक्तित्व को विशिष्टता प्रदान करने वाली कहानियों में दूधनाथ सिंह की रक्तपात, काशीनाथ सिंह की सुख रवीन्द्र कालिया की नौ साल छोटी पत्नी तथा संवेदना और शिल्प की दृष्टि से श्रीकांत वर्मा की झाड़ी कहानी आती है। अज्ञेय की कहानी गैंग्रीन एक दंपति की मनःस्थिति को

उभारते हुए जीवन की जो एकरसता है कि व्यक्ति को आज का कार्य कल भी वही कार्य करना प्रतिदिन वही कार्य दुहराते जाएंगे कि नल में इतने समय पानी आना उस दंपत्ति की सबसे बड़ी समस्या है उसके लिए जीवन पति और बच्चे में सिमट कर रह गई है। दैनिक क्रियाकलाप के प्रति उब उत्पन्न होने लगी है जो उसके मन में उत्पन्न जिजीविषा की समाप्ति का संकेत करती है। यशपाल की परदा निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की झूठे प्रदर्शन को व्यक्त करती व्यंग्यात्मक रचना है।

अमरकांत की कहानी ज़िन्दगी और जोंक आस्था–अनास्था, जुगुप्सा के साथ अतिवादिता और जटिलता के समावेश की कहानी है। धर्मवीर भारती की कहानी गुलकी बन्नों एक कुबड़ी औरत की कहानी है जो पति द्वारा उपेक्षित, अपमानित जीवन जीते हुए पतिव्रत धर्म निभाते हुए पुराने संस्कारों से ग्रस्त स्त्री की कहानी है। बंद गली का आखिरी मकान पति द्वारा त्याग दी गई पत्नी की संघर्षपूर्ण जीवन की कहानी है।

इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर आज तक कहानी लेखन में परिवर्तन होते रहे हैं। अलग–अलग विचारधाराओं के टकराव और बदलते सामाजिक परिवेश ने हिन्दी कहानी को नया रूप नया आकार–प्रकार भी दिया। लोककथाओं के रूप में होती हुई कहानी विभिन्न प्रकार के आंदोलन को साथ लेती चली। नदी जब अपने प्रवाह में चलती है तो बहुत सारी चीज़ें अपने साथ लेती हुई चलती है कहीं पर मुक्त प्रवाह है, कहीं कूड़ा–करकट, कहीं स्वच्छ निर्मल जल है सब साथ–साथ चलते हैं। नदी की अविछिन्न धारा के समान साहित्य में कहानी निरंतर आगे बढ़ रही है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगति– डॉ. हरदयाल, पृष्ठ– 29
2. समकालीन हिंदी कविता की यथार्थवादी चेतना– डॉ. तीर्थेश्वर सिंह, पृष्ठ– 57
3. हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगति – डॉ. हरदयाल, पृष्ठ– 143
4. हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगति– डॉ. हरदयाल, पृष्ठ– 197–198
5. हिन्दी कहानी का इतिहास 2 – गोपाल राय, पृष्ठ– 355

7773064221, 9977645074

raj.shree01081985@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 52-54

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी कहानी में आदिवासी चेतना

रंजिता राजन पी

अतिथि अध्यापिका, हिंदी विभाग, एम.ए. कॉलेज कोतमंगलम।

समकालीनता वर्तमान काल को सूचित करने वाली एक संज्ञा है। अतः समकलीन हिंदी कहानी से अभिप्राय एक स्तर पर उस कहानी से है, जो हिंदी में आज लिखी जा रही है और दूसरे स्तर पर उस कहानिगत रचनाशीलता से है जो आज के परिदृश्य अथवा स्थितियों से संबन्ध हो। आज साहित्य में नये–नये विषय क्षेत्र –दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श आदि स्थापित हुए। भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज विगत अनेक शताब्दियों से तीव्र यातनाओं के दौर से गुज़र रहा है। वर्तमान में कोई भी आदिवासी समुदाय गैर आदिवासियों के संपर्क से अछूता नहीं रहा है। सभ्य समाज के सबसे गहरा प्रभाव आदिवासी महिलाओं पर ही पड़ा। प्राचीनकाल से ही आदिवासी वनों से खदेड़ा जा रहा है। इन सारी समस्याओं का चित्रण आदिवासी साहित्य में हो रहा है।

समय के साथ आदिवासी कथा लेखन आगे बढ़ रहा है। आदिवासी लेखक कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक आदि विधाओं में लिख रहा है। लेखक अपनी रचनाओं में देश की समस्याओं एवं आदिवासी समस्याओं को उजागर कर रहे हैं। आदिवासी जीवन से जुड़े इन रचनाओं का उद्देश्य वर्तमान में जीने हुए आदिवासियों के समग्र समस्याओं का उद्घाटित करना है। रमणिका गुप्ता, डॉ. मंजू ज्योत्सना, संजीव ठाकुर, कोमल, नैत्रेयी पुष्पा, वीणा सिन्हा, पुन्नी सिंह, मधु कांकरिया, राकेश कुमार सिंह, संजीव बक्शी आदि के उपन्यासों व कहानियों में आदिवासियों को चित्रित किया है।

रमणिका गुप्ता के कहानी संग्रह 'बहू–जुठाई' में महिला को केन्द्रित किया गया है। ये महिलायें जीवन के विपरीत परिस्थितियों में समाज की विकृतियों को झेलती तथा उसे जूझती रही, लेकिन कभी थकी नहीं। इनमें अपने अस्मिता बनाए रखने का प्रयत्न तथा अपने को जिन्दा रखने का पत्थर ठोस–संकल्प लिए हुए है। 'बहू–जुठाई' कहानी संग्रह में झारखंड के छोटा नागपुर के हरे–भरे पहाड़ों, झरनों, नदियों से घिरे वन प्रान्तों में रहनेवाले आदिवासियों की व्यथा को वर्णित किया गया है। कोयले की खदाने यहाँ बहुतायत में पायी जाती है। इन कोयला खादानों में, वनों में श्रमिकों की बस्तियाँ, अलग–अलग स्थानों से आए मज़दूरों की मिली–जुली संस्कृति एक अलग ही समा बनाती है। यहाँ अन्धविश्वासी, रूढ़िवादी, अशिक्षित समाज लोग जहाँ आधुनिक तकनीक एवं नए–नए मशीनों को देखते है, वहीं शोषगत वर्ग इनका शोषण करता है। आधुनिकता और रूढ़िवादिता को एक साथ ओढे ये आदिवासी अपने घर दहलीज के भीतर कही अलग हो जाते है। घर के बाहर एकता के नारे लगाते है लेकिन दहलीज के भीतर सोचने का वही जातिवादी ढंग होता है।" लोकल (स्थानीय)

और बाहरी, नया–पुराना, ऊंच–नीच, छोटा–जात, बड़ा–जात। सब घालमेल गड्ड मड्ड। पिसरेटिड, टायमरेटिड में बंटे कुशल–अकुशल मजदूर, केवल पदनाम के स्तर पर ही नहीं, अपनी मानसिकता के स्तर पर भी ऊपर से प्याज की तरह एक, पर भीतर परत–दर–परत बंटे, बंटे है।"[1]

'जिन्दा रहने के लिए' एक ऐसी कहानी है को जीने की मजबूरी को बयान करती है। विस्थापन एवं शहरीकरण का शिकार होकर जिन्दा रहने के लिए ये लग जंगलों को काट–काटकर, सस्ते दामों में शहर में बेच रहे हैं। जो दारू–इडियाँ का कार्य करती है। वह ऐसा इसलिए नहीं करती कि ये उसका खानदानी काम है बल्कि इसलिए करती है कि जीने के लिए इस कार्य को करने के अलावा दूसरा विकल्प नहीं है।

आदिवासी औरतों का संवेदनशील रूप दिखानेवाले एक कहानी है। डॉ. मंजू ज्योत्सना का 'प्रयाश्चित'। जिसका नायक डोमना नामक एक रिक्शा चालक है। वह नगाड़ा बचाने में और नाज–गाने में भी माहिर है। उसका सात लोगों का परिवार है। उसकी दो बहनें है, जो शादी–शुदा है। कुछ दिनों बाद डोमना की शादी होती है। लेकिन उसकी दुल्हन बदसुरती के साथ–साथ बेसुरी भी है। पर घर के सारे कामों में सुघड़ है। घर खर्च में भी वह अपना हाथ बटाती है। शादी के बाद वह काम के लिए निकल पड़े और खुद कमाकर लाती है। पर दो वर्ष बीतने पर भी वह गर्भवती नहीं होती उसे बाँझ कहकर ताने दिये जाते है। सास के, पड़ोस के, ताने सहती है। उससे कहा "बांझ हउ बांझ, उकर छाई से भी बईच के रहेक चाही"।[2]

इस प्रकार आदिवासी जीवन की त्रासदी को स्पष्ट करने वाली संजीव ठाकुर की कहनी है 'टोस'। इसमें एक सपेरे आदिवासी को चित्रित किया है। सपेरा शिबू काका इस कहानी के केंद्र में है। जिसका पूरा समाज संस्कृति, खेत और ज़िन्दगी का सुख मालिक के स्वार्थों की भेंट चढ़ गया है। कहानी के इन लोगों का विस्थापन, उन पर होने वाले अन्याय, शोषण करने वाली पूंजीपति व्यवस्था के प्रति आक्रोश उमड़कर शोषण की पोल खोलता है। इस कहानी में शिबू काका का कहना है कि – पिनाकी महतो एक नंबर का अजगर है– मुखिया की लड़की पत्तो ढेमना (धामिन) है, मुधी खाना का दुकानदार सेठ लोग राजस्थान का पीपना नाग है।[3]

अगली कहानी 'चाकरी' है जिसमें एक नवयुवक की कहानी है। वह अपनी ही जाति के लोगों के द्वारा शोषण तथा उत्पीड़न के कारण गाँव से शहर विस्थापित कर दिया जाता है। उसकी जमीन गाँव का सरपंच रघुवीर सहाय हड़प लेता है और उसे चमान, सुअर घोषित करके गाँव से खदेड़ दिया जाता है। वह जीवन से संघर्ष करते हुए एस.एस. सीपार कर लेता है। वह वहाँ नौकरी करता है उसे पर्सनल मैनेजर की बेटी का ट्यूटर बनना पड़ा। वह कहता भी है – "एंप्लॉयमेंट्ट एकसेंच से भर्ती करने अफसरों और क्लारको की बिल्डिंगे बनती देखी है। मैंने यह सब देखता रहा हूं और टूटता रहा हूं। टूटता रहा हूं और देखता रहा हूं।"[4]

कोमल द्वारा रचित 'पहचान' कहानी आदिवासी जनजाति का भयानक दर्द सामने लाती है जिसे पढ़कर पाठक का मन सून हो जाता है। इसमें आदिवासी युवती जाती प्रमाण पत्र बनाने के लिए आवेदन पत्र देते समय सिंह जी नामक मुखिया 'सोनिया टोपे' नामक वह लड़की से कहता है कि– "तुम्हारा नाम तो आदिवासियों जैसा है ही नही। आदिवासी लड़कियों के नाम तो एतवारी, सुरजी, आदि हुआ करते है।"[5]

इसी प्रकार पीटर पाल एक्का विरचित कहानी 'राजकुमारों के देश में' विस्थापन के दर्द के साथ–साथ गाँव की तिकड़मबाजी चौकड़ी–मुखिया, ठेकेदार, सरपंच और पुलिस के काले कारनामों व नंगेपन को बेनकाम करती है, जिसके द्वारा भोली–भाली मासुम आदिवासी लडकियाँ व औरतों बलात्कार की आग में झोंक दी जाती

है।

उपर्युक्त सभी काहनियों के विषय में आदिवासी जीवन की वास्तविकता का चित्रण के अलावा शोषण, विस्थापन, वर्ग–विषमता, अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह, प्रेम–त्याग बलिदान, स्त्रियों का दयनीय जीवन, अपनी ज़मीन से जुड़े रहने की ललक इत्यादि भी देख सकते है।

आदिवासी कहानी साहित्य को देखने पर पहुंचते है कि वे लोग अपनी ज़मीन, संस्कृति आदि के साथ जुड़ा रहता है है। विकास की अज्ञानता उन्हें आज भी पिछड़ा हुआ रखता है। आजकल साहित्यकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आदिवासी साहित्य लिखा है। इन लेखकों ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी जीवन के अनेकानेक पक्षों, उनकी समस्याओं तथा परिणामों को संवेदना पूर्वक अभिव्यक्ति दी है। यह कथा साहित्य हिंदी साहित्य में विशेष स्थान पाने का अधिकारी है। इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों और उनकी संस्कृति को स्वर देता आदिवासी साहित्य एक नए ढंग से इनको अपरिचित पहलुओं को उजागर कर रहा है।

संदर्भ :–

1. रमणिका गुप्ता – बहु जुठाई : शिल्पयान प्रकाशन, पृ.सं 10
2. मंजू ज्योत्सना, प्रायश्चित : आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, संपादक रमणिका गुप्ता, पृ. 169
3. टीस, संजीव।
4. तीस साल का सफरनामा से चाकरी, संजीव, पृ. 76
5. कोमल : पहचान कहानी, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, संपादक रमणिका गुप्ता, पृ. 207

9539964607

ranjitharajan2014@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 55-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जम्मू कश्मीर में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियाँ

कुलदीप कुमार पुष्पाकर

जम्मू कश्मीर भाषाई दृष्टि से मुख्यता तीन क्षेत्रों में विभाजित है। 1. जम्मू 2. कश्मीर एवं 3. लद्दाख। इन तीनों क्षेत्रों की अलग–अलग भाषाएं हैं : कश्मीर में कश्मीरी, जम्मू में डोंगरी तथा लद्दाख में लद्दाखी बोली जाती है। ध्यातव्य है कि जम्मू कश्मीर की लगभग 36 भाषाएं संकटग्रस्त हैं, जिसके वक्ता 20000 से लेकर 250 तक ही बचे हैं। उदाहरण के लिए जम्मू ज़िले के सुंजवान गांव में बोली जाने वाली तहगुल भाषा के मात्र 250 से 300 प्रयोक्ता ही बचे हैं। यहां उर्दू, सिंधी, पहाड़ी एवं हिंदी भी बोली जाती है। हिंदी इन तीनों क्षेत्रों की संपर्क भाषा है। भारत में हिंदी संपर्क भाषा का काम करती है। जम्मू कश्मीर क्षेत्र में भी हिंदी भाषा ही संपर्क भाषा रही है। आरंभ से ही यहां बाहर के लोग व्यापार करने तथा धार्मिक यात्राएं करने आते रहे हैं वैष्णो देवी की यात्रा एवं अमरनाथ की यात्रा प्रमुख है। इससे यहां हिंदी हमेशा से ही सम्पर्क भाषा के रूप में बनी हुई है।

देश जब आजाद हुआ तथा भारत की राजभाषा हिंदी बनी तो यहां केंद्र सरकार की संस्थाएं स्थापित हुईं। उनके माध्यम से भी हिंदी का प्रचार प्रसार हुआ। देश आजाद होने के बाद ही स्कूल और कॉलेज में संस्थागत रूप से यहां हिंदी पढ़ाई जाने लगी, हालांकि आज़ादी से पहले यहां आर्य समाज, सनातन सभा तथा ब्राह्मण सभा ने समय–समय पर हिंदी के आंदोलन में अपना योगदान दिया।[1] इनके अतिरिक्त हिंदी साहित्य सम्मेलन, हिंदी प्रचारिणी सभा, जम्मू और हिन्दी साहित्य मंडल ने इस प्रदेश में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जम्मू कश्मीर में 2020 से पहले केवल दो भाषाओं (अंग्रेजी, उर्दू) को राजकीय भाषा की मान्यता थी। 2020 में तीन और भाषाओं : हिंदी, डोगरी और कश्मीरी को राजकीय भाषा के रूप में यहां मान्यता मिल गई है। यह हिंदी के विकास के लिए जम्मू कश्मीर में मील का पत्थर साबित होगा। वर्तमान में यहां के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती है तथा यहां 35 से अधिक केंद्रीय विद्यालय हैं उन सभी केंद्रीय विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है तथा यहां के स्कूलों में हिंदी एक विषय के रूप में विद्यार्थी पढ़ते हैं। यहां के रेडियो स्टेशन और समाचार के माध्यम से भी हिंदी का प्रचार–प्रसार हो रहा है।

जम्मू कश्मीर में हिंदी कथा साहित्य आजादी के बाद विकसित हुआ।

यह पाठक को कितना आश्चर्य लग सकता है कि जहां हिंदी पट्टी में प्रयोगवाद चल रहा था वहीं जम्मू और कश्मीर की धरती पर हिंदी साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। डॉ० राजकुमार कहते हैं 'भारतीय हिंदी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करें तो 1940 ईसवी के आसपास जब छायावाद के बाद उत्तर

छायावादी कवित्रयी (बच्चन, अंचल, नरेंद्र शर्मा) के काव्य का दौर चल रहा था और प्रगतिवाद अपनी त्रुटियों को पहचान नया मार्ग खोज रहा था तथा प्रयोगवाद प्रसव काल में था, तब जम्मू कश्मीर में साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी।''[2]

यदि हम जम्मू कश्मीर में हिंदी कथा साहित्य की बात करें तो यह जम्मू–कश्मीर में कविता के काफी बाद विकसित हुआ। इस संबंध में डॉक्टर रफीक मसूदी कहते हैं, ''यहां हिंदी साहित्य के विकास में हिंदी कहानी का जन्म लगभग छठे दशक में हुआ था।''[3] यहां यह बताना समीचीन होगा कि जम्मू कश्मीर में छठे दशक की आठ कहानियां ही वर्तमान में उपलब्ध हैं। डॉ. राजकुमार लिखते हैं ''जम्मू कश्मीर में छठे दशक में प्रकाशित आठ कहानियां ही उपलब्ध हैं इन कहानियों में अधिकतर दमित प्रेम वासना या अव्यक्त प्रेम का ही चित्रण मिलता है।''[4]

जम्मू–कश्मीर अकेडमी आफ आर्टकल्चर एंड लैंग्वेजिज की स्थापना अगस्त 1958 में हुई थी। जम्मू कश्मीर में हिंदी साहित्य के विकास में इस अकादमी ने अप्रतिम योगदान दिया। इस अकादमी द्वारा छपने वाली छमाही पत्रिका 'शीराजा' और वार्षिक पत्रिका 'हमारा साहित्य' का प्रकाशन सन् 1965 से आरंभ हुआ था। यदि जम्मू कश्मीर में हिंदी साहित्य के विकास का अध्ययन करना हो तो इन दोनों पत्रिकाओं के बिना संभव नहीं होगा। हिंदी कहानियां के विकास में भी इन्हीं का योगदान रहा है। सन् 1969 में संतोष कौल का कहानी संग्रह 'लक्ष्यहीन' प्रकाशित हुआ जो इस दशक की एकमात्र उपलब्धि है। इसमें बारह कहानियां हैं। कहानियों का विवरण : दूध; परिचय; यादें; लौ; गांव में; जवाब; लक्ष्यहीन; सुबह का भूला; बयान; पंछी उड़ गया; सिर्फ एक शर्त पर; देखने पर।[5]

सातवें दशक में जम्मू कश्मीर में हिंदी कहानी के विकास में श्री हरिकृष्ण कौल और श्री वेदराही ने विशेष योगदान दिया। इन दोनों कहानीकारों ने इस दशक में अनेक उत्कृष्ट कहानियां प्रकाशित हुईं। इन कहानीकारों के अलावा इस दशक में कुछ नए कहानीकार भी उभरे। इस दशक की खास बात यह रही कि उर्दू, डोगरी और पंजाबी में लिखने वाले अनेक कहानीकारों ने भी इस दशक में हिंदी कहानी के विकास में योगदान दिया। इस दशक की हिन्दी लेखकों द्वारा लिखी गई प्रमुख कहानियां हैं : दांव, ये चटोरे, नायक, विश्वास, हितचिंतक, गंदी बाहर आदि।

आठवां दशक आते–आते कई लेखक हिंदी में कहानियां लिखने लगे थे परंतु हिंदी पट्टी की तरह यहां कहानी के लिए कोई आंदोलन नहीं चला था। यहां के लेखक किसी भी कहानी आंदोलन से नहीं जुड़े थे। डॉक्टर राजकुमार कहते हैं ''वैसे तो छठे दशक में ही नई कहानी का रचना शिल्प व्यक्ति मूड की शैली में विकसित हो गया था और सातवें दशक के आरंभ में ही अकहानी का आंदोलन चल निकला था तदोपरांत अनेक कहानी आंदोलन चल पड़े थे परंतु जम्मू कश्मीर में इन आंदोलनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।''[6]

इस दशक के प्रमुख कहानी संग्रह हैं : टोकरी भर धूप (श्री हरिकृष्ण कौल) रोचक कहानियां, (श्री नरेंद्र खजूरिया), ये तस्वीरें, 1978 (श्रीराज भल्ला), उल्कापात, 1974 (बनलीन देवम), निर्वासित, 1974 (श्री ओम गोस्वामी), धुंधलके, 1973 (सरदार दीदार सिंह); केसर के फूल, 1973 (डॉ. अर्जुन सिंह); लहर लहार हर नैया

नाचे, 1971 (डॉ. ओमप्रकाश गुप्त आदि इस दशक की एक महत्वपूर्ण बात यह रही कि इसी दशक में युवा हिंदी लेखक संघ, जम्मू और हिंदी साहित्य मंडल, जम्मू की पत्रिकाएं 'घोषवती' और 'मधुरिमा प्रतिभा पुष्प' का आरंभ हुआ इन पत्रिकाओं में अनेक हिंदी की कहानियां प्रकाशित हुईं।

जम्मू कश्मीर में नवे दशक में हिंदी कहानी के क्षेत्र में अधिक लेखन हुआ अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए तथा नए पुराने कहानीकारों की अनेक कहानियां प्रकाशित हुईं। डॉ. राजकुमार के शब्दों में 'नवें दशक में जम्मू कश्मीर में हिंदी कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची है। अनेक नए कहानीकार कहानी के क्षेत्र में उभरे हैं, अनेक स्वतंत्र कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं और अनेक कहानीकारों की अनेक श्रेष्ठ कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं।'[7]

इस दशक की प्रमुख कहानियां हैं : धुंध (अलंकार) बंजारे (ज्योतीश्वर पथिक) उखड़ने से पहले (रमेश मेहता) सारस (रत्नलाल शांत), थकान (बंशीलाल), दिशाहीन (डॉ. निर्मल चोपड़ा), अग्नि परीक्षा (दीदार सिंह) आदि।

नब्बे के दशक के बाद से अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रहे हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि जम्मू कश्मीर में हिंदी कहानी का विकास स्वतंत्र उत्तर ही हुआ है डॉक्टर राजकुमार कहते हैं : ''कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जम्मू कश्मीर में हिंदी साहित्य का सृजन मूलतया स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुआ है और 1970 के बाद ही नए भाव बोध और शिल्प संवेदना का साहित्य लिखा गया है। 1970 ईस्वी से पूर्व के साहित्य का केंद्रीय परंपरा भुक्त रहा है जबकि 1970 के बाद के साहित्य केंद्रीय तत्व है : मौलिक अनुभूति।''[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जम्मू–कश्मीर में हिंदी साहित्य का विकास विशेषतः कथा साहित्य का विकास स्वतंत्रता के बाद ही हुआ है।

वर्तमान समय में यहां पर अनेक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं जो हिंदी की दिशा में अपना बहुमूल्य योगदान दे रही हैं। जिनमें प्रमुख हैं शीराजा, वितस्ता एवं समाचार पत्रों में कश्मीर टाइम्स, जम्मू समाचार, इवनिंग न्यूज़, पंजाब केसरी आदि।

संदर्भ :–

1. जम्मू कश्मीर के हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. अशोक जेरथ, जम्मू–कश्मीर अकेडमी आफ आर्टकल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू, प्रथम संस्करण : 2002 ई., पृष्ठ 18
2. जम्मू कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य : एक विवेचन; डॉ. राजकुमार, जम्मू–कश्मीर अकेडमी आफ आर्टकल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू, प्रथम संस्करण : 1999 ई., पृष्ठ 17
3. वितस्ता 'जम्मू कश्मीर में हिंदी विशेषांक' (2007), हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर, डॉक्टर रफीक मसूदी, पृष्ठ 13

4. जम्मू कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य : एक विवेचन; डॉक्टर राजकुमार, जम्मू–कश्मीर अकेडमी आफ आर्टकल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू, प्रथम संस्करण : 1999 ई., पृष्ठ 40
5. वितस्ता 'जम्मू कश्मीर में हिंदी विशेषांक' (2007), हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, डॉक्टर रफीक मसूदी, पृष्ठ 14
6. जम्मू कश्मीर में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य : एक विवेचन, डॉ. राजकुमार, जम्मू–कश्मीर अकेडमी आफ आर्टकल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू, प्रथम संस्करण : 1999 ई., पृष्ठ 206
7. वही, पृष्ठ 473
8. वही, पृष्ठ 474

ईमेल: kpushpakar@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 59-60

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर कहानी में स्त्री विमर्श

(सूर्यबालाकृत गृहप्रवेश कहानी संग्रह के संदर्भ में)

डॉ. बलवंत बी.एस.

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कर्मवीर भाऊराव पाटील महाविद्यालय, पंढरपूर।

सूर्यबालाजी हिंदी की प्रमुख यथार्थवादी, उपन्यासकार, कहानीकार, व्यंग्य रचनाकार तथा संस्मरण लेखिका है। स्त्री लेखन परंपरा के कहानीकारों में सबसे अधिक सशक्त नारी कहानीकार के रूप में सूर्यबाला जी को पहचाना जाता है। प्रायः उनकी कहानियाँ, उपन्यास तथ व्यंग्य रचनाएँ जीवन के यथार्थ पहलुओं का अंकन करती है।

सूर्यबाला जी लिखित अब तक (1) मुंडेर पर : 1990, (2) साँझबाती : 1995, (3) कात्यायनी संवाद : 1999, (4) इक्कीस कहानियाँ : 2001, (5) पाँच लम्बी कहानियाँ : 2003 (6) एक इन्द्रधनुष्य जुबेद के नाम : 2005, (7) थालीभर चाँद : 2006, (8) मानुषगंध : 2005, (9) गृहप्रवेश : 2008, (10) सिस्टर प्लीज आप जाना नहीं, (11) प्रतिनिधी कहानियाँ, (12) सूर्यबाला की प्रेम कहानियाँ (13) दिशाहिन, (14) वेणू का नया घर, (15) समग्र कहानियाँ आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके है। हर कहानी में स्त्री विमर्श का उल्लेख आया है।

सूर्यबाला कृत 'गृहप्रवेश' कहानी संग्रह सन 2008 में प्रकाशित हुआ है, कहानी में कुल मिलाकर 11 कहानियाँ संग्रहित है। नारी विमर्श की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी संग्रह एक प्रसिद्ध रचना है।

सूर्यबाला जी की कहानियों में चित्रित नारी विमर्श के रूप में विविध रूप दिखाई देते है, जिसमें– उच्चवर्गीय, मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय, शोषित तथा पीड़ित, भुक्तभोगी, विधवा, अनपढ, महानगरीय, परंपरावादी आदर्शवादी आदि नारियों का उल्लेख मिलता है।

8 मार्च हर साल अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। साहित्यकार हर दिन के जीवन में जो कुछ देखना है, अनुभव करता है, उसी का अकंन साहित्य में करता है। सूर्यबालाकृत 'गृहप्रवेश' कहानी संग्रह में जैसे गृहप्रवेश, बाऊजी और बंदर, सौदागर दुआओं के, होगी जय होगी.. हे पुरूषोत्तम नवीन, समापन, सुनो सुमित सुनो, सुलभ, सुखांतकी, सलामत जागीरे, गुफ्तगू, दूज का टिका, गीता चौधरी का आखिरी सवाल आदि कहानियाँ संग्रहित है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में कथा, पात्र, संवाद, भाषा, वातावरण और समस्या आदि में अंतर है। हर कहानी में स्त्री विमर्श का उल्लेख आया है। जैसे 'गृहप्रवेश' – कहानी में बीरू शर्मा की पत्नी शकुन और बहन का उल्लेख आया है। कहानी की कथा मध्यवर्गीय परिवार की त्रासदी को अभिव्यक्त करती है। 'समापन' – कहानी में 78 साल की दादी का चित्रण किया है, बुढापे में सभी प्रकार की कमजोरियों को अपनाकर जी रही है। जैसे

मुँह में दाँत न होने के कारण 'लाइब्रेरी को रायबरेली' और 'बाथरूम को बातूम' कहती है। ''सुनो सुमित सुनो सुलभ–कहानी की नायिका विनीता है, पति कनाडा में शोधकार्य करने गया है, पत्नी होते हुए भी दूसरी स्त्री के साथ संबंध स्थापित करता है। पारिवारिक कहानी में स्त्री की व्यथा का चित्रण है। 'सुखांतकी' कहानी में पति अपने पत्नी के मृत्यु के बाद छोटी बच्ची को लेकर भीख माँगते हुए शहर में घुमता फिरता है।

'सलामत जागीरे' – कहानी केंद्र में माँ जब तक जीवित है, तब तक माँ का महत्व समझ नहीं आता, मृत्यु के बाद उसकी याद आती है। 'गुफ्तगू'–कहानी में के.के. की बेटी नेहा कब जिक्र कहानीकार ने किया, जो अपने बीमार पिताजी का ख्याल रखती है। 'दूज का टिका' – कहानी में विधवा बुआ का चित्रण आया है। घर में सबसे प्यारी बुआ, पुरानी परंपरा का दस्तावेज है, जो नयी पीढी के सामने 'दूज का टिका' का महत्व समझाती है। 'गीता चौधरी का आखिरी सवाल' – कहानी की नायिका गीता चौधरी जो आठवी कक्षा में पढती है, पढाई, ड्रामा, खेल, स्पिच, डायग्राम में सबसे अव्वल, किन्तु उसके भाई के विवाह के बाद माँ–बाप के कारण गीता में काफी बदलाव आता है, जिसके कारण स्कूल की मास्टरनी परेशान रहती है, स्कूल में झूठ बोलना, चोरी करना जैसी आदते गीता चौधरी के बरबादी के निशान लगते है। कहानीकार सूर्यबालाजी गीता की मानसिकता के साथ–साथ शिक्षा क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार के प्रति संकेत करती है।

संक्षेप में – 'गृह प्रवेश' कहानी संग्रह की कहानियाँ पारिवारिक परिवेश परेशान से जुडी है। प्रस्तुत कहानी संग्रह में स्त्री–पुरूष पात्रों की मानसिकता, परिवार की समस्याएँ, पात्रों के विचार, उम्र त्योहार, देश–विदेश भाषाभेद प्रांत, आदि सभी दृष्टियों से कहानी में विविधता है। अर्थात स्त्री विमर्श की दृष्टि से गृह प्रवेश कहानी संग्रह एक स्त्री विमर्श का बडा प्लेटफार्म है, इसमें संदेह नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

सूर्यबालाजी के कहानियों का अनुशीलन – प्रा. सुनिल बेंद्रे पृष्ठ – 25

गृहप्रवेश – सूर्यबाला (कहानी संग्रह) ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली संस्करण 2008

1. गृहप्रवेश – सूर्यबाला
2. बाऊजी और बंदर – सूर्यबाला
3. सौदागर दुआओं के – सूर्यबाला
4. होगी जय होगी हे पुरूषोत्तम नवीन – सूर्यबाला
5. समापन – सूर्यबाला
6. सुनो सुमित सुनो सुलभ – सूर्यबाला
7. सुखांतकी – सूर्यबाला
8. सलामत जागीरें – सूर्यबाला
9. गुफ्तगू – सूर्यबाला
10. दूज का टिका – सूर्यबाला
11. गीता चौंधरी का आखिरी सवाल – सूर्यबाला

मो.नं. 9423803062

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 61-67

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आदिवासी कहानी 'टोना' में वर्णित आदिवासी स्त्रियाँ : एक अध्ययन

मीरा विश्वकर्मा
नई दिल्ली।

समुदाय समाज का वह हिस्सा है, जो अभी तक मुख्यधारा से अलग है। उसे अभी तक वह सम्मान तथा स्थान प्राप्त नहीं हो पाया, जिसकी कल्पना भारतीय संविधान ने की थी। हम सभी ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति' का नाम सुना होगा, सरकारी दस्तावेजों में आदिवासियों के लिए ही 'अनुसूचित जनजाति' पद का प्रयोग किया जाता है। आदिवासी शब्द को समझने का प्रयास करें तो आदि का अर्थ होता है– प्रारम्भ से यानि शुरुआत से और वासी का अर्थ है– निवास करने वाला या रहने वाला। इस प्रकार आदिवासी का अर्थ हुआ– प्रारम्भ से निवास करने वाला, इन्हे हम मूल निवासी भी कह सकते हैं। संस्कृत ग्रंथों में आदिवासियों को अत्विका और वनवासी भी कहा गया है। महात्मा गाँधी ने आदिवासियों को गिरिजन यानि पहाड़ पर रहने वाले लोग, कहकर पुकारा है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में मुंडा, गोंड, मीणा, बोडो, खड़िया, असुर, बैगा, भील, संथाल, मल्हार, पारधी, खासी, इत्यादि आते हैं। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता दी है। सामान्यत इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी "अनुसूचित जाति एवं जनजाति" में रखा जाता है।

आदिवासी समुदाय को हाशिये का समुदाय क्यों कहा गया है? आखिर ये हाशिया है क्या? कहाँ से आया हाशिया शब्द? "हाशिया" शब्द विदेशी भाषा अरबी से हिंदी में आया है, जिसको अंग्रेजी में "मार्जिन" कहा जाता जाता हैप जिसका शाब्दिक अर्थ होता है– किनारा। पुस्तकों या किताबों में बायीं ओर खाली स्थान छूटा होता है उसे हाशिया कहा जाता है। सामान्यत इसमें कुछ लिखा नहीं जाता है।

हरिराम मीणा ने अस्तित्व को इस प्रकार परिभाषित किया है–"...समग्र संस्कृति को केंद्र में रखना होगा जिसमे भाषा, मिथक, धर्म, प्रथाएँ, जीवन शैली, खान–पान, वेशभूषा, गण चिन्ह, सौन्दर्यबोध, निषेध, आवास, परम्परागत ज्ञान, मानवेतर प्राणी जगत व प्रकृति के तत्वों से सम्बन्ध, स्वायत्तता, जीवनयापन, पर्वोत्सव, किम्वदंतियां, मुहावरे, गल्प, गीत संगीत, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध, परिवार–समाज व बस्तियों की दशा आदि से सम्बंधित बहुत सी बातें.....।"[1] आदिवासी जीवन शैली में सजीव प्राणियों और निर्जीव जगत के प्रति सह अस्तित्व की अवधारणा स्वीकार्य है। सजीव प्राणियों में मानव, पशु और प्रकृति भी शामिल है।

महान वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था कि पेड़ पौधों में भी जीवन होता है, वह साँस लेते हैं, बढ़ते है। इस सिद्धांत के प्रतिपादन से हजारों वर्ष पूर्व हमारे पुरखा आदिवासियों ने कृतिरूप में इसका प्रतिपादन कर दिया था। वृक्षों में पूर्वजों की आत्मा निवास करती है, भूत रहता है इत्यादि अनेक प्रकार के लोकाचार निर्मित कर दिए थे। जिसके भय या श्रध्दा के भाव के कारण वृक्षों का संरक्षण होता रहे। केवल भोग और केवल भोग की संस्कृति नहीं, परोपकार और कल्याण की संस्कृति के वाहक थे–वनों में रहने वाले वनवासी।

विकास के नाम पर इनके मूल परिवेशों के नष्ट हो जाने के कारण विस्थापन, पलायन, शहरीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। औद्योगिकीकरण के आ जाने से फैक्ट्रियाँ आदिवासी गांवों में पहुँच गई और अस्मिता पर खतरा मंडराने लगा। बाहरी समाज के संपर्क में आ जाने के कारण अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा होने लगा। उत्सवधर्मिता का आदिवासी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक आदिवासी जीवन में अनेकानेक पर्व त्यौहार मनाये जाते हैं। उत्तर भारत में झारखण्ड, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और हरियाणा मुख्य रूप से शामिल हैं। 'टोना' कहानी में पटेल की तीसरी पत्नी सरहुल का मेला देखने जाती है। मेहरुन्निसा परवेज ने सरहुल के मेले का वर्णन चित्रात्मकता के साथ किया है, लगता है हम स्वंय मेले में शामिल एक प्रतिभागी हों।

गुदना गुदवाने की परंपरा आदिवासियों में लम्बे समय से चली आ रही है। गोदना यानि टैटू, शरीर पर टैटू बनवाना आजकल फैशन के रूप में देखा जाता है। युवा आकर्षित होकर लाखों रुपयों तक के महंगे टैटू बनवाते हैं। यह शरीर के किसी भी अंग में बनवाए जा सकते हैं। आदिवासियों में टैटू बनवाना अनिवार्यता है। छत्तीसगढ़ में गोदना की विस्तृत और वैभवशाली परम्परा का इतिहास है। इसकी जड़ें वहां के समाज, संस्कृति, लोक मान्यताओं और धार्मिक आस्थाओं में रची बसी है। रामनामी समुदाय रामनाम का गुदना गुदवाता है और बैगा, गोंड, उरांव, कोरवा आदि जनजातीय समुदायों के लोगो के बीच अलग–अलग गोदना की परम्पराएँ एवं आकृतियाँ हैं। हर समुदाय के लोगो के शरीर पर अलग–अलग प्रकार के गोदने गुदवाये जाते हैं।

मैं पिछले वर्ष मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले के अंतर्गत आने वाली अर्जुनगढ़ तहसील में आदिवासी जीवन को धरातल पर समझने के लिए बिजुरी गाँव के पास की एक आदिवासी बस्ती में गया और टैटू के विषय में एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने मुझे बताया कि – यह प्रथा हमें विरासत में मिली, हमें नहीं पता की इसकी शुरुआत कब हुई। लड़का जब बड़ा हो जाता है तो उसे पीठ पर गुदना बनवाना पड़ता है, अगर वह गुदने के दर्द को सह लेता है तो वह मर्द बन जाता है। वह अपने गोदने से स्त्रियों को अपनी और आकर्षित करता है। बैगा जनजाति में आठ वर्ष की लड़कियों के शरीर में गोदना बनवाना शुरू किया जाता है और वह विवाह के बाद भी गोदना गुदवाती है– गोदना को जनजातीय स्त्रियों के शरीर का गहना माना जाता है। गोदना गुदवाने को यह अपनी परंपरा समझने है। समाज में अधिक से अधिक गोदना बनवाने वाली स्त्रियों को अधिक सम्मान प्राप्त होता है। शुरुआत में गुदना माथे पर और बाद में शरीर के बाकी अंगो पर गुदवाया जाता है। इसके बिना मोक्ष नहीं

मिल सकता इत्यादि मान्यताएं भी प्रचलित है। मेरी दादी जी और नानी जी के हाथ पर गोदना था। प्रस्तुत कहानी में इसके महत्त्व को प्रतिपादित करती कुछ पंक्तियाँ दृष्टव हैं :–

"गाँव का पुजारी कहता है मरने के बाद भगवान के घर यही लेखा साथ जाता हैं, जिसके गोदना नहीं है वह नरक भोगता है, यही देह का चिन्ह तो साथ जाये है। बिना गोदने वाली देह को कोई नहीं पूछता।।"[2]

सुरजनी अपने जांघ में टैटू बनवा लेती है और सौभाग्यवती बन जाती है–

"..... जांघ में गुदना उतरवाया है, जाने कहाँ कहाँ से ब्याह का न्यौता आया है। दो सौ रूपया नगद देने को तैयार हो गए हैं। काकी के तो पूरे देह पर गोदना है, जिसको जितना गोदना होगा वह उतना ही सुख भोगता है। काकी ने तो पूरे चार आदमी का सुख भोगा है।"[3]

टोना कहानी में विवाह परम्परा के विकृत रूप को दर्शाया गया है। इस कहानी की उर्वरा भूमि बस्तर है, जहाँ आदिवासियों की घोटुल जैसी समृद्ध परंपरा पाई जाती है, जिसमें युवक–युवतियां जिन्हें चेलिक–मोटियारी कहा जाता है। युवक–युवती घोटुल में मिलकर अपने भावी जीवन की रूपरेखा तय करते हैं। सूरज के ढलने के साथ ही युवक और युवतियां घोटुल (एक प्रकार की झोपड़ी) में इक्कठे होने लगते है। ढोल और अन्य वाद्य यंत्रो के साथ थिरकते हुए बड़े समूह छोटे होने लगते है और अपनी–अपनी पसंद के साथी के साथ मधुर वार्तालाप करते है। साथ में समय व्यतीत करते हैं, निरंतर मिलते रहते हैं। यदि उनके विचार मिलते है और वह गर्भवती हो जाती है तो उसके प्रेमी का नाम पूछकर लड़की का विवाह कर दिया जाता है। इस कहानी में बस्तर के आदिवासियों की स्वस्थ परम्परा का विकृति रूप देखने को मिलता हैं जहाँ तीतर गाँव का पटेल, काकी की लड़की खोडी के विवाह का सौदा कुछ रुपयों और बकरा देकर तय कर लेता है। पटेल पहले से शादीशुदा होता है, उसकी दो पत्नियाँ थी, पटेल के कोई संतान नहीं थी। बच्चे पैदा करने की चाहत में वह तीसरी शादी खोडी से करता है।

"पटेल के घर दोनों सौतों ने उसका स्वागत किया था, बड़ी की आँखों में स्नेह था, पर मझली की आँखों में डाह का समुंदर वह देख चुकी थी।"[4]

प्रकृति की पूजा और जादू–टोने में विश्वास करना आदिवासी लोक संस्कृति का हिस्सा है। महामारियों के प्रकोप से बचने के लिए आदिवासी विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। ग्राम देवी की पूजा करना, बलि देना सामान्य बात है। बकरे की बलि, सुअर के बच्चे की बलि, तीन अंडो की बलि दी जाती है। काकी के देव की छतरी का कहानी में वर्णन मिलता है, शराब का चढ़ावा चढ़ाती है। झाड–फूंक और भाव आना जिसे स्थानीय भाषा में अभुवाना कहते और सिगमंड फ्रायड ने चिकित्सीय भाषा में जिसे हिस्टीरिया कहा है। प्रस्तुत कहानी में जादू टोने के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। 'टोना' कहानी में नाकेदारिन सुखमती सूत खींचकर टोना करती है, काकी चावल से टोना करती हैं, पटेल की पहली औरत पंगनीन (टोन्ही) थी।

"बड़ी के सिर में बाल नहीं हैं उसका राज जब खुला तो वह कांप से गई, वह बड़ी पंगनीन (टोन्ही) थी। वह रात को घर से चली जाती और पौ फटने से पहले आदमी का खून पीकर लौटती थी। काकी कहती थी,

पंगनीन छत से डोरी डालकर सोए आदमी का नाभि से खींचकर कूँ पीती है, जब आदमी का खून नहीं मिलता तब जानवरों का खून पीती हैं। पटेल बता रहा था की पूरे गाँव में तीन चार पंगनीन है, यह लोग अपना काम निपटाकर खुले मैदान में मस्त होकर खेलती हैं। इनके मुँह से लार टपकती रहती है। ....."[5]

बस्तर के लोगों के खानपान का मूल आधार चावल से बने खाद्य पदार्थ व व्यंजन है। इसके अतिरिक्त गेंहू और मोटे अनाजों – ज्वार, मक्का आदि का उपयोग खानपान में भरपूर किया जाता है। सामान्यतः लोग दिन में तीन बार भोजन करते हैं, जिसमे चावल, कोदो या कुटकी, दाल और साग सब्जी शामिल होती है। रात को बचे हुए चावल के भात को पानी में मिलाकर बासी तैयार की जाती है, जिसे आमतौर पर लोग खेतों में जाने से पहले खाते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि बासी बहुत स्फूर्ति दायक भोजन होता है। सम्पन्न लोग सुबह अल्पाहार और दिन में दो बार भोजन करते हैं और वे रात में भात खाते हैं। छत्तीसगढ़ में आदिवासी समाज से लेकर जनपदीय व्यंजन अपने आप में खास हैं, जिनमें प्रमुख व्यंजन निम्मलिखित हैं :–

करी (मोटा सेव या बेसन के लड्डू जैसा), ठेठरी, सोहारी, बरा, फरा, भजिया, मुगौड़े, चीला, तसमई (खीर), खुरमी, पपची, अईरसा, देहदौरी, चौसला, जलेबी, रसगुल्ला, कुसली इत्यादि। राज्य में सामान्यतः सतनामी वर्ग मांस नहीं खाते परन्तु अधिकाश जनजातीय समाज मछली और मांस खाते हैं। केवट राउत और गोंड लोग मुर्गे का मांस खाते है। मछियारा जाति के लोगों के द्वारा मछली का भोजन आम बात है। कोल समुदाय के लोग पारंपरिक रूप से विवाह भोज में मांस नहीं खाते हैं लेकिन गोंड ऐसे मौकों पर मांसाहारी पकवान पकाते हैं। यह परंपरा का हिस्सा है, न कि खानपान का।

इस कहानी में काकी अपनी पुत्री खोड़ी का विवाह कुछ रुपयों और बकरा लेकर पटेल से तय कर देती हैं। काकी शराब के साथ मछली भूँजकर पटेल को खिलाती है।

यहाँ मछली की एक प्रजाति मोगरी का उल्लेख मिलता हैं। काकी धनपुंजी गाँव में गाँव में वर्षों में शराब बेचने का काम करती थी, काकी के तीन मर्द भाग गए थे। चौथी बार इसी गाँव के कोतवाल का हाथ पकड़कर यहाँ आ गयी। कोतवाल के मरने के बाद काकी ने महुए की शराब बनाने और बेचने का काम शुरु किया। काकी का चौथा पति संतान उत्पन्न करने में सक्षम नहीं था यही स्थिति तीतर गाँव के पटेल की थी। नशाखोरी आदिवासी जीवन के लिए श्राप बन चुका है। काकी खुद नशा करती है और सल्फी पीती है।

छत्तीसगढ़ में साल भर कोई न कोई पर्व और त्योहार कहीं न कहीं मनाया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाने वाले त्यौहारों के साथ साथ जनजातीय और स्थानीय समुदाय बड़े ही उल्लास और उत्साह के साथ अपने–अपने पर्व और त्योहारों को मनाता है। गुडी पडवा–छत्तीसगढ़ के शहरी क्षेत्रो में, गणगौर, चैत्र नवरात्रि, रामनवमी, भाई दूज, आखातीज, हरेली, नागपंचमी, पोला, नवाखाई।

सरहुल–छत्तीसगढ़ के साथ ही सुख समृद्धि का यह त्यौहार ओड़िसा, पश्चिम बंगाल और झारखण्ड राज्यों में भी मनाया जाता है। इस त्यौहार को मुख्यतः उरांव जनजाति के लोग मनाते हैं। खाम्भर गाँव में बाली पूजा का उल्लेख मिलता है। भीमदेव और कोदनी के व्याह पर यह समारोह होता है, यह पूजा डेढ़ महीने तक चलती

है। जिस दिन बारात निकलती है उस दिन बड़ा समारोह होता है और उसके बाद ही धान बोई जाती हैं।

खोड़ी, मझली और नाकेदारिन सुखमती भी खम्भार गाँव का मेला देखने गए थेप् इस मेले में प्रेम विवाह का एक रोचक प्रसंग भी आता है :– ".....कुँवारी लड़कियां मचान पर बने मंच पर चढ़कर झूम–झूमकर नाचने लगी। शहनाई तबले की गूँजकर पूरे वातावरण को मस्त कर रही थी। मंडई का वातावरण अब पूरे यौवन पर था। कुंवारे लड़के–लड़कियां भीमदेव की डोली के फूल लेकर आपस में दे–लेकर ब्याह रहे थे।"[6]

बस्तर में दशहरे के रथ के पीछे गिरे फूल उठाकर ब्याह करने का रस्म है और दूसरा अवसर यह बाली पूजा के दिन ब्याह करते हैं। ऐसे विवाह अक्सर प्रेम विवाह होते है जिसे सामाजिक मान्यता है। दकियानूसी विचारों से परे लड़का और लड़की मिलकर तय करते है, विवाह कर लेते हैं और अपनी गृहस्थी बसा लेते हैं। इस दृश्य को शहरी बाबू लोग, पत्रकार और फोटोग्राफर बहुत ही कौतुहल और ललचाई नज़रो से देखते हैं। इतना खुलापन उन्हें आकर्षित करता है, संकुचित सोच के कारण वह चुम्बकीय आकर्षण के गिरफ्त में आते है। महिलाओं को किसी न किसी बहाने छूना चाहते हैं, उनसे संवाद स्थापित करना चाहते हैं।

प्रस्तुत कहानी में इसी प्रकार का एक शहरी युवक खोड़ी का जो काकी की बेटी और पटेल की तीसरी पत्नी है, का लगातार पीछा करता है। मझली यानि खोड़ी की सौतन गाँव में पुजारी से उस शहरी बाबू की शिकायत करती है परन्तु पुजारी ने हँसी में टाल देता है। देर रात तक वह मेले में घूमती रही और अगले दिन मझली घर लौटने की जिद करने, सब लौट आये। कुछ दिनों बाद यह बात फ़ैल गयी कि खोड़ी माँ बनने वाली है तो पटेल बहुत खुश हुआ क्योकि उसे दो पत्नियों से कोई संतान नहीं मिल पाई थी। उसकी सबसे पहली पत्नी भी खुश थी परन्तु मझली सौतिया डाह से वह पहले ही जली जा रही थी, उसने खोड़ी के खिलाफ पटेल के कान भर दिए। जब पटेल दो दिन बाद जगदलपुर से लौटा तो उसने कहा– ".....आज जगदलपुर से आ रहा हूँ, वहाँ महल के सामने सरकारी सिनेमा दिखा रहे थे .....उसमें तेरी फोटो भी थी–हँसते हुए, पान खाते हुए, ठिठोली करते हुए। बोल तू खम्भारी बाली मेला देखने गयी थी या सिनेमा में काम करने? उस पर आरोप लगाते हुए पटेल कहता है कि उसी बाबू के साथ रात भर तू रही भी न, मँझली सब बता रही थी, अब उस शहरी बाबू का बच्चा मेरे सिर मढना चाहती है? बोल, हरामजादी बोल....."[7]

इतना कहकर उसने खोड़ी ने उसके पेट में लात मार दी, वह संभल नहीं पाई और खाट से नीचे गिर गयी। खाट का खूँटा सिर पर लगा तो सिर भंन्नाने लगा, मर्द चिल्ला–चिल्लाकर उसे गलियाँ दे रहा था और दीवार से पीठ टिकाकर हताश होकर टांगे फैलाकर ऐसे बैठ गयी जैसे काकी के सामने बैठती थी टोना उतरवाने के लिए।

मझली ने जो टोना किया है वह काकी, बड़ी सौत, नाकेदारिन और मेले में हुए टोनो से बिलकुल भिन्न है क्योकि उन्हें तो उतारा भी जा सकता है परन्तु इसे नहीं, अब पटेल की आँखों में शक का टोना हो गया है और यह कभी नहीं उतरेगा। यह शक का टोना बिलकुल कोरोना की तरह है जो आखों से तो दिखाई नहीं देता परन्तु है अत्यंत घातक।

शहरी प्रभाव में आने के कारण पटेल जैसे अनेक आदिवासियों ने स्वयं को अत्यंत संकीर्ण मानसिकता वाला बना लिया है, आदिवासी स्त्रियों के इस दयनीय अवस्था का कारण सांस्कृतिक क्षरण हो सकता है जो कि आदिवासी स्त्री की अस्मिता पर एक प्रश्न चिन्ह है। घोटुल जैसी स्वस्थ परंपरा को मनाने और इसे सामान्य जीवन चर्या का अंग मानने वाला समुदाय शहरी संस्कृति के चपेट में आते ही स्वयं को विस्मृत करके हाथ पर हाथ धरकर बैठा है। अस्मिता को नष्ट करना यानि अपनी पहचान का संकट। आदिवासियत का संकट है, अस्मिता का प्रश्न।

औद्योगिकीकरण और उपनिवेशवाद के आगमन से आदिवासी अस्मिता हाशियें पर आने लगी। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए ही बिरसा मुंडा जैसे अनेक क्रन्तिकारी देश के अलग–अलग हिस्सों में सक्रिय हुए और अस्मिता की रक्षा करते करते अपने प्राणों की आहुति दी लेकिन हार स्वीकार नहीं की। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के कारण सामान्य लोगो के जनजीवन में तो सकारात्मक परिवर्तन आया परन्तु आदिवासी अस्मिता पर लगी चोट को कोई देखने तक नहीं आया तथा आज़ादी के बाद यह विकास नासूर बनकर अस्मिता लीनने पर उतारू हो गया। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उत्तर आधुनिकता का चुम्बकीय आकर्षण बढता गया, तत्कालीन सरकारों ने इसे स्वीकृति प्रदान की और विकास का मॉडल स्वीकार किया।

उपभोक्तावादी संस्कृति की पूरजोर वकालत की गयी हालाँकि महात्मा गाँधी उपभोक्तावादी संस्कृति के पोषक नहीं थे लेकिन विरोधी कहना भी उचित नहीं होगा। इस संबध में उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में आधुनिकतावाद के खतरों के बारें में संकेत किया है।

श्यामाचरण दुबे का निबंध 'उपभोक्तावाद की संस्कृति' इस दिखावें की संस्कृति पर व्यंग्य करता है और इसके दुष्प्रभावों का वर्णन करता है। ग्लोबलाइजेशन ने बची कुची कसर भी पूरी कर दी। 'सम्पूर्ण विश्व–एक बाज़ार' की परिकल्कना को समेटे यह आया और गिद्ध की भांति आदिवासी अस्मिताओं पर चंचु प्रहार करने लगा। यह ग्लोबलाइजेशन एक लोथड़ा भर अस्मिता नहीं छोड़ना चाहता था। सुदूर वन क्षेत्रों में बसे हुए आदिवासी छुपकर अपनी सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित करने का कार्य कर रहे थे। यह संतोषी स्वभाव के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्प्रभाव से बचे हुए थे। बहुत तेजी से आर्थिक लाभ लेने हेतु जल, जंगल और जमीन पर कब्ज़ा करने के लिए नीतियाँ तैयार होने लगी और विकास के नाम उनके प्राकृतिक आवासों से उन्हें खदेड़ा जाने लगा। बड़े–बड़े उद्योगपतियों ने इसका ठेका लिया। कारखाने लगाये जाने लगे, बड़े–बड़े बांध बनाये जाने लगे, विकास परियोजनाओं की मानो बाढ़ सी आ गयी। विकास कितना हो पाया यह प्रश्न भी संदेह के घेरे में है परन्तु इस विकास के नाम पर हुए प्रवासन, विस्थापन के आँकड़े इसकी भयावयता का संकेत देने के लिए उपलब्ध हैं।

आदिवासी विषयों के चिन्तक हरिराम मीणा के अनुसार–"वैश्वीकरण की प्रक्रिया में आज विश्व के करीब 70 प्रतिशत देशों की 350 मिलियन (3.5 अरब) की जनसख्याँ के मूल निवासियों की संस्कृति को खतरा है जो अपनी स्वतंत्र आंचलिक संस्कृतियों यथा भाषा, धर्म व जीवन के अन्य पक्षों को संरक्षित करते आयें हैं। उनकी

संस्कृतियों पर आघात उनके मौलिक अधिकारों का हनन होगा जो अंततः उनकी अस्मिता के लिए खतरा होगा।"[8]

स्त्री, जो श्रम के आधार पर आदिवासी जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती थी, निर्वासित होने के बाद अपनी पहचान खोने लगी है। शहरों की गगनचुम्बी इमारतों में ईट–गारा ढोती हुई अनेक आदिवासी स्त्रियाँ सहज दिख जाती है। मजबूरी के कारण वह पचास रूपये और दो ठन्डे ब्रेड पकोड़े की खातिर अपनी देह बेचने को तैयार हो जाती है और आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाकर शोषण करने वाला कहता है –

"साली, तुम संथाल औरतें सिर्फ इस काम के लिए ही बनी हो।"[9]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, पृष्ठ संख्या 170, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली प्रथम संस्करण 2013, पहली आवृति 2016
2. परवेज़, मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, पृष्ठ संख्या 27, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आवृति 2018
3. परवेज़, मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, पृष्ठ संख्या 27, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आवृति 2018
4. परवेज़, मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, पृष्ठ संख्या 35, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आवृति 2018
5. परवेज़, मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, पृष्ठ संख्या 32, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आवृति 2018
6. परवेज़, मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, पृष्ठ संख्या 35, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आवृति 2018
7. परवेज़, मेहरुन्निसा, मेरी बस्तर की कहानियां, पृष्ठ संख्या 34, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, आवृति 2018
8. मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, पृष्ठ संख्या 178, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली प्रथम संस्करण 2013, पहली आवृति 2016
9. शेखर सौभेन्द्र, हंसदा, आदिवासी नहीं नाचेंगे, –'प्रवास का महीना–कहानी, पृष्ठ संख्या 50, प्रथम संस्करण 2017

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 68-72

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Impact of Social Media on the Mental Health & Academic Achievement of Secondary School Students

Dr. Rekha Soni, Faculty of Education, (Vice Principal)
Neeru Bathla, Ph. D. Scholar,
Tantia University, Sri Ganganagar

Abstract :-

The main objective of the present study is to investigate the Impact of Social Media on the Mental Health & Academic Achievement of Secondary School Students. The study was conducted on a sample of 400 students studying in 9th & 10th class of thesil Fazalika district Abohar of Punjab. For this Mental Health Battery by Dr. Arun Kumar Singh, Dr.Alpana Sen Gupta, Social Media Usage Scale developed and standardized by the investigator herself and Academic Achievement as Percentage of marks obtained by Secondary School Students in the Previous Class were used. The results indicate that there is significant impact of social media on the mental health of secondary school students and no significant impact of social media on the academic achievement of secondary school students education.

Keywords :-

Impact of Social Media, Mental Health, Academic Achievement and secondary school students.

Introduction :-

In today's parlance, first of all science develops a new technique and directly provides it to the society and when it is felt that the society started misusing it, then the need of education is felt and education provides the proper use of all these techniques to the society. Social media is a web-based technical stage that is often used to spread convenience for social connections between it's utilize. This is appreciated by innovative interactive appliances and websites labeled social media. At present, the utilization of social media is considered as growth and increased interaction in educational activities. However, the level of attachment to the utilization of social media varies from country to country. In several places and among several user groups, several educational institutions are trying to integrate social media opportunities to enhance learning activities.

The option to define social media or social networking as an entitled to online-based devices or innovations that highlight the social factors of the website as a platform for innovative interaction, communication and activities. Nonetheless, the word social media is used synonymously with the term web 2.0 and social operating system. But this scenario can never be called appropriate for the development of a country. Rather it would be better that first

of all science develops a new technique and then provides it to education and then education explains its proper use to the society and society adapts it with knowing all the pros and cons of this new thing in advance. Only in this case, all the technological developments can be proved beneficial for the society.

Social media channels are also not an exception in this case. So, it would be better that first of all science played its role in the development of social media channels, then education analysis various channels and explains various pros and cons of these and then provided the same to the society, so that the society can used them properly and can take advantage from these. So, the role of education in the proper usage of social media can never be ignored. It is the education which can make these channels more effective and impressive in use and then can work for the better connectivity and knowledge explosion in the present day society which is the need of the hour.

Social media can be called one of the most important inventions of the modern day society. Now everyone either they are children, young people, adults and old ones are using various social media platform in order to be in touch with those people who are far away from them as far as the geographical distances are concerned. But social media can not only be used as a connecting tool, but can also be used as an educational instrument, if used properly and for this a proper guidance is needed and that guidance facility can be given by the parents and the teachers. So, it is required that the parents and the teachers explains the proper use of these channels to their ward with the help of education, so that overall development of the personality of the child can be assured and better citizens can be produced.

Need of the study :-

Social media has gained credibility over the years as a trusted source of information and platform where organizations can interact with audiences. We are seeing education institutions adapting these developments into their systems and relying on group resources and mechanisms to improve the student life. The use of social media in education provides students with the ability to get more useful information, to connect with learning groups and other educational systems that make education convenient. Social network tools afford students and institutions with multiple opportunities to improve learning methods. Through these networks, you can incorporate social media plug-in that enable sharing and interaction. Students can benefit from online tutorials and resources that are shared through social networks and LMS's. There is valuable knowledge to be gained through social media such as analytics and insights on various topics or issues for study purposes. Social media is also a medium where students can establish beneficial connections for their careers. As an educational institution, it is crucial to be active in many social platforms possible; this helps create better student training strategies and shapes student culture.

On the contrary, there has been various overview and opinions, which recognized four major advantages of social media use in higher education. These include, enhancing relationship, improving learning motivation, offering personalized course material, and developing collaborative abilities. This means that social networking activities have the possibility of enhancing student contact and to improve their participation in class, particularly where introverted students are involved. Students can function in online group learning, with less or no anxiety of needing

to raise questions before peers at school.

Since academic achievement is the criteria for recognition in various occupations, for quite some time, educationists, parents and teachers are debating on the effect of social media usage by students on their lives and in turn on their academics. India is the second largest nation with internet users as estimated by Internet World Stats in 31st December, 2017. A study by Assocham's Social Development Foundation conducted in various Indian cities shows that 95% of underage Indian teenagers below the age of 13yrs use internet, among that 81% of them used social media while a whopping 76% of them use you tube-the video sharing form of social media daily with or without parent supervision. In the present era, social media has become the adolescents' favorite source of satisfying their curious minds. There is vast amount of information available and scope for various types of activities to carry out via different social media platforms that have both positive as well as negative effect on the minds and in turn the academic achievement of adolescents.

Many students with mental health problems do not qualify for special education services. In addition, most of the mental health problems might go unnoticed as student may suffer quietly without necessarily having any noticeable drop in their academic achievement.

Statement of Problem :-

"Impact of Social Media on the Mental Health & Academic Achievement of Secondary School Students."

Objective of the study :-

(1) To evaluate the impact of social media on academic achievement of secondary school students.

(2) To evaluate the impact of social media on the mental health of secondary school students.

Hypothesis of the study :-

(1) There is significant impact of social media on the mental health of secondary school students.

(2) There is significant impact of social media on the academic achievement of secondary school students.

Method :-

Researcher choose survey method for this research work.

Sample of the study :-

For this purpose, the investigator contacted the school heads of various govt. and private secondary schools of Sri Ganganagar district of Rajasthan and collect the data of 600 students.

Tools used :-

1. Social Media:- Social Media Usage Scale developed and standardized by the investigator herself.
2. Mental Health Battery by Dr. Arun Kumar Singh, Dr.Alpana Sen Gupta.
3. Academic Achievement :- Academic Achievement as Percentage of marks obtained by Secondary School Students in the Previous Class.

Statistical techniques :-

Mean, standard deviation, t-test and correlation were used to analyse the data.

Data analysis :-

1. There is significant impact of social media on the mental health of secondary school students.

Table – 1

Table : Showing the impact of social media on the mental health of secondary school students.

Sr. No.	Categories	N	Mean	S.D.	r-Value	Type of correlation
1.	Social media	600	122.395	19.256	0.042	Positive
2.	Mental health	600	75.853	12.061		

It is evident from table - I that positive correlation is found between Social media and Mental health of secondary school students. When the level of significance of correlation is tested, the correlation between Social media and Mental health of secondary school students is found at the 0.01 level of not significance. Therefore, the hypothesis- There is impact of social media on the mental health of secondary school students is accepted at the 0.05 and 0.01 level of significance. Hence, these two variables are correlated with each other.

According to the above analysis, it is clear that there is a significant relation between impact Social media and Mental health of secondary school students. The positive correlation implies that if the Social media is perceived to be high, then the mental health is likely to be low. It is possible that impact of social media more effective mental health of secondary school students.

2. There is significant impact of social media on the academic achievement of secondary school students.

Table – 2

Table : Showing the mean comparison of impact of social media on the academic achievement of secondary school students.

Sr. No.	Categories	N	Mean	S.D.	r-Value	Type of correlation
1.	Social media	600	122.395	19.256	0.014	Positive
2.	Academic achievement	600	73.771	9.073		

It is evident from table- 2 that positive correlation is found between Social media and Academic achievement of secondary school students. When the level of significance of correlation is tested, the correlation between Social media and Academic achievement of secondary school students is found at the 0.01 level of not significance. Therefore, the hypothesis- There is impact of social media on the Academic achievement of secondary school students is accepted at the 0.05 and 0.01 level of significance. Hence, these two variables are correlated with each other.

According to the above analysis, it is clear that there is a significant relation between impact Social media and Academic achievement of secondary school students. The positive correlation implies that if the Social media is perceived to be high, then the Academic achievement is likely to be low. It is possible that impact of social media more effective Academic achievement of secondary school students.

Findings of the study :-

findings on mental health and academic achievement of Secondary school students with respect to the influence of independent variable and background variables the following recommendations are given.

1. Now that society is using social media extensively for various purposes, it makes no sense to avoid or forcefully keep students away because it is a myth. This is because in several other researches, as mentioned

in the discussion of findings along with the findings of this study, students have been shown to benefit more from using social media wisely than from its harmful effects.

2. Parents, teachers and elders in society should encourage the wise and conscious use of social media by students. This can be achieved with a growth mindset rather than a fixed mindset.

3. Parents should be vigilant about their ward's activities and behaviors which will be helpful for early detection of problems related to students' mental health and academic performance.

References :-

1. Abhishek Taneja, (2015) Impact Analysis of Social Media on India. Journal of Communication Technology and Human Behaviors 1, 1-24.
2. Abela, J. R., Hankin, B. L. and Haigh, E. A. (2005). Interpersonal vulnerability to depression in high-risk children: The role of insecure attachment and reassurance seeking. Journal of Clinical Child Adolescent Psychology. 34, 182-192.
3. Bhola, R. and Mahakud, G. (2014). Qualitative analysis of Social Networking Usage. Int J Res Dev Health, 2(1): 34- 44.
4. Cheung, C. M. K. and Pui-Yee Chiu, M. K. O. L. (2011). Online social networks: Why composite construct to understand its relation to mental health: A pilot study.
5. Kalra, Raj Kumari. et.al. (2013). Effect of Social Networking Sites on Academic Achievement among introverts & extroverts. Asian Journal of Social Science & Humanities. ISSN: 2186 – 8492. 2(3). Pp.401 – 406.
6. JD .Singh, 2016 "inclusive education in india–concept, need and challenges", sjif 2014-3.189, issn:2348-30.83, an international peer reviewed & referred, scholarly research journal for humanity science & english language.
7. Mertens, D. (2009). Research and Evaluation in Education and Psychology: Integrating Diversity with Quantitative, Qualitative & Mixwd Methods. Third Edition. Newbury Park. CA: Sage.
8. Prasad, Deva. F. (2015). Impact of SNS on Perception of Sociability and Academic Performance of College Students in Bangalore City. Retrived from shodhganga.inflibnet.ac.in>handle
9. Rana, Rashmi and Singh, Neetu (2014). The Use of Social Networking in Academics: Benefit and Opportunity. International Journal of Science and Research (IJSR).
10. Satish Kumar, (2011) "Mental Health and School Satisfaction of Truant and Non – Truant Secondary School Students. National Journal of Community Medicine. 4(1).
11. Shefali Chopra, (2018) improving health and equity in India". A Journal of Computers in Human Behaviour, 27(5) 1658-1664

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 73-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"राम का स्वरूप" – प्रमुख रचनाओं के संदर्भ में

डॉ० निशा मलिक

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जानकी देवी मैमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध सारांश :–

रामचरित्र व रामकथा अत्यंत प्राचीनकाल से संपूर्ण भारतीय साहित्य के उपजीव्य रहे हैं। राम निरन्तर भारतीय संस्कृति के आकाश मंडल में जगमगाते रहे हैं। प्रत्येक युग का श्रेष्ठ चिंतन राम के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। हर युग की चिन्तनधारा में राम बसे हैं, राम से प्रेरणा प्राप्त कर युग–युग का मानव स्वयं को मूल्यांकित करता रहा है और इस प्रक्रिया में वह राम द्वारा जीए गए आदर्शों का संकलन करता रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, स्थिति, दशा, पहलू, अवस्था में राम एक आलोक स्तंभ की भांति खड़े हुए मिलते हैं। रामचरित्र को प्रत्येक युग और समाज ने अपने अनुरूप अभिव्यक्ति दी है जिसका कारण युगों की मान्यताओं का भेद है। किंतु रामचरित्र इतना सक्षम है कि उसके माध्यम से प्रत्येक युग के मानव ने स्वयं को रूपायित किया है।

बीज शब्द :– राम, धर्मज्ञ, सनातन, नारायण, समन्वय, मानवतावाद, मानव–मूल्य, ब्रह्मत्व, आस्वाद, लोकोन्मुख, आर्यत्व, प्रतिच्छाया, साम्यवादी, अन्तर्मुखी, आत्मसंघर्ष।

मूल आलेख :–

रामकथा लोक जीवन में तरह–तरह से व्याप्त थी किंतु उसे सुसंग्रथित रूप में अभिव्यक्ति आदिकवि वाल्मीकि ने ही प्रदान की। 'रामायण' ही 'काव्य–बीज–सनातनम्" है। परवर्ती कवियों ने 'रामायण' से ही बीज सूत्रों को लेकर रामकथा का विस्तार किया है। वस्तुतः वेदों में तथा तत्कालीन लोक जीवन में धर्म, व्यवहार, कर्म, ज्ञान आदि तत्व और वीर गीतों से युक्त कथाएं इधर–उधर बिखरी पड़ी थीं। वाल्मीकि जी ने उन्हें चुना और अपनी प्रतिभा संपन्न कलात्मक दृष्टि से 'रामायण' की रचना की। जहाँ तक वाल्मीकि कृत 'रामायण' में राम के स्वरूप पर चर्चा की जाए तो ग्रंथ के आरंभ में ही वाल्मीकि जी नारद जी से पूछते हैं–"मुने! इस समय संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता, दृढ़–प्रतिज्ञ, सदाचार से युक्त, प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली, सुंदर, मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, क्रान्तिमान्, पर निंदा न सुनने वाला पुरुष कौन है?" उत्तर स्वरूप नारद इन दुर्लभ गुणों से संपन्न पुरुष के रूप में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए 'राम के स्वरूप' का वर्णन करते हैं। वाल्मीकि की मौलिकता यह है कि वे राम के सर्वगुण संपन्न चरित्र को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। राम का यह मानवीय व्यक्तित्व ही आगामी रचनाकारों का प्रेरणा स्त्रोत बना है।

'रामायण' में अलौकिक प्रसंगों की संख्या न के बराबर होने पर भी 'राम साधारण' नहीं हो जाते। अनेक

प्रसंग (वाल्मीकि रामायण) ऐसे हैं जो राम की दिव्य शक्तियों की ओर संकेत करते हैं। 'नर' से 'नारायण' होने की संभावना के प्रमाण हैं। वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में यदि हम यह तर्क स्वीकार कर लें कि राम विष्णु के अवतार ना होकर केवल दशरथ सुत ही हैं, तो भी समस्या का पूरी तरह से समाधान नहीं होता, क्योंकि केवल दशरथ–नंदन सा साधारण राम का व्यक्तित्व नहीं है। स्वयं वाल्मीकि रामायण में अनेक संकेत देते हैं– युद्ध कांड के चतुर्दश सर्ग में विभीषण रावण से हितकारी वचन कहते हुए राम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं– 'यदि सविता अथवा सूर्य, मरुत अथवा वायु और देवाधिदेव इंद्र अथवा कालदेवता यम तुम्हें अपने अंक में ले लें और तुम आकाश या पाताल लोक में छिप जाओ तो भी श्रीराम से तुम बच नहीं सकते।' (युद्ध कांड 14/6)

इसी प्रकार 'युद्धकांड' में भी राम की विजय के उपरांत उनके रथ पर अंतरिक्ष से पुष्प वर्षा और देवताओं द्वारा उनकी स्तुति (108/28, 29) अरण्यकांड के 31वें सर्ग में अकंपन राम के पौरुष का बखान करते हुए कहता है कि वे समुद्र में डूबती हुई पृथ्वी को उबार सकते हैं और समस्त लोक को महासागर में डूबो सकते हैं (31/24,25) यही नहीं राम महा यशस्वी हैं, वे अपने पराक्रम से संपूर्ण लोकों का विनाशकर पुनः एक नयी सृष्टि की रचनाकर सकते हैं (31/26) इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाल्मीकि राम के व्यक्तित्व में ऐतिहासिकता पौराणिकता का समन्वय करते हुए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम भी बनाते हैं तथा उनके प्रति भक्ति–भावना का भी विस्तार करते हैं।

यदि रामकथा में राम स्वरूप पर विचार करें तो यह तथ्य सामने आता है कि इस महान् चरित विषयक अनुभूति निरंतर बदलती रही है। भवभूति के राम से वाल्मीकि के राम भिन्न हैं और तुलसी के राम भवभूति–वाल्मीकि के राम से पृथक हैं। इसी प्रकार 'साकेत', 'राम की शक्तिपूजा' व 'संशय की एक रात' अलग ही मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित हैं। वाल्मीकि के राम जब शूद्र तपस्वी शंबूक का वध करते हैं तो उनके हृदय में कोई प्रश्न नहीं उठता किंतु भवभूति के राम शंबूक वध के समय करुणा से कराह उठते हैं। तुलसी तक आते–आते मानवतावादी आंदोलन इतना परिपक्व हो गया कि तुलसी ने शंबूक वध का प्रसंग ही त्याग दिया।

महाकवि तुलसी का अविर्भाव उस समय हुआ जब सांस्कृतिक मूल्य जन जीवन से टूटकर बिखर चुके थे। वैयक्तिक अज्ञान व अंधकार के धुंधलके में भटकती जन दृष्टि शास्त्रों व परंपराओं को तिलांजलि दे चुकी थी। धर्म व कर्म में कोई सामंजस्य न रह गया था। समूचा देश विश्रृंखलता, विभिन्नता व विचित्रता की त्रासद स्थितियों में उलझता चला जा रहा था। अतः धर्म, संस्कृति, मर्यादा, जीवन मूल्यों व मानवता की रक्षा हेतु सर्व समर्थ राम की अवतारणा ही तुलसी के समक्ष एकमात्र उपाय था और वहीं उन्होंने किया। तत्कालीन समाज की समस्त समस्याओं का समाधान केवल 'रामचरित्र' के माध्यम से ही संभव था।

वाल्मीकि, अध्यात्म आदि को आधार स्वरूप ग्रहण करते हुए भी मध्यकालीन तुलसीराम कथा को नया आयाम प्रदान करते हैं, यह बड़ी बात है। तुलसी के राम की स्थिति पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि 'तुलसीकृत रामचरित' मध्यकालीन इतिहास की भूमि पर खड़ा है और वह अपने समय को न केवल साथ लेकर चला है वरन् उसी के अनुरूप गड़ा गया है। तुलसी के राम अपने आस पास के बिखरे हुए (मध्यकालीन परिवेश) परिवेश को उच्चतम मानव–मूल्यों से जोड़ने का प्रयास करते हैं। तुलसी अपने राम को देवत्व से जोड़ते हैं और

उन्हें कलियुग का समाधान बतलाते हैं–"नामु राम को कल्पतरु कलि कल्याण निवासु"। वस्तुतः तुलसी मध्यकालीन भयानक, परिवेश का समाधान आदर्शवादी ढंग से करना चाहते हैं। राम विष्णु के अवतार हैं, देवाधिदेव हैं, साक्षात् ब्रह्म हैं। 'मानस' में अन्यत्र ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा करते हुए तुलसी 'उत्तरकांड' में लिखते हैं– "परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइ हि रघुकुल भूषण भूपा। "शंकर उनके भक्त हैं और समस्त देवता उनकी आराधना करते हैं। वे साकार रूप होकर भी अपना निराकार ब्रह्मत्व सुरक्षित रखते हैं परंतु "धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं" राम ईश्वरहैं इस तथ्य का बोध करवाने वाले अनेक प्रसंग हैं बल्कि तुलसी निरंतर पाठक को यह स्मरण करवाते चलते हैं कि धर्मः पालन हेतु अनेक लीलाएँ करने वाले राम साक्षात् बह्म हैं–

"जहं जहं जाहिं देव रघुराया
करहिं मेघ तहं तहं नभ छाया।"

राम इस पृथ्वी पर दुष्टों का संहार करने तथा सज्जनों की रक्षा के लिए अवतरित हुए हैं जो व्यापक, अकल, इच्छा रहित, अजन्मा व निर्गुण हैं वही भगवान भक्तों के लिए नाना प्रकार के चरित्र करते हैं। तुलसी के लिए यहां एक चुनौती खड़ी होती है कि ऐसे सर्व समर्थ प्रभु को मनुष्य से जोड़ने में कठिनाई तो नहीं होगी। उनके अलौकिक क्रिया कलाप असंख्य हैं–उनका स्पर्श पाकर वानर सेना में नई शक्ति का संचार हो जाता है, सुग्रीव अभय हो जाते हैं और उनकी चरण धूलि का संस्पर्श पाकर अहिल्या का उद्धार हो जाता है, आदि। परंतु ये समस्त अलौकिक घटनाएँ राम में नरत्व की गुंजाइश भी रखती हैं। वे नारायण हैं परंतु अपनी लीलाओं द्वारा मानव भी। यदि तुलसी राम को मानवीय भूमि पर न उतारते तो साधारण जन संभवतः 'रामचरितमानस' का आस्वाद न ले पाता। रामभक्त जनों के लिए अवतार रूप ग्रहण करते हैं, परंतु अपने सामाजिक दायित्व से भी अनभिज्ञ नहीं हैं।

मानवीय धर्म का उन्होंने सर्वथा निर्वाह किया है 'बड़े भाग मानुष तन पावा' (उत्तरकांड 43/4) यही नहीं वे स्पष्ट कहते हैं– 'सबसे अधिक मनुज मोहि भाए' (उत्तरकांड 86/2) वस्तुतः तुलसी मध्यकालीन समाज को एक सार्थक नेता भी देना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने अपने राम को विविध घटनाओं में डालते हुए उन्हें फिर से गड़ा है। श्री प्रेमशंकर के शब्दों में" तुलसीराम में जिस रामत्व को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं उसे इस सीमा तक अलौकिक नहीं बना देते कि वह अविश्वसनीय हो जाए इसीलिए बार–बार उनके ब्रह्मत्व के संकेत देते हुए भी उन्हें नर की भूमि पर संचालित रखते हैं।

वस्तुतः तुलसी अपने प्रमुख पात्र राम के माध्यम से जिन उच्चतर मानव मूल्यों को प्रमाणित करना चाहते हैं, वे वैयक्तिक हैं, आध्यात्मिक होते हुए भी लोकोन्मुख हैं। तुलसी के राम जीवन मूल्यों की साकार मूर्ति हैं, गहन आत्म विश्वास से भरे हुए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'श्रद्धा भक्ति' नामक निबंध में राम चरित्र का सामाजिक वैशिष्ट्य प्रकाशित करते हुए कहा है– "अनंत शक्ति के साथ धीरता और कोमलता राम का प्रधान लक्षण है, यही उनका रामत्व है।"

तुलसी परवर्ती साहित्य मेंराम का स्वरूप भिन्न मानवीय मापदंडों पर निर्मित दिखलाई देता है। वस्तुतः ऐतिहासिक–पौराणिक पात्रों के अविश्वसनीय, अलौकिक, चमत्कारी कार्यों के स्थान पर उन्हें मानवोचित परिप्रेक्ष्य

व संदर्भ प्रदान करना आधुनिक युग की विशिष्टता है। यही कारण है कि अवतारी राम और कृष्ण भी ईश्वरत्व से पृथक मानवीय रूप में विचरण करते दिखलाई देते हैं। मैथिलीशरण गुप्त रचित 'साकेत' के राम स्वामी दयानंद तथा स्वामी विवेकानंद के संस्कारों से प्रभावित हो गए हैं। एक ओर स्वामी दयानंद वेदों की वाणी व आर्य धर्म के प्रचार में संलग्न थे तो दूसरी ओर स्वामी विवेकानंद पर लोक की साधना में निरत व्यक्तियों को लोकोन्मुख कर रहे थे। 'साकेत' के राम इन दोनों ही महात्माओं की शिक्षाओं को अंगीकृत करते हुए कहते हैं :–

बहुजन वन में हैं, बने ऋक्ष –वानर से,
मैं दूंगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से,
उच्चरित होती चले वेद की वाणी,
गूंजे गिरी–कानन, सिंधु पार कल्याणी।

तथा

संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य से सम्प्रक्त होने के बावजूद गुप्त जी ने राम के प्राचीन सर्वमान्य रूप को दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। तुलसी के सर्वव्यापी, अखंड, अनादि, कृपालु राम गुप्त जी के यहां इस प्रकार प्रतिष्ठित हुए हैं :–

"हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है,
किसलिए यह खेल प्रभु ने है किया?
मनुज बन कर मानवी का पय पिया?

————

भूमि पर प्रकटा अनादि–अनंत है।"

वे भी तुलसी की ही भांति धर्म संस्थापना व सज्जनों की रक्षा ही रामावतार का कारण मानते हैं। गुप्त जी के राम क्रांति दर्शी हैं। वे स्वयं श्रद्धेय बनकर शरणागतों पर कृपा नहीं करते वरन् त्याग व प्रेम के मार्ग की ओर जनजीवन को अग्रसर करते हैं। वे अपने आदर्श व अलौकिक चरित्र के द्वारा स्वर्ग को ही पृथ्वी पर उतारने की बात करते हैं। स्वयं दुःखों को स्वीकार कर संसार को सुखमय करना चाहते हैं। उनका आदर्श है 'सादा जीवन उच्च विचार'। सेवा, सहिष्णुता, प्रेम, उदारता के भावों को हृदय में संजोकर ही व्यक्ति 'सत्योन्मुख' हो सकता है।

इस प्रकार गुप्त जी 'नर में नारायण' प्रतिष्ठा करते हैं। वे राम के मानवीय रूप पर मोहित है किंतु उनके अन्तस् में विद्यमान वैष्णव भक्तजन उनके ईश्वरत्व की अवहेलना नहीं कर पाता :–

"पर हम क्यों प्राकृत पुरुष आपको माने?
निज पुरुषोत्तम की प्रकृति क्यों न पहचानें।"

वस्तुतः राम का व्यक्तित्व व कृतित्व उन्हें सहज ही परमेश्वर बना देता है अन्यथा वाल्मीकि ने तो 'मर्यादा पुरुषोत्तम' का चरित्र गाया था। गुप्तजी तुलसी की भांति राम नाम के महत्व को तो स्वीकार करते हैं किंतु साथ ही वे राम के आदर्श चरित्र व आचरण को जीवन में उतारने पर अधिक बल देते हैं। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि आज के बौद्धिक मनुष्य को नाम स्मरण का महत्व समझाना कठिन था। गुप्त जी व तुलसी दोनों के ही राम मर्यादा का निर्वाह करने वाले है किंतु तुलसी अपने सगुण अवतारी राम में परात् परब्रह्म की स्थापना करते हैं, इसीलिए उनके राम आद्यन्त गंभीर है किंतु 'साकेत' के राम गार्म्भीय के साथ–साथ हास परिहास मनोविनोद से युक्त होने के कारण अधिक मानवीय हैं। जहाँ तुलसी के राम राक्षसों के संहार द्वारा पृथ्वी को भयमुक्त करने के उद्देश्य से अवतरित हुए हैं वहाँ गुप्त जी के राम संहार के स्थान पर सृजन को महत्व देते हैं :–

"गढने आया हूँ, नहीं तोड़ने आया।"

साकेत के राम में जो लोकरंजक वृत्ति का भाव है वह युगीन गांधीवादी विचारधारा की देन है। 'मानस' व 'साकेत' दोनों ही रचनाओं में राम लोकनायक हैं तुलसी व गुप्त जी के राम में जो अन्तर दिखलाई देता है वह वास्तव में अपने–अपने युग की प्रति छाया स्वरूप है। डॉ० व्यास इस संदर्भ में कहते हैं– "तुलसी ने अपने युग की समस्त परंपराओं का समन्वय करके राम स्वरूप की प्रतिष्ठा की और साकेतकार ने अपने युग की समस्त आध्यात्मिक भौतिक, गांधीवादी–साम्यवादी, राष्ट्रीय सर्वजनीन, प्राचीन, अर्वाचीन विचारधाराओं का समन्वय करके राम स्वरूप का अंकन किया। साकेत के रामभारतीय संस्कृति के प्रचारक, लोक सेवा में अनुरक्त राष्ट्रीयता के पोषक और प्राणी मात्र पर प्रेम और करुणा की वर्षा करने वाले हैं।"

वस्तुतः राम का कौन सा रूप आदर्श है, यह विचारणीय प्रश्न है। उनका चरित्र युगों–युगों से हमारे राष्ट्रीय जीवन का अंग रहा है और युगानुरुप आदर्श चरित्र के मापदंडों में परिवर्तन होते रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप रामचरित्र संबंधी नए काव्यों में भी नए–नए राम दृष्टिगत होते हैं। वाल्मीकि, तुलसी, मैथिलीशरण गुप्त तक आते–आते युगानुरूप चित्रित राम आदर्श की प्रतिष्ठा करते रहे हैं। कहीं कोई ऐसा योद्धा उत्पन्न नहीं हुआ जो राम को युद्ध में परास्त कर सके :–

शस्त्र सर्वभूतेषु सर्वकालेषु नास्तिसः।
यो रामं प्रति युद्धेत विष्णु तुल्य पराक्रमम्।।

किंतु निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में चित्रित राम परंपरागत रूप से सर्वथा भिन्न रूप में अंकित हैं। यदि इस कविता के माध्यम से निराला ने कोई आधुनिक, निजी या सामाजिक अर्थ प्रतिष्ठित नहीं किया होता तो यह कविता मात्र कथा का पिष्ट–पेषण होती है और ऐसी परिस्थिति में यह राम के चरित्र को आगे क्या बढ़ाती? यदि सूक्ष्मता पूर्वक देखा जाए तो कहीं कहीं इस कविता में राम के माध्यम से निराला राष्ट्रीय गुलामी से मुक्ति की चिंता की ओर भी संकेत करते हैं–

"स्थिर राघवेंद्र को हिला रहा फिर फिर संशय,
रह–रह उठता जग जीवन में रावण–जय–जय–भय।"

स्पष्टतः यहां संशय सीता की मुक्ति के लिए उतना नहीं दिखलाई देता, जितना संपूर्ण राष्ट्र में रावण की

विजय से उत्पन्न होने वाले दुर्दमनीय अत्याचारों की चिंता को लेकर व्यक्त होता है।

यहाँ नवीन संदर्भ में रचित कथा में राम के 'संशय' का बहुत महत्व हैं। यह संशय ही रामचरित्र के नवीन आयाम खोलता है क्योंकि तुलसी के राम के मन में कहीं कोई संशय नहीं है। उनका विरह, विलाप और उनकी विजय–पराजय की चिंताएँ मात्र लीलाएँ हैं, जो राम के चरित्र को जन समुदाय मे विश्वस्त बनाती हैं। वस्तुतः तुलसी इस तथ्य को भली–भांति समझते हैं कि चमत्कार जनता को परोक्ष रूप से चमत्कृत करते हैं इसीलिए वे राम के सारे कर्म जन साधारण की मानसिकता अनुरूप संपन्न करवाते हैं ताकि जनता आश्वस्त हो सके कि वे स्वयं भी इस कार्य को कर सकते हैं।

"राम कथा सुंदर करतारी
संशय विहग उड़ाव निहारी।।"

तुलसी के राम संशय रहित हैं, उनकी तो कथा का ज्ञान भी संशय को नष्ट करने वाला है। यहीं निराला की विशिष्टता है कि 'संशय रहितता' की इस प्रतिष्ठित भूमि पर खड़े राम को संशय की मनःस्थिति में उपस्थित करते हैं। उनके चरित्र का यह संशय ही उन्हें नए परिवेश, नए मानव की मनःस्थिति पर पहली बार उपस्थित करता है। राम का यह संशय सामयिक व राष्ट्रीय है। जन–जीवन में रावण की विजय का अहसास उन्हें शंकित करता हैं। यह संशय युद्ध भूमि में पराजय की आशंका का प्रतिफलन है–

"कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार–बार।
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार।"

राम देखते हैं 'जिधर अन्याय है उधर शक्ति 'मन आक्रोश व नैराश्य से भर जाता है, जो युगीन परिवेश का सत्य है, किंतु कवि युग को सन्मार्ग पर ले जाता है, जाम्बवान् राम को सचेत करते हैं–अशुद्ध रावण जब आराधना से शक्ति उपार्जित कर सकता है तो शुद्धाचरण राम क्यों नहीं कर सकते? राम का आत्मविश्वास लौट आता है। पूरी कथा वस्तु में बाहर की घटनाओं का सर्वथा अभाव है। राम का संघर्ष, उनकी साधना, उनका प्रयत्न सभी अंतर्मुखी है। राम अन्तरतम मन के प्रतीक बनकर उभरे हैं।

निराला के राम जहाँ युद्ध में पराजय की आशंका से विचलित हैं वहीं नरेश मेहता के राम का आत्म संशय बाह्य संघर्ष व प्रचंड युद्ध के कारण है। वे रावण के साथ होने वाले युद्ध को जन विनाश का आधार नहीं बनाना चाहते इसीलिए युद्ध अथवा शान्ति में से किसे स्वीकार करें इसका समाधान नहीं कर पाते। यही आत्म संशय, आत्म संघर्ष बनकर स्वयं को समस्त अप्रिय घटनाओं का कारण मानने लगता है। संघर्ष द्वारा वे सीता तक को प्राप्त नहीं करना चाहते :–

मानव रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं।

वे स्वयं को यहाँ तक दोषी मानते हैं :–

आज तक मैं निमित्त ही रहा,

कुल के विनाश का
लेकिन अब नहीं बनूँगा कारण
जन के विनाश का।

युद्ध के विनाशक कारणों को राम झेलना नहीं चाहते, वे चिंतित हैं। कवि ने राम के इस स्वरूप का युगीन संदर्भों समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में प्रकटीकरण किया है। यहाँ कवि राम–व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक चिंता व्यक्त करते हैं। यहाँ राम रावण युद्ध की पीठिका में नेहरू, उनके पंचशील सिद्धांतों को लोकतंत्र के सामने रखा गया है। तत्कालीन समय में प्रधानमंत्री के सिद्धांतों के विपरीत युद्ध हुआ और जन विनाश को रोका न जा सका। हनुमान, लक्ष्मण, विभीषण, जामवंत तथा प्रेतात्माओं के रूप में दशरथ तथा जटायु द्वारा राम को युद्ध की अनिवार्यता, वास्तविकता का बोध कराया जाना वस्तुतः तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप है। ये पात्र सीता को स्वतंत्रता का प्रतीक मानते हैं। यही नहीं अंततः राम भी स्वीकार करते हैं :–

मैंने निर्णय हूँ सबका,
मैं निर्णय हूँ,
व्यक्ति नहीं।

रामचरित्र को वाल्मीकि से लेकर आधुनिक नवीन काव्यों में विवेचित करने के उपरांत प्रश्न फिर उठता है कि आदर्श कौन सा मनुष्य है। वह जो सर्वथा समस्त मनोविकारों से मुक्त होकर देवत्व के सिंहासन पर विराजमान है अथवा वह जो मानवीय दुर्बलताओं से संघर्ष करके उनसे ऊपर स्वयं को स्थापित करता है। यदि देव–सुलभ गुणों से संपन्न मनुष्य आदर्श है, तो निश्चय ही वे तुलसी के राम हैं, किंतु संघर्षरत मनुष्य आदर्श है तो वे निश्चय ही वाल्मीकि, मैथिलीशरण गुप्त, निराला व नरेश मेहता के राम हैं। तुलसी के राम के मन में न कोई संशय है, न माता–पिता द्वारा वन गमन की आज्ञा के प्रति आक्रोश, न केकैयी को लेकर कोई प्रतिक्रिया और न रावण से युद्ध के विचार से कोई उथल–पुथल।

दूसरी ओर वाल्मीकि के राम हैं जिनके हृदय में वनगमन की आज्ञा सुनकर दुःख हुआ, किंतु उन्होंने इस दुःख को भीतर ही भीतर संभाल लिया। इसी प्रकार अयोध्या के राज्य को तुलसी–वाल्मीकि दोनों के राम तृणवत् समझते हैं किंतु वाल्मीकि के राम के हृदय में इस त्याग से कलक उठती है लेकिन उन्होंने इसे दबा लिया। निराला के राम आधुनिक परिवेश जनित समस्याओं को मानवीय धरातल पर सुलझाते हैं वे दुर्बल नहीं है किंतु मानव मात्र की परिधि में रहकर विचार करते हैं और निष्कर्ष की ओर जाते हैं। वस्तुतः प्रत्येक युग के राम मानवीय दुर्बलताओं से परिचित है किंतु वे दुर्बलताओं के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करते। वे दुर्बलताओं की अधीनता को स्वीकार न कर उन्हें अपने वश में कर लेते हैं। इसीलिए राम आदर्श हैं। युगों युगों से रामचरित्र समस्याओं का, दुर्बलताओं का समाधान प्रस्तुत करता रहा है। ईश्वरत्व का आरोपण करें अथवा आदर्श मानव का, राम सदैव प्रासंगिक है तभी तो महाकवि तुलसीदास कहते हैं :–

"हरि अनंत हरि कथा अनंता
कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।"

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बृहद धर्मपुराण– 1/3/47
2. वाल्मीकि रामायण–बालकांड प्रथम संग्रह 1/2/31
3. राम कथा और तुलसी–प्रेमशंकर नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रकाशन–1977
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग श्रद्धा और भक्ति, 'विचारवीथी' नाम से सन् 1930 में प्रकाशित।
5. मैथिलीशरण गुप्त–साकेत।
6. राम की शक्ति पूजा–निराला।
7. संशय की एक रात–नरेश मेहता।
8. वेणुवन, रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस ISBN-81-214-0293
9. मध्यकालीन हिंदी काव्य, संपादक डॉ. दिलीप के. मेहरा, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, ISBN: 978-81-905470-6-2
10. तुलसीदास : आज के आलोचकों की नजर में, संपादक लक्ष्मण माधव, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, ISBN : 978-93-83513- 25-3
11. भक्ति आंदोलन और काव्य, गोपेश्वर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, ISBN:978- 93- 5000- 853-9
12. रामचरित्र मानस–तुलसीदास।

मेल. nisha.malik01@yahoo.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 81-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा और साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

महावीर प्रसाद, शोधकर्ता

डॉ. रेखा सोनी, मार्गदर्शिका, उप प्राचार्य

गंगानगर शिक्षक प्रशिक्षण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर।

प्रस्तावना :–

आधुनिकता में ज्ञान, तकनीकी, सूचना एवं वैज्ञानिकता के विकास के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं में भी भारी बदलाव हुआ है जिससे आज समाज अनेक पर्यावरणीय मनो सामाजिक समस्याओं से घिरा हुआ है ऐसे में भला शिक्षक शिक्षा भी प्रभावित होगी, वही प्राचीन काल में भारतीय सभ्यता व विश्व की अनेक सभ्यताएं धार्मिक प्रवृत्ति से समृद्ध थी। मनुष्य का जीवन सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक सहिष्णुता से संचालित होता था, साथ ही आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व शैक्षिक ढांचे धार्मिक विचारधाराओं से सिंचित थे। जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था। इस बदलते स्वरूप में संस्कृति व शिक्षा भी बदलती जा रही है। प्राचीन काल में शिक्षक सर्वोपरि था शिक्षण करवाना उसका व्यवसाय अपितु जीवन का एक पवित्र लक्ष्य था।

दबाव का संवेगात्मक एवं शारीरिक तनाव के कारणों द्वारा व्यक्ति की बाह्य जगत की प्रतिक्रियाओं पर दबाव पड़ता है। यह जब होता है, जहां व्यक्ति की आकांक्षा और कार्य करने की क्षमता के बीच संगतता होती है। दूसरे शब्दों में दबाव का अर्थ कुछ कार्य प्रदर्शन पर दबाव ज्यादा हो, कार्य का प्रदर्शन उपलब्ध संसाधनों से हैं। दबाव प्रबंध का प्रयोग परिस्थितियों एवं कार्यशैली में निहायती बदलाव की दक्षता को दबाव प्रबंध के रूप में दर्शाता है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार– ''दबाव एक ऐसा मनोवैज्ञानिक घटक है जो अनेक कारणों से प्रकट होता है तथा प्रभावित कारकों से प्रकट होता है तथा प्रभावित व्यक्ति को लंबे समय तक शारीरिक व मानसिक रोगी बना देता है।'' दबाव एक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है जो अनेक मानवीय क्रियाओं का नकारात्मक फलन है।

वर्तमान में बदली शिक्षा व्यवस्था से शिक्षकों में व्याप्त अपनी जाति वर्ग समुदाय को अन्य समुदाय वर्गों से ऊपर उठाने की भावना, अधिक से अधिक लाभ सुविधाएं प्राप्त करने के लिए, संकीर्ण व्यवसायिक स्वरूप को देखें तो एक ही नजर में समझ आ जाता है कि आज शैक्षिक जगत व शिक्षकों के व्यवहार में अनेक विसंगतियां हैं। इन विसंगतियों को दूर करने की मंशा उनके प्रशिक्षण कार्य यानी B.Ed पाठ्यक्रम प्रशिक्षण के दौरान ही किया जा सकता है। क्योंकि इनके भावी जीवन का संपूर्ण प्रशिक्षण बीएड प्रशिक्षण ही होता है।

शिक्षकों के कार्य में एक शानदार कार्य सभी के लिए हों, केंद्र का वितरण समान रूप से हो, उपलब्धि

और कार्यशैली, वेतन, जॉब सुरक्षा साथ ही कार्य स्थान पर कर्मचारियों का मनोरंजन कैसा है। आदि एक शानदार कार्य की पहचान हो, जो कार्य भी अभिप्रेरणा को आधार प्रदान करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :–

शिक्षा और शिक्षक की आवश्यकता और महत्व सर्वविदित है क्योंकि कोई भी शिक्षा व्यवस्था व शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकती। शिक्षण यदि वृति है तो उसे व्यवसाय की उपयुक्त दक्षता एवं कौशलों को प्रशिक्षण के माध्यम से ही अर्जित किया जा सकता है, इसलिए शिक्षण वृति को समसामयिक एवं प्रभावशाली अर्थात यथार्थ बनाए रखने के लिए सेवापूर्व, सेवाकालीन और एक कदम बढ़ा कर यह भी कहा जा सकता है कि सेवा उपरांत भी शिक्षक प्रशिक्षण लेते रहना चाहिए। उपयुक्त आवश्यकता पर आज के युग में तो और भी खूबी के साथ लागू होती है, क्योंकि आज ज्ञान के आधार पर और तकनीकी में जो अति द्रुतगामी परिवर्तन हो रहे हैं। उनके साथ सामंजस्य बनाए रखना जरूरी होते हुए भी कठिनाई का विषय बन गया है। आज शिक्षक वृत्ति की नई मांगो वह अपेक्षाओं का व्यापक उदय हो गया है। जिसके चलते आधुनिक शिक्षकों के कौशल प्रशिक्षण शिक्षण व्यवहार तथा शिक्षण क्रियाओं की प्रभावशीलता के साथ–साथ वृत्ति में भी श्रम विभाजन एवं विशिष्ट करण की तकनीकी का उदय हुआ है और आधुनिक शिक्षण वृत्ति समाज में बढ़ती आकांक्षाओं के चलते उच्च मानक की उपेक्षा रखती है। इस निमित्त बहुआयामी, बहु ज्ञानी, एकीकृत विषय विशेषज्ञों के साथ–साथ संचार तकनीकी के ज्ञाता ही भावी एवं वर्तमान समाज के अद्यतन शिक्षक होंगे। किसी भी शिक्षक की प्रभावशीलता उसके द्वारा बनाए गए उत्पाद (अर्थात छात्र निर्माण) की गुणवत्ता पर निर्भर करेगी।

1. इस अध्ययन से B.Ed प्रशिक्षणार्थियों के साइबर संसाधनों के प्रयोग एवं प्रशिक्षण से उनकी कक्षागत प्रभावशीलता का वास्तविक विज्ञान हो सकेगा।
2. इस अध्ययन से B.Ed प्रशिक्षणार्थियों के साइबर संसाधनों के काम में आने से उनके शिक्षण व्यवहार में विकास हो सकेगा।
3. इस अध्ययन से B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा का पता चलेगा।
4. इस अध्ययन से B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा का और साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति के मध्य परस्पर सहसंबंध का पता किया जाएगा तथा उनमें कैसे सुधार किया जाए यह भी बताया जाएगा।
5. इस अध्ययन से शिक्षक प्रशिक्षण और B.Ed के प्रशिक्षणार्थियों के अत्याधुनिक संसाधनों के सफलतापूर्वक प्रयोग से शिक्षण व्यवहार को सकारात्मक एवं अभिप्रेरणा को बढ़ाने वाले बिंदुओं को ध्यान में रखकर योजनाएं बनाई जाएगी।

समस्या कथन :–

''B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा और साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन।''
"A study of work motivation and attitude of B.Ed traines towards using cyber resources.""

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. कला व विज्ञान वर्ग के ठण्म्क प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
2. विज्ञान व वाणिज्य वर्ग की प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।

3. वाणिज्य एवं कला वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
4. कला एवं विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृति का अध्ययन करना।
5. विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग के प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
6. वाणिज्य एवं कला वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं :-

साधारणतः परिकल्पना शब्द का अर्थ एक उप कथन से होता है जो किसी समस्या की अवधारणा होती है तथा अनुसंधानकर्ता उसकी पुष्टि करने का प्रयास करता है।

1. कला व विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. कला और वाणिज्य वर्ग की B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा में कोई अंतर नहीं है।
3. विज्ञान व वाणिज्य वर्ग की B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
4. कला और विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
5. कला और वाणिज्य वर्ग की B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
6. विज्ञान और वाणिज्य वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध में कुल 600 प्रशिक्षणार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है। न्यादर्श में 300 कला वर्ग से 150 विज्ञान वर्ग से तथा 150 वाणिज्य वर्ग के प्रशिक्षणार्थियों को न्यादर्श में शामिल किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण :-

1. कार्य अभिप्रेरणा प्रश्नावली :– के. जी. अग्रवाल
2. साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति मापनी :– एस. राजशेखर

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी का विवरण :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में एकत्रित आंकड़ों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है। मध्यमान, प्रमाणिक विचलन व टी मूल्य।

वस्तुतः संकलित किए गए आंकड़े अपने प्रारंभिक रूप से बड़े असंबध तथा बिखरे हुए होते हैं। इसे सार्थक बनाने तथा विश्लेषण करके निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व उसे एक निश्चित रूप रेखा प्रदान करना आवश्यक होता है आंकड़ों को सुव्यवस्थित करने की प्रक्रिया ही आंकड़ों का विश्लेषण कहलाता है।

सारणी संख्या–1

कला और विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

क्र.सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	कला वर्ग	200	20.86	2.280	00.55	2.235	0.01
2.	विज्ञान वर्ग	100	21.31	1.873			

df = N1+ N2-2

df= (200+100-2=298)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

.01 स्तर पर = 2.60

व्याख्या :– सारणी संख्या 4.1 से स्पष्ट होता है कि कला और विज्ञान वर्ग के ठण्म्क छात्र प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 2.235 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 है। 2.235 प्राप्त 'टी' मूल्य दोनों स्तर पर कम है। अतः परिकल्पना ''कला और विज्ञान वर्ग के B.Ed छात्र प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि कला वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति की तुलना में विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

आरेख संख्या–1

कला और विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित मध्यमान को द ार्ाता

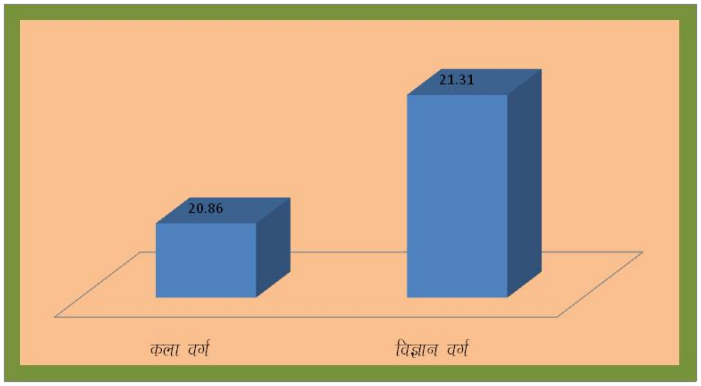

सारणी संख्या–3

विज्ञान वर्ग और वाणिज्य के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

क्र.सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	विज्ञान वर्ग	100	21.31	1.837	0280	2.041	0.01

2. वाणिज्य वर्ग 100 21.59 1.809

df = N1+ N2 -2

df= (100+100-2=198)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

व्याख्या :- सारणी संख्या 4.3 से स्पष्ट होता है कि विज्ञान और वाणिज्य वर्ग के B.Ed छात्र प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 2.041 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 से अधिक तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 से कम है। अतः परिकल्पना ''विज्ञान और वाणिज्य वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में वाणिज्य वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

आरेख संख्या-3

वाणिज्य और विज्ञान वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति से सम्बन्धित

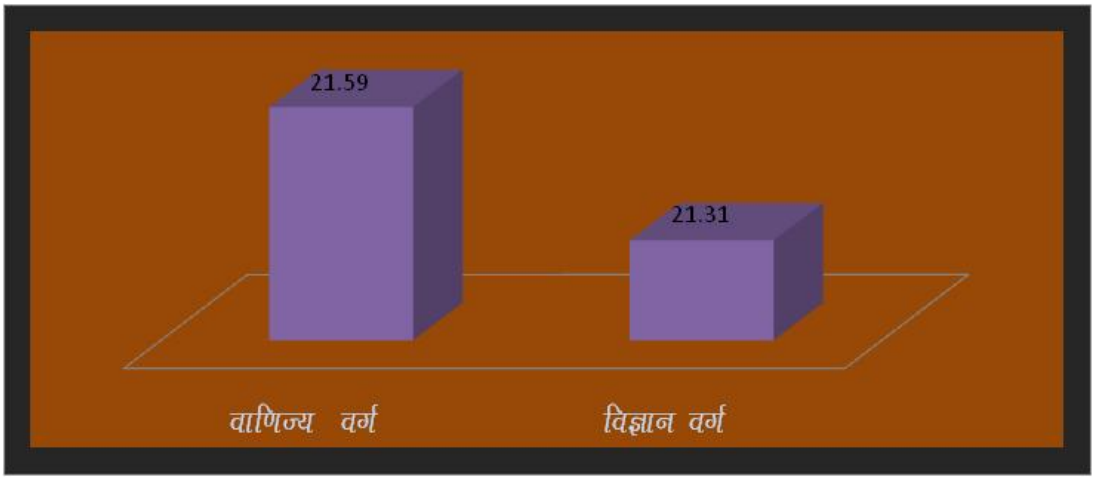

सारणी संख्या-3

वाणिज्य और कला वर्ग के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन

क्र.सं.	समूह	संख्या	एवं 'टी' मध्यमान	मूल्य मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	वाणिज्य वर्ग	100	21.18	1.961	.320	1.264	0.01
2.	कला वर्ग	200	20.86	2.280			

df = N1+ N2 -2

df= (200+100-2=298)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

.01 स्तर पर = 2.60

व्याख्या :-

सारणी संख्या 4.5 से स्पष्ट होता है कि कला और वाणिज्य वर्ग के ठण्मक छात्र प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 1.264 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 है। 1.264 प्राप्त 'टी' मूल्य दोनों स्तर पर कम है। अतः परिकल्पना ''वाणिज्य और कला और वर्ग के ठण्मक प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि कला वर्ग के ठण्मक प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति की तुलना में वाणिज्य वर्ग के ठण्मक प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा के प्रति अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

आरेख संख्या-3

वाणिज्य और कला और वर्ग के ठण्मक प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा से सम्बन्धित मध्यमान को द ार्ाता

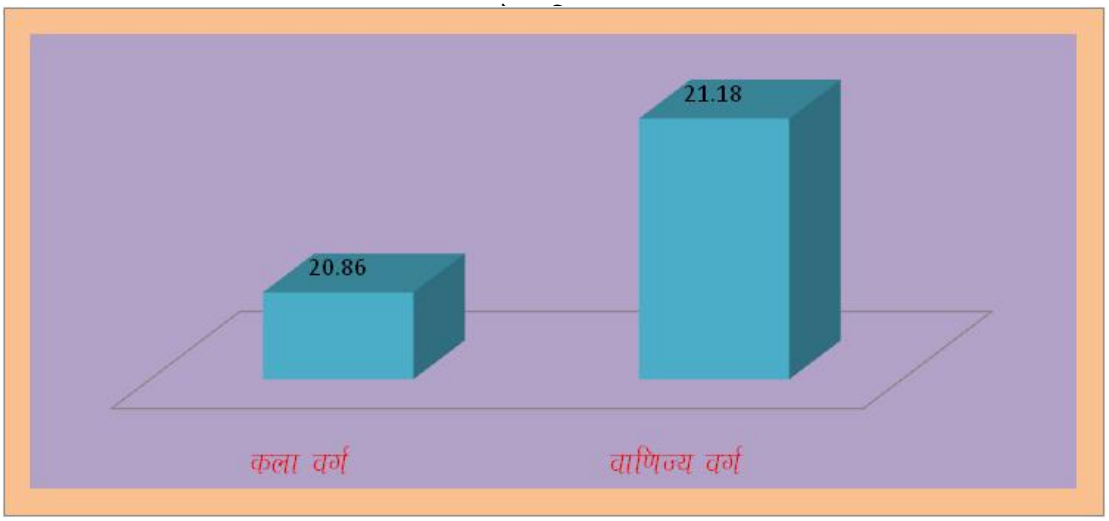

9. सारांश :-

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा और साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना है। सर्वेक्षण विधि का प्रयोग शोध कार्य हेतु किया गया है। उपकरण के रूप में कार्य अभिप्रेरणा प्रश्नावली :– के. जी. अग्रवाल एवं साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति मापनी :– एस. राजशेखर का प्रयोग किया गया है। न्यादर्श के रूप में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कुल 600 B.Ed प्रशिक्षणार्थियों (300 कला वर्ग, 150 विज्ञान वर्ग, 150 वाणिज्य वर्ग) को यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित किया गया है। निष्कर्ष रूप में पाया गया है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के ठण्मक प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है। वाणिज्य एवं कला संकाय के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है। कला एवं विज्ञान संकाय, विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय, वाणिज्य एवं कला संकाय के B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की साइबर संसाधनों

के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

10. शैक्षिक निहितार्थ :-

किसी भी अनुसंधान की वास्तविक सार्थकता तभी होती है, जब वह समाज या राष्ट्र के लिए उपयोगी हो यदि अनुसंधान की किसी भी क्षेत्र में उपयोगिता नहीं होगी तो ऐसे अनुसंधान पर धन, समय व श्रम करना व्यर्थ ही होगा। विद्यार्थियों में साइबर संसाधन के बढ़ते प्रयोग का प्रभाव सामाजिक संबंधों पर पड़ रहा है। वर्तमान समय अधिकतम इंटरनेट प्रयोग में व्यतीत करते हैं। जिसके कारण सामाजिक संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

भावी शोध कार्य हेतु सुझाव :-

B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा एवं साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन सीमाओं के साथ किया गया है। जिसमें न्यादर्श क्षेत्र एवं राज्य की सीमाओं में विस्तार दिया जाकर शोध के निष्कर्षों को और अधिक बल दिया जा सकता है।

B.Ed प्रशिक्षणार्थियों की कार्य अभिप्रेरणा एवं साइबर संसाधनों के प्रयोग के प्रति अभिवृत्ति का लिंग, योग्यता एवं स्थानीयता के संदर्भ में विस्तार दिया जा सकता है।

इस शोध कार्य को पूरे राजस्थान के लिए विस्तार रूप दिया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. ए.लघु एस. महेंद्र रेड्डी (2010) में इंपैक्ट ऑफ इंटरनेट ऑन टीन एजर्स इन्फल्यूएसन डिपार्टमेंट ऑफ प्रोफेशनल डेवलपमेंट, यूनिवर्सिटी ऑफ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी सोलन इंडिया (2016)।
2. त्रिवेदी एवं शुक्ला (2008) रिसर्च मेथाडोलॉजी कॉलेज बुक डिपो जयपुर पेज नं. 321
3. सरीन सरीन 2011 शैक्षिक अनुसंधान विद्या विनोद पुस्तक मंदिर आगरा पेज नंबर 304
4. भारतीय आधुनिक शिक्षा (त्रेमासिक पत्रिका) जनवरी 2015 अंक –3 आईएसएसएन 0972–5636 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद पेज– 44

Email - mahaveerpoonia8@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 88-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय आन्दोलन और 'त्रिकाल संध्या'

अमित कौर

शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

47 साल पहले जिन लोगों ने आपातकाल का दौर देखा, वही उस दौर के दर्द को समझ सकते हैं। "आपातकाल स्वतंत्र भारत के इतिहास की सबसे विवादास्पद अवधियों में से एक है।"[1] 16 जून सन् 1975 की सुबह तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने रेडियो पर एक ऐसी घोषणा की, जिससे पूरा देश स्तब्ध रह गया। रेडियो पर इंदिरा गाँधी की आवाज में सन्देश गूंजा, जिसे पूरे देश में सुना गया। सन्देश में इंदिरा गाँधी ने कहा, "भाइयों, बहनों... राष्ट्रपति जी ने आपातकाल की घोषणा की है, लेकिन इससे सामान्य लोगों को डरने की जरूरत नहीं।"[2]

अकस्मात हुए इस ऐलान से देश में हाहाकार मच गई और सामान्यजन के सभी अधिकारों पर पाबन्दी लगा दी गई तथा सरकार की आलोचना करने वालों को जेलों की चारदीवारी में कैद कर दिया गया। लिखने, बोलने यहाँ तक कि सरकार के खिलाफ होने वाले विचारों तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के बेटे संजय गाँधी ने परिवार नियोजन के नाम पर जबरन नसबंदी अभियान चलाया। आंतरिक सुरक्षा कानून (मीसा) के तहत आपातकाल का विरोध करने वाले जेपी, जार्ज फर्नांडिस, मोरारजी देसाई, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, शरद यादव, मुलायम सिंह जैसे तमाम विरोधी नेताओं को जेल में डाल दिया गया। आकड़ों के मुताबिक आपातकाल के दौरान 1 लाख 10 हजार लोगों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।

आपातकाल लगते ही भवानी प्रसाद मिश्र जी पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने तत्कालीन शासन व्यवस्था के खिलाफ आग उगलना शुरू कर दिया। अलोकतांत्रिक जुल्मी शासन के खिलाफ एक नहीं, प्रतिदिन तीन–तीन कवितायें लिखकर अपनी 'त्रिकाल संध्या' आरंभ कर दी।

भवानी प्रसाद मिश्र अपने युग के प्रति सजग कवि हैं। युगीन परिस्थितियों से संस्कार ग्रहण करके अपनी प्रतिभा, चिंतन तथा जीवन दृष्टि द्वारा उन्होंने उसे दीप्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्याकाश में मिश्र जी ऐसे प्रभा सूर्य हैं जिनकी काव्य रश्मियों ने अपने युग को आलोकित किया है। उन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से ऐसी कलाकृतियों का निर्माण किया जो अपने युग में स्पंदन पैदा करने वाली हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है अपने देश एवं जीवन के प्रति यथार्थता तथा जागरुकता। मिश्र जी ने वर्तमान की समस्याओं, आशाओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए, उन्हें जीवन की यथार्थता से जोड़ा है।

डॉ. नामवर सिंह का कथन है कि – "निसंदेह किसी कविता का सिरजा हुआ संसार ही उसका मूल्य

है, किन्तु इस मूल्य की प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर है कि वह सिरजा हुआ संसार कितना वास्तविक है अथवा वास्तविकता के बारे में हमारी समझ को कितना गहरा और कितना समृद्ध करता है। हमारे आसपास के संसार को अर्थ प्रदान करने में ही किसी कविता के अपने संसार की सार्थकता है।"[3] मिश्र जी का रचना–संसार यथार्थ की खुरदरी, रुक्ष और ऊबड़–खाबड़ भूमि पर गहरी सहानुभूति और संवेदना का ठोस प्रमाण प्रस्तुत करता है। वे सम सामयिक युग–बोध और जीवन–बोध से संयुक्त छायावादोत्तर हिंदी गीतिकाव्य के अप्रितम कवि हैं।

'त्रिकाल संध्या' भवानी प्रसाद मिश्र जी का सन् 1978 में प्रकाशित काव्य संग्रह हैं। इस संग्रह में कुल 96 कविताएं हैं। इस संग्रह में जून 1975 से अगस्त 1976 तक की रचनाओं का समावेश किया गया है। अलोकतांत्रिक जुल्मी शासन के खिलाफ तत्कालीन परिस्थितियों को समझाते हुए मिश्र जी ने 'त्रिकाल संध्या' का सृजन किया। आपातकाल के दौरान मिश्र जी ने ये ठान लिया था कि दिन के तीन पहर कविता लिखेंगे अतः प्रासंगिक स्थिति के सन्दर्भ में ही कवि ने इस काव्य संग्रह को 'त्रिकाल संध्या कहा है। त्रिकाल वंदन के समान प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन वंदना की तरह दिन में तीन बार लिखी गयी कविताओं में से कुछ विशिष्ट कविताओं को इस संग्रह में संग्रहित किया गया। इन कविताओं में आपातकालीन परिस्थितियों का चित्रण पूरी यथार्थता के साथ किया गया है।

संग्रह की भूमिका में स्वयं मिश्र जी लिखते हैं– "25 जून 1975 से लगभग अठारह महीनों की अवधि देश के इतिहास में 'न भूतों' तो थी ही 'न भविष्यत' भी रहेगी। इस अवधि का इतिहास कितनी तरह से सारे संसार में संचित, संकीर्ण और विकीर्ण किया जाएगा, कौन जानता है, मेरे हाथों यह कविता या कवितानुमा कृतियों में आया सो अनेक कारणों से।[4] अतः उपर्युक्त संग्रह की कविताओं द्वारा मिश्र जी ने तत्कालीन यथार्थ और सत्य स्थितियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। इस संग्रह की अधिकतर कवितायें व्यंग्यात्मक हैं, जिनके माध्यम से कवि ने प्रासंगिक स्थितियों, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की पोल को खोलने का कार्य किया है।

सामान्यतः अनेक रचनाकार केवल अपने व्यक्तिगत हित–लाभ तथा स्वार्थ–सिद्धि तक ही सीमित रहते हैं, जिसका स्पष्ट प्रमाण आपातकाल के दौरान बहुत से कवियों/लेखकों का व्यवहार था जिन्हें व्यापक जन–सामान्य के हित–अहित से कोई लेना–देना नहीं है, किन्तु ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी मिश्र जी ने नागार्जुन की तरह अभिधा, लक्षणा, व्यंजना हर शैली में अत्याचारी शासन के खिलाफ व्यंगात्मक स्वर में आवाज उठाई। प्रस्तुत संग्रह की 'चार कौवे उर्फ चार हौवे' कविता में आपातकाल के लिए उत्तरदायी 'चंडाल चौकड़ी' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मिश्र जी लिखते हैं :–

"बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले
उनके ढंग से उड़े, रुकें, खाएँ और गाएँ
वे जिनको त्यौहार कहे सब उसे मनाएं।"[5]

यहाँ चार कौएं के प्रतीक हैं– तत्कालीन प्रधानमंत्री (इंदिरा गाँधी), राष्ट्रपति, संजय गाँधी तथा कांग्रेस के अध्यक्ष (देवकांत बरुआ)। मिश्र जी ने इस कविता के संबंध में लिखा है– "इस कविता ने मेरे ऊपर वैसा ही उपकार किया है, जैसा 'गीतफ़रोश' ने किया था।"[6]

प्रेमशंकर रघुवंशी ने लिखा है– 'चार कौए उर्फ चार हौए' कविता का प्रयोग भी आपातकाल के दौरान स्वाधीनता संग्राम के वक्त की 'रोटी' और 'कमल' के रूप में जन–जन तक पहुँचाने वाले पैगाम की तरह हुआ। हर बोले बसु देवाओं की लोकमय से भरपूर इस छोटी–सी कविता ने 'घाव करै गंभीर' का काम किया।"[7]

तत्कालीन स्थिति में मिडिया पर सेंसरशिप लगा दी गयी जिसके तहत सरकार के खिलाफ़ कुछ भी लिखना या सरकार के खिलाफ़ कोई खबर छापना जुर्म जैसा था। जिसके तहत आपातकालीन विरोधी सामग्री का प्रसारण करने वाले कई मीडिया कर्मियों की गिरफ़्तारी भी हुई, साथ ही विदेशी मीडिया से जुड़े संवादाताओं को भी निर्वासित कर दिया गया। यथास्थिति का वर्णन करते हुए मिश्र जी ने लिखा है :–

''कैसा मजा है
मुंह खोला–भर कि तैयार कोई सजा है।
दुःशासन को अनुशासन–पर्वक हो तो ठीक
पुलिस और शासन की क्रूरता पर गर्व करों तो ठीक
और यह भी कहों कि एक ही व्यक्ति
देश है एक ही व्यक्ति प्रजा है
यह कैसा मजा है।"[8]

मिश्र जी ने आपातकालीन सम्पूर्ण परिस्थितियों को एक सचेत रचनाकार के रूप जीया था। उस समय की समस्याओं, हालातों और स्थिति–परिस्थितियों में, वे एक प्रेक्षक की भांति नहीं बल्कि एक जागरूक जन प्रतिनिधि कवि के रूप में हिस्सा लेते हैं तथा तत्कालीन समय की सम्पूर्ण परिस्थितियों से लोहा लेते हुए उनकी तीखी आलोचना भी करते हैं। 'मौलिक अंतर' कविता में कवि के भाव व्यक्त हैं :–

"तुम जो कुछ कह रहे हो/वह मुझे ठीक नहीं लग रहा है
इसलिए मैं 'ना' कह रहा हूँ/और कहता चला जाऊँगा
तुम्हें मेरा अँधेरे में/मशाल की तरह जलना
ठीक नहीं लग रहा है/मगर मैं प्रकाश के आने तक/जलता चला जाऊँगा।"[9]

स्वयं को विसर्जित कर सामान्यजन के जीवन को प्रकाशित करना सच्चे कवि की पहचान है जिसे मिश्र जी ने बखूबी निभाया है। फूलो और दीपक के समान देश के आमजन के जीवन को महकाना और रौशन करना ही उनके जीवन और कविता का कर्तव्य रहा है। इसीलिए आपातकाल का भीषण परिवेश और इसके कारनामों से उनका कवि हृदय भीतर तक आंदोलित हो उठा तथा अपनी अन्तःचेतना द्वारा उन्होंने आपात स्थिति की पर्तों को जनता के सामने खोल के रख दिया। ऐसे कठिन समय में भी उन्होंने शब्द को सत्य एवं कर्म से विमुख नहीं होने दिया :–

"जिसे भी रंगना चाहों/रंगों आज अपने रक्त में
आँखे मत चुराओ वक्त से/हर बात का वक्त होता है।"[10]

कवि अपने देश के सोये हुए नागरिकों को जगाना चाहता है, ताकि वे उठे और देश पर मंडराते हुए संकट के इन काले बादलों को देखे। वे लोगों को इस अंधनिद्रा से मुक्त करने के लिए बार–बार पुकार लगा रहे हैं। स्वतंत्रता पूर्व देश अंग्रेजों का गुलाम था, पर देश में व्याप्त इस अँधेरे शासन में अन्धकार और भी गहरा

है। मिश्र जी लिखते हैं :–

"एक अँधेरे से दूसरे अँधेरे में/जो पहले से भी घना है
क्या यह देश इसी के लिए बना है.....
इतना तो अंग्रेजों ने नहीं पीसा/यह एक नयी चक्की निकाल दी 'मीसा'
जिसका मुठिया और पाट और गंड/हजारों के खून से सना है
क्या यह देश इसी के लिए बना है।"[11]

शासन का उद्देश्य जनता का हित, उसकी भलाई होनी चाहिये, पर कवि देख रहा है कि तत्कालीन शासन व्यवस्था ठीक इसके विपरीत है। अपनी अधिकार लिप्सा में ये अपने ही भाई, बंधुओं के रक्त पिपासु बन बैठे हैं। इस शासन में जन–चिंतन तनिक भी नहीं है :–

"बादल की तरह तैरते देखा है
नहीं देखा तो आओ भारत में आकर देख जाओ
यह दृश्य यहाँ आजकल आम है/आराम मिलता है इस दृश्य से
यहाँ की कुछ आँखों को/उन आँखों को देख जाओ
सत्ता के नशे में लाल, विकराल और खुश।"[12]

समाज और देश में कानून और व्यवस्था जनहित को केंद्र में रखकर बनाये जाते हैं, पर आपातकाल में शासन ने दमन की इच्छा से ऐसे कई कानून बनाये, जिसकी अवहेलना करने पर कड़ी से कड़ी सजा भुगतनी पड़ती थी। आपातकालीन शासन व्यवस्था जनहित और समाजहित की अपेक्षा व्यक्ति हित को ही प्रमुखता देती हुई नजर आती है। कवि लिखते हैं :–

"कौन है इस मुल्क का मालिक/और कौन मालिक है वह
कौन है इस खल्क का खालिक/और कैसा खालिक है वह
क्या यही उसकी रजा है/कि एक व्यक्ति ही देश है
एक ही व्यक्ति प्रजा है/यह कैसा मजा है।"[13]

इस संग्रह की कविताओं की मूल प्रेरणा है– "जनसामान्य पर अत्याचार "मिश्रजी ने स्वयं लिखा है– "जनसामान्य पर अत्याचार बढ़ते रहे, आतंक और भय इतने घने हो गए कि बिना घोंटे भी कई गले ऐसे घुटे और फिर दूसरी तरफ से ऐसे मुक्त कंठ हुए, कि देख–सुन लाज सेसर झुकता था किये वो हैं जिनसे लोग आशा करते हैं।"[14]

आपातकाल में जयप्रकाश नारायण सरीखे कई नेताओं को बंदी बना दिया गया। उनकी कोई खबर ना मिल पाने से कवि का हृदय बहुत व्यथित है। वह जानता है कि शासन और सत्ता के स्वार्थी नेता कभी भी सत्य का साथ नहीं देंगे अपितु भीष्म और द्रोण के समान मूक दर्शक बने रहेंगे। ऐसे में कवि को गाँधी याद आते हैं, जिन्होंने खादी और गादी की लड़ाई का नारा दिया। किन्तु स्वार्थी लोगों ने उसे भी अपने स्वार्थ अनुरूप ढाल लिया :–

"तौल लिया था चालाक लोगों ने/हमारे सिपहसालार का मन
हमारा यह सिपहसालार/शस्त्रों का धनी नहीं था

सत्य और प्रेम और करुणा का धनी था!"[15]

ऐसी भीषण परिस्थितियों में भी कवि निराश नहीं होता है, बल्कि उनका मानना है कि प्रत्येक बुरे शासन का अंत निश्चित है :–

"सूरज दिनभर तप कर/शाम को डूब जाता है
हर अत्याचारी/किसी ना किसी क्षण ऊब जाता है
अपने अत्याचारों से।"[16]

वस्तुतः भवानी प्रसाद मिश्रजी ने इस संग्रह में अपने गांधीवादी, अहिंसा प्रेमी, सत्यनिष्ठ और क्षमाशील व्यक्तित्व को पूरी सात्विकता के साथ उजागर किया है। इस सम्पूर्ण संग्रह में कवि ने पाप और अत्याचार का प्रतिकार गाँधी के विचारों के आधार पर करने का सारगर्भित सन्देश अपनी ओजस्वी एवं क्रांतिकारी वाणी में दिया है। इस समय देश में अनेक समस्याएँ हैं। अतः कवि का मानना है कि जहाँ एक ओर हमें हिमालय के समान फैली हुई बेकारी, बीमारी, भुखमरी और विवशता की समस्याओं को हल करना है वही दूसरी ओर सत्ता के मद में चूर निठल्लेपन, भ्रष्टाचार और मनमानी आदि की समस्याओं का समाधान भी हमें गाँधी मत से निकालना चाहिए।

"कि बेशक गाँधी के ढंग से इन/दोहरी समस्याओं का हल
निकाला जाना चाहिए/देखा भाला जाना चाहिए।[17]

अतः शोषण एवं अन्याय के खिलाफ मिश्र जी की लड़ाई आरम्भ से ही अपने ढंग से रही किन्तु अपनी इस लड़ाई की भीषणता एवं कठोरता को मिश्र जी ने "त्रिकाल संध्या" के माध्यम से विशिष्ट अंदाज में अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ सूची :–

1. https://en-m-wikipedia-org.translate.goog/wiki. The_emergency_(India.)
2. t.com.cdn.ampproject.org
3. सिंह डॉ. नामवर, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली–6, प्रथम संस्करण 1968, पृष्ठ संख्या 232
4. मिश्र, भवानी प्रसाद, त्रिकाल संध्या, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण, जनवरी 1978, पृष्ठ संख्या 05
5. वही, पृष्ठ संख्या 09
6. वही, पृष्ठ संख्या 10
7. शुक्ला, डॉ. राजश्री, साहित्य चिंतन विविध आयाम, वन्देश्री प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या– 151
8. मिश्र, भवानी प्रसाद, त्रिकाल संध्या, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण, जनवरी 1978, पृष्ठ संख्या 120
9. वही, पृष्ठ संख्या 24

10. वही, पृष्ठ संख्या 24
11. वही, पृष्ठ संख्या 18
12. वही, पृष्ठ संख्या 121
13. वही, पृष्ठ संख्या 120
14. वही, पृष्ठ संख्या 120
15. वही, पृष्ठ संख्या 06
16. वही, पृष्ठ संख्या 115
17. वही, पृष्ठ संख्या 131

Email id - akaur815@gmail.com
Mob. : 7596890098

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 94-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुबेरनाथ राय कृत 'प्रिया नीलकण्ठी' निबन्ध संग्रह का अध्ययन

तलब जेबा
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध–सार :– 'प्रिया नीलकण्ठी' में राय जी की वैचारिक अनुभूति कल्पना पर आश्रित है। इसलिए इसमें भाव और मस्तिष्क का समन्वय देख सकते हैं। विभिन्न परिवेशों से राय जी पाठकों के सामने आने के कारण ये दोनों आत्मीय बन गए हैं। राय जी ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को प्रकट कर सामाजिक समस्या पर गंभीर विचार करते हैं। विषय चाहे पौराणिक हो, सामाजिक हो, वैचारिक हो या साहित्यिक हो सब में कहीं न कहीं प्रकृति के प्रति मोह है। प्रकृति के प्रति विशेष प्रीति होने के कारण सर्वत्रा सौन्दर्य की झलक है। ग्रामीण और नगरीय संस्कृति की झलक इस निबन्ध संग्रह में दिखाई देती है। औद्योगिकरण के दुष्परिणाम का चित्रण इनके निबंधों में दिखाई देता है। अंधविश्वास को दूर करने की बात राय जी इस निबन्ध संग्रह में करते हैं। भाषा ललित, मनोरंजक, संवादात्मक, आत्मीय, काल्पनिक और वैयक्तिक है। इनकी कल्पना शैली भावनाओं की वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए सशक्त बन गई है। गूलर के पफूल, हेमन्त ऋतु, वसन्त ऋतु, विभिन्न वृक्ष, चण्डीथान आदि के द्वारा राय जी ने समाज की जिन समस्याओं की ओर ध्यान दिया, वे इस ललित निबन्ध–संग्रह की गरिमा को बढ़ाते हैं।

बीज–शब्द :– कुबेर नाथ राय, ललित निबंध, प्रिय नीलकण्ठी, मानववाद, शहरीकरण, संपाती के बेटे।

कुबेर नाथ राय हिन्दी ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में ललित निबन्ध विधा के श्रेष्ठ व सशक्त हस्ताक्षर है। उन्होंने इस विधा को एक विशिष्ट उँचाई प्रदान की है तथा इसके कई अनोखे व अनजाने आयामों का भी उद्घाटन किया है। कुबेरनाथ राय ललित निबन्धकार होने के साथ–साथ एक मौलिक साहित्य चिंतक भी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'ललित' की विवेचना करते समय सौन्दर्य और ललित को पृथक किया है। वे सौन्दर्य को प्राकृतिक और ललित को मानव–रचित मानते हैं 'लालित्य, अर्थात् प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न किन्तु उसके समानान्तर चलने वाला मानव–रचित सौन्दर्य'।

ललित निबन्ध अपने मूल में रससिक्त विधा है। चिन्तनशीलता, भावात्मकता, वैयक्तिकता, संस्कृतिनिष्ठता, शास्त्राज्ञता, लोकनिष्ठता, रागात्मकता, स्वच्छन्दता, एकसूत्रता, संक्षिप्ता और काव्यात्मकता ललित निबन्ध के तत्त्व हो सकते हैं। ललित निबन्ध भारतीयता और भारतीय जीवन की मूल्यवत्ता की सार्थक एवं जीवन्त अभिव्यक्ति है। कुबेरनाथ राय ने विभिन्न विषयों की जानकारी के लिए जहाँ प्रामाणिक ग्रंथों का अध्ययन किया, निजी अनुभवों

और अनुभूतियों का आश्रय लिया वहाँ अनेक बड़े–बूढ़ों के ज्ञान का भी सहारा लिया है। वे स्वयं कहते हैं– 'गुणी जनों और वृद्धों की संगत करके मृगों के बारे में मुझे अद्‌भूत बाते ज्ञात हुई।'

किसी भी विषय का विवेचन करते हुए उनकी चेतना में सुप्त ऐतिहासिक भाषावैज्ञानिक, मिथकीय साहित्यिक सन्दर्भ सक्रिय हो उठते हैं। इसलिए प्रायः उनके सभी निबन्ध बहुआयामी है। कुबेरनाथ राय का चिन्तन तार्किक सूक्ष्म गहरा विश्लेषपरक और वैज्ञानिक हैं वे किसी भी विषय का विवेचन करते समय पक्ष और विपक्ष दोनों को पूरे बल से प्रस्तुत करते हैं कुबेरनाथ राय ने लिखा है– 'मैंने क्लासिक शिल्प, लोक संस्कृति और आधुनिक चिंतन तीनों से मधुकरी ग्रहण की है परन्तु उनके सहज–स्वाभाविक 'मुख' को ही स्वीकारा है मैं न तो प्राचीनों के 'मुखकमल' के पीछे भटका हुँ और न नवीनों के 'मुखोश' का ही गर्व किया है' कुबेरनाथ राय के चिन्तन का एक अन्यतम गुण है– मौलिकता से विभिन्न विषयों पर अपने एक दम नए और निजी विचार प्रकट करते हैं वे आधुनिकता को नई और पुरानी दो श्रेणियों में विभाजित करके चलते हैं। राम को नारायण का और रावण को प्रति–नारायण का प्रतीक मानना, महाभारत को क्रोथ की त्रासदी मानना और रामायण को काव्य की त्रासदी मानना श्री राय की निजी धारणाएँ है।

कुबेरनाथ राय का कृतित्व :– कुबेरनाथ राय जी ने सैंकड़ों निबन्ध, लेख रिपोर्ताज इत्यादि लिखकर हिन्दी गद्य तथा निबन्ध विध को समृद्ध किया है और अपनी लेखनी द्वारा आधुनिक एवं नूतन युगबोध को मुखरित करने का प्रयास किया है। इनके निबन्धों की पृष्ठभूमि भले ही पुरातन क्यों न हो, किन्तु इनके भाव, विचार, कल्पना, शैली इत्यादि सभी अपने आप में आधुनिकता लिए हुए हैं। 'कुबेरनाथ राय ने परम्परागत भारतीय जीवन और संस्कृति को आधुनिक दृष्टि से देखने समझने की चेष्टा की है। उन्होंने भारतीय चिन्तन धारा के अतिरिक्त आधुनिक समाजवादी एवं अस्तित्ववादी विचारधाराओं का भी अध्ययन किया है।' कुबेरनाथ राय जी के निबन्ध संग्रह निम्नलिखित हैं– कुबेरनाथ राय के लगभग 25 निबन्ध संग्रह प्रकाशित है जिनमें 1. 'प्रिया नीलकण्ठी' (1968 ई.), 2. 'रस आखेटक' (1970 ई.), 3. 'गंधमादन' (1972 ई.), 4. 'विषाद योग' (1973 ई.), 5. 'निषाद बाँसुरी' (1974 ई.), 6. 'पूर्ण मुकुट' (1978 ई.), 7. 'महाकवि की तर्जनी' (1979 ई.), 8. 'मणि पुतुल नाम के नामपत्र' (1980 ई.), 9. 'मन पवन की नौका' (1982), 10. 'किरात नदी में चन्द्रमधु' (1983 ई.), 11. 'दृष्टि–अभिसार' (1984 ई.), 12. 'त्रेता का बृहत् साम' (1986 ई.), 13. 'कामधेनु' (1990 ई.), 14. 'मराल' (1993 ई.), 15. 'उत्तर–कुरू' (1994), 16. 'चिन्मय–भारत' (1996 ई.), 17. 'वाणी का क्षीर–सागर' (1998), 18. 'अंधकार में अग्नि शिखा' (1998 ई.), 19. 'रामायण महातीर्थय' (2002 ई.), 20. 'आगम की नाव (2005 ई.)।

कुबेर नाथ राय के ललित निबन्धों में मनुष्य पृथ्वी और ईश्वर से जुड़कर ही परिभाषित हुआ है। कुबेरनाथ राय अपनी सम्पूर्ण निबन्ध यात्रा में मनुष्य को स्वयं अपरिचित नहीं होने देते, बल्कि उसे अपनी वास्तविक पहचान दिलाने के लिए उसके वर्तमान में उगी हुई जगड़त, सीमाओं को तोड़ते है। वे अपने ललित निबन्धों में संस्कृति–सम्पन्न स्वाधीन मनुष्य का स्वप्न बुनते हैं।

'विद्यानिवास मिश्र की तरह कुबेरनाथ राय भी हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्थान के निबन्धकार है, फर्क यह है कि मिश्र जी द्विवेदी जी के प्रभाव से मुक्त नहीं है जबकि कुबेरनाथ उनसे मुक्त होकर नई भंगिमा अपनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है उनके निबन्ध–संग्रहों 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', गंथमादन' में सांस्कृतिक

सन्दर्भों से फूटते हुए जीवन के आधुनिक आयामों तथा उनमें से झाँकते जीवन को देखा जा सकता है।'

कुबेरनाथ राय कृत 'प्रियानील कण्ठी' निबन्ध संग्रह :-

श्री कुबेरनाथ के इस पहले ही ललित निबन्ध संग्रह को हिंदी भाषी पाठकों ने बेहद पसंद किया। ललित निबन्धकार के रूप में इस कृति ने श्री कुबेरनाथ राय को न केवल प्रतिष्ठा दिलाई प्रत्युत हिंदी गद्य में कुबेरनाथ राय की सशक्त उपस्थिति भी दर्ज कराई। इस संग्रह की लोकप्रियता का यह आलम है कि आज कुबेरनाथ राय जी का मूल्यांकन इसी संग्रह के आधर पर किया जा सकता है।

'प्रिया नीलकण्ठी' में श्री कुबेरनाथ राय शुद्ध रूप में ललित निबन्धकार हैं। इस संग्रह की वैचारिक पृष्ठभूमि में भारतीय साहित्य की क्लासिकल परंपरा शाक्त–वैष्णव मनोभूमि और आधुनिक–बोध तीनों रहे हैं परस्पर पूरक रूप में। निबन्ध के विषय प्रायः आस–पास के परिवेश से ही लिए गए हैं अथवा भारतीय साहित्य से। वे कृत्रिमता से सर्वथा दूर यथार्थ के परिवेश से परिपूर्ण हैं, इनमें निबन्धकार ने अपनी बात कहकर पाठकों के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। 'कुबेरनाथ राय के 'प्रिया नीलकण्ठी' निबन्ध संग्रह पर 1971 ई. में उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' पुरस्कार भी मिल चुका है।' कुबेरनाथ राय का प्रथम निबन्ध संग्रह 'प्रिया नीलकण्ठी' 1969 ई. में प्रकाशित हुआ। 'इस निबन्ध संग्रह में लेखक ने दो बिम्ब उभारे हैं, जो भारतीय साहित्य और धर्म के प्रति उनकी निष्ठा और आस्था के उज्ज्वलतम पक्ष को उजागर करते हैं पहला बिम्ब 'प्रिया नीलकण्ठी' जो इस निबन्ध का नाम है, जिसे निर्वासन और नीलकण्ठी नामक निबन्ध से निकाला गया है। 'शिव तो नीलकंठ के नाम से विख्यात हैं ही। मेरी कल्पना मेरी प्रतिज्ञा भी विषपायी नीलकण्ठी है। दुख या उल्लास दोनों के भीतर जहर होता है। उस जहर को खींचकर स्वयं श्यामकण्ठ हो जाती है और धरती को जो कुछ देती है और वह शुद्ध प्राण और रस रहता है।... एक दूसरा भी बिम्ब है, जो नए साहित्य का केन्द्रीय बिम्ब बना हुआ हैः सलीब पर यंत्रणा भोगता मसीहा। मसीहा सारे विश्व की यंत्रणा को स्वयं भोगता है, जिससे विश्व यंत्रणा से मुक्त हो जाये। पर 'प्रिया नीलकण्ठी' की 'इमेज' (बिम्ब) उक्त यंत्रणा भोग और इसके विषपान में साम्य होते हुए भी अधिक स्वस्थ और 'स्व' – स्थ है। सलीब पर टंग जाने पर चरम क्षण में मसीहा की आस्था टूट जाती है, ईश्वर उसका साथ छोड़ देता है।'

इस संग्रह में भूमिका की जगह 'गूलर का फूल' (एक अरण्य कथा) नामक एक कहानी दी गई है जिसमें एक रात्रि काक–बक–उलूक, गूलर का पफूल देखने की कामना से उस वृक्ष पर अतिथि रूप में आते हैं अपने अतिथियों की कामना पूर्ण करने में असमर्थ गूलर बेहद निराश है कटहल जब गूलर से निराशा का सबब पूछता है तब गूलर उद्घाटित करता है अपने फूलों की रहस्य–कथा। हिरण्यकश्यप का पेट चीरने के पश्चात् नरसिंह के नखों में ज़हर की ज्वाला धधक उठी। उस ज़हर से मुक्ति देने को कोई तैयार नहीं था। गूलर से नारायण की पीड़ा सहन नहीं हुई और उसने अपना शरीर नारायण के नखों को सौंप दिया। उसी ज़हर का प्रभाव रहा कि सदियों बाद भी गूलर में फूल नहीं आते। विकसने से पूर्व ही वे भस्म हो जाते हैं। गूलर की कथा सुनकर काक–बक–उलूक धन्य हो जाते हैं। इसमें गूलर और कटहल की कल्पित वार्ता द्वारा कुबेरनाथ राय ने यह स्थापना की है कि वास्तविक सौन्दर्य बाहरी रूप में नहीं, अन्तः हृदय में होता है। इस संग्रह में भूमिका के अतिरिक्त कुछ पंद्रह ललित निबन्ध है। जिसमें आरंभिक पाँच शुद्ध रूप से प्रकृति, ग्रामीण–प्रकृति के अद्भुत

सौंदर्य का सरस उद्‌घाटन करते हैं।

'हेमन्त की संध्या' ललित शैली में लिखित चिन्तनपरक निबन्ध है। इस निबन्ध की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रकृति सौन्दर्य के साथ–साथ व समानांतर साहित्य–समाज–संस्कृति आदि भी प्रस्पफुटित होते चलते है पर सहज और स्वाभाविक रूप से ही। हेमन्त का वर्णन और पत्तों का झरना तो मानों एक बहाना है, मुख्य है– वर्तमान युग का विषाद, उसकी जड़ता और समाज की दिशाहीनता। 'करूणा विषाद की रोमांटिक अवस्था है। वही अनुभूति जब क्रूर रूप में घटित होकर कठोर सत्य बन जाती है तो हम विषाद कहते हैं मृत्यु का बोध विषाद है।'' इस सूत्र कथन के पश्चात् लेखक तत्कालीन साहित्य व समाज बोध पर गहन चिंतनात्मक टिप्पणी करते हैं– ''विषाद में सारे मूल्य अर्थहीन हो जाते हैं। आधुनिक युग को हम विषाद का युग कह सकते हैं। आज जो घटित हो रहा है वह ट्रेजेडी नहीं। ट्रेजेडी से तो मनुष्य का धरातल सदैव फँचा उठता है। हमारा युग स्नेह और प्रीति में तो रिक्त है ही, करूणा में भी यह अति दरिद्र है।''

'मधु माधव' प्रकृति पर आधारित ललित निबन्ध है। इसका प्रारम्भ बसन्त और उल्लास से होता है। 'मेरे मन के बौर से लदे हुए उल्लास–मत आम्र–वृक्ष पर भनभनाते हुए झुण्ड के झुण्ड मधुवा, उनके अन्तराल में छिपी कूकती कोयल... चित्रा खूब फास दृष्टिगत हो रहा है।' इसमें ग्रामीण जीवन लोक–आस्था, फागुन–गान, उल्लासमय स्मृतियों के प्रसंग आते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश की लोक संस्कृति के जितने भी तत्त्व हैं उन सभी का संबंध श्री राय के ललित निबन्धों से है। ऐसा ही एक प्रतीक है नीम। नीम के महत्त्व से लगभग सभी परिचित ही है पर सनातन नीम में नीम का कुछ और ही रूप नज़र आता है। नीम का एक दृश्य इस प्रकार है– 'नभचारी–सभा के समाप्त होते ही रात्रि की धूम–लेखा आकाश के मस्तक से उतरकर धरती पर आ जाती है। धीरे–धीरे नीम की टहनियों, पत्तियों और फुनगियों पर साहित्य छाने लगता है। प्रहर रात जाते–जाते पत्तियों पर कविता उग आती है लहरात्री टहनियों पर भावों की नौकाएँ अपना पाल तान देती हैं। सप्त नाड़ी में उपन्यास लिखा जाने लगता है। रस की यह रचना सनातन है।' इस निबन्ध में कुबेरनाथ जी ने अपनी निजी अनुभूतियों का वर्णन किया है। 'सनातन नीम' में लोकहितकारी, शुभ और लाभकारी नीम के पेड़ के प्रति अनुराग प्रकट किया है। इसमें विभिन्न ऋतुओं का भी वर्णन किया गया है।

'मनियारा साँप' का प्रारम्भ कृष्ण की प्रतीक्षा में आतुर राधा के प्रसंग से होता है। कुबेरनाथ जी ने नए साहित्यकारों को सन्देश दिया है कि भावुकता सहस्त्रफन शेषनाग के समान सृष्टि की मूल है। 'आधुनिक साहित्य की जो भावी प्रतिक्रिया होगी, उसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में रूमान एवं भावुकता से अवश्य होगा। भावुकता सहस्त्रफल शेष है। वह हमारी सृष्टि के मूल में कुण्डली मानकर बैठी है। शेषनाग जब एक फण से दूसरे फण पर धरती को लेते हैं, तो भूकम्प आता है।'

'डूबता हुआ देवयान' आधुनिक युगबोध पर आधारित अत्यन्त उत्कृष्ट प्रतीकात्मक निबन्ध है। प्रारम्भ में अनातोले फ्रांस और ईश्वर की चर्चा और नीत्से द्वारा ईश्वर की मृत्यु की घोषणा है। परिणामस्वरूप, श्रद्धा का अन्त और बुद्धिवाद का जन्म हुआ। बुद्धिवाद ने ईश्वर को, श्रद्धा को, विश्वास को ललकारा है। 'बौद्धिक जगत में भौतिक दर्शन, यान्त्रिक मनोविज्ञान और अन्त में मार्क्सवाद ने श्रद्धा प्रधान विश्वासों को पंगु कर दिया। ईश्वर

के स्थान पर मानवमुक्ति के प्रति नवीन श्रद्धा का बीजारोपण किया गया... इस समूची प्रक्रिया का प्रारम्भ उस दिन से होता है जिस दिन बुद्धि ने ईश्वर को, विश्वास को ललकारा था।'

मानव आज इस भयग्रस्त समाज में अकेला है। उसे एक सखा की ज़रूरत अवश्य है। 'आछी का पेड़, पैशाची, जरथुस्त्र और मैं' में कुबेर नाथ राय आछी के पेड़ को अपना दोस्त मानते हैं। कुबेरनाथ राय का विश्वास है कि आछी के पेड़ में प्रेतात्माओं का वास है। राय जी आशा करते हैं कि प्रेताविष्ट पेड़ होने पर भी अकेलेपन से ज़रूर ही अच्छा होगा। 'प्रेत आविष्ट पेड़ ही सही। कुछ भय घटता है। सारे भय के मूल में शायद यही अकेलापन था। अब तो हम दो हैं। एक मैं और दूसरा वह पेड़। मेरा भई, मेरा सखा पेड़।' राय जी इस पेड़ के माध्यम से समाज में व्याप्त अजनबीपन को दूर करने के प्रयत्न में है। इस प्रकार हर एक अपने को एक सखा ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करें तो हम एक श्रृंखला बना सकते हैं और अस्तित्व जमा सकते हैं।

आछी के पेड़ पर दृष्टि डालने पर राय जी भावना में डूबते हैं, 'अचानक नज़र पड़ने पर उसकी आकृति सादे आसमान की पृष्ठभूमि पर उँटनुमा प्रेम–यान की तरह लगती है...।' हमें ऐसा लगता है कि यह पेड़ हमारे सामने है। रात के परिवेश में कुबेरनाथ राय का मन घूम रहा है, यह इस ललित निबन्ध में देख सकते हैं। इसमें लोगों के अंधविश्वास दूर करने का प्रयत्न भी है।

कुबेरनाथ राय को अपने गाँव में 'हनुमान विलाप' का अभिनय देखकर ऐसा लगता है कि अब भी गाँव में त्रेता जीवित है, पर उसके संचारी भाव बदल गया है। 'अवरुद्ध त्रेताः प्रतीक्षारत धनुष' इसकी सूचना देता है। हनुमान विलाप की आकृति बदल गयी है। उत्साह के स्थान पर खोझ उसका स्थायी भाव बन गया है। राय जी त्रेतायुग को भारतीय साहित्य के वीररस का प्रतीक मानते हैं। 'त्रेतायुग वीरगाथा युग है, भारतीय साहित्य का। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काव्य में पराजय का आक्रोश है। पर इस भारतीय साहित्य के वीरगाथा काव्य में सनातन विजय का उद्घोष है। यह शुद्धतम वीररस का प्रतीक है, जिसमें कुछ भी हीन और अमानवीय नहीं है।' कुबेरनाथ राय ने सनातन काल को वर्तमान में निहित त्रेता–द्वापर और अनागत को किसी उपनिषद् या ईलियट के फोरक्वार्टेट्स के माध्यम से न देखकर आसपास के जीवन के द्वारा देखा है। 'जब कभी वर्तमान का मुखौटा भूल से सरक जाता है, तो त्रेता का तेजदीप्त त्रिपुण्ड्रधरी ललाट, द्वापर की खमदार भौंहें और खंजन नयन तथा अनागत का सरल कुण्ठाहीन और ताज़ा नयी हँसी से भरा हुआ किशोर मुख झलक जाता है।' राय जी अनागत का स्वप्न देख रहे हैं। वे रामलीला के मंच से भविष्य की ओर जाते हैं। यह उनकी भावात्मक प्रतिभा का दृष्टान्त है। इस भाव के अन्दर जीवन का उज्ज्वल भविष्य निहित है।

'संपाती के बेटे' शीर्षक निबन्ध में संपाती को माध्यम बनाकर साहित्यकार की स्थिति व्यक्त करते हैं। संपाती (पौराणिक पात्रा है) ने सूर्य को छूने के प्रयत्न में अपने पंख नष्ट कर दिये। पैगम्बर या साहित्यकार ऐसे संपाती हैं जो अपने पंखों के जल जाने पर भी हार नहीं मानते और दुःखी भी नहीं होते। चारों ओर पराजय, निराशा, रिक्तता और दुर्गन्ध हों तो भी पछताते नहीं। इससे भिन्न एक दूसरा वर्ग भी है, वे जटायु की तरह निरावरण सत्य की खोज में चलते हैं। तेज के स्पर्श की इच्छा होते हुए भी चुनौती स्वीकार करके सूर्य तक जाने का साहस नहीं करते।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी लक्ष्य की पूर्ति साहित्यकार का लक्ष्य होना चाहिए। राय जी के मत में ये संपाती

के बेटे हैं, जो कष्ट सहने पर भी नयी वस्तुओं की खोज करते हैं। संपाती का परिचय देकर नयी पीढ़ी को जगाना राजयी का उद्देश्य है। इस संग्रह के अधिकांश निबन्धों में कुबेरनाथ राय अपने आस–पास की प्रकृति का चित्रण करते हैं, जो उनके जीवन का अंश भी हैं। 'हाँ, मेरी खिड़की के पास ही पुराना पीपल का पेड़ है जिस पर–से समय–कुसमय गृध्र–युग्मों के काम–सीत्कार के घोर रव सुन पड़ते हैं।' यहाँ उनकी भाषा का सौन्दर्य बढ़ गया है। रसात्मक भावना की अनुभूति झलकती है।

गाँव की भोली–भाली जनता पर भी राय जी दृष्टि डालते हैं। उनके जीवन–रीति, वेश–भूषा, अंधविश्वास, भोलापन आदि का अध्ययन कर पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। संस्कृति का चित्रण विशेषकर लोकजीवन का परिचय ललित निबन्ध की विशेषता है। 'चण्डीथान' लोकजीवन पर आधरित ललित निबन्ध है, जिसमें चण्डीथान की देवी को वहाँ के असंस्कृत लोग अपना सर्वस्व मानते हैं, राय जी ने इस निबन्ध में व्याप्त अंधविश्वास को दिखाया है– 'घर–घर कथा प्रचलित है कि जब शलिवाहन ने इस 'बावन' क्षेत्र पर आक्रमण किया तो इस भैरवी ने सूरसा की तरह मुँह फैलाकर सारे क्षितिज को ढक लिया और अत्याचारी जान लेकर भागा... यह भी प्रचलित है कि प्रति अमावस्या की घोर रात्रि में सबके सो जाने पर चुपके से यह देवी पाँच वर्ष से नीचे के प्रत्येक शिशु के सिरहाने आकर खड़ी होती है, उसका मुख देखने के लिए।'

बालकों का मन शंकाओं से भरा हुआ है। किसी भी वस्तु पर वे तरह–तरह के प्रश्न करते हैं और शंका–निवारण करने का प्रयत्न करते हैं। 'निर्गुण नक्शेः सबुज श्याम धरती' नामक निबन्ध ऐसे एक बालमनोवैज्ञानिक चित्रण से आरंभ होता है। एक नक्शे को देखकर बचपन में राय जी को अनेक शंकायें थीं, '...जमीन हरी है, आकाश नीला है, खपरैल लाल हैं तो इन सबका इस नक्शे के निर्गुण चित्र में लोप कैसे हो गया।'

'निर्वासन और नीलकण्ठी प्रिया' में वसन्तागमन के साथ–साथ धरती अपनी सारी दरिद्रता को भूलकर एक महाराग में लीन हो गई है। इसमें श्रृंगार, करुण, वीर, रौद्र आदि अलग न होकर एक के भीतर दूसरा समाया जाता है। इस प्रकार महारस की उत्पत्ति होती है, इस परिस्थिति में राय जी महाराग के गड्डलिका प्रवाह से निर्वासित है। वे अनुमानित करते हैं, 'वर्तमान युगबोध में निर्वासन का संचारी भाव प्रधान बोध–सा लग रहा है। यह दुःखमय अवस्था है। पर आनेवाले अनाहूत अनागत के लिए दिशा–निर्देश इसी निर्वासन से मिलेगा– एक ऐसा दिशा–निर्देश जो समुद्र संतरण करवायेगा, जो प्रत्यभिज्ञान प्राप्त करवायेगा, स्वर्णपुरी में कैद व्यथा पीड़ित सत्यों से साक्षात्कार करवायेगा, और जिससे साहस और वीरता के विकास के लिए अवसर मिलेगा।' 'साहित्य में निर्वासन स्थायी भाव नहीं, स्थायीभाव है नित्य अकेलापन। निर्वासन बर्दाश्त नहीं कर पाता हूँ। अवश्य मुझे अकेलापन चाहिए जहाँ मैं अपने ''स्व'' के साथ रह सकूँ। पर मुझे यह पसन्द नहीं कि निर्वासन की पीड़ा को रस मानूँ।' इसमें राय जी वसन्त के महाराग से निर्वासित अवस्था से होकर साहित्य के निर्वासन और अकेलापन तक पहुँचते हैं। मतलब है कि आधुनिक भावबोध पर वे ध्यान देते हैं। इसके आधार पर ही राय जी ने इस संग्रह का नाम 'प्रिया नीलकण्ठी' रखा है।

राय जी ने ललित निबन्धों की रचना के लिए महाभारत, रामायण जैसे स्रोतों की सहायता ली है। उनके अधिकांश निबन्धों में यह देख सकते हैं। 'शमी वृक्ष पर लटकते शव' में महाभारत के वनपर्व में प्रतिपादित शमी वृक्ष को आत्मतेज धरण करने वाली हमारी जातीय संस्कृति का प्रतीक माना गया है। शमी के अग्निगर्भा नाम पर

भी प्रकाश डाला गया है। 'देवताओं ने अग्नि को शमी से बाहर निकाला और शमी वृक्ष को अग्नि का पवित्र वास–स्थान नियत किया। इससे इसे 'अग्निगर्भ' कहते हैं।' राय जी को पेड़–पौधे की ध्वनि मोहक लगती है। 'मुझे लगता है कि बागों की बनी–ठनी लेटी हुई क्यारियाँ और फूलों की महफिलें कलियुग हैं, ये ध्यानस्थ बैठे गाँव के वट–पीपल द्वापर हैं, पर जंगलों के ये लग्धड़–बेमरम्मत, उद्दण्ड खड़े पेड़ त्रेता है और ये यदि चल देंगे तो सतयुग का साकार रूप सामने आ जायेगा।' यहाँ राय जी भावना में डूब जाते हैं।

कुबेरनाथ राय आशा करते हैं कि आज के धार्मिक नेतृत्व जल्दी ही समाप्त हो जाये तो कितना अच्छा होता, क्योंकि पुरोहित वर्ग सनातन को गलत अर्थ में पकड़ लिया है। उनके अनुसार सनातन का अर्थ जड़ता, अपरिवर्तनवादिता और स्थिति शीलता है। राय जी के मत में, हमें जिस प्रकार एक संविधान चाहिए, एक सरकार चाहिए वैसे ही एक धर्म भी चाहिए। समूह का काम न तो कोरे बुद्धिवाद से चल सकता और न कोरे वैज्ञानिक मानववाद से, जो अध्यात्म निरपेक्ष होता है। अतः अध्यात्मसापेक्ष धर्म चाहिए। यहाँ कुबेरनाथ राय का स्वर वैचारिक बन गया है।

अपने बुनियादी स्वरूप में समाज परंपरा का अविच्छिन्न प्रवाह है। रीति–रिवाज, कर्मकांड, संस्कारों आदि के माध्यम से परंपरा का निर्वाह होता है। कुबेरनाथ राय का परंपरागत समाजबोध बेहद संतुलित व वैज्ञानिक है। वे अतीत के प्रत्येक शुभपक्ष को सहर्ष स्वीकारते हैं और अशुभ को धिक्कारते भी हैं। उनके सृजन जगत से परंपरागत समाज बोध की कुछ झलकियाँ द्रष्टव्य हैं– 'बहुरूपी' निबन्ध में वे लिखते हैं– ''इस देश का साठ प्रतिशत तो सनातन से गरीब है। इस साठ प्रतिशत को वर्णश्रित समाज–व्यवस्था ने अनंतकाल के लिए भूख और दरिद्रता के हाथों बेच दिया है। मेरा तात्पर्य निचली श्रेणी के वैश्यों और शुद्रों से हैं परंतु पहले वे रास, लोकगीत और लोकनृत्य के माध्यम से अभिरूचि को तेज़ और धरदार किये रहते थे। लोहारों के टोले में, चमारों के टोले में अपनी–अपनी मंडली बैठती थी, हर बिरादरी की अपनी लोकगाथा थी।... कई बिरादरियों का अपना लोक–नृत्य भी था।''

राय जी संस्कृति और जीवन के रूचि परिवर्तन को औद्योगिक क्रान्ति का कारण मानते हैं और शहरीकरण के कारण ग्राम संस्कृति, गीत–नृत्य नष्ट हो रहे हैं। नगर–संस्कृति प्रगतिशील है जिसके लिए राय जी चिंतित है। 'गाँवों में शहरी संस्कृति प्रवेश कर रही है। औद्योगिक प्रगति और शहरी संस्कृति, दोनों का दायरा विस्तृत होता जा रहा हैः फलतः गाँवों का मन बदल रहा है। उनके संस्कार बदल रहे हैं... ग्रामों के माध्यम से ही हम हिन्दुस्तान के व्यक्तित्व की, उसकी निजी सनातन अस्मिता की रक्षा कर सकते हैं।... गाँवों की नयी पीढ़ी अपने मन को जिस दिशा में विकसित कर रही है, वह है शहरी मन की दिशा।'

'प्रिया नीलकण्ठी' के शेष निबन्ध अंतिम दो को छोड़कर, साठोत्तरी हिंदी साहित्य तथा बाघ्ला–असमिया साहित्य में व्याप्त हताशा, कुंठा, अवसाद, अजनबीपन आदि की सार्थक समीक्षा करते हैं। इस सबकी पृष्ठभूमि में असम तथा ग़ाज़ीपुर की लोकसंस्कृति व प्राकृतिक परिवेश की उपस्थिति सतत रहती है। कुबेरनाथ राय जी का यह ललित निबन्ध संग्रह निबन्ध विध में अपनी अमिट छाप छोड़ता है।

राम स्वरूप चतुर्वेदी ने कुबेरनाथ राय के निबन्धों के बारे में लिखा है–

'कुबेरनाथ राय के निबन्धों में काव्यात्मक संवेदन के साथ विविध प्रसंगों को लेकर सूक्ष्म पर्यवेक्षण होते हैं। भाषा का प्रभाव बराबर समरस रहता है और बीच–बीच में कुछ बौद्धिक विवेचन का क्रम बना रहता है।

यात्रा–प्रसंगों के साथ मानसिक उहा–पोह भी चलता है। यों निबन्ध का विधान यहाँ पूरी तरह तोषप्रद बना है।'

शिल्प पक्ष :–

साहित्य मूलतः भाषिक कला है। सामान्य भाषा से तात्पर्य 'ऐसी भाषा से है जिसे समाज के सभी या सामान्य लोग समझ सके सामान्य–भाषा कही जाती है जो वर्ग–जाति या स्तर–विशेष की न होकर सर्वसामान्य की भाषा है।' भाषा ही साहित्य को रूपाकार प्रदान करता है। ललित निबन्ध की भाषा अपेक्षाकृत सुसंस्कृत व उदात्त होनी चाहिए। कुबेरनाथ जी ने अपनी भाषिक संस्कृति को संस्कृति से जोड़ा तो ज़रूर पर उनकी तत्समता से उनकी भाषा थोड़ी जटिल हुई तो थोड़ी क्लिष्ट भी।

उदाहरण स्वरूप :–

'मेरे बनैले आरण्यक मन को वनपर्व बड़ा ही अच्छा लगता था।' उसमें कुछ पेड़ों के नाम बार–बार आते थे, यथाः शमी, अर्जुन, खदिर, देवदारू, शाल और भूर्ज आदि।''

बिंब :– किसी भाव, विचार, वस्तु घटना आदि का इंद्रिय संवेद्य काल्पनिक शब्द–बद्ध संमूर्तन बिंब है।

कुबरेनाथ राय जी की बिंब योजना की झलक :–

'इस कजरीवन में यदि हरित कचनार फूटे, यदि वायु यहाँ की कच्ची उमर की हरियाली का मर्दन कर नशीली रति–गंध से भर उठे, सेमल और पलाश पर कामना का चटक लाल नशा छा जाये तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।'

प्रतीक :– कुबेरनाथ राय जी की भाषा उनकी अभिव्यक्ति प्रतीक–बहुल और कभी तो प्रतीक–बोझिल भी हो जाती। उदाहरण ''हर एक साहित्यकार थोड़ा–बहुत संपाती होता है और प्रायः सभी तथ्यों की प्रखर ज्वाला में अपनी यूटोपिया के पंखों को झुलसा हुआ पाते हैं।''

लोकोक्तियाँ :– लोक–रस और लोक–रंग को लालित्य और सौन्दर्य समाहित किये रहती है।

कुबेरनाथ जी ने अपने निबन्ध संग्रहों में प्रस्तुत किये हैं– 'बाबा से कहा करते थे' लड़के की जड़ इतनी पुख्ता कर रहा हूँ कि सदैव फर्स्ट पास न हुआ तो गधे के पेशाब से मूँछें मुड़वा दूँगा, बाबू साहब। बाबा इसी पर खुश होकर दूध–दही की हाँडी भिजवा देते थे।

सूक्तियाँ :– रचनाकार के चिन्तन की उपज हैं। ललित निबन्ध में विचार अन्तः सलिला की तरह प्रवाह्मान रहता है। कुबेरनाथ जी लिखते हैं– 'ईश्वर को अस्वीकृत करके मनुष्य ने बुद्धि को स्वामिनी और कामिनी बनाया।'

कल्पना :– 'कल्पना एक अदृश्य भावलोक की सृष्टि करती है और कुबेरनाथ राय अमृत–पुत्र की तरह बोले पड़ता है।'' जब प्राण और रस का सहचर मेरा चन्द्रमा पुण्य क्षीण होकर पांडुर वर्ण हो जाएगा, जब मरण–सूर्य का उदय मेरे सिरहाने होगा और उसके तेज की वर्षा से मेरे शीश का पुण्य अभिषेक होगा, जिससे मेरा समस्त कर्दम भस्म हो जाएगा, उस महान क्षण में यही त्रिपुर–सुन्दरी 'मृत्यु–प्रिया' के रूप में मेरे सम्मुख आएगी।'

संदर्भ ग्रंथ सूचि :–

[1] लालित्य तत्व, कालिदास की लालित्य योजना– हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, प्रथम संस्करण– पृष्ठ 1964

[2] रस आखेटक, कुबेरनाथ राय, प्रकाशन– भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1979, पृष्ठ 141

[3] दृष्टि अभिसार, कुबेरनाथ राय, प्रकाशन- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ 75

[4] हिन्दी का गद्य-साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दशम् संस्करण-2015, पृष्ठ 90

[5] हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र तथा सह-सम्पादक डॉ. हरदयाल, प्रकाशक- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चवालीसवां पुनर्मुद्रक: 2015, नई दिल्ली, पृष्ठ 699

[6] हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार, डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, प्रकाशक- विनोद पुस्तक मन्दिर, प्रथम संस्करण-1976, पृष्ठ 396

[7] कुबेरनाथ राय, प्रिया नीलकण्ठी अंत में, पृष्ठ 127

[8] हेमन्त की संध्या, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 10

[9] वही, पृष्ठ 10

[10] मधु माधव, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 18

[11] सनातन नीम, पिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 24

[12] मनियारा साँप, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 45

[13] डूबता हुआ देवयान, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 39

[14] आछी का पेड़, पैशाची, जरथुस्त्र और मैं, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 58

[15] वही, पृष्ठ 53

[16] अवरुद्ध त्रेता: प्रतीक्षारत धनुष, प्रिया नीलकंठी कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 65

[17] वही, पृष्ठ 69

[18] संपाती के बेटे, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 71

[19] चण्डी-थान, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 82

[20] निर्गुण नक्शे: सबुज-श्याम धरती, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 97

[21] निर्वासन और नीलकण्ठी प्रिया, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 111

[22] वही, पृष्ठ 112

[23] शमी वृक्ष पर लटकते शव, प्रिया नीलकण्ठी कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 118

[24] वही, पृष्ठ 116

[25] ,बहुरूपी, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 10

[26] वही, पृष्ठ 129-130

[27] हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रकाशन- लोकभारती, बाइसवाँ संस्करण, पृष्ठ 255

[28] भाषा विज्ञान कोश, भोलानाथ तिवारी, प्रकाशक- ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ 698

[29] शमी वृक्ष पर लटकते शव, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 87

[30] निर्वासन और नीलकण्ठी प्रिया, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 104

[31] संपाती के बेटे, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 76

[32] सनातन नीम, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 26

[33] डूबता हुआ देवयान, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 39

[34] चण्डी-थान, प्रिया नीलकण्ठी, कुबेरनाथ राय, पृष्ठ 73

मो. 9582543556, ई–मेल talat.du2015@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 103-107

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित कथा संवेदना और विषय वस्तु में स्त्री संदर्भ

डॉ. सुधा

आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर .

दलित कथा में स्त्री जीवन का प्रतिबिंब झलकता है। कथा–धातु से उत्पन्न कथा शब्द का साधारण अर्थ है "वह जो कहा जाए कहने में कहने वाले के अतिरिक्त सुनने वाले की स्थिति अंतयुक्त है। परंतु वह सभी कुछ जो कहा जाए कथा नहीं कहता कथा का विशिष्ट अर्थ हो गया है। ऐसी कथित घटना कहना वर्णन करना जिसका निश्चित परिणाम हो घटना के वर्णन में भी काल, अनुक्रम आवश्यक है।..... घटना किसी से संबंधित हो सकती है। इसका अनुभव किया जा चुका है। यह जो विकास किए जा सकते हैं जिस किसी से संबंधित घटना हो उसकी किसी विशेष परिस्थिति या परिस्थितियों का निश्चित आज और अंत से युक्त वर्णन ही कथा कहलाता है। गद्य में रचित कथाओं को कथा साहित्य उपन्यास कहानी कहते हैं। दलित कथा संवेदना में दलित समाज से संबंधित कथा को संविधान स्तर पर मार्मिक वर्णन और परिस्थितियों का यथार्थवादी चित्रण करना आवश्यक है। यहां दलित की जिंदगी में निर्मल सच को कहने की बेचैनी और दर्द भरे अनुभव को प्रकट करने की प्रतिबद्धता रहती है। दलित कथा संवेदना और विषय वस्तु के चयन में हर स्तर पर हर जहां स्त्री संदर्भ प्रस्तुति हो जाता है।"[1]

आज समाज स्त्री और पुरुष से निर्मित हुआ है। दोनों के सुख–दुख खुशी हंसी, आंसू और कराह में सो जा करने की कोशिश होनी चाहिए। दलित समेत समाज हमेशा से हतोत्साहित किया जा रहा है। उसकी जीवन की विडंबना ही रही है कि वह सुकून से दो पल बैठ नहीं पाता था उनकी औरतों अभी आराम से साज–श्रृंगार कर मग्न हो गीत नहीं गाती थी। फिर जीवन की कठिन दिनचर्या के बीच जीने की मंजूरी थी। जाति आधारित समाज ने दलित पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी यातना और बंदिशों में जकड़ा था। आज अपनी अस्मिता और अस्तित्व की चेतना से पीड़ित दलित कथा में इन्हीं अनुभूतियों को रचनात्मक अभिव्यक्ति देने की कोशिश और पहल की जा रही है। यदि दलित कथा साहित्य में पुरुषों का वर्णन आता है तो उसके साथ उन्हीं परिस्थितियों में सहभागी उनकी स्त्रियों मां, बहन और बेटियों का उपस्थित होना स्वभाविक है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों का दलित के प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार भी चित्रित स्वतः ही हो जाता है। संभवत दलित कथा साहित्य में स्त्री संदर्भ देख देखकर अधिक मार्मिकता अर्थात तथ्यपरक अनुभूति होती है।

दलित कथा साहित्य की संवेदना और विषय वस्तु में दलित स्त्री का प्रसंग मुख्य है या किसी तरह गलत नहीं हो सकता। जहां तक आत्मकथा ओं का परिदृश्य है। समाज की पूरी संरचना का विस्तृत वर्णन संभव हो सकता है। स्त्री के संदर्भ को उद्धृत करने से दलित उसके ऊपर पड़ने वाले दबाव और तनाव को सही अर्थों

में समझने में सहायता होती है। स्त्री किसी भी जाति समाज और परिवार की इज्जत मानी जाती है वर्चस्व स्थापना के खातिर स्वर्ण दलित स्त्री को ही मोहरा बनाकर दलित पुरुषों पर शिकंजा कसने की कोशिश हमेशा करता चला आ रहा है।

''बहरहाल दलित आत्मकथा ओं की विशेषता यह है कि इनमें दलित जीवन का यथार्थ गहराई से उभर कर आ रहा है। जो दलित साहित्य के लिए नया है। जहां सामान्य आत्मकथा में व्यक्ति का चित्र होता है। वही दलित आदमी कथाओं में पूरे समाज का चित्रण होता है और इसलिए है कि भारतीय समाज में दलित पिछड़ी की पहचान उनके नाम से अधिक उनकी जात से होती रही है।''[2] ''हिंदी में दलित आत्मकथा लेखन की आवाज सुनी परंपरा की शुरुआत मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा अपने–अपने पिंजरे से होती है। इसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि की चर्चित आत्मकथा जूठन आती है। फिर तो आत्मकथाओं का दौर सा चला चल पड़ता है। आज हिंदी दलित साहित्य में अनेक आत्मकथाएं आ चुकी हैं जिनमें सूरजपाल चौहान की तिरस्कृत एवं संतृप्त माता प्रसाद की झोपड़ी से राजभवन, शिवराज सिंह बेचैन की मेरा बचपन मेरे कंधे पर डीआर जाटों की मेरा सफर मेरी मंजिल, जयप्रकाश कर्दम की मेरी जात कौशल्या वैसंती की दोहरी अभिशाप, एनआर सागर की जब मुझे चोर कहा के नाथ की तिरस्कर रमाशंकर आर्य की घुटन, रूपचंद सोनकर की नागफनी, धर्मवीर की मेरी पत्नी और भेड़िया, तुलसीराम की मुर्दहिया आदि प्रमुख हैं। इधर हिंदी में रजनी तिलक की आत्मकथा सागरमाथा और सुशीला टॉकभौरे की शिकंजी का दर्द भी आई। इसके अतिरिक्त अनेक आत्मकथाएं या तो प्रकाशनाधीन है या लिखी जा रही हैं।''[3]

दलित कथा साहित्य में सामाजिक कुप्रथाओं के उन्मूलन और शिक्षा के प्रसार का अहम रूप से रेखांकित किया गया है। दलित स्त्रियों में तमाम प्रश्नों का कथा साहित्य के माध्यम से साहित्यकारों की वर्कर्स कोशिश की है जिस सजगता और संवेदनशीलता से स्त्री के दर्द को फ़लक पर उकेरा है। उसे पढ़ते ही किसी को भी भीतर तक चुभन अवश्य होती है। वास्तव में दलित कथा साहित्य के अंतर्गत आत्मकथाओं की सशक्त अभिव्यक्ति ने समस्त सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए अत्यंत सरल शब्दों में जीवन के रहते आक्रोश और कुछ ना कर पाने की कसक को इस हद तक सामने लाया कि खुद लिखने वालों की आंख अंतरात्मा कहां गई होगी। तब तो जाहिर है कि ऐसा लेखन इतना प्रभावित करने वाला हो सकता है। यही वजह है कि मुख्यधारा के साहित्य से हटकर दलित साहित्य और उसमें भी कथा साहित्य अपनी अभिव्यक्ति में बेजोड़ साबित होने लगा है। दलित नैतिक करता में स्त्री की स्वतंत्रता महत्ता है इसमें इसके बावजूद वह पितृसत्तात्मकता की चक्की में पीस रही है। हालांकि विधवा विवाह को हमेशा उच्च श्रेणी में रखा लेकिन पितृसत्तात्मकता के दोहरे चरित्र से भी उसे रूबरू होना पड़ा।

इस संघर्ष में उसे अपने विरोध प्रकट करने की स्वतंत्रता अपने पास रखी वह गाली का जवाब गाली से देती है। मारपीट का जवाब मारपीट से देती है। दलितों के पारिवारिक व्यवस्था भी क्षमता का एक हिस्सा है। हिंसा का विरोध भी सामूहिक ज्यादा है। यह उनकी चेतना का हिस्सा है। यही कारण है कि दलित साहित्य में आत्मकथाएं व्यक्तिगत नहीं समूह की व्यथा–कथाएं होती हैं यदि किसी ने व्यक्तिगत करने का प्रयास किए भी हैं तो तो भी वहां क्षमता ही प्रभावित होती है जो वे व्यक्ति के समूह बनाती हैं। ''दलित नैतिकता है ईश्वरी नहीं है वह रोजमर्रा के जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों पर आधारित जीवन की मानवीय संवेदनाएं और अनुसूचियां

हैं। वे ज्यादा लोकतांत्रिक और समाज सापेक्ष हैं जिन्हें समझना और जानना उस हर एक व्यक्ति के लिए जरूरी है, जो समाज के साथ बदलना चाहता है और मानवीय मूल्यों के प्रति सजग है।''[4]

दलित कथा साहित्य की विषय वस्तु में दलित स्त्री का शामिल होना नितांत स्वभाविक और आवश्यक है। एक समाज का विशेष वास्तविक स्थिति–परिस्थिति का आकलन वहां की स्त्री की दशा द्वारा आंकी जा सकती है। इसलिए दलित की सामाजिक, आर्थिक, परिवारिक, शैक्षिक और राजनीतिक स्तर पर किन–किन चुनौतियों और समस्याओं से जुड़ना है। उससे उभरने की यह संभावना है। इसका स्पष्ट वर्णन दलित स्त्री के जीवन से दृष्टिगत होता है। इसी कारण दलित स्त्री कथा साहित्य की समस्त विधाओं और रचनाओं में उपस्थित रहती हैं। सच कहें तो शायद दलित स्त्री को विषय वस्तु से बाहर निकाल दिया जाए तो पूरा दलित साहित्य ही हल्का हो जाएगा उसमें वह आत्मकथात्मक आक्रामक तेवर विश्वास था और वेदना नहीं होगी जो स्त्री के कारण पता समाहित हो जाती है। ''दलित व्यथा ने कहानी को वापिस अवस्थी जी विषय वस्तु दी जिस अब तक ठीक से सोचा तब ना गया था। दलित जीवन के तनाव संघर्षों को कहानी में संगम संवेदना के रूप दिया बाबूल की सूंड नमक लंबी कहानी इस दिशा में अद्‌भुत उपलब्धि रही है। केशव मिश्रा, अर्जुन डांगले, योगीराज वाघमारे, आज दलित साहित्य की धारा को गति देते हुए बढ़ते हैं। यह कहानियां सामाजिक विषमताओं पर तीखी टिप्पणियां हैं। ज्योतिबा फुले और अंबेडकर के विचारों को दलित कहानियों में सृजनात्मकता में डालकर सामाजिक जागरण का कार्य किया है।''[5]

''पराया वासना की तृप्ति के लिए पुरुषों ने दलित नारी से यौन संबंध की संतानों की प्राप्ति के लिए स्त्रियों ने दलितों से पुरुष दलित नारी का बलात्कार यौन शोषण करता है। तो स्त्री दलित को याचना से संबंध रखती है। बहू ने रमेश सर से कहा कुछ मत कहो कोई भी नहीं पाए, जान पाएगा, मुझ पर दया करो।''[6] ''यह सच है कि दलित कथाओं पर साहित्य की शास्त्री धारा के अनुरूप कहानी कला का अभाव है। किंतु चेतना चेतना की सार्थकता और सामाजिक सरोकार के संघर्षशील दलित तथा कारों की रचनाओं में ही देखने को मिलते हैं। दलित कहानियों का मूल स्वर दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ के चित्र द्वारा दलित जीवन की व्यथा कथा सामंती आतंक और मनुवादी व्यवस्था के विरुद्ध तीव्र आक्रोश और विरोध दर्ज करना है। हिंदी साहित्य में आज दलित कथा कारों की अच्छी खासी संख्या सक्रिय है।''[7]

दलित कहानी समकालीन विमर्श के अंतर्गत निजत एवं आत्मसम्मान की चेतना सिलिया, सुशीला टॉकभौरे अधिकार के लिए संघर्ष सुरंग यथास्थितिवादी मानसिकता पर प्रहार बहुत उठाई दलितों की दर्दनाक जिंदगी का इजहार करती अपना गांव अंतिम बयान प्रतिशोध की कहानी कहानीकार की कहानी सलाम आदि उल्लेखनीय हैं। वर्तमान दलित कहानियों में दलित नारी के यौन शोषण की भरमार है। जाहिर है कि स्वर्ण समाज के द्वारा उसका अधिकार यौन शोषण हुआ है जोरजर्बस्ती, दहशत, तन शक्ति और धन शक्ति आज समाज सभी प्रकार का प्रयोग दलित नारी से यौन संबंध स्थापित करने में किया हुआ नजर आता है, लेकिन दलित कहानी में सवर्ण समाज की नारी भी दलित पुरुषों से यौन संबंध रखती हुई प्रस्तुति की मिल की गई मिलती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी ग्रहण कहानी में इस विषय को उठाया चौधरी के इकलौते बेटे रामपाल की बहू से सास ससुर पति द्वारा उपेक्षा की जाने पर तनावपूर्ण जीवन जीना पड़ता है। इसलिए वह रमेश सर वह खुद अपने साथ संबंध बनाने के लिए विनती करती है। बस एक बार मुझे एक बेटा चाहिए उसके बदले जो कहोगे दूंगी

लेकिन दलित नारीवाद दलित पुरुषों से यौन संबंध रखने वाले स्वर्ण समाज के स्त्री पुरुषों में एक मूलभूत अंतर दिखाई देता है।

दलित उपन्यास और कहानियों में भी दलित स्त्री की महत्वपूर्ण रचनाएं सामने आ रही हैं। स्वयं दलित स्त्रियों के साहित्य में उनकी धमाकेदार आवाज सुनाई पड़ती है। जो साहित्य जगत को सुनने को विवश कर देती है। दलित स्त्री ने जिस साहस और बेवाकी से अपनी लेखनी चलाई है, वह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। अपने जीवन के विभिन्न अनुभव, अहसासों और आकांक्षाओं को दर्द–पीड़ा और त्रासदी प्रकट किया है। जो कि सामूहिक चर्चा के मुद्दे हैं, उपन्यास में एक बात स्पष्ट हुई है छप्पर मुक्ति पर्व थमेगा नहीं विद्रोह आदि अनेक उपन्यासों में दलित पुरुष और स्त्री का सहयोग एक विकल्प के तौर पर पेश किया गया है। दलित चेतना संपन्न युवक और संवेदनशील स्वर्ण शिक्षित स्त्री मिलकर सामाजिक परिवर्तन की नई डगर बना सकने में सक्षम हैं। ''दलित रचनाकार का उद्देश्य जाति–पाति को तोड़कर समस्त समाज की रचना करना है। जिसमें प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य समझा जाए। बाकी धरातल के अतिरिक्त विवाह भी इस सिलसिले में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं क्योंकि अभी तक सकरापन अभी सबसे अधिक यहीं है छप्पर का नायक चन्दन अंत में रजनी से विवाह करता है।''[8]

दलित स्त्री के नजरिए से दलित कथा साहित्य की क्षमताओं सीमाओं और अंतर्विरोधों का मूल्यांकन करते हुए तथा संवेदना और विषय वस्तु में स्त्री संदर्भ को प्रकट करना है। माना कि दलित कथा साहित्य में पुरुष रचनाकारों की संवेदना काफी हद तक दलित स्त्री के साथ है। उन्होंने ईमानदारी से उनके संतानों को प्रस्तुत करने का कार्य किया किंतु उनकी भी सीमा और प्रतिभा है। जैसा वे कहते हैं कि दलित की वास्तविक पीड़ा को गैर दलित नहीं व्यक्त कर सकता क्योंकि उसने वह नहीं सहा और भोगा है, उसका दर्द केवल सहानुभूति के सहारे लिखा नहीं जा सकता।

इसी तर्क पर दलित स्त्री कथा संवेदना भी पुरुषों पर लिखे को प्रश्न अंकित करती हैं। दलित स्त्री की मार्मिक अनुभूति की पूर्ण व्यक्ति किसी भी पुरुष दलित के भी दायरे से बाहर की बात है। क्योंकि दलित स्त्रियां होने के नाते उनका दुःख किसी के साथ तुलना करने योग्य नहीं है। सबसे तीव्र संवेदनात्मक उसे ही बर्दाश्त करने पड़ते हैं। कुछ प्रसंगों में भले ही अनुभूति मेल खाती है। वरना मूलभूत अंतर होने के कारण स्त्री के दर्द दलित पुरुष के लिए भी समझना असंभव है। उस पर भी यदि वह खुद तो शक की भूमिका में हो तो तब तो शोषित के आंसुओं के प्रति संवेदना संवेदनशील जरूरी नहीं हो सकती। पितृसत्ता के चलते दलित पुरुष अपने अहंकार से ग्रसित हो दलित पुरुष अपनी पत्नी के लिए गंभीर चुनौती बनता जाता है। एक प्रश्न पिता से जुड़ा हुआ अक्सर उठाया जाता है कि दलित समाज में पितृसत्तात्मक के लक्षण पाए जाते हैं। इसके उदाहरण के तौर पर कौशल्य संत्री की आत्मकथा के दौरे अभिशाप और सुशीला टॉकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द में अनेक स्थान में दर्ज हुआ है कि लेखिका सुशीला टाकभौरे की पति द्वारा बार–बार पीटी जाती है। उनके पति बहुत दिनों तक उनकी तनख्वाह अपने हाथ में रखते थे। हर वक्त उन पर किसी पराए व्यक्ति जैसा व्यवहार करते थे या अपराधी की तरह नियंत्रण में रखते थे। इसी तरह रजनी तिलक ने अनेक प्रसंग दोहरा अभिशाप में भी आए हैं इसी समस्या को अपनी आत्मकथा कहानी बेस्ट ऑफ करवा चौथ और अमर गाथा में खुलासा किया है।''[9]

इससे स्पष्ट है कि दलित पुरुष इसी पितृसत्तात्मक समाज का हिस्सा है। बचपन से घर, परिवार, समाज से पढ़े संस्कारों के कारण उनकी मानसिकता में स्त्री कृति शाह स्थित और सम्मान समानता का भाव नहीं आने पाता।

दलित कथा संवेदना में स्त्री संदर्भों के कुछ प्रश्नों पर कुछ साहित्यकार यह कहकर चुप्पी साध लेते हैं कि जिस दलित साहित्य में आपसी टकराव या आंदोलन को कमजोर होने के खतरे होते हैं। वहीं खत्म हो जाता है– जैसे घरेलू हिंसा, शराबी जुआरी पतियों द्वारा दलित स्त्री को मारना–पीटना उन पर शारीरिक–मानसिक अत्याचार करना, गंदी गालियां और लांछन लगाना, हमेशा चरित्रहीन और उल्टा होने का झूठा आरोप लगाना और बात–बात पर एक शब्द औरत का गुलाम और जबरदस्त मनोवैज्ञानिक दबाव में रखना।

अनपढ़ गंवार औरतों के साथ–साथ पढ़ी–लिखी और आर्थिक रुप से संपन्न नौकरी पेशा दलित नारी भी पुरुषों के दुर्व्यवहार और तानों को सुन परेशान रहती हैं। अभी इन मुद्दों के दलित शिखर सम्मेलन में कम ही पढ़ने को मिलता है। अपनी स्थितियों के लिए पूर्णता दूसरे को दोष देना दलित समाज को तभी हक है जब वह अपने खुद के आचार विचार से दलित के सम्मान और अधिकार के प्रति दृष्टिकोण सामने लाए वरना अपने ही हाथों अपने सपनों को चकनाचूर कर देगा।

दलित सपनों को सच करने के लिए दलित स्त्रियों को अनदेखा न करें। दलित स्त्री के सभी मान को धूमिल कर वह अपने उज्जवल भविष्य की कल्पना नहीं कर सकेगा। ''किसी रचना की प्रमाणिकता उत्कृष्टता संदिग्धता या आसंदिग्धता से ज्यादा उस रचना की सार्थकता पर बात होनी चाहिए कि कोई रचना अपने समय समाज और प्रवेश की मनुष्य विरोधी कारक, तत्व एवं परिवेश से शक्तियों से कितनी मुठभेड़ करती है। कितना वह मनुष्यता और न्याय के पक्ष में हस्तक्षेप करती है और कितना वह मनुष्य को मनुष्य बनाती है।''[10]

यही दलित कथा के लिए लागू कर सकते हैं तभी इसकी प्रसंगिकता और समृद्ध आत्म लगाओ से अपनाया जा सकता है। अतः में कह सकते हैं कि दलित कथा संवेदना और विषय वस्तु में स्त्री संदर्भ को निर्देशित किया जाना चाहिए जिससे स्त्री से संबंधित विविध पक्ष उजागर हो और वास्तविक स्थिति को समझ परख कर मानवीय मूल्यों को स्थापित कर दलित स्त्री की जीवन पर स्थिति में मूलभूत परिवर्तन का लक्ष्य पूर्ण हो सके।

संदर्भ सूची :-

1. हिंदी साहित्य कोश –1
   संपादक–धीरेंद्र वर्मा ज्ञान मंडल लिमिटेड इलाहाबाद 2000 पृष्ठ संख्या 158
2. दलित आत्मकथाएं– संवेदना और संघर्ष हरिनारायण ठाकुर, आजकल अप्रैल (2014) पृष्ठ –30
3. वही पृष्ठ संख्या– 30
4. मुख्यालय मुख्यधारा और दलित साहित्य ओमप्रकाश वाल्मीकि सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2010, पृष्ठ 61
5. दलित साहित्य के बुनियादी सरोकार कृष्णदत्त पालीवाल वाणी प्रकाशन नई दिल्ली (2012) पृष्ठ संख्या–67
6. बयान, विशेषांक, नई दिल्ली 2007, पृष्ठ संख्या (85–86)
7. दलित साहित्य का समाजशास्त्र हरि नारायण ठाकुर भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2009 पृष्ठ– 421
8. दलित साहित्य के प्रतिमान डॉक्टर एंड सिंह वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ संख्या– 171
9. आजकल विशेषआंक मार्च 2014 पृष्ठ संख्या– 42 नई दिल्ली
10. शुक्रवार वार्षिकी (2013) पृष्ठ संख्या–21

मोबाइल नंबर – 738822 3924, ई–मेल –sudhasingh648@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 108-111

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिमांशु जोशी के 'समय साक्षी है' उपन्यास में राजनीतिक परिदृश्य

प्रतिमा

शोध छात्रा, एस0एस0जे0 परिसर, अल्मोड़ा, उत्तराखंड।

आजादी से पूर्व भारतीयों के मन में स्वतंत्र भारत की स्वच्छ तस्वीर थी। वह आजादी के पश्चात् आक्रोश के रूप में व्यक्त होने लगती है; क्योंकि क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाई–भतीजावाद और अर्थलोलुपता ने भारतीय राजनीति को अच्छा–खासा प्रभावित किया। फलतः राजनैतिक मूल्यों में भारी गिरावट आई। राजनीति में जातिवाद क्षेत्रवाद, भाई–भातीजावाद की घुसपैठ होने लगी। इन सबके चलते दल–बदल की राजनीति को प्राथमिकता मिली। सरकार के द्वारा संचालित विकास कार्यों में प्रश्नवाचक चिन्ह लगे। इतना ही नहीं राजनीति में भ्रष्ट आचरण वाले प्रतिनिधियों के प्रवेश से भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला। इस परिवर्तन को कुछ लोग मूल्यहीनता के रूप में देखते हैं, तो कुछ इसे समय सापेक्ष प्रगतिशीलता मानते हैं। जो भी हो इतना तो सुनिश्चित ही है कि आजादी के बाद भारतीय जीवन मूल्यों का विघटन अवश्य हुआ है।

आज के समय में समाज, संस्कृति, धर्म, अर्थ, राजनीति में प्रविष्ट व्यक्तियों का प्रभाव बढ़ रहा है और उनके बढ़ते प्रभाव से भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक गौरवशाली मूल्यों का ह्रास हो रहा है। जिससे समाज में भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, अनैतिकता, अपराधों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। समकालीन दौर में राजनीति से संबद्ध लोगों के भ्रष्ट आचरण से अखबारों में प्रतिदिन प्रकाशित होने वाली खबरें राजनीति के वतर्मान स्वरूप की प्रमाण हैं। राजनीति में प्रविष्ट लोगों से अधिकाधिक संपर्क आज प्रतिष्ठा का कारण माना जाने लगा है। सच्चाई तो यह है कि आज राजनैतिक पहुँच अपराधी को अपराधी नहीं रहने देती है। भारतीय राजनीति में प्रविष्ट व्यक्तियों की अवसरवादिता, घोटाले, अर्थहीन घोषणाएं, दल–बदलू राजनीति से समूचा राजनैतिक ढांचा परिवर्तित हुआ है। समकालीन हिंदी के उपन्यासकारों ने वर्तमान भारतीय राजनीति और उसमें प्रविष्ट नेताओं की विकृतियों का यथार्थ चित्रण किया है।

हिमांशु जोशी के उपन्यासों में समकालीन राजनीति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से इनके अरण्य, कगार की आग, सुराज, समय साक्षी है उपन्यास प्रमुख हैं। अरण्य उपन्यास में ग्रामीण समाज में व्याप्त विध्वंसपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण राजनीति का चित्रण हुआ है। कगार की आग उपन्यास में कुमाउँ के ग्राम्य जीवन में व्याप्त कुत्सित राजनीति का उद्घाटन हुआ है। यह राजनीति किसी राजनेता के द्वारा चलित न होकर, गांवों के समर्थ लोगों एवं सरकारी तंत्र के छोटे–बडे. कर्मचारियों के द्वारा रची चित्रित हुई है। समय साक्षी है उपन्यास एक राजनीतिक उपन्यास है। यह उपन्यास राजनीति में निजी स्वार्थ पूर्ति हेतु मूल्यों के पतन, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार को चित्रित करता है। समय साक्षी है उपन्यास महानगरीय जीवन के उच्च एवं मध्यम वर्गीय जीवन से

संबद्ध है। इस उपन्यास में समकालीन भारतीय राजनीति के स्वच्छ चित्र हैं। इसमें उपन्यासकार ने भारत के भ्रष्ट एवं अवसरवादी राजनीति का चित्रण किया है। इसके अधिकांश पात्र महानगरीय जीवन के उच्च एवं मध्यम वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें तिमिर वरन, मेघना, पी0पी0 सुबोध, जगन्नाथ, मुदालियर, गर्विता, जयंत, मिस माखेजानी, अजितवरन, गोदावरी, शेष गिरि, कोनिका, अनिल वरन, अनंदा, शिवसुदरम्, सुबोध वरन, रथीन, शंकर, सचिन वर्मा, करुणा, अबरार और कल्पना दत्त प्रमुख हैं।

हिमांशु जोशी के इस उपन्यास में अवसरवादी राजनेताओं का चित्रण हुआ है जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कुछ भी करने के लिए के तैयार रहते हैं। इस उपन्यास के तिमिर वरन, पी0पी0, शेषगिरि चरित्र सिद्धांतहीन, मूल्यहीन, लक्ष्यहीन तथा आधारहीन राजनीति के भ्रष्ट राजनयिक हैं। ये ऐसे भ्रष्ट राजनेताओं के रूप में सामने आते हैं जो अपनी स्वार्थपरता के कारण सदा राजनीति में बना रहना चाहते हैं और अपनी कूटनीति के द्वारा देश का निर्माता बनकर प्रधानमंत्री को दल से हटाने के लिए नई चालें चलते हैं : तिमिरवरन भी कोई खिलाड़ी न थे। विपक्ष के बहुत से नेताओं से उनके आत्मीयता के गहरे संबंध थे। उन्होंने अपने दल के कम सदस्य उम्मीदवारों की जमानतें जब्त नहीं करवाई थी। बहुत से लोग उनका आशीर्वाद प्राप्त कर संसद तक पहुंचने में सफल हुए थे। विपक्षी की बेंचों पर बैठने के बावजूद उन पर अगाध श्रद्धा रखते थे।[1] इसमें जहां एक ओर कूटनीतिज्ञ तिमिर वरन जैसा चरित्र है, वहीं ओर दूसरी मूल्यों, सिद्धांतों और गांधीवादी आदर्शों के लिए समर्पित अजित वरन और शिव सुंदरम् जैसे चरित्र भी हैं। तिमिर वरन तो राजनीतिक महत्वाकांक्षा के लिए अपने भाई अजित वरन तक को मरवाता चित्रित हुआ है; क्योंकि अजित वरन अपने बड़े भाई तिमिर वरन को अच्छी सलाह देता है और उसके अनुचित कार्यों का विरोध करता है : आपके दो कुत्ते भी हवाई जहाज से सैर करने हिल स्टेशन जाते हैं शिमला.....।'' मैं सोचता था आप आम आदमी के नुमाइंदे हैं, आम आदमी की तरह रहते होंगे। उनके दुख–दर्द से परिचित होंगे। अजित ने तनिक आवेश से कहा 'यह करोड़ों रुपए का कालाधन आप चुनाव के लिए क्यों इकठ्ठा रखते हैं? इससे कौन सी सच्चाई उजागर करना चाहते हैं? इतना बड़ा झूठ किसलिए? किसके लिए।[2]

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने मूल्यहीन राजनीति पर तीखा व्यंग्य किया है। इस उपन्यास का तिमिर वरन व्यभिचारी दिखाई देता है। उसकी पत्नी धार्मिक विचारों से युक्त चित्रित हुई है। वह अपने पति के व्याभिचारी चरित्र से सर्वथा विज्ञ हैः ''माखेजानी से पति के इतने सालों से क्या संबंध है– वह जानती है। उन्हें पता है मेघना कोठी में क्यों रहती है? गोदावरी के यहा कब जाते हैं? ताप्ती क्यों किसी बंगाली डॉक्टर के साथ भागकर चली गई– उससे संबंध क्यों बिगड़े? अजित क्यों पागल हुआ? पर वह बोलती कुछ नहीं।[3]

मिस माखेजानी की विवशता का लाभ उठाता है, उसे शादी भी नहीं करने देता है तथा अपनी प्रत्येक जायज एवं नाजायज इच्छा पूरी करवाता रहता है। उसके लिए घर–परिवार, संबंध सबका एक ही अर्थ होता है, पैसा, सत्ता, भ्रष्टाचार और वासना। कोनिका, गर्विता, मिस माखेजानी के अतिरिक्त वह अपने भाई की पत्नी तक को नहीं छोड़ता है। इन सबका शोषण करता है। बाहर से घोर आदर्शवादी, गांधीवादी एवं नैतिक दिखाई देने वाले अंदर से उतने की भ्रष्ट एवं चरित्रहीन होते हैं। इनका वास्तविक चित्रण कथाकार ने समय साक्षी है में किया है। राजनेता ही नहीं, अपितु उनके पिछलग्गुओं द्वारा किए जाने वाले अनाचार, वर्तमान व्यवस्था का वीभत्स रूप है। भोली–भाली कुलीन लड़कियों के साथ अनाचार करके, उनको कोठों पर बैठा दिया जाता है। ये सब

राजनेताओं की सह है। गर्विता के भाई को ढूंढने में उसे हितचिंतक बने लोग ही उसकी अस्मत को तार–तार कर उसकी जिंदगी को बर्बाद कर देते हैं। कथाकार ने उनके दुख का चित्रण करते हुए लिखा है : अपनी ही देह उसे अजनबी लग रही थी। सारा भारीर एकदम जूठा लग रहा था– गंदा! घिनौना! जैसे कोई घृणित वस्तु चिपक गई हो– हमेशा–हमेशा के लिए.....। चंदन से विवाह की बातें चल रही थीं किंतु आज यह अकस्मात बिखरे बालों को कुट्ठी में भीचने लगी वह। जोर से चीखने को मन हुआ किंतु आवाज ही गले से फूटकर बाहर न आ पा रही थी।[4] उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था पर भी तीखा व्यंग्य किया है।

इस उपन्यास में शेषगिरि के चरित्र के माध्यम से आश्रम राजनीति का उद्घाटन हुआ है; क्योंकि इस उपन्यास का शेषगिरि धर्मगुरु होते हुए भी आश्रम राजनीति करता है और नैतिकता की आड़ में अनैतिकता का आचरण करता चित्रित हुआ है : शेषगिरि संत ही नहीं राजनीतिज्ञों के महंत भी थे। कुछ महत्वाकांक्षी संसद सदस्य तथा मंत्रियों के चरण सेवक रात–दिन वहां पड़े रहते, जहां उन्हें नित नए षडयंत्र के लिए मंत्रणाओं की विशेष सुविधाएं थी।[5] तिमिर वरन जैसे एकदम नए विधायक को कुछ समय में ही उपमंत्री का पद दिलवा दिया जाता है और कुछ समय पश्चात् संसद तक पहुंचा दिया था। सभी छोटे–बड़े नेता उसके आश्रम में आते थे। आश्रमों की वास्तविकता का उद्घाटन करने वाला एक उद्धरण दृष्टव्य हैः बीच में संगमरमर की गोल इमारत चिंतनालय। इधर–उधर दूर–दूर तक छोटे–छोटे कमरे जिनमें देश–विदेश के उनके कई शिष्य एवं शिष्याओं के निवास थे। शेषगिरि आधुनिकतम ओर प्राचीनतम, पौर्वात्य और पश्चात् सबका समन्वय चाहते थे, इसलिए आश्रम में जहां साधना पर विशेष बल दिया जाता था। वहां युवक और युवतियों के मिलने पर तनिक भी प्रतिबंध न था। मुक्त भाव से सब रहते और सहज भाव से सारा कार्य होता।[6] इन आश्रमों में राजनीतिक दल के नेता आध्यात्म के नाम पर आते हैं, पंरतु वास्तविकता में शेषगिरि का यह आश्रम राजनीति का अखाड़ा होता हैः बहुत से राजनीतिज्ञों के भाग्य का यहां निर्णय होता, बहुत से विधायक बेचे ओर खरीदे जाते। बड़े–बड़े लाइसेंसों की सौदेबाजी होती। समाजवाद के नाम पर कितने ही अवसरवादी राजनीतिज्ञों की चांदी हो रही थी। बहुतों के द्वार से गरीबी नंगे पांव बेसुध भाग रही थी। बहुतों को भीख मांगने के लिए सड़कों पर बड़ी बेरहमी से छोड़ा जा रहा था। कुछ लोग पानी की बूंद–बूंद के लिए तरस रहे थे और कुछ को अथाह जल में डूब मरने के लिए धकेला जा रहा था।''[7] इस उपन्यास में राजनीतिक अराजकता की ओर भी संकेत किया गया है। राजनीतिज्ञ आपसी खींचतान एवं धनबल की लोलुपता के कारण देश को अपनी निजी संपत्ति समझने लगते हैं और देश में दंगे–फसाद, लूटपाट, हत्या जैसे कुकृत्यों से अपनी कुर्सी बचाने के लिए करवाते चित्रित हुए हैं। तिमिर वरन का बनाया पुल टूट जाता है जिससे अनेक गांव बर्बाद हो जाते हैं, हजारों लोग बेघर हो जाते हैं और जो बच जाते हैं वे भोजन और वस्त्रों के लिए तड़पते हैं; बड़े भाई अजित वरन बड़ी आशाएं लगाए करुणा से पूछते हैं कि तिमिर वरन ने गांव वालों के लिए कुछ भेजा होगा, मगर वह तिमिर वरन के पोस्टर चिपकाने के लिए लाया होता है। अजित वरन, तिमिर वरन की संवेदनहीनता पर व्यंग्य करता चित्रित हुआ हैः उन्हें देखकर बड़ी विद्रूप हंसी हंस पड़े वह, इन्हें यहां कहां चिपकाओगे करुणा? उन्होंने जल में डूबकर बह गए गांव की ओर इंगित किया और फिर घास के जले घरों की ओर, इन गरीबों के ये झोपड़े भी जलुवा दिए तुम्हारी सरकार ने। इनका अपराध था कि ये भूख से मरे लोगों की लाशें, जुलूस की शक्ल में थाने तक ले गए थे।....

कुछ रुककर फिर बोले वह, इस तरह का रामराज इस मुलुक में आएगा जानते तो शुरू होने से पहले

ही उसे दफना डालते। तब इन हाथों में दम था। लेकिन अब! अब सर्वोदय का सपना ही टूट गया।[8]

इस उपन्यास में भ्रष्ट नेता अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अनंदा (एनी) जैसी विदेशी जासूस को आश्रम में साधिका के रूप में रखते है। जो देश की सभी गुप्त सूचनाएं बाहर भेजती चित्रित हुई हैः उन्हें अपने विश्वास में लेकर देश की प्रतिरक्षा संबंधी बहुत सी महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कर किसी अन्य देश को भिजवा दी थीं। सामरिक महत्व के कौन–कौन से हथियार इस बीच मित्र देशों से खरीदे गए हैं। विदेशी सहायता से किन–किन आधुनिकतम हथियारों का निर्माण अपने ही देश में किया जा रहा है तथा भविष्य में इस दिशा में क्या–क्या ठोस कदम उठाए जाने की संभावनाएं हैं– ये सारी गोपनीय सूचनाएं, जिनका आभास तक देशवासियों को नहीं होने दिया गया था– राष्ट्रहित के नाम पर वे सब विदेश पहुंच चुकी थी।[9]

इस उपन्यास में भ्रष्ट नेता और कर्मचारियों के कारनामों के कारण विद्यार्थी सड़कों पर आते चित्रित हुए हैं। इस उपन्यास में शिवसुंदरम् जैसे गांधीवादी चरित्र भी हैं जो राष्ट्रहित में प्राण त्यागता दिखाई देता है। उसके बलिदान के कारण शेषगिरि के पीछे पुलिस पड़ती चित्रित हुई हैः उनकी प्रत्येक गतिविधि पर कठोर दृष्टि रखी जा रही थी। कितने नंबर की कार कब आश्रम में आई, शेषगिरि ने फोन पर किससे क्या बातें की सारी बातों का लेखा–जोखा था 'केंद्रीय गुप्तचर विभाग' के पास। जहां–जहां वह जाते, छाया की तरह लोग उनका पीछा करते रहते।[10] तिमिर वरन त्यागपत्र दे देता है। जनमानस के धैर्य का बांध टूट जाता है। देश की बिगड़ती स्थिति को देखते हुए राष्ट्रपति को आपातकाल की घोषणा करनी पड़ती है।

'समय साक्षी है' उपन्यास में भारत देश की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की अराजकता का यथार्थ चित्रण हुआ है। यह हिमांशु जोशी का विशुद्ध राजनीतिक उपन्यास है। उपन्यासकार ने संपूर्ण कथानक का गठन वर्णनात्मक शैली में किया है और उपन्यास में आम बोलचाल की पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ हैः हम? हम पोस्टर लाया हूँ बाबूजी–! बड़े साहिब का जमन–तारीख है न! बाबा सैसगिरि, छोटन परसाद– सब बोले कि इन्हें सारे इलाके में चिपका दो घर–घर दुआर–दुआर।[11] वस्तुतः उपन्यासकार ने राजनीतिक के यथार्थ को अत्यंत रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का सफल दस्तावेज है।

संदर्भ :–

1. संपूर्ण उपन्यास हिमांशु जोशी (भाग–2), पृ0 18
2. वही, पृ0 72
3. वही, पृ0 68
4. वही, पृ0 86–87
5. वही, पृ0 39–40
6. वही, पृ0 39
7. वही, पृ0 40
8. वही, पृ0 106
9. वही, पृ0 110
10. वही, पृ0 112
11. वही, पृ0 106

ईमेल–priyakandpal341@gmail.com

मोबाइल नम्बर – 8938976523

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 112-116

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत का संपर्क सेतु- हिंदी

डॉ. एम. आर. सिद्दगंगम्मा

Assistant Professor & HOD of Hindi, JSS College of Arts, Commerce and Science, Ooty Road, Mysuru

सार :-

भारत बहुभाषी देशों में गिने जाते हैं। बहुभाषी की दृष्टि से भारत संभवतः विश्व भर में सर्वाधिक विविधताओं वाली देश है। भारत में सैकड़ों भाषाएं बोली जाती है। आदिकाल से ही हिंदी भारत की संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती आ रही है। भारत बहुत बड़ा विशाल देश है। इस देश को एक सूत्र में बांधने के लिए एक संपर्क भाषा की बहुत आवश्यक है। ऐसे एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखने वाली संपर्क भाषा हिंदी मान चुके हैं। कोई भी भाषा को आसानी से संपर्क भाषा का दर्जा मिलना बहुत आसान नहीं है। क्योंकि संपर्क भाषा पूरे देश के लोगों को एक सूत्र में जोड़ने की कड़ी है। उत्तर से दक्षिण पूर्व से पश्चिम के लोगों को परस्पर संपर्क बनाए रखने के लिए संपर्क भाषा की बहुत आवश्यक है। वैसे एक व्यक्ति–व्यक्ति के बीच अपने विचार विनिमय करने के लिए राज्य–राज्य के बीच के विस्तार के लिए देश–देश के बीच और अंतरराष्ट्रीय स्तर में भी संपर्क भाषा की आवश्यक है। वैसे संपर्क भाषा मातृभाषा से अलग होती है। एक दूसरे की भावनाओं को समझने के लिए एक दूसरे देश या राज्य में व्यवहार करने के लिए संपर्क भाषा मदद करती है। पर्यटन के लिए भी संपर्क भाषा की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए हिंदी भाषा को भारत का संपर्क सेतु के रूप में और राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा को संपर्क भाषा का स्थान दिया गया है।

भूमिका :-

भारत बहुभाषी देश हैं। हिंदी भाषा भारतीय जनता के बीच और राष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में जगह ले चुकी है। हिंदी भाषा की विशेषता यह है कि उसे जैसे बोलते हैं वैसे लिखते हैं। जैसे लिखते हैं, वैसे पढ़ते हैं। इसके साथ–साथ अन्य भाषा से अपेक्षा सुविधाजनक और आसानी भाषा है। इसके साथ लोक भाषा की विशेषताओं से संपन्न है।

संपर्क भाषा वह भाषा होती हैं कि किसी भी क्षेत्र प्रदेश या देश–देशों के बीच, लोगों के बीच पारस्परिक संबंध स्थापित करने के माध्यम का काम करते हैं। जो एक दूसरे की भाषा ही नहीं जानते तो विचार विनिमय नहीं होते हैं। इसलिए भाषा–भाषी वर्गों के प्रयोग किया जाता है। उसे संपर्क भाषा कहलाती है। भाषा ऐसी साधना है। मनुष्य अपने विचार विनिमय कर सकता है। अपने आसपास के लोगों के साथ विचार अदान प्रदान करते हैं। भारत में विचार विनिमय करने का काम हिंदी भाषा संपर्क सेतु के रूप में कर रही है।

संपर्क भाषा की परिभाषा और स्वरूप :-

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार संपर्क भाषा की परिभाषा और स्वरूप निम्नलिखित हैं :-

डॉ. पूरण चंद टंडन कहां है कि :– "संपर्क भाषा से तात्पर्य उस भाषा रुप से है। जो समाज के विभिन्न वर्गों या निवासियों के बीच संपर्क के काम आती है। इसी दृष्टि से भिन्न–भिन्न बोली बोलने वाले अनेक वर्गों के बीच हिंदी एक संपर्क भाषा है और अन्य कई भारतीय क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न भाषाएं बोलने वालों के बीच भी संपर्क भाषा है" ।[1]

डॉ. महेंद्र सिंह राणा ने भी अपने पुस्तक प्रयोजनमूलक हिंदी के आधुनिक आयाम पुस्तक में बताया है कि :– "परस्पर अबोधगम्य भाषा या भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से जो व्यक्ति, दो राज्य कोई राज्य और केंद्र तथा दो देश संपर्क स्थापित कर पाते हैं। उस भाषा विशेष को संपर्क भाषा साधक संपर्क भाषा कहा जाती है" ।[2]

डॉ. दंगल झलटे के द्वारा प्रतिपादित परिभाषा उल्लेखनीय है कि :– "अनेक भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति–व्यक्ति, राज्य–राज्य, राज्य–केंद्र तथा देश–विदेश के बीच संपर्क स्थापित किया जाता है। उसे संपर्क भाषा की संज्ञा दी जा सकती है" ।[3]

हिन्दी संपर्क भाषा की परिभाषा और स्वरूप :-

हिन्दी भाषा आदिकाल से ही भारत देश में संपर्क भाषा के रूप में काम करके आ रही थीं और आज भी संपर्क भाषा काम कर रहीं हैं। इसके बारे में विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किया हैं।

डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार :– "हिंदी साहित्य का आरंभ करने वाले सिद्धो, जैनों और नाथपंथी योगियों ने आठवीं से 12वीं शताब्दी तक समस्त भारत में घूम–घूम कर ऐसी संपर्क भाषा का विकास किया, जिसमें भारत के सभी भाषाओं के बहु–प्रचलित शब्दों के लिए प्रवेश द्वारा खुला हुआ था। यह समन्वित भाषा थी हिंदी" ।[4]

आदि काल से ही हिंदी उत्तर–दक्षिण, पूरब–पश्चिम और विभिन्न धर्मों को विभिन्न वर्गों को जोड़ने वाली कड़ी रही है –आदिकालीन हिंदी साहित्य का अधिकांश भाग हिंदीतर भागों और लोगों द्वारा रचा गया साहित्य, पउम चरिउ ग्रंथ को स्वयंभू ने महाराष्ट्र और कर्नाटक में रचना किया, तो अब्दुल रहमान ने पंजाब में संदेश रासक लिख लिया, पूर्व में सिद्ध साहित्य, पश्चिम में नाथ साहित्य और अधिकांश भक्ति साहित्य, पश्चिम में नाथ साहित्य महाराष्ट्र उड़ीसा तथा असम में लिखा गया' ।[5]

इसके अलावा भारत में 'वल्लभाचार्य रामानुजाचार्य निंबार्काचार्य और रामानंद आदि ने संपर्क भाषा के महत्व को समझा और भरसक इसे हिंदी को संप्रेषण का माध्यम बनाया। दक्षिण के राष्ट्र कूटो और यादवों के राज्य में हिंदी का प्रचार–प्रसार हुआ था। विजय नगर दरबार में भी हिंदी को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ था। मछली पट्टण के नादेल्ला पुरुषोत्तम कवि ने भी 32 हिंदी नाटकों की रचना की। अलाउद्दीन की दक्षिण विजय तथा मोहम्मद तुगलक के राजधानी परिवर्तन से वहां दक्किनी हिंदी का उदय हुआ' ।[6] इस तरह पूरे भारत में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित हुई। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों के विरुद्ध और मजबूत भारत को एक सूत्र में बांधने के कड़ी हिंदी सम्पर्क भाषा बन गई।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने, :– संपर्क भाषा के प्रयोग को "तीन स्तरों पर विभाजित किया है कि यह तो वह भाषा जो एक राज्य से दूसरे राज्य के राजकीय पत्र व्यवहार में काम आए, दूसरे वह भाषा जो केंद्र और राज्यों

के बीच पत्र–व्यवहारों का माध्यम हो और तीसरे वह भाषा जिसका प्रयोग एक क्षेत्र प्रदेश का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र, प्रदेश के व्यक्ति से अपने निजी कामों में करें।

आजादी की लड़ाई लड़ते समय हमारी कामना थी कि स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्रभाषा होगी जिससे देश एकता के सूत्र में सदा के लिए जुड़ा रहेगा। महात्मा गांधी जी, लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाष चंद्र बोस आदि सभी महापुरुषों ने एकमत से इसका समर्थन किया, क्योंकि हिंदी हमारे सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक आंदोलनों की ही नहीं अपितु राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाधीनता आंदोलन की अभिव्यक्ति की भाषा भी"।[7]

स्वतंत्रता पूर्व पूरे भारत को एक सूत्र में पाने के लिए महात्मा गांधी जी और अनेक नेता लोग हिंदी भाषा को संपर्क भाषा मान लिया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हिंदी भाषा और विभिन्न भाषा भाषी लोगों के बीच संपर्क स्थापित करने का साधन बनाया। महात्मा गांधी जी ने हिंदी भाषा के विचार में कहा है कि, "प्रांतीय भाषा या भाषाओं के बदले में नहीं बल्कि उनके अलावा एक प्रांत से दूसरी प्रांत का संबंध जोड़ने के लिए सर्वमन्य भाषा की आवश्यकता है और ऐसी भाषा तो एक मात्र हिंदी हिंदुस्तानी ही हो सकती है"।[8]

एक राष्ट्र का निर्माण के लिए जन, संस्कृति और भूभाग की आवश्यकता है। उसके साथ भाषा की भी बहुत जरूरी है और एक राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा की भी जरूरत है। वैसे संपर्क भाषा की भी जरूरत है। मनुष्य अपने विचार विनिमय करने के लिए भाषा की बहुत आवश्यक है। पूरे भारत देश के जनता को एक दूसरे के संपर्क करने के लिए या व्यवहार करने के लिए एक भाषा की बहुत आवश्यक है वैसे भारत देश में हिंदी संपर्क भाषा का काम कर रही है।

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार– "पुराने जमाने से ही हिंदी भाषा बोलचाल की भाषा हिंदी ही थी। अंग्रेजी अपनी शासन स्थापित करने के बाद भी अंग्रेजी ऑफिसर भारत की आम जनता के संपर्क स्थापित करने के लिए हिंदी भाषा को अपना साधन बनाया। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए क्रांतिकारियों ने हिंदी भाषा को अपना हथियार बनाकर पूरे भारत में फैलाया"।[9]

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी भाषा को ना केवल उपयोग किया बल्कि उसके प्रचार–प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गैर हिंदी राज्यों एवं दक्षिण भारत में प्रचार–प्रसार करने में नेताओं की सबसे बड़ी भूमिका निभाई है। इसीलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दक्षिण में बहुत सारी समस्थओं का स्थापित किया गया है।

हिंदी भाषा को प्रचार–प्रसार करने के लिए महात्मा गांधी जी नेदक्षिण भारत में, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का स्थापना मद्रास में किया था।

संपर्क भाषा को मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा के रूप में देखा जा सकता है। क्योंकि संपर्क भाषा भी एक भाषा ही होती है। भाषा विभिन्न भाषा वासियों के साथ संपर्क स्थापित करने का काम करती है। "भारत देश बहुभाषी देश है। इस देश में लगभग 1650 भाषाएं बोली जाती है। इसमें कुछ मतानुसार लगभग 1455 भाषाएं ऐसी है कि जिन्हें 10 हजार से भी कम बोलने वाली भाषा है। वर्ष 2001 की जनगणना के आधार पर हिंदी भाषा और उसकी बोलियों को बोलने वाली जनसंख्या ज्यादा है। संवैधानिक मान्यता प्राप्त 22 भाषाएं हैं। फिर भी 100 से अधिक जो आठवी अनुसूची में नहीं है। भारत के बहुसंख्य भाषायी बोलने वाले की जनसंख्या और भौगोलिक दृष्टि से भी विचार किया तो हिंदी भाषा का महत्व ज्यादा हैं। क्योंकि ज्यादा भूभाग में बोलने वाली भाषा हैं हिंदी"।[10] इसी कारण देश की भाषाओं में कुछ वाद विवाद के बावजूद, हिंदी भाषा को प्रतिनिधित्व भाषा माना

गया है।

केंद्र में हिंदी भाषा महत्त्व उसके राज्य भाषा और संपर्क भाषा के रूप में सिद्ध हो चुका है। यहां तक कि व्यापार जनसंचार तथा राजनीति की दृष्टि से भी हिंदी भाषा को संपर्क भाषा पद मिल चुका है। हिंदी भाषा के विरोध के साथ साथ हिंदी संपर्क भाषा का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

जनगणति के कुछ विचार के आधार पर "वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के लगभग 41, 3/लोगों द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाता है Times of India अखबार के 19 जून 2014 अंक के अनुसार 1971 से मातृ भाषा रूप में हिंदी बोलने वाले लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है। कुल जनसंख्या में हिंदी बोलने वाले की संख्या 1971 में 36,99/ थी जो 1981 में बढ़कर 38.74/और 1991 में 39.29/हो गई हैं।"[11] इसके आधार पर 2023 तक और भी ज्यादा हिंदी बोलने वालों की संख्या बढ़ गई है।

भारत के औद्योगिक प्रतिष्ठानों के आधार पर बने नगर और महानगर में भारत की संपर्क हिंदी भाषा को ही माना है। दक्षिण और उत्तर भारत की जनता हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया। जैसेकि जब पूरे भारत में प्रवास करने के लिए आम जनता हिंदी भाषा को अपना चुके हैं। इसलिए हिंदी भाषा ही भारत की संपर्क भाषा है।

आधुनिक जगत में बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ–साथ हिंदी भाषा को जन संपर्क भाषा बनाने का काम इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का बहुत बड़ा योगदान है। क्योंकि आजकल मनोरंजन के लिए बहुत भाषाओं को सीख रहे हैं। उसके साथ अपने काम को ढूंढने के लिए लोग बहुत भाषा सीख चुके हैं। वैसे हिंदी भाषा की सिनेमा बहुत आकर्षक होने के नाते देश के गांव–गांव में हिंदी गीत और सिनेमा आदि के कारण हिंदी भाषा संपर्क बहुत हो गई है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :– "हिन्दी इसलिए बड़ी नहीं है कि हमें से कुछ इस भाषा में कहानियां कविता लिख लेते हैं या सभा मंचों पर बोल लेते हैं। वह इसलिए बड़ी है कि कोटि–कोटि जनता के हृदय और मस्तिष्क की भूख मिटाने में भाषा इस देश का सबसे बड़ा साधन हो सकती है। यदि देश में आधुनिक ज्ञान–विज्ञान को हमें जनसाधारण तक पहुंचाने हेतु इसी भाषा का सहारा लेकर हम काम कर सकते हैं"।[12]

हिंदी भाषा को जाने अनजाने में लोग अपना चुके हिंदी है। भाषा क्षेत्र में भी हिंदी गीत बहुत लोकप्रिय हो गए हैं। साहित्य क्षेत्र में भी हिंदी भाषा के उपन्यासों को पढ़ने के लिए या साहित्य को जानने के लिए हिंदी भाषा को अपनाया है। दक्षिण में हिंदी भाषा को प्रचार प्रसार करने के लिए महात्मा गांधी जी ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का स्थापना किया था चेन्नई में, हिंदी भाषा को विरोध करते हुए भी प्रचार सभा का केंद्र चेन्नई में ही है। वहां के बच्चे ज्यादा परीक्षा ले रहे हैं और प्रचार–प्रसार भी हो रहा है। दक्षिण भारत में हिंदी संपर्क और साहित्य क्षेत्र में मजबूत बनाने के लिए बहुत सारे लेखक अपने योगदान दिए हैं। श्री बालेश्वर रेड्डी, नारायण रमन, नायर आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष :–

हिंदी भाषा भारत का संपर्क सेतु का काम कर रही है। भारत में स्वतंत्र पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भी हिंदी को संपर्क भाषा का स्थान मिला है। भारत बहुभाषी देश होने के नाते एक सूत्र में बांधने का साधन हिंदी भाषा में है। साहित्य क्षेत्र में भी और औद्योगिक क्षेत्र में हिंदी भाषा संपर्क सेतु बन चुकी है। आधुनिक जगत में

बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ दूरदर्शन फिल्म रेडियो और टेलीविजन आदि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण हिंदी भाषा और भी ज्यादा तेजी से देश–विदेश यहां तक कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंच चुकी है। हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा भारत का संपर्क सेतु का काम बहुत अच्छे से कररही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आजीविका साधक हिंदी, पूरण चंद– पृष्ट संख्या–151
2. प्रयोजनमूलक हिंदी के आधुनिक आयाम, महेंद्र सिंह राणा – पृष्ट संख्या –79
3. संपर्क भाषा के रूप में हिंदी– https://hindisarang.com-Sampark–पृष्ट संख्या–53
4. हिंदी भाषा, मुकेश अग्रवाल –पृष्ट संख्या –131.
5. संपर्क भाषा के रूप में हिंदी– https://hindisarang.com&Sampark.
6. हिंदी भाषा मुकेश अग्रवाल –पृष्ट संख्या 132.
7. https//alshindi.com.in&Sampark&bhas
8. संपर्क भाषा–9 Feb-2022-http/www-ppup.ac.in.

9,10. संपर्क भाषा के रूप में भारत में हिंदी – विश्व हिंदी जन– जून –24–2021–रश्मि रानी।

11. Times of India अखबार के 19 जून 2014 अंक।
12 संपर्क भाषा के रूप में भारत में हिंदी – विश्व हिंदी जन– जून –24–2021–रश्मि रानी।
13. https://hi. m. Wiki pedia.org.Wiki.
14. देश की आत्मा हिंदी My GOV Blogs मेरी सरकार हिंदी दिवस 14 Sept 2017.
15. भारत की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी मजबूती–wiki Books.
16. हिंदी राष्ट्रीय संपर्क की भाषा बन चुकी है– wikiBooks.

Dr. M.R. Siddagangamma

Mob:7760337553

Email : mamatha14-mr@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 117-124

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचंद : राष्ट्रवाद और राष्ट्र–भाषा

डॉ. एस.बी.एन. तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर, आर्यभट्ट कालेज, दिल्दी विश्वविद्यालय।

प्रेमचंद राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के कथाकार थे। धनपत राय या नवाबराय से प्रेमचंद नामकरण का कारण भी यही है। 1909 में 'सोजे वतन' का प्रकाशन हुआ था। नवाबराय की इस पुस्तक में स्वदेश प्रेम की पाँच कहानियाँ थी। परिणाम हुआ कि जिलाधीश ने सोजेवतन की प्रतियों में सिडिशन भरा हुआ पाया साथ ही यह फैसला हुआ कि "मैं सोजे वतन की सारी प्रतियाँ सरकार के हवाले कर दूँ और साहब की अनुमति के बिना कुछ न लिखूँ।" मदन गोपाल ने लिखा है कि धनपतराय कितनी दुविधा में होंगे, इसका पता उस बात से लगता है कि जमाना के मार्च 1910 के अंक में उनकी एक कहानी 'गुनाह का अग्निकुंड' छपी। उसके अंत में लेखक का नाम दिया गया था 'अफसाना कुहन'। कहना न होगा कि इस महान लेखक की रचना–प्रक्रिया सत्तात्मक दमन से टकराकर विकसित हुई। 1905 के बंग–विभाजन ने उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा और यह जुड़ाव आजीवन बना रहा। प्रेमचंद ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समर्थन में पहला लेख 1905 में लिखा। ज़काउल्ला देहलवी नामक एक व्यक्ति ने कांग्रेस की नीतियों की आलोचना की थी। उसके जवाब में प्रेमचंद ने 'जमाना' में यह लिखा था कि कांग्रेस ही वह जगह है जहाँ देशभक्त इकट्ठे हो सकते है। यह घटना उनके लिए कितनी बड़ी थी कि उन्होंने बहुत बाद तक इसकी चर्चा की। उन्होंने लिखा कि, "1904 ई0 में बंग भंग के बाद जो ज्वलत राष्ट्रीयता का संचार हमारे जीवन में हुआ, उसका प्रतिबिम्ब प्रत्येक साहित्य में मिलता है। आज महात्मा गांधी के लेखों और भाषणों की और उसी तरह कवींद्र रवीन्द्र की कृतियों की प्रेरणा हर एक एक साहित्य को प्रगती के पथ पर अग्रसर कर रही है।"

प्रेमचंद के राष्ट्रवाद को दो रूपों में समझा जा सकता है। पहला रूप उनके द्वारा विश्लेषित अंग्रेजी राज के स्वरूप से सामने आता है तो दूसरा राष्ट्रीय आंदोलन से उनकी सहानुभूति के आधार पर समझा जा सकता है। कई जगह इन दोनों को अलगाना संभव नहीं है। इसके लिए देश की भाषाई और सांस्कृतिक एकता को बना कर रखने की आवश्यकता थी। उन्होंने लिखा कि "यह बात सभी लोग मानते हैं कि राष्ट्र को दृढ़ और बलवान बनाने के लिए देश में सांस्कृतिक एकता का होना बहुत आवश्यक है। और किसी राष्ट्र की भाषा और लिपि इस सांस्कृतिक एकता का एक विशेष अंग है।" सही अर्थों में वह राष्ट्रभाषा के समर्थक थे ठीक उसी तरह जैसे महात्मा गांधी थे। प्रेमचंद ने लिखा कि "और यह निश्चित बात है कि राष्ट्रीय भाषा के बिना किसी राष्ट्र के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं हो सकती। जब तक भारतवर्ष की कोई राष्ट्रीय भाषा न हो, तब तक वह राष्ट्रीयता का दावा नहीं कर सकता।" अपने उपन्यासों, कहानियों में प्रेमचंद ने पहले रूप की विधिवत प्रस्तुत किया है।

जहाँ तक अंग्रेजी राज के स्वरूप के विश्लेषण की बात है प्रेमचंद ने लिखा कि "इनका डोमिनियन स्टेटस इसके सिवा और कुछ नहीं है। ताल्लुकेदार और राजे इसी तरह गरीबों को चूसते चले जाएँगे। स्वराज्य गरीबों की आवाज है, डोमिनियन गरीबों की कमाई पर मोटे होनेवालो की।"

1916 में जब तबादले के बाद प्रेमचंद गोरखपुर आए, उनका संपर्क यहां दशरथ प्रसाद द्विवेदी और महाबीर प्रसाद पोद्दार से हुआ। दशरथ प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रवादी थे और उनके पत्र 'स्वदेश' का पहला संपादकीय प्रेमचंद ने ही लिखा था। 'स्वदेश का संदेश' लिखते हुए प्रेमचंद ने स्पष्ट किया कि इस पत्र का जन्म एक नवीन युग में हो रहा है जो इस पत्र के लिए संतोष की बात है। यह नवीन दौर इसलिए है क्योंकि 'अब भविष्य में राष्ट्रों के साथ वस्तुओं या पशुओं के जैसा व्यवहार नहीं किया जाएगा। प्रत्येक जाति को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने भाग्य का आप निर्माण करे, वह जिस साम्राज्य के अधीन रहना चाहे रहे, और उसकी अपनी इच्छा हो तो, स्वयं अपना राज्य शासन करे।'

प्रेमचंद का विचार उस समय के शिक्षित राष्ट्रवादी वर्ग का विचार था जिसका कहना था कि यह समय राष्ट्र के निर्माण का समय है। और इसके लिए अन्य बहुत–सी चींजों के साथ राष्ट्रभाषा की भी आवश्यकता है। समय के साथ–साथ प्रेमचंद का राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ाव बढ़ता गया। लेकिन वे कांग्रेस के सदस्य कभी नहीं रहे। प्रेमचंद राष्ट्र निर्माण के लिए राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक समझते थे। उन्होंने लिखा कि "राष्ट्र, वस्तु नहीं. ...वह एक भावना है। करोड़ों स्त्री पुरूषों की संकल्पयुक्त इच्छा पर इस भावना की रचना हुई है। आज अगणित भारतवासी अपने आचार और विचार में इसी भावना को व्यक्त कर रहे हैं। सारा हिन्द एक और अविभाज्य है।" भारत की यह एकता उनको भारतीय संस्कृति और साहित्य में दिखाई दे रही थी। 1934 में प्रेमचंद ने दक्षिण–भारत हिन्दी प्रचार सभा के चतुर्थ वितरणोत्सव के अवसर पर मद्रास में जो दीक्षांत भाषण दिया था उसमें साफ तौर पर उनकी सोच दिखाई देती है। उन्होंने लिखा कि "अगर हम एक राष्ट्र बनकर अपने स्वराज्य के लिए उद्योग करना चाहते हैं तो हमें राष्ट्र–भाषा का आश्रय लेना होगा और उसी राष्ट्र–भाषा से हम अपने रक्षा कर सकेंगे। आप उसी राष्ट्रभाषा के भिक्षु है, और इस नाते आप राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं।" गाँधीजी के गोरखपुर दौरे के बाद उन्होने नौकरी से त्यागपत्र भी दे दिया।

शिवरानी देवी ने लिखा है कि, "सन् 20 की बात है। असहयोग का जमाना था। गाँधीजी गोरखपुर में आये। आप बीमार थे। फिर भी मैं, दोनों लड़के, बाबूजी मीटिंग में गये। महात्मा जी का भाषण सुनकर हम दोनों बहुत प्रभावित हुए। हाँ, बीमारी की हालत थी। विवशता थी। मगर तभी से सरकारी नौकरी के प्रति एक तरह की उदासीनता पैदा हुई।" 16 फरवरी 1921 को प्रेमचंद का इस्तीफा मंजूर हो गया। उसके बाद वे असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। कुछ दिनों तक पोद्दार जी के साथ उनके गाँव मानीराम, जो गोरखपुर के पास है, में रहे। शिवरानी देवी ने लिखा है कि शहर में एक मकान लिया गया था जिसमें चर्खे चलते थे। उसमें कुछ औरतें भी थी। असहयोग आंदोलन में सक्रिय भागेदारी प्रेमचंद का व्यावहारिक पक्ष था। महात्मा गाँधी का प्रभाव उनपर इसीलिए इतना अधिक था। अगर उन्होंने महात्मा गाँधी के प्रभाव में नौकरी छोड़ी तो एक बड़ा कारण गाँधी और उनके विचारों की एकता का था। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में भी इस प्रभाव को शब्दबद्ध किया है।

'हंस' के पहले संपादकीय में उन्होंने लिखा कि 'हंस' के लिए यह परम सौभाग्य की बात है, कि उसका

जन्म ऐसे शुभ अवसर पर हुआ है, जब भारत में एक नये युग का आगमन हो रहा है, जब भारत पराधीनता की बेड़ियों से निकलने के लिए तड़पने लगा है।' प्रेमचंद तत्कालीन राजनीति पर कितनी नजर रखते थे इसकी सूचना इस बात से भी मिलती है कि उन्होंने इसी सम्पादकीय में लिखा कि "न डोमिनियम माँगे मिलेगा, न स्वराज्य। जो शक्ति डोमिनियन छीन कर ले सकती है, वह स्वराज्य भी ले सकती है। इंग्लैण्ड के लिए दोनों समान है। डोमिनयन स्टेटस में गोलमेज–कान्फ्रेस का उलझावा है, इसलिए वह भारत को इस उलझावे में डालकर भारत पर बहुत दिनों तक राज्य कर सकता है।" कहना न होगा कि प्रेमचंद पूर्ण स्वराज्य के पक्षधर थे। पत्नी के जेल जाने का ज़िक्र उन्होने जैनेन्द्र कुमार से किया था। 1930 के आंदलोन में उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने भी बढ़–चढ़कर आंदोलन में हिस्सा लिया। 11 नवम्बर 1931 को लखनऊ में विदेशी कपड़ों की दुकानों की पिकेटिंग करने के चलते उन्हे गिरफ्तार किया गया। इस आंदोलन की वे लगातार समीक्षा भी करते रहे।

नवम्बर 1930 में उन्होने लिखा कि ".....सारांश यह, कि हमें चारो ओर अपनी विजय के लक्षण दिखाई देते हैं, और हम इसी तरह क्षेत्र में डटे रहेंगे, तो निसंदेह हमारी मनोकामना पूरी होगी। सरकार ने जो ये आर्डिनेंस पास किए हैं इन्ही से प्रकट है कि वह अपनी हार स्वीकार कर रही है। जब राजसंस्था अपने ही बनाये हुए कानूनों को पैरों तले रौदना शुरू करे, उसकी दशा उस पागल की दृसी समझनी चाहिए, जो आप ही अपनी देह को दाँतों से काटता है, आप ही अपना मांस नोचता है। ऐसा प्राणी बहुत दिन जीवित नहीं रह सकता।" इस प्रकार, प्रेमचंद ने अंग्रेजी राज की खुलकर आलोचना की, साथ ही साथ कांग्रेस में अपनी गहरी आस्था को भी जगाये रखा। जून 1931 में 'हंस' में उन्होनें लिखा कि "महात्मा गाँधी क्रान्ति नहीं चाहते और न क्रान्ति से आज तक किसी जाति का उद्धार हुआ है। महात्मा जी ने हमें जो मार्ग बतलाया, उससे क्रान्ति की भीषणता के बिना ही क्रान्ति के लाभ प्राप्त हो सकते हैं, लेकिन एक ओर सरकार और उसके पिट्ठू जमींदार और दूसरी ओर हमारे कुछ तेज़दम और जोशिले कार्यकर्ता नादिरशाह बने हुए क्रान्ति के सामान पैदा कर रहे हैं।" गाँधी जी पर प्रेमचंद की आस्था का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है? इसी लेख में उन्होने किसानों को सलाह दिया कि वे 'महात्मा जी को अपना सच्चा नेता मानें और उनके बताए हुए रास्ते से जौ भर भी विचलित न हों।' प्रेमचंद पर गाँधी जी का प्रभाव गहरा था। गाँधी जी में उन्हे भारत का भविष्य दिखाई दे रहा था। उनके विचारों के आगे प्रेमचंद ने किसी को महत्व नहीं दिया।

भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास राष्ट्रभाषा के इतिहास से भी जुड़ा हुआ है। आंदोलन के अखिल भारतीय स्वरूप पकड़ते ही अखिल भारतीय भाषा का सवाल उठ खड़ा हुआ। 1905 में बाल गंगाधर तिलक ने नागरी प्रचारिणी सभा के अधिवेशन में, रमेशचंद्र दत्त की अध्यक्षता में हुआ था,पूरे देश के लिए एकभाषा मान लेने को राष्ट्रीय आंदोलन की संज्ञा दी थी। अंग्रेजी भाषा को यह दर्जा तो मिला था लेकिन यह उनकी ही भाषा थी जिनके खिलाफ आंदोलन चल रहा था। प्रान्तीय भाषाएँ तो अपने रास्ते विकसित हो ही रही थी, उनका साहित्य भी बन रहा था।

राष्ट्रीय आंदोलन भी तो उपनिवेशवाद के खिलाफ खड़ा था और वह इस प्रश्न को गंभीरता से ले रहा था। इसने उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग पर बोली जाने वाली भाषा को राष्ट्रभाषा के लिए उपयुक्त माना। यह भाषा वहाँ की आम बोलचाल की भाषा थी और इसे हिन्दुस्तानी कहा जाता था। 1925 में गाँधीजी के प्रयासों से यही भाषा कांग्रेस पार्टी के संविधान की भाषा बना दी गयी। अखिल भारतीय कांग्रेस के कानपुर के अधिवेशन

में स्वीकार किया गया कि जहाँ तक संभव हो सकेगा, कांग्रेस के व्यवहार की भाषा हिन्दुस्तानी होगी। नेहरू भी इसी पक्ष में थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दुस्तानी को हिन्दू–मुसलमान की साझी संपत्ति कहा था। राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ाव के चलते प्रेमचंद भी इसी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाना चाहते थे। राष्ट्रभाषा के सवाल पर सीधे–सीधे लिखना प्रेमचंद ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के दिनों से शुरू किया। यह समय भाषा के लिहाज से महत्वपूर्ण था भी।

धीरे–धीरे हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का विवाद गहराता जा रहा था। इलाहाबाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। पंडित मदन मोहन मालवीय इसके पहले अध्यक्ष बने। गाँधी जी 1918 में सभा के आठवें अधिवेशन में इसके अध्यक्ष बन गये। उन्होंने इस संगठन को एक नये रूप में ढ़ालने का प्रयास किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक हिन्दी को राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं को लोगों के जीवन में जगह नहीं मिलेगी, स्वराज के सभी प्रयास बेकार हैं। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी और उर्दू दोनों एक ही भाषा है। एक तरफ गांधी हिन्दुस्तानी को राष्ट्रीय दर्जा दिलाने का प्रयास करते रहे तो दूसरी तरफ कुछ पढ़े–लिखे लोग हिन्दी और उर्दू को अलगाते रहे। उत्तर भारत का भाषा–विवाद गहराता गया और धीरे–धीरे इसने सांप्रदायिक रूप ले लिया। असल में इस भाषा विवाद का सांप्रदायिकता से कोई लेना–देना नहीं था। कहना न होगा कि सांप्रदायिकता उस इलाके में भी फैली जहाँ भाषा का कोई विवाद था ही नहीं। बंगाल इसका उदाहरण है।

प्रेमचंद ने इसे अपने ढ़ंग से लिया। सांप्रदायिक एकता राष्ट्रीय आंदोलन को एक बनाए रखने के लिए जरूरी थी। उन्होंने हिन्दुस्तानी का साथ दिया। जून 1935 में हिन्दी साहित्य में राजभाषा बनने की क्षमता का विश्लेषण करते हुए उन्होंने लिखा कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का आधार उसके एतद्कालीन साहित्य की श्रेष्ठता है ही नहीं। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा कि, "हिन्दी के पक्ष में चाहें कोई लोग हीनता समझें मैं तो इसे सौभाग्य समझता हूँ, कि वह उतनी सम्पन्न की भाषा नहीं, जितनी कृषक और मजदूर की है। उतनी तहजीब की नहीं जितनी नित्य जीवन की है।" 1918 में गाँधी जी ने 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का गठन किया था। दिसम्बर 1934 में प्रेमचंद भी इसके एक सम्मेलन में भाग लेने गये। फरवरी–मार्च 1935 के हंस में उन्होने इसका विवरण लिखा। यह उनके राष्ट्रभाषा सम्बंधी सोच का दस्तावेज माना जा सकता है। उन्होंने लिखा कि "हिन्दुस्तानी प्रचार का उद्देश्य यह हर्गिज़ नहीं है कि वह प्रान्तीय भाषाओं का स्थान छीन ले। वह तो अंग्रेजी भाषा का स्थान लेना चाहती है, जो उसने भारतवर्ष में प्राप्त कर लिया है। राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओं में वही संबंध रहेगा, जो प्रांतीय काउंसिलों और भारतीय एसेम्बली में है।–अगर भारत को एक देश न मानकर महाद्वीप मान लें, जिसमें बहुत से देश हैं, तब भी तो हमें एक प्रधान भाषा की जरूरत पड़ेगी ही, जिसमें अन्तर्देशीय व्यवहार किया जा सके।" यह हिन्दी प्रांतीय हिन्दी से अलग थी।

उन्होंने लिखा कि, "हिन्दी में हर एक प्रान्त का साहित्य अवतीर्ण हो तो यह प्रयाग या काशी की हिन्दी न होगी, इस हिन्दी में हर एक प्रान्त की विशेषताएँ अवश्य होंगी। इसकी वाक्य रचना में विविधता आयेगी। इसके कोश में अन्य अपरिचित भाषाओं के शब्द भी आकर जमा होंगे। ऐसी अनेक सामग्रियों में से नयी राष्ट्रभाषा प्रकट होगी। उसका उद्देश्य भी अलग था। प्रेमचंद का विश्वास था कि यह भाषा अंग्रेजी का प्रभुत्व तोड़ेगी। 29 दिसम्बर 1934 में मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी सभा के चतुर्थ उपाधि वितरण समारोह में दीक्षांत भाषण देते हुए प्रेमचंद

ने कहा कि "...जिस दिन आप अँगरेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जायँगे। मुझे याद नहीं आता कि कोई राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त कर सका हो। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है। नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रहता है और उसका शीराजा बिखरने नहीं देती।"

यहाँ भी उन पर राष्ट्रीय आंदोलन हावी रहा। प्रेमचंद सही अर्थों में राष्ट्रभक्त थे। वे राष्ट्र को एक मजबूत आधार देना चाहते थे। 'हंस' में उन्होंने लिखा था कि "भारत की राष्ट्रीयता एक राष्ट्रभाषा पर निर्भर है। राष्टभाषा के बिना राष्ट्र का बोध नहीं हो सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाजिमी है। अगर भारत को एक राष्ट्र बनना है, तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा। अंग्रेजी भाषा का व्यवहार आपद्धर्म है। इसे हम राष्ट्रभाषा का पद नहीं दे सकते। भाषा ही राष्ट्र, साहित्य और संस्कृति का निर्माण करती है, आदर्शों की सृष्टि करती है। संस्कृति में एकरूपता होते हुए भी, एक राष्ट्रभाषा का आधार न रहे, तो राष्ट्र स्थायी नहीं रह सकता।" प्रेमचंद केवल हिन्दी के समर्थक ही नहीं थे। हिन्दी के विकास की उनकी एक योजना भी थी। वह यथार्थ को स्वीकार करने वाले रचनाकार थे। उन्होंने लिखा कि "हमारी हिन्दी भाषा ही अभी सौ बरस की नहीं हुई, राष्ट्र–भाषा तो अभी शैशवावस्था में है, और फिलहाल यदि हम उसमें सरल साहित्य ही लिख सकें तो हमको संतुष्ट होना चाहिए। उसके साथ ही हमें राष्ट्रभाषा का कोष बढ़ाते रहना चाहिए।" साथ ही प्रेमचंद भारत की बहुभाषिकता को स्वीकार कर चलने वाले रचना थे। उनका राष्ट्रवाद इस बात को स्वीकार कर चलता था कि भारत बौद्ध काल से एक राष्ट्र के रूप में रहा है। बीच में भले असंगतियाँ आयी हैं। इसलिए वे पूरे भारतीय साहित्य में एक तरह की एकता देखते थे।

उन्होंने लिखा कि "देश के सभी प्रांतो के साहित्य में आंतरिक एकता भरी हुई है। साहित्यिक रचनाएँ चाहे जिस भाषा में लिखी गई हों, वे एक सूत्र में पिरोई हुई हैं। यह सूत्र कोई नया नहीं, परम्परा से चला आ रहा है। हर एक साहित्य में भगवान व्यास कृष्ण दैपायन की प्रेरणा है। पुराणों की प्रतिध्वनियाँ युग–युग के साहित्य में गूँजती हैं। संस्कृत साहित्य के निर्माताओं की ज्योति ने प्रत्येक प्रान्त के साहित्यकारों को प्रोत्साहन दिया है। प्रेमचंद का विचार था कि आधुनिक साहित्य भी इसी के आधार पर विकसित हुआ है। उसकी जड़ें कहीं न कहीं भारतीय साहित्य की एकता से जुड़ी हैं। उन्होंने लिखा कि "अपने कथा साहित्य ने भी एकसूत्र–रूप हो हरेक प्रान्त के साहित्य को एक श्रृंखला में बाँध लिया है। जातक की कथाएँ किसी न किसी रूप में प्रत्येक प्रान्तीय साहित्य में मिलती हैं। गुणाढ्य की वृहत्कथा और पंचतंत्र के अनुवाद सभी प्रान्तों में प्रेम से अपनाए गये हैं। यह अपनी लोक कथाएँ इस देश की स्वयंभू और जीवन साहित्य हैं और इसका मूल तत्व इस देश की, यहाँ की प्रजा की समान संस्कारी कल्पना में है।" और तब हिन्दी का विकास प्रांतीय साहित्य की एकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। उनका मानना था कि इसी आधार पर सारा देश एक भाषा को स्वीकार कर सकता है। बाद के दिनों में राज भाषा के साथ जो हुआ उसे प्रेमचंद संभवतः पहले देख चुके थे। उन्होंने यही सोचकर लिखा कि "भारतीय साहित्य में मौलिक एकता पहले भी थी और अब भी है, सिर्फ भाषा का परिधान हर प्रांत में पृथक–पृथक रहा। सारा साहित्य एक ही स्थल पर एक ही भाषा द्वारा भारतीयों को मिलने लगे, तो जरूर यह

एकता स्वरूप पाकर दृढ़ बनेगी।"

अतः किस प्रकार हिन्दी को विकसित किया जाये इसके लिए उन्होंने विस्तारपूर्वक अपने विचार रखे। भारत को स्वीकार की जाने वाले हिन्दी प्रांतीय भाषाओं को साधकर ही बनेगी। उसे शुद्ध संस्कृत या अरबी–फारसी से दूर होना होगा। उन्होंने लिखा कि "भारतीय राष्ट्रभाषा कोई भी हो, उसमें हमें प्रत्येक देश भाषा के तत्वों का बल पहुँचाना होगा। भारतीय साहित्य वहीं है, जिसमें प्रान्त–प्रान्त की साहित्य–समृद्धि का सर्वांग सुन्दर सार तत्व हो।" कहना न होगा कि वह जिस हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने के पक्षधर थे वह केवल संपर्क भाषा ही नहीं थी। पूरे देश के साहित्य की भाषा थी। वह केवल बोलचाल की भाषा नहीं थी। वह एक ऐसी सोच थी जिस भाषा में पूरा देश एक ही भाषा में साहित्य की रचना कर सकता था।

उन्होंने लिखा "भारतीय राष्ट्रभाषा कोई भी हो, उसमें हमें प्रत्येक देश भाषा के तत्वों का बल पहुँचाना होगा। भारतीय साहित्य वहीं है, जिसमें प्रान्त–प्रान्त की साहित्य–समृद्धि का सर्वांग सुन्दर सार तत्व हो।" और उनकी दृष्टि में यह भाषा हिन्दी ही थी। उन्होंने स्पष्ट किया कि "हिन्दी को छोड़कर दूसरी भाषा इस देश की हो ही नहीं सकती है। हमें इस वस्तु का भान, इस बात का विश्वास, जितनी जल्दी हो जाय, उतना ही इस देश का भाग्योदय नजदीक आ पहुँचेगा।" और अपनी बात को मजबूत करते हुए उन्होंने लिखा कि "अब हिन्दी, राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वजनमान्य हो चुकी है। महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्र विधाता इसे जीवित राष्ट्रभाषा बनाने का व्रत ले चुके हैं। परन्तु यह भाषा सिर्फ व्यवहार की, आपस के बोलचाल की नहीं, साहित्य की भी होनी चाहिए। सांस्कारिक विनिमय तथा सौन्दर्य दर्शन में भी उसका उपयोग होना चाहिए।"

ऐसे बहुत से मुद्दे हैं जिन पर प्रेमचंद राष्ट्रीय आंदोलन के प्रवक्ता की तरह दिखते है। राष्ट्रभाषा का सवाल भी उनमें से एक है। आर्य समाज के आर्य भाषा सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर लाहौर में प्रेमचंद ने एक भाषण दिया था। यह भाषण 1936 में दिया गया और उसमें उन्होंने ऐसी बहुत सी बातें कहीं जो राष्ट्रीय आदोलन की घोषणाओं से मेल खाती हैं। उन्होंने साफ किया कि यहाँ मेरा उद्देश्य हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास की कथा कहना नहीं है। "हमारे लिए इतना जानना काफी है कि आज हिन्दुस्तान के पंद्रह–सोलह करोड़ के सभ्य व्यवहार और साहित्य की यही भाषा है। हाँ, वह लिखी जाती है दो लिपियों में और उसी एतबार से हम उसे हिन्दी या उर्दू कहते हैं। पर है वह एक ही। बोलचाल में तो उसमें बहुत कम फर्क है।" इसी लेख में उन्होंने दुःख व्यक्त किया था कि "एक तरफ हमारे मौलवी साहबान अरबी और फारसी के शब्द भरते जाते हैं तो दूसरी ओर पंडितगण संस्कृत और प्राकृत के शब्द ठूँस रहे हैं, और दोनों भाषाएँ जनता से दूर होती जा रही हैं।" प्रेमचंद के ये विचार गाँधी जी के काफ़ी निकट हैं। उन्होंने हिन्दी–उर्दू को दो भाषा कहे जाने का विरोध किया था। उनका विचार था कि "हिन्दी उत्तर भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के द्वारा बोली जाने वाली वह भाषा है जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है। उस हिन्दी का नहीं तो अधिक संस्कृतकरण हुआ है नहीं फारसीकरण। इस हिन्दी भाषा की जो मिठास गाँवों में देखने को मिलती है, उसका लखनऊ के मौलवियों और प्रयाग के पंडितों की भाषा में अभाव है।..... हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच किया गया भेद भी झूठा है। यही बात हिन्दी और उर्दू के बारे

में भी सही है। अतः हिन्दुओं को फारसी और मुसलमानों को संस्कृत के शब्दों से परहेज नहीं करना चाहिए। दोनों के मिले–जुले रूप को गंगा और यमुना की तरह बहने देना चाहिए।"

कहना न होगा कि अपने तईं प्रेमचंद ने इस सिद्धांत का पालन कहीं दूर तक किया। फिर भी उन पर 'हंस' में हिन्दुस्तानी के प्रयोग न करने का आरोप लगा। उन दिनों हंस प्रेमचंद और मुंशी जी मिलकर निकालते थे। के.एम. मुन्सी ने लिखा है कि 16 मई 1936 को गाँधीजी ने हंस की हिन्दी के समर्थन में लिखा। उन्होंने लिखा कि "इसका उद्देश्य नयी भाषा को गढ़ना नहीं है बल्कि उस भाषा को स्वीकार करना है जो तीन नामों से जानी जाती है। मैं समझता हूँ कि हंस की भाषा को सही ठहराने का मुंसी का विचार सही था। तमिल या तेलगु से हिन्दी में अनुवाद करते समय संस्कृत के शब्दों का हिन्दी में आना तय है, अरबी से हिन्दी अनुवाद करते समय अरबी के शब्दों का हिन्दी में आना भी उतना ही निश्चित है।"

संदर्भ :–

1. कलम का मजदूर : प्रेमचंद, मदनगोपाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ–64
2. कलम का मजदूर : प्रेमचंद, मदनगोपाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ–64
3. Premchand, his life and work, V.S.Narvane, Vikas publishing house, New Delhi, 198032
4. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–233
5. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–205
6. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–205
7. वहीं, पृ–245
8. प्रेमचंद : विविध प्रसंग, संकलन और रूपांतर–अमृत राय, भाग–2. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962,पृ–22
9. प्रेमचंद : विविध प्रसंग, संकलन और रूपांतर–अमृत राय, भाग–2. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962,पृ–20
10. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–231
11. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–154
12. प्रेमचंद : घर में, शिवरानी देवी प्रेमचंद, आत्माराम एण्ड संस, 1983, पृ–47
13. वही, पृ–53
14. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–243
15. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–244
16. प्रेमचंद : एक कृती व्यक्तित्व, जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1967 पृ–28
17. प्रेमचंद : घर में, शिवरानी देवी प्रेमचंद, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1983, पृ–127
18. प्रेमचंदः विविध प्रसंग,संकलन और रूपांतर–अमृत राय, भाग–2. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962,पृ–66
19. प्रेमचंद : विविध प्रसंग, संकलन और रूपांतर–अमृत राय, भाग–2. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962,पृ–78
20. प्रेमचंद : विविध प्रसंग, संकलन और रूपांतर–अमृत राय, भाग–2. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962,पृ–79
21. राजभाषा हिन्दी, डा. कैलाशचंद भाटिया, वाणी प्रकाशन, 2002, पृ–21
22. Language conflict and National development, Jyotindra Das Gupta, Oxford University Press, Bombay, University of California press1970, page-102

23. Ibid, p-103
24. Ibid, p-112
25. Pilgrimage to Freedom, K.M.Munshi, Vol-1, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1967, p-211
26. प्रेमचंद के विचार, भाग–2, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली 1989, पृ–153
27. प्रेमचंद के विचार, भाग–2, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली 2003, पृ–303
28. कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद दिल्ली, 1982 पृ–118
29. प्रेमचंद के विचार, भाग–2, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली 1989, पृ–276–277
30. साहित्य का उद्देश्य, ...167
31. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–232
32. वहीं, पृ–232
33. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–233–234
34. वहीं, पृ–232
35. वहीं, पृ–232
36. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, पृ–235
37. वहीं, पृ–231
38. कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद दिल्ली, 1982 पृ–72
39. प्रेमचंद के विचार, भाग–2, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली 1989, पृ–75
40. cf Report of The Official Language Commission, pp-275-314
41. Pilgrimage to Freedom, K.M.Munshi,Vol-1, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1967, p-212

मोबाईल 9310309616
sbntiwari@hotmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 125-131

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पृथ्वी पर पांचवां सबसे गर्म वर्ष– 2021 का परिदृश्य

डॉ० वेदप्रकाश, सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष – भूगोल
किसान (पी० जी०) कॉलेज, सिम्भावली जनपद, हापुड़, उत्तर प्रदेश।

सारांश :–

हमारे सौरमंडल में पृथ्वी ग्रह अनोखा और निराला है। यही ऐसा एकमात्र ज्ञात ग्रह है, रहा है, लाखों–करोड़ों वर्षों से पृथ्वी ग्रह जीवन के असंख्य रूपों के साथ मानव जीवन को पनाह दिए हुए है। लेकिन आज मानव ही जीवन के विविध रूपों के साथ पृथ्वी ग्रह को हानि पहुंचा रहा है। मानवीय गतिविधियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण और अनियोजित दोहन के परिणामस्वरूप तापमान में वृद्धि हुई है। जिसके कारण पृथ्वी पर उपस्थित विभिन्न नाजुक संतुलन गड़बड़ा गए है, और परिणाम स्वरूप जलवायु परिवर्तन से तापमान में बहुत तेजी से बढ़ौतरी हुई है। वर्तमान में मानवीय क्रियाकलापों के कारण बढ़ते प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन उत्पन्न विभिन्न खतरे इस ग्रह के रूप को बदलते जा रहा है। बढ़ते तापमान की समस्या मानव रहन–सहन एवं सामाजिक व आर्थिक जीवन को प्रभावित कर रहे बढ़ते तापमान से की छेड़खानी से हुई समस्या के लिए लगभग जहाँ जीवन मुस्करा सौ वर्षों के दौरान की मानवीय गतिविधियों को जिम्मेदार माना जा रहा है।

प्रस्तावना :–

यूरोपियन क्लाइमेट एजेंसी कॉपरनिकस के अनुसार पृथ्वी तापमान की वैज्ञानिक माप के बाद से वर्ष 2021 पांचवां सर्वाधिक गर्म वर्ष रहा है और बीते सात वर्ष सबसे गर्म वर्ष रहे हैं। यह हालत तब दर्ज की गई जबकि पिछले वर्ष पृथ्वी को ठंडा रखने वाला लानीना अत्यधिक प्रभावकारी था। वर्ष 2000 से 2021 तक के वर्ष तापमान के आकलन के बाद से 22 सबसे गर्म वर्षों में शुमार रहे हैं। जाहिर है, तमाम अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के बाद भी तापमान बढ़ने की दर लगातार जारी है। वर्ष 2021 तक पृथ्वी के औसत तापमान में 1.2 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हो चुकी है, जबकि पेरिस समझौते के तहत इस शताब्दी के अंत तक तापमान बढ़ोतरी को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखना है।

इस स्थिति में पेरिस समझौते के तहत रखा गया 1.5 डिग्री सेल्सियस तक तापमान वृद्धि का लक्ष्य बेतुका लगता है क्योंकि वर्ष 2021 में कोविड–19 के असर के बाद भी वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कोई कमी नहीं आंकी गई और वृद्धि दर वर्ष 2021 के बाद से लगातार एक जैसी ही रही है। पिछले वर्ष वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की औसत सांद्रता 414 पीपीएम (पार्ट्स पर मिलियन) के रिकार्ड स्तर तक पहुंच गई, जबकि पूर्व औद्योगिक काल में इसकी सांद्रता 280 पीपीएम थी। दूसरी प्रमुख ग्रीनहाउस गैस मेथैन

की वायुमंडल में उत्सर्जन दर एक दशक के भीतर ही तीन गुना बढ़ चुकी है। इन सभी आंकड़ों से इतना तो स्पष्ट है कि वायुमंडल में ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने के कोई भी प्रभावी कदम नहीं उठाए जा रहे हैं।

महासागरों के लिए भी सबसे गर्म वर्ष :–

एडवांसेज इन ऐटमॉस्फेरिक साइंसेज नामक जर्नल के नए अंक में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार, सभी महासागरों के ऊपरी 2,000 मीटर के हिस्से का तापमान पिछले वर्ष जितना दर्ज किया गया। उतना इससे पहले कभी नहीं मापा गया। इस अध्ययन को अमेरिका के कोलोराडो स्थित नेशनल सेंटर फॉर ऐटमॉस्फेरिक रिसर्च के वैज्ञानिकों ने किया है। महासागरों के तापमान का यह रिकार्ड पिछले 6 वर्षों से लगातार ध्वस्त होता जा रहा है यानि महासागर लगातार गर्म होते जा रहे हैं। इसका एकमात्र कारण मानव द्वारा ग्रीनहाउस गैसों का निर्बाध उत्सर्जन है, जिससे पृथ्वी और वायुमंडल गर्म हो रहा है। पिछले 50 वर्षों के दौरान इस तरह उत्पन्न अतिरिक्त गर्मी में से 90 प्रतिशत का अवशोषण महासागरों द्वारा किया जाता है और इससे वे गर्म होते रहते हैं। महासागरों के तापमान का वैज्ञानिक परिमापन वर्ष 1955 से शुरू किया गया था। वर्ष 2021 में महासागरों के सबसे ऊपर के 2,000 मीटर के हिस्से का ऊष्मामान 235 जेत्ताजूल्स (जेत्ता–1021) था, जो वर्ष 2020 की तुलना में 14 जेत्ताजूल्स अधिक था। पढ़ने में 14 जेत्ताजूल, भले ही छोटी संख्या लगती हो, पर ऊष्मा की यह मात्रा दुनियाभर में पैदा की जाने वाली कुल बिजली द्वारा उत्पन्न ऊष्मा से 145 गुना अधिक है।

दुनियाभर में जितनी कार्बन डाइऑक्साइड का वायुमंडल में उत्सर्जन होता है, उसमें से एक–तिहाई से अधिक महासागरों में अवशोषित होती है। इस कारण महासागरों का पानी अम्लीय होता जा रहा है। पानी के अम्लीय होने पर सबसे अधिक प्रभाव प्रवाल भित्ति पर पड़ता है, जिसमें महासागरों में मिलने वाली कुल जातियों में से एक–चौथाई से अधिक का आवास है और दुनिया की 50 करोड़ से अधिक आबादी अपने भोजन के लिए इन्हीं जातियों पर निर्भर करती है। महासागरों में मिलने वाली दूसरी जातियां भी पानी की अम्लीयता से प्रभावित होती हैं।

महासागरों के गर्म होने के कारण भयंकर तूफ़ान, शक्तिशाली चक्रवातों और अत्यधिक बारिश की घटनाएं बढ़ जाती हैं और पिछले कुछ वर्षों से ऐसा हो भी रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार तापमान वृद्धि का सबसे सीधा उदाहरण चरम प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती संख्या है। पर दुनियाभर में इसको लेकर कोई ठोस कदम नहीं उठाए जा रहे हैं। महासागरों का तापमान बढ़ने पर पानी का घनत्व कम होने लगता है और इसका दायरा बढ़ता है। इस कारण यह ग्रीनलैंड और दक्षिणी ध्रुव पर अपेक्षाकृत अधिक क्षेत्रों में फैल रहा है जिससे इन क्षेत्रों के बर्फ से ढके आवरण तेजी से पिघल रहे हैं और अनुमान है कि इससे प्रतिवर्ष लगभग 1 खरब टन बर्फ पिघल कर महासागरों में मिल जाती है। इससे महासागरों का तल पहले से अधिक ऊंचा हो रहा है। महासागरों का तल ऊंचा होने के कारण सागर तटीय क्षेत्र धीरे–धीरे पानी में डूब रहे हैं।

चरम पर प्राकृतिक आपदाएं :–

वर्ष 2021 में दुनियाभर के 400 से अधिक मौसम आकलन केंद्रों ने ऐसा तापमान रिकार्ड किया है जो

उस स्थान के लिए अभूतपूर्व था यानी ऐसा तापमान पहले नहीं देखा गया था। पिछले वर्ष ही पृथ्वी पर मापा गया अब तक का सबसे अधिक तापमान भी रिकार्ड किया गया। मैक्सीमिलियनो हेरेरा नामक संस्था पिछले 30 वर्षों से हरेक वर्ष ऐसे स्थानों का आकलन करती है जहां सामान्य से कम या अधिक तापमान मापा जाता है। इस संस्था द्वारा हाल में प्रकाशित बुलेटिन के अनुसार इतने अधिक मौसम आकलन केंद्रों पर तापमान के रिकार्ड टूटने की घटना के पहले कभी नहीं दर्ज की गई।

गर्मी के तापमान का रिकार्ड ध्वस्त होना जलवायु परिवर्तन और तापमान वृद्धि के इस दौर में एकदम सामान्य हो चला है और यह सिलसिला पूरी दुनिया में चल रहा है। पिछले वर्ष 10 देशों ओमान, संयुक्त अरब – अमीरात, कनाडा, अमेरिका, मोरक्को, तुर्की, ताइवान, इटली, तुनिशिया और डॉमिनिका में ऐसे तापमान मापे गए जो उस देश में पहले कभी नहीं मापे गए थे। दुनिया के 107 देशों में वर्ष 2021 के किसी न किसी महीने में उस महीने का औसत तापमान ध्वस्त हुआ और 5 देश ऐसे हैं जहां ठंडक का रिकार्ड भी ध्वस्त हो गया। अमेरिका के फर्नेस क्रीक में 9 जुलाई 2021 को तापमान 54.4 डिग्री सेल्सियस था, जो पृथ्वी पर तापमान का जब से वैज्ञानिक आकलन किया जा रहा है उनमें सबसे अधिक था, यानी पूरी दुनिया में यह तापमान कभी मापा नहीं गया था।

तापमान के नए रिकार्ड के कुछ 6 जून 2021 को संयुक्त अरब अमीरात के स्विएहन में 51.8 डिग्री सेल्सियस, 16 जून 2021 को ओमान के जोबा में 51.6 डिग्री सेल्सियस, 11 अगस्त 2021 को तुनिशिया के कैरोवन में 50.3 डिग्री सेल्सियस, 29 जून 2021 को कनाडा के लितों में 49.6 डिग्री सेल्सियस, 10 जुलाई 2021 को मोरक्को के सीडी शिनाने में 49.6 डिग्री सेल्सियस, 20 जुलाई 2021 को तुर्की के सिजे में 49.4 डिग्री सेल्सियस, 20 जुलाई 2021 को इटली के सायराक्यूज में 48.8 डिग्री सेल्सियस, 1 अगस्त 2021 को ताइवान के तन्नाली में 40.6 डिग्री सेल्सियस और 12 अगस्त 2021 को डॉमिनिका के केनफील्ड में 35.8 डिग्री सेल्सियस। ये सभी तापमान उदाहरण हैं :–

इन देशों में अब तक नहीं मापे गए थे और इटली में मापा गया 48.8 डिग्री सेल्सियस तापमान पूरे यूरोप के लिए एक नया रिकार्ड है। पूरे यूरोप और चीन के लिए उच्च तापमान की दृष्टि से वर्ष 2021 अभूतपूर्व था। उच्च तापमान के कारण जंगलों में आग की घटनाएं इटली, ग्रीस और तुर्की में सामान्य से अधिक रहीं। अमेरिका के कैलिफोर्निया में डिक्सी के जंगलों की आग पूरे मानव इतिहास में जंगलों में आग लगने की दूसरी सबसे बड़ी घटना है।

बीते वर्ष 2021 में केवल तापमान ही नहीं बल्कि चरम मौसम के अनेक रिकार्ड ध्वस्त हुए थे। चीन के लिए वर्ष 2021 सबसे गर्म वर्ष रहा था पर गर्मी से अधिक चर्चा बारिश को लेकर हुई। जुलाई 2021 में चीन के हनान प्रांत में केवल तीन दिनों के भीतर ही इतनी बारिश दर्ज की गई थी, जितनी पूरे वर्ष के दौरान होती है। इसके बाद चीन के बड़े हिस्से को बाढ़ की विभीषिका झेलनी पड़ी थी और जान–माल की अभूतपूर्व तबाही देखी गई। वर्ष 2021 में जून और सितम्बर के महीनों में अफ्रीका के अनेक देशों में तापमान के मासिक औसत तापमान के रिकार्ड ध्वस्त हो गए। अलास्का और साइबेरिया में भी तापमान के नए रिकार्ड स्थापित होते रहे तो दूसरी तरफ

फरवरी 2021 के महीने में अमेरिका के टेक्सास में सर्दी ने नए रिकार्ड स्थापित किए। अमेरिका और कनाडा में गर्मी के लगातार नए रिकार्ड बने और कई स्थानों पर 5 डिग्री सेल्सियस से बड़े अंतर से रिकार्ड ध्वस्त हुए।

वैज्ञानिकों के अनुसार, इस तरह लगातार बढ़ती चरम मौसम की घटनाएं जलवायु परिवर्तन और तापमान वृद्धि का नतीजा हैं और यदि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती नहीं की गई तो इस तरह की घटनाएं पूरी दुनिया में बढ़ती रहेंगी। इतना तो तय है कि तापमान वृद्धि का सिलसिला आगे भी चलता रहेगा। वर्ष 2021 से पहले के 7 वर्षों में से 6 वर्ष हमारे इतिहास के सबसे गर्म रहे हैं।

अत्यधिक गर्मी से नहीं बल्कि अत्यधिक सर्दी से अधिक मौतें :–

हमारे देश में लू या फिर अत्यधिक गर्मी से होने वाली मौतें खबर बनती हैं, पर अत्यधिक सर्दी से मरने की खबरें नहीं आतीं। जब से तापमान वृद्धि पर चर्चा की जा रही है तभी से इसके प्रभावों में सबसे पहले अत्यधिक गर्मी से मरने वालों की चर्चा की जाती है। तापमान वृद्धि के प्रभावों से लोगों को बचाने के लिए भी केवल गर्मी से बचाने की योजनाएं बनती हैं। इन सब योजनाओं और आकलनों से परे वर्ष 2015 से लगातार ऐसे अध्ययन प्रकाशित किए जा रहे हैं जिनसे पता चलता है कि अत्यधिक गर्मी की तुलना में अत्यधिक सर्दी के कारण असामयिक मृत्यु कई गुना अधिक होती है।

सऊदी अरब स्थित किंग अब्दुल्ला यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी के शोधार्थी विजेंदर इंगोले ने पुणे शहर में होने वाली मौतों का आकलन कर बताया है कि तापमान में अत्यधिक परिवर्तन के कारण पुणे कुल 6.5 प्रतिशत मौतें होती हैं. इसमें अत्यधिक सर्दी के कारण 5.72 प्रतिशत मौतें और अत्यधिक गर्मी के कारण महज 0.84 प्रतिशत मौतें होती हैं। विजेंदर इंगोले ने इस अध्ययन के लिए पुणे शहर में जनवरी 2004 से दिसम्बर 2012 तक होने वाली दैनिक पंजीकृत मौतों और तापमान का विश्लेषण किया। हमारे देश में यह इस तरह का पहला अध्ययन है।

विजेंदर इंगोले के अनुसार पुणे शहर के तापमान में अत्यधिक परिवर्तन से होने वाली मौतों का यदि पूरे भारत की आबादी को लेकर विश्लेषण किया जाए तब कहा जा सकता है कि देश में इस तरह से होने वाली मौतों का अकिड़ा 7.3 प्रतिशत है – इसमें से 6.83 प्रतिशत मौतें अत्यधिक सर्दी के कारण और 0.49 प्रतिशत मौतें अत्यधिक गर्मी के कारण होती हैं। इस अध्ययन के अनुसार तापमान में अत्यधिक परिवर्तन के कारण महिलाओं की तुलना में पुरुषों की मृत्यु अधिक होती है तापमान में अत्यधिक बदलाव से पुरुषों की 7.37 प्रतिशत और महिलाओं की महज 5.72 प्रतिशत मृत्यु होती है। पिछले दशक से वैज्ञानिक लगातार आगाह कर रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन और तापमान वृद्धि के कारण तापमान में अत्यधिक बदलाव देखने को मिलेगा और इस कारण इससे संबंधित मौत के आंकड़े बढ़ेंगे। ऐसे अध्ययनों का निष्कर्ष यही निकाला जाता है कि पृथ्वी गर्म हो रही है इसलिए अत्यधिक गर्मी से होने वाली मौतों की संख्या बढ़ेगी। पर वर्ष 2015 के बाद से ऐसे अनेक अध्ययन प्रकाशित किए जा चुके हैं, जो स्पष्ट तौर पर बताते हैं कि अत्यधिक सर्दी के कारण होने वाली मौतों के आंकड़े बढ़ते जा रहे हैं।

मई 2015 में मेडिकल जर्नल लेंसेट में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार अत्यधिक गर्मी की तुलना में

अत्यधिक सर्दी से होने वाली मौतों के आंकड़े 20 गुना अधिक होते हैं। यह अध्ययन लंदन स्कूल ऑफ हाईजीन एंड ट्रॉपिकल मेडिसिन के वैज्ञानिक डॉ. अंतोनियो गस्पर्रिनी के नेतृत्व में किया गया था और इसके लिए 13 देशों में वर्ष 1985 से वर्ष 2012 के बीच होने वाली 7.4 करोड़ मौतों का विस्तृत अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन के अनुसार विश्व में होने वाली कुल मौतों में से 7.71 प्रतिशत मौतें तापमान में अत्यधिक बदलाव के कारण होती हैं – इसमें 7.29 प्रतिशत मौतें अत्यधिक सर्दी के कारण और महज 0.42 प्रतिशत मौतें अत्यधिक गर्मी के कारण होती हैं।

लेंसेट प्लेनेटरी हेल्थ नामक जर्नल के जुलाई 2021 अंक में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार दुनियाभर में प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख अतिरिक्तं मौत केवल तापमान संबंधी कारणों से होती है। हालांकि दुनियाभर में अत्यधिक गर्मी से होने वाली मौतों की संख्या हरेक क्षेत्र में बढ़ रही है पर अत्यधिक सर्दी के कारण अधिक मौतें होती हैं। इस अध्ययन को 43 देशों से वर्ष 2000 से 2019 के दौरान प्राप्त किए गए आंकड़ों के आधार पर किया गया है । इस दौरान पृथ्वी का तापमान औसतन 0.26 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक बढ़ा और दुनिया में होने वाली कुल मौतों में से 9.43 प्रतिशत का कारण तापमान था। हरेक एक लाख आबादी में से 74 अतिरिक्त मृत्यु तापमान में बदलाव के कारण होती है। इसमें से अधिकतर का कारण अत्यधिक सर्दी है। इस पूरी अवधि के दौरान अत्यधिक सर्दी से होने वाली मौतों में 0.51 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि अत्यधिक गर्मी के लिए यह आंकड़ा 0.21 प्रतिशत है। तापमान के कारण होने वाली आधी मौतें एशिया, विशेष तौर पर पूर्वी और दक्षिणी एशिया में होती हैं। अत्यधिक गर्मी के कारण प्रति लाख आबादी में होने वाली मौतों के संदर्भ में यूरोप सबसे आगे है जबकि अत्यधिक सर्दी से होने वाली मौतों के मामले में सहारा रेगिस्तान के दायरे में फैले अफ्रीकी देश हैं। इस अध्ययन को ऑस्ट्रेलिया स्थित मोनाश यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने किया है।

लेंसेट के अगस्त 2021 अंक में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार दुनिया में वर्ष 2019 के दौरान लगभग 17 लाख मौतें केवल तापमान संबंधित कारणों से हुई अत्यधिक गर्मी की तुलना में अत्यधिक सर्दी से होने वाली मौतों की संख्या अधिक है। ऐसे कारणों से दुनिया के संदर्भ में प्रति एक लाख आबादी पर 7.98 से 35.1 प्रतिशत के बीच मृत्यु आंकी गई है। इस अध्ययन को यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन के वैज्ञानिक कैट्रिन जी बुर्कार्ट के नेतृत्व में किया गया है।

बढ़ रही हैं आसमान से बिजली गिरने की घटनाएं :-

तापमान वृद्धि का असर केवल तापमान पर ही नहीं पड़ रहा है बल्कि अनेक रूपों में इसके परिणाम सामने आ रहे हैं। आसमान से बिजली गिरने की घटनाएं भी बढ़ रही हैं। उत्तरी ध्रूव के ऊंचे इलाकों में बिजली गिरने की घटनाएं बहुत कम दर्ज की जाती थीं क्योंकि वहां चारों तरफ बर्फ के मोटे आवरण के कारण हवा में नमी कम रहती थी। पर पिछले कुछ वर्षों से पृथ्वी के गर्म होने की औसत दर की तुलना में उत्तरी ध्रुव के गर्म होने की दर तीन गुना अधिक हो गई है। इससे वहां की बर्फ का आवरण तेजी से पिंघलने लगा है जिससे वाष्पीकरण की दर बढ़ गई है और अब वहां की हवा में भरपूर नमी का समावेश हो गया है और तापमान भी बढ़ने लगा है। इससे बिजली गिरने की घटनाएं बढ़ गई हैं। वर्ष 2021 के दौरान उत्तरी ध्रुव के ऊंचे इलाकों में बिजली

गिरने की 7,278 घटनाएं दर्ज की गई हैं, जिनकी संख्या इससे पहले के 9 वर्षों के दौरान सम्मिलित तौर पर बिजली गिरने की कुल संख्या के दोगुने से भी अधिक है।

दुनियाभर में बिजली गिरने की घटनाओं का आकलन फ़िनलैंड की संस्था, वैसाला द्वारा प्रकाशित एनुअल लाईटनिंग रिपोर्ट में प्रस्तुत किया जाता है। दुनियाभर में बिजली गिरने की घटनाएं साल दर साल बढ़ती जा रही हैं। भारत में भी प्रतिवर्ष 100 से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु बिजली गिरने से होने लगी है। उत्तरी अमेरिका, यूरोप और दक्षिणी अमेरिका में भी बिजली गिराने की घटनाएं अभूतपूर्व दर से बढ़ रही हैं और इसका कारण तापमान वृद्धि है। वर्ष 2014 में ही वैज्ञानिकों ने बता दिया था कि तापमान जब 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ता है तब बिजली गिरने की घटनाओं में 12 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है।

बिजली गिरने के कारण जंगलों में आग लगने की घटनाएं बढ़ जाती हैं। पिछले कुछ वर्षों से यूरोप, उत्तरी अमेरिका और दक्षिण अमेरिका के जंगलों में आग लगने की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। इनमें से 15 प्रतिशत से अधिक घटनाओं का कारण आसमान से गिरी बिजली होती है। वैसे तो यह प्रतिशत कम लगता है पर वैज्ञानिकों के अनुसार बिजली गिरने के कारण जंगलों में आग लगने की घटना से जंगलों का अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा प्रभावित होता है।

आत्मघाती है तापमान वृद्धि की उपेक्षा :–

विश्व आर्थिक मंच (वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम) ने जलवायु परिवर्तन और तापमान वृद्धि को मानव जाति के लिए 5 सबसे बड़े खतरों में शामिल किया है और इसका अनुमान है कि यदि दुनिया ने इसके नियंत्रण के लिए शीघ्र और प्रभावी कदम नहीं उठाए तो जल्दी ही वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का छठा हिस्सा इससे होने वाले नुकसान की भरपाई में ही खर्च हो जाएगा। विश्व आर्थिक मंच ने यह चिंता भी व्यक्त की है कि वैश्विक महामारी कोविड–19 के प्रभाव से ग्रस्त दुनिया में अमीर और गरीब देशों के बीच का अंतर पहले से अधिक विकराल हो गया है। ऐसे में सबसे अधिक प्रभाव जलवायु परिवर्तन से निपटने के उपायों पर ही पड़ेगा। तापमान वृद्धि हरेक तरीके से धरती के जीवन को प्रभावित कर रही है पर कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में कटौती की कोई आशा नजर नहीं आ रही है। जाहिर है, मनुष्य सही मायने में आत्मघात की तरफ बढ़ रहा है।

निष्कर्ष :–

आज विश्व एक विकट समस्या का सामना कर रहा है। इस समस्या के दुष्परिणाम धीरे–धीरे दुनिया के सामने आ रहे है। बढ़ते तापमान के दुष्परिणाम के कारण विश्व के अनेक देशों का संसार के मानचित्र से अस्तित्व खत्म हो जाएगा। विश्व के विकसित एव विकासशील देशों को साथ मिलाकर इस समस्या का समाधान निकालना होगा यह किसी एक देश या एक व्यक्ति की समस्या नहीं हैं। यह पूरे विश्व की समस्या है और इस का समाधान भी पुरे विश्व को साथ मिलकर करना होगा जिस से हमारी पृथ्वी मानव के अनुकूल और जीवनदायनी बनी रहे।

संदर्भ :–

1. पर्यावरण सरंक्षण, प्रधान सम्पादक डॉ० पुरुषोत्तम खन्ना प्रकाशक राष्ट्रीय पर्यावरण अभियंत्रिकी अनुसन्धान संस्थान (नीरी) नागपुर, प्रथम संस्करण 1996

2. मौसम लेखक श्याम सुंदर शर्मा, प्रकाशक विज्ञानं प्रसार, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
3 . जलवायु परिवर्तन, लेखक डॉ. शिवगोपाल मिश्र, प्रकाशन नीलाभ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013
4. वैश्विक तापन लेखन डॉ. दिनेश मणि, प्रकाशन आई सेक्ट, भोपाल, प्रथम संस्करण 2013
5. पर्यावरण एवं पारस्थितिकी –दृष्टि पब्लिकेशंस, डॉ मुखर्जी नगर, नई दिल्ली
6. पर्यावरण– डी०आर० खुल्लर, जे०ए०सी०एस० राव, Mc Grow Hill Education
7. पर्यावरण भूगोल – डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
8. पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
9. पर्यावण पत्रिका, 2005
10. अविष्कार अप्रैल 2008
11. अविष्कार मार्च 2013
12. अविष्कार फरवरी 2022
13. योजना अप्रैल 2020
12. अनिरुद्ध प्रसाद, 2018 पर्यावरण विधि, संस्करण नवम् इलाहाबाद, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्श।
14. एस० आर० म्यानी, 2013, पर्यावरणीय अध्ययन हैदराबाद, एशिया लॉ हाउस पब्लिकेशन्श।
15. www.globlewarming.com
16. www.climatechange.com

डॉ. वेद प्रकाश
Email- 2011vaad@gmail.com
मो० न० : 9411611360

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 132-142

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

RIGHT TO BAIL : AN ANALYSIS OF RECENT BAIL TRENDS IN INDIA

Dr. Shakeel Ahmad, Professor,
Maryam Azhari, Research Scholar
Department of Law, Aligarh Muslim University

Abstract :-

In Criminal justice system, bail is also known as an individual's right to liberty. A bail is a judicial procedure that must be carried out impartially, judicially, and in accordance with statutory and constitutional requirements. Bail, in essence, is a delicate balance between the accused's right to liberty and the interests of society at large. Crime and society are interrelated concepts. The concept of crime encompasses the notions of bail and provisional release. A suspect who is detained by the court and suspected of committing a crime may be released on bail. However, the decision to grant or deny bail depends on the balance required between conflicting interests, namely the need for personal liberty and the interest of society.

The rights of the citizens are paramount in a constitutional democracy where the Constitution serves as the supreme law of the land. The provisions of the criminal justice system, specifically the bail procedure, must be consistent with the Constitution. In this respect, this paper is an endeavor to examine the balance between the liberty of an individual and societal interest while granting bail.

Keywords - Bail, judicial discretion, individual liberty, societal interest.

Introduction :-

"Liberty is one of the most essential requirements of the modern man. It is said to be the delicate fruit of a mature civilization. It is the very quintessence of civilized existence and essential requirement of a modern man" -John E.E.D.

Bail, in common parlance, is the process by which an accused person is released from jail pending trial or appeal in exchange for a security bond, which guarantees his appearance before the appropriate authorities at the appropriate time.The bail, or more precisely the bail bond, is a monetary safeguard whose amount is set by the court.The security may be cash, the deed to the property, or the bond of wealthy individuals, a professional bondsman, or a bonding company.Failure of an individual to surrender on time forfeits bail. Bail is a post-arrest remedy designed to secure the suspect's release

until his trial date. Bail vindicates the conventional right to freedom prior to proof of guilt. Bail is allowed to prevent confinement of innocent persons which would otherwise result in a pre-trial punishment and to enable an accused person to prepare his defense to the charges against him, which is the common law principle, presumption of innocence.

However, in the Indian legal system, there is no definition of 'bail' in the Code of Criminal Procedure (CrPc), 1973, however, in legal parlance, it is understood as "to set at liberty a person arrested or imprisoned, on security being taken for his appearance on a day and at a place certain" or "the temporary release of the person pending a further decision of the court". What is contemplated by bail is to "procure the release of a person from legal custody, by undertaking that he shall appear at the time and place designated and submit himself to the jurisdiction and judgment of the court".

According to the Supreme Court of India, Bail is devised as a technique integrating the two basic concepts of human values, namely the right of an accused person to enjoy his personal freedom and the public interest, subject to which, the release is conditional on the surety to produce the accused person in court to stand the trial.

In India, offences and their punishments are defined in the Indian Penal Code of 1860, and from the perspective of granting bail, offences have been categorized as Bailable and non-Bailable.The distinction between bailable and non-bailable offences is based on the gravity of the offence, the risk of the accused fleeing, tampering with evidence, previous conduct, the accused's health, age, and gender.Non-bailable offences are those offences thatare mostly punishable with imprisonment of not less than 3 years.

A Bail is a judicial process that must be conducted impartially, judicially, and in accordance with statutory and constitutional prescripts. Presumption of innocence and the duty of the prosecution to prove the guilt of the person accused of an offence is a golden thread in criminal law jurisprudence. Thus, the concept of bail is a fine balance between personal liberty and societal interest.

Section 436 of the Code of Criminal Procedure, 1973, lays down that a person accused of a bailable offence under IPC can be granted bail. The right to claim bail is "an absolute and indefeasible right and there is no question of discretion n in granting bail as the words of section 436 are imperative." In the case of a non-bailable offence, however, judges have complete discretion to grant or deny bail based on the specifics of each case.Further, by incorporating the words- "may be released on bail," the legislature intends to vest Courts with discretion for releasing a person on bail, subject to certain restrictions; the discretion herein vested is judicial discretion which has been described as "a science of understanding, to discern between falsity and truth, between wrong and right, between shadows and substance, between equity and colourable glosses and pretences, and not to do according to their wills and private affections." In addition, while exercising such discretion, it is of paramount importance to discard and abdicate the personal likes and dislikes, whims and fancies, or affections by the persons

adorning Courts. Also, while deciding the matter of bail, judicial discretion requires due diligence on the issues of liberty, justice, public safety, and burden of the public treasury. This discretion must be exercised within the parameters of constitutionality and fair judicial practice.

The officer-in-charge of a police station or magistrate, as well as the Sessions Court and High Court, are all empowered under the Criminal Procedure Code to deal with bail; impose conditions on granting bail; and cancel bail and anticipatory bail.

Types of Bail :

There are three distinct types of bail in India, and each one corresponds to a specific stage of the criminal process :

1. Regular Bail :- Regular bail can be granted to a person who has already been arrested and kept in police custody. A person can file a bail application for regular bail.

2. Interim Bail :- An Interim Bail is granted for a limitedperiod. It is granted to an accused before the hearing for the grant of regular bail or anticipatory bail.

3. Anticipatory Bail :- A person anticipating arrest by the police for a non-bailable offence, can file an application for anticipatory bail. The Sessions court or the High court has the power to grant anticipatory bail under section 438 of CrPc and a person cannot be arrested by the police if the anticipatory bail is granted.

Bail as a matter of Right :-

In the famous case of A.K. Kraipak v. Union of India, Justice Hedge stated that 'The aim of the rules of natural justice is to secure justice or to put it negatively, to prevent miscarriage of justice. These rules can operate only in areas and are covered by any laws validly made. In other words, they do not supplant the law of the land but rather, supplement it."

Article 21 of our Constitution provides that "No person shall be deprived of life and personal liberty except according to procedure established by law". Menaka Gandhi V. Union of India held that the procedure under Article 21 must be just, fair, and equitable. Before a person is deprived of his life and personal liberty, the procedure established by law must be strictly followed, and must not be departed from to the disadvantage of the person affected .In the immediate aftermath of theManeka Gandhi judgment, the Apex Court held that any law authorising deprivation of liberty should be 'reasonable, even-handed, and geared to the goals of community good and State necessity.

The Court ruled that 'the only material considerations are whether the accused would be readily available for his trial and whether he is likely to abuse the discretion granted in his favour by tampering with evidence. In the landmark case of Sanjay Chandra v. CBI, the Supreme Court affirmed that the decision to grant or deny bail is left in the wisdom of the Court's judges.The Facts and the circumstances of the case should be taken into consideration while deciding the bail plea. Bail should not be denied due to public emotions and pressure. 'Bailnot jail' should be the courts' mantra. The crux of the law

is that arrest should be rare and bail provisions should beuncomplicated.

Bail and Judicial Discretion :-

The Supreme Court of India has a long history of upholding the values of justice, freedom, and the rights of its citizens. It has left no aspect of human life unaddressed and dormant, and bail is just one example of how far its reach has been extended to those who have been rendered helpless and without recourse by the agencies and courts below, as, and when it has been requested.

'Bail is rule and jail is an exception' is a judicial principle that established by the Supreme Court in the landmark judgement of State of Rajasthan v. Balchand alias Baliya in 1978. The decision was based on several rights guaranteed by the Indian Constitution, with Article 21 being the most significant. Detention of a private individualviolates the right to life and liberty as guaranteed under Article 21. Thepurpose of detention is to make sure that the accused would be available for trial, and if this is ensured then, detaining the person isn't necessary.

"The subject of bail belongs to the blurred area of the criminal justice system and largely hinges on the hunch of the bench, otherwise called judicial discretion," Justice Krishna Iyerrightly observed in the landmark case GudikantiNarasimhulu v. Public Prosecutor, High Court of Andhra Pradesh, and further stated that, "the principal rule to guide release on bail should be to secure the presence of the applicant who seeks to be liberated, to take judgment and serve sentence in the event of the court punishing him with imprisonment. The vital considerations are :-

(a) The natureofcharge, the nature of the evidence, and thepunishmenttowhichthe party may be liable if convicted, or convictionis confirmed. When the crime charged is of the highest magnitude and the punishment of it assigned by law is of extreme severity, the court may reasonably presume, someevidence warranting that no amount of bail would secure the presence of the convict at the stage of judgment, should hebeenlarged;

(b) whether the cause of justice would bethwarted by him who seeks the benignant jurisdiction of thecourt to be freed for the time being

(c) Antecedents ofthe man and socio-geographical circumstances; and whether the the petitioner's record shows him to be a habitual offender;

(d) whenaperson, charged with a grave offencehas been acquitted at a stage, the inter mediate acquittal has pertinence to a bail plea when the appeal before this court pends.The ground fordenial of provisional release, becomes weaker when a fair finding of innocence has been recorded by one court;

(e) Whether the accused's safety may be more in prison than in the vengeful village where feuds have provoked the violent offence and

(f) the period in prison already spent and the prospect of delay in the appeal being heard and disposed of."

Thus, the Supreme Court of India, in the matter, concluded that "the delicate light of the law favours release, unless countered by the negative criteria necessitating that course."

In Babu Singh v State of U.P., it was held that refusal to grant bail in a murder case without reasonable ground would amount to deprivation of personal liberty under Article 21, and such deprivation must be upon serious consideration to balance the individual freedom and welfare of the society or the societal interest.

In Sanjay Chandra v C.B.I., also known as the 2G spectrum scam case, the appellants were denied bail by the special judge, C.B.I., and the High Court after being charged under sections 420-B,458, 471 and 109 of the IPC and Section 13(1)(D) of the Prevention of Corruption Act 1988.The Supreme Courtoverturned these decisions anddirected the appellants to be released on bail subject to certain conditions and observed that in determining whether to grant bail both the seriousness of the charge and severity of punishment should be taken into consideration. 'Bail, not jail' should be the courts' mantra, and bail should not be denied on grounds that the community's sentiments were against the accused. The Court also observed that the accused should not be subjected to undue or unnecessary detention prior to his conviction. Keeping high the epitome of personal liberty and its quintessential character, the Supreme Court of India also laid down directions to the police to refrain from the mechanical process of arrest and to magistrates to check on such arrests.

Recent Judicial Decisions :-

In recent years, however, the Court's libertarian approach has been significantly weakened. While granting bail to Chidambaram in the ED's case, a three-judge-bench consisting of Justices R. Banumathi, A.S. Bopanna, and Hrishikesh Roy dismissed the order of the Delhi High Court and made the following crucial observation: "even if the allegation is one of grave economic offence, it is not a rule that bail should be denied in every case since there is no such bar created in the relevant enactment passed by the legislature nor does the bail jurisprudence provides so. Therefore, the underlining conclusion is that irrespective of the nature and gravity of the charge, the precedent of another case alone will not be the basis for either grant or refusal of bail though it may have a bearing on principle," the judgement noted.While the gravity of an alleged offence can be considered as one factor, it cannot stand alone as a legal principle and must be evaluated case by case.

While granting bail to the politician Azam khan, the Supreme Court struck the right note by expressing its strong disapproval of the tendency of some courts to impose unusual bail conditions. In this case, the Allahabad High Court had granted interim bail in a 'land-grabbing' case but made regular bail contingent on his fully cooperating with the measuring, walling, and barb-wiring of a piece of property measuring 13.842 hectares. The top court had taken exception to the proclivity among some judges to venture beyond the confines of a given case and imposing conditions that went beyond what was necessary to ensure the presence or attendance of an accused during the trial. It is

well-established that conditions for grant of bail have specific objectives : preventing the accused from fleeing justice and precluding any scope for tampering with evidence or influencing witnesses. It is not uncommon for bail courts to add some unusual conditions in some cases. Being asked to do a spell of community service, apologising to victims, reading a moral treatise or chapters from Mahatma Gandhi's autobiography are some recent examples. In 2020, the Madhya Pradesh High Court had ordered a man accused of molesting a woman to visit the victim at home and agree to her tying a 'rakhi', a condition that appalled the Supreme Court which denounced the attempt to convert a 'molester' into a 'brother' by judicial mandate. The court ruled that the bail condition amounted to a gross trivialization of the trauma suffered by the complainant while setting aside the order.

The recent Supreme Court decision in Vijay Madanlal Choudhary vs. Union of India, however, has eroded the notion that a person is presumed innocent until proven guilty; the notion that a person detained on suspicion of committing an offence is entitled to bail pending trial. In this case substantial portion of the Prevention of Money Laundering Act (PMLA) 2002 has been upheld. These provisions included the "twin-bail condition" under Section 45 of the Act, which was incidentally struck down by the apex court itself in 2017. The twin conditions stipulated that when an accused in a money laundering case applies for bail, the court has to first give an opportunity to the public prosecutor to be heard and only when it is satisfied that the accused is not guilty and unlikely to commit a similar offence when released, bail be granted. The ruling in this recent case was the result of an extensive challenge to the amendments made to the PML Act via the Finance Acts of 2019.Over 240 petitions were filed against the amendments on the ground that it was violative ofpersonal liberty, procedures of law, and the constitutional mandate and further claimed that the "process itself was the punishment". The court rejected the argument that the "twin conditions" of bail under the PMLA deprived the accused of any hope of freedom and held that "The offence of money laundering is no less heinous than the offence of terrorism" and that even an application for anticipatory bail would be subject to the "twin conditions" of bail under the PMLA.

In any case, obtaining bail in a PMLA case will be difficult due to the "twin conditions."Despite thepetitioners detailed argument about how dangerous this twin conditionis for a functioning democracy,it is quite exhilarating that, the burden of proof remains with the accused in PMLA cases, striking at the very heart of 'presumption of innocence' — a fundamental principle under Articles 20 and 21 of the Indian Constitution.The reinstatement of the twin-condition for bail places the accused in a precarious position because he will have to prove his innocence, which will be a mini-trial for the adjudication of bail.

Thus, it is vital that discretion be exercised with caution and care, while determining bail and such discretion should balance the interests of both justice and individual liberty. It must not be arbitrary, vague, or fanciful, but rather legal and consistent.

Conclusion :-

The law of tyrants is said to be a judge's discretion; it is constantly unknown; it differs from man to man; it is haphazard and relies on constitution, temper, and emotion. It's frequently caprice at its best; at its worst, it's every vice, stupidity, and passion to which human nature is prone- Lord Camden.

The constitutional jurisprudence of bail, which falls under the umbrella of the right to personal liberty enshrined in Article 21 of the Constitution, provides a legal procedure that is just, fair, and reasonable and is consistent with the principles of natural justice. This implies that the law governing bail cannot be read in isolation; rather, it must be read in accordance with the theory of interest and the constitutional goals and mandates. The question of when bail should be granted and when it should be denied is an essential and perplexing element of the bail issue.

The right to bail and a fair trial required moderation for both the accused and the public and society as represented by the state. The accused shouldn't be held unnecessarily before trial. Article 21 of the Indian constitution states, "No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law." Article 21 provides right to life and personal liberty to the citizen, and a balance must be struck between the right to individual liberty and the interest of society at large.

The 268th report of the Law Commission of India clearly states that more than sixty percent of the prison population is awaiting trial in India. The inconsistency in the bail system is one of the reasons for the overcrowding of imprisons across the country and the challenges facing the prison administration and the state.It has become a standard that the powerful, the rich and the influential get bail promptly and easily while the poor people remain in prison. It is an evil of the bail system that either the poor people are behind the brokers or professional giants to provide bail or pay pre-trial detention.

The Supreme Court expressed dissatisfaction with India's criminal justice system in Satender Kumar Antil v. CBI. The court's observations focused on protecting basic human rights, accelerating trials, and proposing a new Bail Act similar to the U.K.'s. legislation.

The Bail Act of 1976 outlines the procedure for granting bail in the United Kingdom. "Reducing the size of the prison population" is a defining characteristic of the legislation. The statute also includes provisions for providing legal assistance to defendants. The statute recognises a "general right" to bail. Section 4(1) of the Actraises the presumption of bail by stating that the law applies to a person who shall be granted bail, unless otherwise specified in the Act's Schedule 1.For a bail application to be denied, the prosecution must show that there are reasonable grounds to believe the defendant will not surrender to custody, will commit an offence while on bail, will interfere with witnesses, or will otherwise obstruct the course of justice, unless the defendant is detained for his own welfare or

protection, or for other reasons.

The objectiveof the Supreme Court while proposing a Bail Act similar to the one in the United Kingdom is to uphold the basic human rights guaranteed by the various provisions of the Constitution and to reduce the number of prisoners present in jails. India's prisons are grossly overcrowded. The Bail Act is necessary to prevent the clogging of prisons with unwarranted arrests.

References :-

Books Referred :

- R.V. Kelkar's Criminal Procedure, 6th Edition, 2016
- Ratanlal And Dhirajlal's The Code Of Criminal Procedure, Lexis Nexis, 22 Nd Edition
- Sarkar, The Code Of Criminal Procedure.
- Asim Pandey, Law of Bail Practice and Procedure, Second Edition, 2015, Lexis Nexis.
- Bare Act, The Code Of Criminal Procedure, 1973

Online Reference :-

- All India Reporter
- SCC Online
- The Hindu
- The Quint

Reports Referred :-

- Report No.268 of the Law Commission of India, on bail reforms, titled "Amendments to Criminal Procedure Code, 1973

References :

1. Asim Pandey, Law of Bail Practice and Procedure, Second Edition, 2015, Lexis Nexis.
2. Wharton's Law Lexicon, Universal Law Publishing, Fourteenth Edition, 2001; Govind Prasad v. State of W.B. , 1975 CriLJ 1249
3. Black's Law Dictionary (4thEdn.) 177
4. Kamalapati Trivedi v. State of West Bengal,AIR 1979 SC 777.
5. First Schedule of the Code of Criminal Procedure, 1973.
6. Section 2 (a) of CrPC—"bailable offence" means an offence which is shown as bailable in the First Schedule, or which is made bailable by any other law for the time being in force; and non-bailable offence means any other offence.
7. Vinod Kumar v. State of Haryana (2015) 3 SCC 138
8. Section 436. In what cases bail to be taken.

   (1) When any person other than a person accused of a non-bailable offence is arrested or

detained without warrant by an officer in charge of a police station, or appears or is brought before a Court, and is prepared at any time while in the custody of such officer or at any stage of the proceeding before such Court to give bail, such person shall be released on bail: Provided that such officer or Court, if he or it thinks fit, may, instead of taking bail from such person, discharge him on his executing a bond without sureties for his appearance as hereinafter provided: Provided further that nothing in this section shall be deemed to affect the provisions of sub- section (3) of section 116 or section 446A .

(2) Notwithstanding anything contained in sub- section (1), where a person has failed to comply with the conditions of the bail- bond as regards the time and place of attendance, the Court may refuse to release him on bail, when on a subsequent occasion in the same case he appears before the Court or is brought in custody and any such refusal shall be without prejudice to the powers of the Court to call upon any person bound by such bond to pay the penalty thereof under section 446.

9. Rasiklal v Kishore Khanchand Wadhwani, AIR 2009 SC 1341: 2009 (4) SCC 446

10. Section 437 of CrPC —When bail may be taken in case of a non-bailable offence.

(1) When any person accused of, or suspected of, the commission of any non-bailable offence is arrested or detained without warrant by an officer in charge of a police station or appears or is brought before a Court other than the High Court or Court of Session, he may be released on bail….

(2) If it appears to such officer or Court at any stage of the investigation, inquiry, or trial, as the case may be, that there are not reasonable grounds for believing that the accused has committed a non-bailable offence, but that there are sufficient grounds for further inquiry into his guilt the accused shall, subject to the provisions of section 446A and pending such inquiry, be released on bail] or at the discretion of such officer or Court, on the execution by him of a bond without sureties for his appearance as hereinafter provided.

(3) When a person accused or suspected of the commission of an offence punishable with imprisonment which may extend to seven years or more or of an offence under Chapter VI, Chapter XVI or Chapter XVII of the Indian Penal Code or abetment of, or conspiracy or attempt to commit, any such offence, is released on bail under sub-section (1), the Court may impose any condition which the Court considers necessary—

(a) in order to ensure that such person shall attend in accordance with the conditions of the bond executed under this Chapter, or

(b) in order to ensure that such person shall not commit an offence similar to the offence of which he is accused or of the commission of which he is suspected, or

(c) otherwise in the interests of justice.

(4) An officer or a Court releasing any person on bail under sub-section

(1) or sub-section (2), shall record in writing his or its reasons or special seasons] for so

doing.

(5) Any Court which has released a person on bail under sub-section (1) or sub-section (2), may, if it considers it necessary so to do, direct that such person be arrested and commit him to custody.

(6) If, in any case, triable by a Magistrate, the trial of a person accused of any non-bailable offence is not concluded within a period of sixty days from the first date fixed for taking evidence in the case, such person shall, if he is in custody during the whole of the said period, be released on bail to the satisfaction of the Magistrate, unless for reasons to be recorded in writing, the Magistrate otherwise directs.

(7) If, at any time after the conclusion of the trial of a person accused of a non-bailable offence and before judgment is delivered, the Court is of opinion that there are reasonable grounds for believing that the accused is not guilty of any such offence, it shall release the accused, if he is in custody, on the execution by him of a bond without sureties for his appearance to hear judgment delivered.

11. GudikantiNarasimhulu v Public Prosecutor, High Court of Andhra Pradesh, AIR 1978 SC 429
12. Coke, J in Rooke's Case, (1598) Hilary Term, 40 Elizabeth I, as quoted in Steve Sheppard, Selected Writings of Sir Edward Coke, Liberty Fund, Indiana Polis, Indiana, Volume 1, 2003.
13. Supra note 10
14. Under Section 437 & 439 of the Criminal procedure code 1973
15. Under Section 438 of the Criminal procedure code 1973
16. AIR 1970 SC A
17. AIR 1978 SC 597.
18. Bashira V. state of UttatPradesh,AIR 1968 SC 1313 ;Narendra PurshotamUmarao v. B.B. Gujural AIR 1979 SC 420
19. Joginder Kumar v. State of Uttar Pradesh, AIR 1994 SC 1349
20. Bhagirathsinh v State of Gujarat (1984) 1 SCC 284.
21. State of Rajasthan v Balchand (1977) 4 SCC 308.
22. Supra note 19
23. AIR 1978 SC 429
24. AIR 1978 S.C.527
25. AIR 2012 S.C. 830
26. Supra note 19
27. Supra note 24
28. A R Antulay v R S Nayak, 1988 AIR 1531
29. Arnesh Kumar v State of Bihar, (2014) 8 SCC 273,
30. P.Chidambarm v Directorate of Enforcement, (Criminal Appeal No.1831/2019)

31. Mohammad Azam Khan v. State of U.P. WP(Crl.) No. 39 of 2022
32. Satender Kumar Antil vs Central Bureau Of Investigation, Special Leave Petition (CRL.) NO.5191 OF 2021
33. Out of bounds : On the Supreme Court's stand on bail conditions, The Hindu, July 25, 2022, available athttps://www.thehindu.com/opinion/editorial/out-of-bounds-the-hindu-editorial-on-the-supreme-courts-stand-on-bail-conditions/article65677760.ece (last visited on 1st September 2022)
34. Aparna Bhat vs The State Of Madhya Pradesh, CRIMINAL APPEAL NO. 329 OF 2021
35. SLP (Crl) No. 4634/2014
36. Nikesh Tarachand Shah vs. Union of India (2018) 11 SCC 1
37. Mekhala Saran, Easier Now to Get Bail in Murder Case Than in ED Case? PMLA Judgment Explained, The Quint, July 28, 2022, available at https://www.thequint.com/news/law/supreme-courts-prevention-of-money-laundering-act-judgment-analysed (last visited on 1st September 2022)
38. Rajendra Prasad v State of Uttar Pradesh, AIR 1979 SC 916
39. AIR 2012 S.C. 830

Shakeelahmadlaw26@gmail.com
+91 9411003548
maryamazhari@gmail.com
+91 9997418017

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 143-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में शिल्पगत वैविध्य

सोनम शुक्ला, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग, मर्यादा पुरुषोत्तम पीजी कॉलेज, रतनपुरा, भुड़सुरी, मऊ (उ.प्र.)
डॉ. ज्ञानेन्द्र मणि त्रिपाठी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग, किसान पीजी कॉलेज बहराइच (उ.प्र.)

शोध सारांश :-

"साहित्य की सर्जना में कला और शिल्प की अपनी विशिष्ट महत्ता और उपयोगिता होती है। साहित्य में शिल्प–विधान से आशय उसके कलापक्ष से है जिसके अंतर्गत भाषा–शैली, छंद–अलंकार, बिम्ब और प्रतीक–योजना आदि का अध्ययन किया जाता है। कमजोर शिल्प–संरचना एक ऐसे कुशल कारीगर के समान है जो औजारों के अभाव में अपनी कारीगरी के प्रदर्शन में असमर्थ साबित होता है। सामान्यतः औपन्यासिक कथा के वर्णन में प्रयुक्त होने वाली सभी पद्धतियों को हम शैली के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, वर्णनात्मकता के विविध रूप उपन्यास की विविध शैलियों के ही रूप हैं। इनमें भावात्मक, हास्य–व्यंगात्मक, आत्म कथात्मक, पूर्व दीप्ति शैली, पत्रात्मक–डायरी शैली, मनोविश्लेषणात्मक, संस्मरणात्मक एवं आंचलिक शैली इत्यादि मुख्यतः उपन्यास की रचना में प्रयोग की जाती हैं"।

मुख्य शब्द :- भाषा–शैली, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब–योजना, पूर्व दीप्ति शैली, पत्रात्मक–डायरी शैली, मनोविश्लेषणात्मक, संस्मरणात्मक एवं आंचलिक शैली।

चूंकि भाषा मनुष्य के अंतरतम भागों को वहन करती हुई उनका संप्रेषण करती है। इसलिए शिल्पगत वैशिष्ट्य में भाषा का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। उपन्यासों में हमें विषय वस्तु के अनुसार शैली सापेक्ष विभिन्न भाषाओं का रूप दिखता है। ध्यातव्य है कि आधुनिक रचनाकार शास्त्र सम्मत, परिनिष्ठित–परिमार्जित, प्रांजल, संस्कृतनिष्ठ भाषा के पीछे न जाकर उसे समाज–सापेक्ष, सर्वग्राह्य, जीवंत, लचीली एवं सहज–संप्रेषणीय रखने की भरपूर कोशिश करते हैं। हम जानते हैं कि किसी उपन्यासकार के उपन्यास की श्रेष्ठता का मूल्यांकन उसकी वस्तु–कला और शिल्प–पक्ष के संतुलित समन्वय के आधार पर ही किया जाना अपेक्षित और तर्कसंगत होता है इसलिए श्रीलाल शुक्ल की भाषा तथा शैली पर निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत विचार करना श्रेयस्कर है।

श्रीलाल शुक्ल की भाषा :-

श्रीलाल शुक्ल को अंग्रेजी–हिंदी–संस्कृत–उर्दू तथा अवधी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। चूँकि इनका व्यक्तित्व बहुआयामी तथा अनेक क्षेत्रों से संबंधित रहा है इसलिए इनकी भाषा में भी विविधता मिलती है। ये जिस भौगोलिक क्षेत्र का चित्रण करना चाहते थे उसी के अनुरूप भाषिक–सर्जना भी करते थे। इनकी रचनाओं में व्यंग्य

एक तकनीकि तथा शैली के रूप में प्रस्तुत है। इन्होने पात्रों के चरित्र, उनकी मानसिकता, संस्कृति, शिक्षा–स्तर, पदाधिकार, सामाजिक–स्तर तथा सामाजिक संबंधों आदि का ध्यान रखते हुए सम्यक पात्रानुकूल भाषा का चयन अपने प्रत्येक उपन्यास में किया है। एक तरफ जहां शुक्ल जी अंग्रेजी–मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग उपन्यासों में सुशिक्षित आधुनिक जीवन शैली वाले पात्रों के लिए करते हैं वहीं दूसरी तरफ कम पढ़े–लिखे या अशिक्षितों के लिए अंचल विशेष की ठेठ बोली या बोलचाल की सहज भाषा का। शुक्ल जी के उपन्यासों में भाषिक–प्रयोग समझने के लिए इनके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं, जैसे :–

अज्ञातवास उपन्यास में ग्राम गीत गाने वाले व्यक्ति ने गंगाधर एण्ड कंपनी से कहा– "ठीक बात है सरकार, हम लोग गँवार आदमी, कायदा–बेकायदा क्या समझे? मगर सरकार, मर्द बच्चा की आवाज चार कोस तक चली गई तो कौन सा हर्ज हो गया? "इसी प्रकार राग दरबारी में छोटे पहलवान का सरपंच को डाँटने वाली भाषा देखिए– "ए चिमि रखी दास, चाँय–चाँय बंद करो। एक पड़ाक से कंटाप पड़ेगा तो यह मिसिल–विसिल लिए जमीन में घुस जाओगे"।

जासूसी घटना पर आधारित उपन्यास आदमी का ज़हर में पुलिस और प्राइवेट जासूस द्वारा की जाने वाली खोजबीन में प्रयुक्त भाषा इस प्रकार है– "तुमने चेक की काउंटर फाइल देखी? उसे किसके नाम....? मिस्टर सेल्फ या कहिए कि मिसेज सेल्फ के नाम"।

सीमाएं टूटती है में वकील की भाषा उसके व्यवसाय से मेल खाती हुई, कोर्ट–कचहरियों में प्रयुक्त होने वाली भाषा है– "यह तो ठीक है कि मुलजिम के निर्दोष साबित होने पर उसे छोड़ा जा सकता है चाहे वह सबूत नाटकीय स्थिति में ही क्यों न मिला हो"।

मकान आवंटन में होने वाली समस्या पर आधारित कथा वस्तु वाले उपन्यास मकान में निर्माण–निगम के आवास योजना के अधिकारी की भाषा देखिए– "दफ्तर के वक्त जुलूस निकालते हैं, काम ओवर टाइम लेकर करना चाहते हैं"। मजदूरों की समस्या पर आधारित उपन्यास पहला पड़ाव में मकान पर काम करने वाली मजदूर स्त्री जसोदा की भाषा निम्न मजदूर वर्ग वाली भाषा है–"क्या करेगा मुंशी मेरा बच्चा पढ़कर? कुदाल भी नहीं चला पाएगा। तुम्हीं इतना पढ़–लिख गये तो उससे क्या हुआ? मजूरी लायक भी नहीं रहे"।

इसी प्रकार बिस्रामपुर का संत में मुख्यमंत्री जी की राजनीतिक भाषा प्रस्तुत है– "बजट अधिवेशन में कुछ ही दिन रह गए हैं। संयुक्त विधान–मंडल को संबोधित करते समय महामहिम को बिल्कुल स्वस्थ होना चाहिए। सड़े टमाटर और अंडों का डर नहीं है पर विपक्ष के पास कागजों का पुलिंदा भी काफी वजनी होगा"। शुक्ल जी के अंतिम उपन्यास रागविराग में कर्नल भारद्वाज जैसे ऑफिसर की भाषा में अंग्रेजी–हिंदी का मिश्रण उनके पदानुरूप ही हुआ है– "यहाँ ये एल्कोहोलिज्म की उस हद तक पहुँच गए हैं, जिसे पागलपन कहा जा सकता है– ....इनसेनिटी"।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट दिख रहा है कि शुक्ल जी ने अपने सभी उपन्यासों में पात्रों के चरित्र, उनके व्यवसाय तथा सामाजिक–शैक्षणिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जहाँ एक ओर पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण करती है और उपन्यास में उनके चरित्र का उद्घाटन करती है, वहीं दूसरी तरफ विषय वस्तु के अनुकूल परिवेश–परिस्थिति, देशकाल तथा वातावरण के निर्माण में भी सहायक होती है।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में अन्य उल्लेखनीय भाषिक प्रयोग :–

आलंकारिक भाषा :–

शुक्ल जी की भाषा प्रसंग वश आलंकारिक सौंदर्य से संपृक्त है जिसमें उपमा–रूपक उत्प्रेक्षा, मानवीकरण एवं अतिश्योक्ति आदि अलंकारों का कथा वस्तु के अनुकूल प्रयोग प्रत्येक उपन्यास में किया गया है। सामान्यतः उपमा तथा रूपक अलंकार से युक्त भाषा का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। जैसे– सूनी घाटी का सूरज में राम दासजब मुंशी नव रतन लाल के घर रहकर पढ़ाई करता है तब उसके सामने बाधाएँ बढ़ती ही जाती हैं जो उसकी पढ़ाई में व्यवधान पैदा करती हैं। इन्हीं बाधाओं के लिए जहरीले–विषैले खूँखार प्राणियों की उपमा देकर रामदास अपनी असुरक्षा व भय का आभास पाठकों को दिलाता है। अज्ञातवास में राजेश्वर द्वारा बनाई गई पेंटिंग देखकर रजनीकांत अतीत में खो जाता है और अपने वर्तमान पर पछतावा करता है। उसकी इस मनः स्थिति का बिंब उपन्यास में अंधेरे और उजाले के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। इसी प्रकार राग दरबारी उपन्यास में शासन–प्रशासन तथा राज्य में अराजकता–अव्यवस्था वाली शासन–व्यवस्था को ट्रक के टूटे गियर की उपमा दी गई है, जो बार–बार 'टॉपगियर' से गिरकर 'न्यूट्रल' में चला जा रहा था।

लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग :–

लोकोक्तियाँ सम्प्रेषण तथा भाषिक–सौंदर्य में अत्यधिक वृद्धि करती हैं। डॉ. रामप्रकाश के मतानुसार– "ऐसे लोक कथन जो व्यवहार परंपरा में रूढ़ हो जाने के कारण भाषिक अभिव्यंजना का स्थायी उपकरण बन जाते हैं, लोकोक्ति कहलाते हैं"। औपन्यासिक कथ्य की अभिव्यक्ति को सारगर्भित एवं प्रभावशाली बनाने के लिए शुक्ल जी ने उक्तियों का प्रचुर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण हैं–

1. जो खाए चना, सो रहे बना (सूनी घाटी का सूरज)
2. तने में नहीं लत्ता, पान खाय अलबत्ता (अज्ञातवास)
3. नमक से नमक नहीं खाया जाता/अंधेर नगरी चौपट राजा (रागदरबारी)
4. गगरी दाना सूद उताना (मकान)
5. सबहिं नचावत रामगोसाई (पहला पड़ाव)

डॉ. रामप्रकाश मुहावरों को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि– "किसी विशेष प्रकार की भाषिक प्रतिक्रिया को कुछ लाक्षणिक, प्रतीकात्मक या आलंकारिक प्रयोग हेतु गढ़ लेते हैं। जो धीरे–धीरे लोगों की वाणी में रूढ़ होकर मुहावरे बन जाते हैं"। अपने भाषिक–सौंदर्य में वृद्धि एवं उसमें गहन अर्थवत्ता हेतु शुक्ल जी ने प्रायः अपने सभी उपन्यासों में मुहावरों का खुलकर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :–

1. दिन–दूनी रात चौगुनी उन्नति करना (सूनी घाटी का सूरज)
2. अंधों में काना राजा (अज्ञातवास)
3. बात के बतासे फोड़ना/पीठ में छुरा भोकना/मेंढक को जुकाम हुआ है/मुँह में राम बगल में छुरी/आसमान की छाती फाड़ना (रागदरबारी) इत्यादि।
4. हजार घाट का पानी पीना (आदमी का जहर)
5. आसमान में बाँस ठोकना (सीमाएं टूटती है)
6. बिना नारी दुखारे (पहला पड़ाव)

7. मैं अपनी नावें जला आया हूँ (बिस्रामपुर का संत)

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में शैलीगत विविधता :-

अपने उपन्यासों में शुक्ल जी ने व्यक्त कथ्य–विषय वस्तु की संवेदना, गंभीरता–गहनता आदि के आधार पर ही शैली का चयन किया है। इनके उपन्यासों में जिस तरह नवीन भाषिक–संरचना का निर्माण हुआ उसी के अनुरूप कुछ नवीन शैलियों का भी उद्‌भव दिखाई देता है। शुक्ल जी कहीं–कहीं हास्य तथा व्यंग्य शैलियों का इतनी सहजता और अधिकता से प्रयोग करते हैं कि पूरी रचना ही व्यंग्यात्मक कृति की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लेती है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त प्रमुख शैलियों का उदाहरण इस प्रकार देख सकते हैं–

व्यंग्यात्मक शैली :-

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक वैषम्य, कुप्रथाओं–अंधविश्वासों, विसंगतियों–कुरीतियों तथा मुख्यतः राजनीतिक पतन पर शुक्ल जी की पैनी दृष्टि थी परिणाम स्वरूप इन सभी पक्षों पर भरपूर कटाक्ष करते हुए यथार्थ के जटिल रूपों की आलोचनात्मक समझने इनको व्यंग्य विधा से बड़ा सर्जनात्मक काम लेने का साहस प्रदान किया।

बसंत द्वारा अज्ञातवास उपन्यास में सामाजिक विषमता की झलक प्रस्तुत करने के लिए कहा जाने वाला यह व्यंग्यात्मक कथन देखिए– "आप यह गीत क्यों सुनना चाहती हैं? हमारा कुछ भी तो आपको अच्छा नहीं लगता। तब हमारे यह गीत ही क्यों आपको अच्छे लगते हैं?" शुक्ल जी की औपन्यासिक रचना रागदरबारी तो निःसन्देह हिन्दी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यात्मक कृति है। इसमें उपस्थित व्यंग्य की धार के उदाहरण प्रस्तुत है– "वे पैदायशी नेता थे क्योंकि उनके बाप भी नेता थे"। इसी तरह अपराध की दुनिया के बारे में दारोगा का कथन– "रिश्वत, चोरी, डकैती अब तो सब एक हो गया है.....पूरा साम्यवाद है!"

राग दरबारी में व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक परिवेश की तमाम विसंगतियों को उलटने–पलटने तथा उनका आंकलन करने का सार्थक प्रयास हुआ है। इसमें बहुत सी हँसी–मजाक की बातें हैं लेकिन इनका संबंध केवल एक गाँव से ही नहीं बल्कि पूरे देश से है इसलिए इसकी भाषा में तीखापन व पैनापन सर्वत्र व्याप्त है। उपन्यास के प्रारंभ में ही ट्रक का वर्णन कुछ इस तरह हुआ है– "वहीं एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है"। इस उपन्यास के छोटे–छोटे वाक्य ही नहीं बल्कि छोटे–छोटे शब्दांश भी व्यंग्योत्पादक बन पड़े हैं। जैसे–शहर के आदमी के लिए– "रंगनाथ चाहे जितना गिचिर–पिचिर करे, उसकी फिक्र क्या? शहर का आदमी है, सूअर कालेंड़न लीपने के काम आए न जलाने के"। इसी तरह जनता को 'घास का कूड़ा' क्रांति को 'दुम हिलाती कुतिया' दरख्वास्त को 'चींटी की जान 'नैतिकता को 'कोने में पड़ी हुई चौकी' आदि उपमान देकर जोरदार व्यंग्य की उत्पत्ति की गई है। इसी तरह पहला पड़ाव उपन्यास में मजदूरों के आर्थिक शोषण को व्यक्त करते हुए लिखा है–"सरकार उन्हें तनख्वाह दे रही है, काम नहीं देती, तभी वे अपने आदमियों को सिर्फ काम देते हैं, तनख्वाह नहीं देते या कम से कम कोशिश ऐसी ही करते हैं"। इस तरह श्रीलाल शुक्लकेसभीउपन्यासों में ऐसे तमाम उदाहरण पाठको को उनकी व्यंग्यात्मक शैली के प्रयोग का कायल बना देते हैं।

विश्लेषणात्मक शैली :-

पात्रों के चरित्र, उनकी मनोदशा–मानसिकता, बाह्य वातावरण, विभिन्न परिस्थितियों तथा विचारों की

विवेचना करते समय कथाकार इस शैली का प्रयोग करता है। उपन्यास सीमाएं टूटती है में केस की गंभीरता के बारे में वकील के विचारों को देखिए– "जैसे कोई सर्जन ऑपरेशन के कमरे से अपना वीरान चेहरा लेकर बाहर आए और कहे मुझे अफसोस है, पर हम मरीज को बचा नहीं सके, कुछ वैसी ही निर्विकारता वकील की आवाज में थी"।

भावात्मक शैली :-

अब काव्य के साथ–साथ गद्य रचनाओं में भी इस शैली का प्रयोग किया जाने लगा है। इसकी वजह से भावगत प्रवाह का सृजन करते हुए कथाकार वर्ण्य–विषय में भावात्मकता का प्रसार करने का प्रयास करता है। अज्ञातवास में रजनीकांत भावुकता में प्रभा को कहता है– "हाँ प्रभा, मुझे ग्राम–गीत बहुत अच्छे लगते हैं, क्योंकि मेरी जीभ पर अब भी आषाढ़ के जामुनों का रस है और दाँत के नीचे मक्के के भुट्टे का कच्चापन है और मेरे मन में सुनहरे धान लहलहाते रहे हैं"।

नाट्य शैली :-

उपन्यासों में होने वाले संवादों में नाटकीयता लाने के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाता है। शुक्ल जी ने भी इस शैली का बखूबी प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है– "मैं पूछ रहा हूँ, तलाशी में क्या निकला? निकलेगा क्या? घंटा?

जोगनाथ और उसके वकील दोनों साथ–साथ मुस्कुराए। पीछे से सनीचर ने कहा, शाबाश! अड़े रहो बेटा!" राग दरबारी का यह उद्धरण पूछताछ के समय संवादों में नाट्यात्मकता को प्रदर्शित कर रहा है।

फ्लैशबैक शैली (पूर्व–दीप्तिशैली) :-

यह एक ऐसी शैली है जिसमें वर्तमान में चलती हुई कथा को अचानक से अतीत में ले जाकर कुछ समय बाद विशिष्ट संदर्भों में पुनः क्रमबद्ध करके अपने औपन्यासिक शिल्प में पाठको के लिए कौतूहल तथा आकर्षण पैदा करने का प्रयास किया जाता है। अज्ञातवास में प्रभा द्वारा अपनी माँ केबारे में पूछने पर उस घटना को इस प्रकार दिखाया गया है– "काल का विहंग अपनी क्षिप्रगति से बीस वर्षों की उड़ान भरता है"। इसके बाद वे उस समय की कहानी बयाँ करते हैं जब रजनीकांत असिस्टेंट इंजीनियर थे और गाँव में अपनी पत्नी को बीमारी की अवस्था के कारण देखने गए थे।

डायरी शैली :-

शुक्ल जी का मकान उपन्यास इस शैली में लिखा गया है जिसमें नारायण बनर्जी नामक पात्र के जीवन में 3 अक्टूबर 1971 ई. से लेकर तीन साल, दो महीने और उन्नीस दिनों की यात्रा में मकान ढूँढने के संदर्भ में आने वाले उतार–चढ़ावों को व्यक्त किया है। उपन्यास का समापन 'घूमते हुए पहिए' शीर्षक देते हुए 22 दिसंबर 1974 ई. (रविवार) को दिखाया गया है।

पत्रात्मक शैली :-

इस शैली के अंतर्गत पाठकों के सामने पत्र द्वारा अपने दर्शन–चिंतन–वैचारिक दृष्टिकोण तथा कथ्य को बेझिझक, सरल–सुगम–सहज रूप से विषय वस्तु के अनिवार्य भाग के रूप में प्रस्तुत करना लेखक का अभिप्रेत होता है। सूनी घाटी का सूरज में रामदास की आत्मकथा पढ़ने के बाद सत्या उसे पत्र लिखती है– "प्रिय रामदास तुम्हारी अनीता को मैं जानती हूँ। जिस प्रकार तुमने मुझे उससे परिचित कराया उसका अर्थ भी तुमने अपने बाद

के पत्र में स्पष्ट कर दिया"। इसी तरह मकान उपन्यास में नारायण बनर्जी की पत्नी मीनाक्षी प्रत्यक्ष उपस्थित न होकर पत्र के माध्यम से ही अपनी संवेदनाओं तथा भावनाओं को कथानक के बीच–बीच में प्रस्तुत करती हुई दिखती है।

किस्सागोई शैली :-

किस्सागोई शब्द का शाब्दिक अर्थ–कहानी कहने–सुनने का काम या कुशलता। शुक्ल जी ने इस शैली का प्रयोग राग दरबारी में डकैती की घटना की जानकारी देते समय तथा पहला पड़ाव उपन्यास में संतोष कुमार द्वारा लूट की खबर सुनाने के बाद, उस घटना के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया देते हुए उसे सुनाने के संदर्भ में किया है।

चित्रात्मक शैली :-

लेखक किसी वस्तु, घटना–व्यापार, गुण–विशेषता, विचार, साकार या निराकार वस्तुओं और मानसिक क्रियाओं को प्रत्यक्ष अनुभव योग्य एवं इंद्रिय ग्राह्य बनाने के लिए जिस शैली का प्रयोग कृतियों में करता है, उसे चित्रात्मक शैली कहते हैं। चित्र किसी अप्रस्तुत वस्तु के मानसिक या काल्पनिक रूप होते हैं। मकान में शुक्ल जी द्वारा नगर–निगम के दफ्तर का चित्रांकन इस तरह किया गया है– "लता–कुंज उनके पास या बीच से निकलने वाली टेढ़ी–मेढ़ी वीथियाँ, फूलों की विस्तीर्ण क्यारियाँ, नकली झीलें, आलंकारिक वृक्षों की कतारें, उनके बीच से निकली हुई सीधी–साफ सड़कें, मखमली दूब के मैदान आदि मिलकर आपस में इस जमीन का बँटवारा कर चुके हैं"।

प्रतीकात्मक शैली :-

डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में– "प्रतीक रूप तथा अर्थ का योग है। इन्हें ही क्रमशः 'अभिव्यक्ति' तथा 'कथ्य' या 'ध्वनि' और अर्थ भी कहा जाता है। प्रतीक शब्द भी होता है, वाक्य भी तथा पूरी कृतिया उसका कोई स्वतंत्र भाग भी"। श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में प्रतीकात्मक शैली का अत्यधिक प्रयोग किया है। सीमाएं टूटती है में चांद की मानसिकता को व्यक्त करते हुए उस पर लगे सामाजिक बंधनों का प्रतीकात्मक वर्णन देखिए– "भविष्य को कुरेदने की कोशिश में वह बराबर बोलती गई, अपने चारों ओर लगे जंगल में अपनी ही आवाज से आगे चलने का साहस खोजती रही"। इस उपन्यास में पात्रों की मानसिकता का चित्रण प्रकृति को सहायक बनाकर प्रतीकात्मक रूप में किया गया है– "तारानाथ ने कहा–ऐसा है नीला कि अब चांद को मौसम ही की तरह समझना चाहिए। उसे हम शायद बदल नहीं पाएंगे"।

इसी तरह राग दरबारी में 'गंजहा' वास्तव में भारतीय ग्रामीण जीवन का प्रतीक बनकर उभरा है। इस उपन्यास में सबसे प्रमुख प्रतीक है मदारी और बंदर का क्योंकि वैद्यजी पूरे शिवपाल गंज को मदारी की भाँति नचाते हैं– "मदारी जहन्नुम में जाने के बजाय, वहीं पर जोर–जोर से गाने लगा था और उसकी डुगडुगी अब एक नयी ताल पर बज रही थी।...दोनों बंदर मदारी के सामने बड़ी गंभीरता से मुँह फुलाए बैठे हुए थे और लगता था किये जब उठेंगे तो भरतनाट्यम से नीचे नहीं नाचेंगे"। इसी तरह गाँव के किसानों के रूप–वर्णन से उनकी सामाजिक स्थिति का वास्तविक बिंब खड़ा करने में शुक्ल जी सफल हुए हैं– "रामलाल–खेती, दमा, अकेलापन, वन मानुषों और प्रेतों की समकक्षता यही उसकी जिंदगी है"। इसी तरह उपन्यास सूनी घाटी का सूरज में रामदास के जीवन की समस्याओं को प्रकृति–चित्रण के माध्यम से दर्शाया गया है– "न जाने कितने साँप, बिच्छू, विषखोर,

कनखजूरे, चमगादड़, लोमड़ी और सारस इस कुहासा पूर्ण ठंडी रात में अपने अस्तित्व का परिचय दे रहे हैं"।

अर्थात उसके जीवन में विभिन्न माध्यमों द्वारा अनेक समस्याएँ समय–समय पर खड़ी होती रही थीं। अज्ञातवास में भी कथ्य के प्रतिपाद्य को रोचक व प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए शुक्ल जी ने प्रकृति–चित्रण का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। रजनीकांत की संपन्नता को व्यक्त करते हुए इन्होने लिखा– "एक मचलती हुई आवारा शाम। पागल हवाएँ। ऊँचे–ऊँचे पेड़ों की मजबूरी में बंधी, क्षितिज को पल्लवों से छूने के लिए चारों ओर उड़ती बेसब्र टहनियाँ"। इससे हमें रजनीकांत की विलासिता पूर्ण तथा सुविधा संपन्न जीवन शैली का बोध होता है। रजनीकांत के जीवन का उत्तरार्ध अकेलेपन, कुंठा–निराशा व पीड़ायुक्त था जिसे शुक्ल जी ने अँधेरे, काले रंग, जंगल, घने झुरमुटों आदि प्रतीकों द्वारा प्रकट किया है।

मकान उपन्यास में अतीत के अनुभवों को नारायण वर्तमान में प्रतीक की तरह कभी–कभी खींच लेता था जैसे– "पुराने अनुभव रेडीमेड गारमेंट की तरह सचमुच ही अनेक बारह में नंगा होने से बचा लेते हैं"। टाईपिस्ट लड़की के रूप–वर्णन की प्रतीकात्मकता देखिए–"वह अपनी उदास सुंदरता के घेरे में बैठी है"। नारायण अपनी शिष्या पर आसक्त होकर जब उसे आलिंगन बद्ध करता है तब श्यामा की प्रतिक्रिया को वह "सविनय अहिंसा पूर्ण आंदोलन" कहता है। इस उपन्यास में पात्रों का व्यक्तित्व–विश्लेषण भी शुक्ल जी द्वारा एक–दो शब्दों में ही व्यक्त कर दिया गया है जैसे– "नारायण का शरीर दियासलाई और आतिशबाजी की मिली–जुली दुकान है "और अफसर के व्यक्तित्व में" आतंक मिश्रित कमनीयता है"।

पहला पड़ाव उपन्यास में शुक्ल जी ने संतोष के जीवन में उपस्थित समस्याओं और जंजालों को प्रकृ ति–चित्रण के माध्यम से इन शब्दों में व्यक्त किया है–"अभी सात–आठ दिन में ही आसमान बादलों से ढक जाएगा, वे पेड़ आषाढ़ के पहले दौंगरें में भीग रहे होंगे, तब मेरी भी जिंदगी का मौसम बदलेगा, तपन के छोटे–छोटे धब्बे भले ही रह जाए, चारों ओर से बंधा हुआ दमघोटू उमस का यह घेरा टूटेगा–जरूर टूटेगा"।

स्वप्न एवं फैंटेसी शैली :-

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में स्वप्न तथा फैंटेसी शैली का भी भरपूर प्रयोग दिखता है। अज्ञातवास उपन्यास में रजनीकांत के जीवन से जुड़ी स्मृतियों को उद्घाटित करने के लिए स्वप्न शैली का सार्थक प्रयोग किया गया है। बचपन से लेकर अपनी पत्नी की मृत्यु तक की घटनाएँ रजनीकान्त के मन में बहुत गहरे तक बैठ चुकी थीं इसलिए वह राजशेखर द्वारा दिये गए जंगल के चित्र को देखकर सोचने लगता है– "इस चित्र को देखते–देखते कुछ खो देने की, कुछ भूल जाने की, कहीं भटक जाने की–सी उदासी उसके मन में फैल गई"।

उपन्यास के अंतिम भाग में रजनीकांत फंतासी दुनिया में चला जाता है जहां उसे लगता है कि उसके चारों ओर घने जंगल हैं– "ओ निर्वासित वनवासियों, अपनी अज्ञात तपोमयी गुफाओं में लौट आओ। अपना विक्षोभ छोड़ो। यह पुराना घर एक नवीन तेजस्विता से तुम्हारा आवाहन करता है। आओ अपने को एक दूसरे में समाविष्ट करो"। मकान उपन्यास का नारायण भी एक स्वप्न–दृष्टा व्यक्ति है। इसके साथ ही बिस्रामपुर का संत में राज्यपाल कुँवर जयंती प्रसाद के स्वप्न से ही कथानक की शुरुआत हुई है। पहला पड़ाव का नायक सत्ते भी स्वप्न देखते रहने वाला व्यक्ति है इसलिए वह क्रियाशील कम है। वह सिनेमाई दृश्य ही अधिकतर सपने में देखता है, जहाँ वह स्वयं को अनैतिकता, बुराई से लड़ता हुआ नायक के रूप में पाता है– "अचानक तूफान की तरह, मै झोपड़ी में घुसता हूँ। आज मुझे मुक्केबाजी और भारतीय कुश्ती के दाँव पेच नहीं दिखाने हैं। यह जूडो–कराटे

का दिन है। मैं काफी देर ढुशुम–ढुशुम करता हूँ या अपने को ऐसा करते देखता रहता हूँ"।

समाहार :–

उपर्युक्त विश्लेषण–विवेचन से यह स्पष्ट है कि श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्प–पक्ष काफी स्वस्थ, सुदृढ़ तथा विविधतापूर्ण है। इन्होने परंपरागत शिल्प मान्यताओं को साथ रखकर भी नवीन शैली का प्रयोग करते हुए उपन्यास के कथ्य–विषय वस्तु में समाहित सत्यों–तथ्यों–यथार्थों के संप्रेषण हेतु उन्होंने नये–नये उपादानों को सहजता से स्वीकार किया है। आधुनिक भारतीय समाज तथा मानव जीवन के यथार्थ को पूरी तन्मयता के साथ पाठको तक संप्रेषित करने के लिए उनके शिल्पगत उपादान सफल साबित हुए हैं।

संदर्भ :–

1. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज (उपन्यास), पृष्ठ–42,162
2. श्रीलाल शुक्ल, अज्ञातवास (उपन्यास), पृष्ठ–10, 16, 18, 41, 53, 48–49, 76, 111
3. श्रीलाल शुक्ल, रागदरबारी (उपन्यास), पृष्ठ–05, 15, 17, 136, 267, 282, 330,
4. श्रीलाल शुक्ल, आदमी का ज़हर (उपन्यास), पृष्ठ–41
5. श्रीलाल शुक्ल, सीमाएं टूटती हैं (उपन्यास), पृष्ठ–101, 107–108
6. श्रीलाल शुक्ल, मकान (उपन्यास), पृष्ठ–09, 15, 26, 41, 50, 52, 68
7. श्रीलाल शुक्ल, पहला पड़ाव (उपन्यास), पृष्ठ– 33, 36, 100, 242
8. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का संत (उपन्यास), पृष्ठ– 12
9. श्रीलाल शुक्ल, राग विराग (उपन्यास), पृष्ठ–86
10. डॉ. रामप्रकाश, मानक हिंदी : संरचना एवं प्रयोग, पृष्ठ–110–112
11. श्रीलाल शुक्ल, अज्ञेय : कुछ रंग कुछ राग, पृष्ठ–73
12. डॉ. भोलानाथ तिवारी, व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृष्ठ–108
13. ज्ञानेन्द्र मणि त्रिपाठी, इक्कीसवीं सदी में ज्ञानपीठ–पुरस्कृत हिन्दी साहित्यकारों के उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन (सन 2000 ई.–2020 ई.तक) (शोध प्रबंध)

ई.मेल– sonamshukla616@gamil.com, tgyanu.gmt@gmail.com

मो. 7982657149, 8765590579, 7985459537

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 151-154

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Trajectory of Indian Drama

Dr. Preeti Singh
Assistant Professor, Department of English
B.A.K.P.G. College Lakhimpur-Kheri, U P.

India is one of the countries that can boast of an indigenous dramatic tradition as she possesses a lively performative tradition from times immemorial. Prevalence of ritualism in India has been referred by many historians, in which some members of the tribe acted as if they were wild animals and some others as they were the hunters. Those who acted as animals were chased by those, playing the role of hunters. The origin of the Indian theatre was mixed with dance, ritualism as well as depiction of events from daily life, during the Rig Vedic times. Ritual drama was a sacred form of oral literature that often combined song and narrative. Theatre in ancient India was a mirror of Indian tradition, culture and creativity.

In such a very unassuming and rudimentary fashion the theatre originated in India, during the ancient era. And in this manner what began as ritualism and crude drama evolved into a rich dramatic tradition. But there is no literary or material evidence of it. Ritualism made a great impact in the presentation of ancient Indian theatre and indeed paved the way of a rather classical presentation of Indian theatre. The origin of theatre as a literary tradition can be traced back to the fourth century B.C. with classical Sanskrit drama, as early as the Greek tradition. The Ramayana and the Mahabharata can be considered to be the first recognised plays that originated in India.

Natyashastra is regarded as the Bible of Indian dramaturgy. Bharat Muni, the author of Natyashastra, is known as the father of Hindu drama. It is a seminal work on Indian dramaturgy, dealing with it in its entirety. Along with the theory of drama it also provides the guidelines for directors, actors, spectators and critics. This treatise claims for the divine origin of drama and a close connection with the sacred Vedas themselves.It is stated that Natyavedawas created by extracting different aspects from the other four Vedas. Bharat Muni has taken dance from Rigveda, recitative from the Samveda, the histrionic representation from Yajurveda and sentiments from Atharveda. Thus,Natyashastra came into existence as the Fifth Veda.

It is considered as the foundation of science of dramatics and dramaturgy. This treatise deals with various aspects of drama in great detail. Bharat Muni's most important theory of Rasa and its

elaborate elucidation is found in the sixth and seventh chapters of Natyashastra, which has far-reaching impact in the field of aesthetics. Indian Sanskrit drama was designed to "comprehend whole arc of life, ranging from the material to the spiritual, the phenomenal to the transcendent, and provide at once relaxation and entertainment, instruction and illumination" (Iyengar 1).

Natyashastra brings out the importance of dance, song and instrumental music along with the spectacle, in Indian drama. The drama has something of divine origin and is tied to a religious function at root in Indian context. Indian theatre reflects a lot about the cultures and traditions of India, the colours of its festivities, and the vibrancy of people. Bharat Muni had laid down aesthetic concepts and has discussed the transformation of play into performance.As per Natyashastra the dramatic composition, comprised of three concepts; Vastu (plot), Neta (the hero), and Rasa (the sentiment), is known as Rupaka. Bharat Muni developed his supreme aesthetic concept of Rasa or flavour, of aesthetic experience which organises and integrates all the disparate concepts.Reddy and Dhawan in their book Flowering of Indian Drama: An Introduction remark that :

Sanskrit drama in its long and chequered history has throughout conformed to these classical norms prescribed by Bharat, while being loyal to the highest principles of Indian aesthetic, Sanskrit drama mirrored the essential and eternal India, much to the profit and delight of the audience. (8-9)
Patanjali in his Mahabhasya informs about the evolution of drama from its epic background. He also describes the actors who as Mythological heroes have commanded reverence throughout the country.The inscriptions at Sitabenga and Jogimara caves suggest the existence of a developed dramatic art in ancient times.The works of this age are the products of vigorous creative energy as well as sustained technical excellence.The dramatists of the classical period of Indian dramaproduced the work par excellence. Kalidasa, who is also known as the Shakespeare of India, produced a gem of Indian drama, his magnum opus, AbhigyanaShakuntalam. It gave the world a profound spiritual vision of life. It is one of the richest and most satisfying romantic dramas.

Sanskrit plays were laden with religious and supernatural elements although firmly grounded in the real world.Sanskrit drama was highly stylized drama while folk theatre is deemed to be popular drama that was realistic in trait.After Sanskrit drama ceased to be acted and was read only as literature, the folk theatre which included folk and devotional genres and puppetry and dance dramas flourished for many centuries and catered to the masses.Folk drama became more inclusive and flexible as audience became an active participant in drama.

Folk theatre, vibrant, rugged and unsophisticated in form and rich in variety and colour is an expression of the cultural heritage of a region. As practised in folk societies it has evolved from oral literature like songs, folk tales, proverbs, ballads, chants, riddles, jokes, anecdotes and all sorts of verbal utterances. (Srampickal 57)

The folk or traditional theatre originated of rural roots as an assertion of indigenous values and ideas and was simpler, immediate and closer to the rural milieu. It has evolved in step with the pattern of people's lives; connected with seasonal changes, the harvests and festivals. Folk theatre performances are closely associated to such celebrations. Folk theatre is a repertoire of social customs, habits and ways of life which became embodied in institutions, after a long period of continuityand has an autonomous existence.

It was the most powerful medium of communication in folk cultures. These folk forms are so much important as they fill a gap of around thousand years between the ancient Sanskrit plays and the modern plays. They represented their times mainly through religious and worldly stories. It even inherited various classical conventions of the Sanskrit drama.As India consists of varied ethnic groups, each developed its own kind of traditional folk theatre.

Since the seventeenth century onwards regional folk theatre came into existence in India, for maintaining traditions and upholding the values of community life through celebrations.As a result, regional drama flourished during the period, in varying forms in diverse parts of India, in various languages. Indian society was nurtured in the oral tradition where the bulk of learning was transferred through the narration of stories, myths, hymns and songs it was projected through the folk theatre. Assorted culture, varied religion and most importantly the multifarious Indian languages have played a great role in shaping up India's rich heritage and culture.

The folk drama allowed the Indian culture to flourish and find expression in a number of genres, forms, styles and techniques.The eighteenth century brought along with it rapid social and political changes. Various folk theatrical forms which were earlier either religious or merely meant for entertainment in form and content were later used with the purpose of social and political change. By this time theatre acquired a new meaning and was assigned a new role to perform.There was a major shift from idealism to realism. Indian theatre changed in its theme representation and presentation during this period.

The theatrical stage became a podium for common man to present their own predicament and misery."Folk theatre has evolved in step with the pattern of people's lives and is connected with seasonal changes, the harvests and festival seasons. In these performances there is hardly any distinction between the audience and the actors" (Srampickal 83).Indian drama underwent a substantial change during the British regime.Thus, folk theatre made a gradual progression from mythological to socio-political themes, as per the need of the hour. There have been occasions when the treatment of social themes in theatre has gone beyond a mere reflection of social issuesand has acquired a more aggressive form of protest against current social practices.

The rise of the modern drama in India is traced with the introduction of English education in

India as the phase of translation and adaptation of English and Sanskrit drama found expression. It widened the horizons and Indian drama claimed an international recognition by way of translation and adaptation.The harmonious blend of eastern and western culture gave birth to a rather modern form of drama. During the beginning of the nineteenth century the varied contemporary aspects in the Indian theatre made its presence felt.

The Indian dramaturgy assimilated different forms such as romance, opera, comedy, farce, tragedy, melodrama and historical plays. Consequently, Indian drama became a blend of many model forces. The various approaches such as reformist, the revivalist, the idealistic, the iconoclastic, the frivolous and the allegorical were tried.The modern Indian theatre started to grow more in the 1850s. By the end of the nineteenth century pioneering efforts were made to employ the mother tongue for creative expressions. This new hybrid form of Indian theatre underwent a drastic change and was concerned with common man. Realistic approach and naturalistic presentation marked the change in the thematic development of Indian theatre.

Theatre became a national phenomenon to spread social and political awareness with the founding of Indian People's Theatre Association (IPTA) in 1942.A number of playwrights felt the need to develop an indigenous theatre, after acquiring independence in 1947, as an extended form of decolonization.In the process they turned to roots that spawned a movement which was named as "Theatre of Roots' movement by Suresh Awasthi.A host of playwrights substantially contributed to the movement by combining traditional Indian performing arts with the modern European theatre in an innovative manner. It is the most diversified form and essentially unifying in theatrical values with distinctive indigenous forms of expression. They ventured to experiment with content and form and it led to the evolution of new contemporary theatre.

References :-

1. Bharucha, Rustam. Rehearsals of Revolution : The Political Theatre of Bengal. Honululu : University of Hawai Press, 1983. Print.
2. Theatre and the World: Essays on Performance and Politics of Culture. New Delhi : Manohar, 1992. Print.
3. Dhawan R. KandK. Venkata, Eds. Flowering of Indian Drama: Growth and Development. Reddy. New Delhi : Prestige Books, 2004. 85-96. Print.
4. Dharwadekar, Aparna. Theatres of Independence Drama, Theory and Urban Performance in India since 1947. New Delhi : Oxford U. P., 2005. Print.
5. Dwivedi, A. N., ed. Studies in Contemporary Indian English Drama. New Delhi : Kalyani Publishers, 1999. Print.
6. Rozik, Eli. The Roots of Theatre : Rethinking Ritual and Other Theories of Origin. USA: University of Iowa Press, 2002. Web.
7. Srampickal, Jacob, ed. Voice to the Voiceless : The Power of People's Theatre in India. New Delhi : Manohar, 1994. Print.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 155-158

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मीडिया के विज्ञापन और स्त्री छवि

दीक्षा देशपांडे

शोधार्थी, जनसंचार विभाग, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

शोध सारांश :-

कभी सुबह के अखबार में हंसती–मुस्कुराती रोजमर्रा की वस्तुओं के विज्ञापन के बीच से झांकती घरेलु सी दिखने वाली महिला तो कभी टेलीविजन ब्रेक में अपने अपूर्व सौन्दर्य को दर्शाती खूबसूरत देह की स्वामिनी स्त्री बेशक ही मीडिया उपभोक्ताओं के लिए आकर्षण का केंद्र होती है। विज्ञापन चाहे खाद्य सामग्री के हों या रोजमर्रा की वस्तुओं के, कपड़ों के हों या कास्मेटिक के, दवाइयों के हों या फर्नीचर के या फिर अन्य किसी फैशन सामग्री के। मीडिया विज्ञापनों में स्त्री छवि का भरपूर प्रयोग किया जाता है। ऐसा करने के पीछे बाजारवाद की एक आम धारणा यह है कि स्त्री का आकर्षक स्वरूप, सौन्दर्य और स्त्री देह के प्रति उपभोक्ताओं का आकर्षण प्रोडक्ट की पब्लिसिटी बढाने में अधिक कारगर होता है। उपभोक्ता स्त्री छवि से अधिक प्रभावित होते हैं। अतः मिडिया विज्ञापनों में स्त्री को आकर्षक स्वरूप में प्रस्तुत कर उपभोक्ताओं को लुभाने का प्रयास किया जाता है। ऐसी धारणा अब विज्ञापन के बाजार में आम हो चुकी है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में मीडिया ने अपने वास्तविक उद्देश्य को बहुत पीछे छोड़कर पूंजीवाद और बाजारवाद का मुखौटा पहन लिया है। अपने आर्थिक हितों की पूर्ति और धन कमाने की होड़ में संचार माध्यम अर्थात मीडिया बाजारवादी संस्कृति को बढ़ावा दे रहें हैं और इसके लिए स्त्री छवि और स्त्री देह का इस प्रकार दोहन किया जा रहा है जिससे कहीं न कहीं स्त्री अस्मिता चोटिल होती नजर आ रही है। आधुनिक मिडिया ने विज्ञापनों में स्त्री की जिस छवि को आज इस उपभोक्तावादी समाज के सामने अपने निजी स्वार्थ के लिए प्रस्तुत किया है उसके परिणामों और परिवर्तन की संभावनाओं पर विचार करने का प्रयास मैंने अपने इस शोधपत्र के माध्यम से किया है।

विज्ञापन और स्त्री :-

विज्ञापनों का मुख्य उद्देश्य उत्पाद या ब्रांड की ओर मीडिया उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करना होता है। मीडिया ने विज्ञापनों के माध्यम से स्त्री की छवि को वर्तमान में जिस उपभोक्तावादी मानसिकता को पोषित और संतुष्ट करने और अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए प्रस्तुत किया है उसका सीधा प्रभाव स्त्री अस्मिता पर पड रहा है। स्त्री को एक उत्पाद, सजावटी या आकर्षक वस्तु के रूप में मीडिया विज्ञापनों में परोसा जा रहा है। जहाँ एक ओर आर्थिक स्वतंत्रता की चाह में स्त्री घर की चार दिवारी से निकल कर बतौर कलाकार या मॉडल की भूमिका में आकर इलेक्ट्रोनिक परदे पर भी बेहतरीन तरीके से अपनी प्रतिभाओं का प्रदर्शन कर आत्मनिर्भर

बन रही है वहीं मीडिया ने आधुनिक विज्ञापनों के माध्यम से उपभोक्तावादी और बाजारवादी संस्कृति के साथ चलते हुए स्त्री चरित्र को महिमा मंडित कर एक ऐसी कृत्रिम स्त्री का सृजन किया जो आज उपभोक्ताओं के मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गयी है।

अस्मिता की लड़ाई :-

उपभोक्ताओं के ध्यानाकर्षण हेतु विज्ञापनों में नायिकाओं या मॉडल्स को बतौर कलाकार या ब्रांड एम्बेसेडर रखा जाता है। विज्ञापन की यह नवनिर्मित संस्कृति उपभोक्ताओं को उत्पाद का आदि बनाने हेतु विज्ञापनदाताओं और मीडिया द्वारा विकसित की गई है। महिलाएं भी आर्थिक स्वतंत्रता की चाह में विज्ञापनों का हिस्सा बनकर विज्ञापन की दुनियां को पोषित कर रही है। विज्ञापनों की इस आधुनिक संस्कृति से महिलाओं को अपनी एक अलग पहचान और आर्थिक संबल अवश्य मिला है और वे भी स्वतंत्र होकर इस पूंजीवादी समाज का हिस्सा बन पाई हैं लेकिन इसके विपरीत कई मायनों में इस परिवर्तन से स्त्री अस्मिता को गहरा आघात भी पंहुचा है। कार्ल मार्क्स और जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे उदारवादी सिद्धान्तकारों ने स्त्री के अधिकारों एवं दायित्वों में समानता की आवश्यकता को महसूस करते हुए कहा था की 'समता और समानता की यह स्थिति स्त्री मुक्ति के स्वप्न को साकार करने में सहायक सिद्ध होगी।' किन्तु इसके विपरीत स्त्री की छवि और उसकी देह एवं क्षमताओं का दोहन भूमंडलीकरण के इस युग में मीडिया ने सर्वाधिक तौर पर करते हुए एक नवीन विज्ञापन संस्कृति को जन्म दिया जिससे निश्चित ही पितृसत्तात्मक मानसिकता को बल मिला हैद्य मीडिया की इस चकाचौंध में अपनी सुन्दर छवि उपभोक्ताओं के सामने परोसने का दबाव स्त्री पर है।

प्रारंभ में मीडिया के क्षेत्र में महिलाओं की दखल कम थी साथ ही विषयवस्तु स्तरीय हुआ करती थी। अतरू पाठकों या दर्शकों के रुझान हेतु किसी प्रकार के आकर्षण या महिमा मंडन की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। अतः उस समय महिलायें इस शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक दोहन से मुक्त थीं। वर्तमान में संचार माध्यमों की विषयवस्तु या थीम स्त्री आधारित है। आज स्त्री मीडिया के केंद्र में है जिसका प्रयोग विज्ञापन के प्रभावी प्रतीक और प्रभावी सामाजिक अभिव्यक्ति के रूप में किया जा रहा है।

विज्ञापनों की अजब-गजब दुनियां :-

आधुनिक विज्ञापनों की दुनिया अजब–गजब और निराली है। जहाँ एक ओर बोम्बे डाइंग और स्लीप वेल जैसे विज्ञापन ग्लेमरस युवती को आरामदायक बिस्तर पर आकर्षक वस्त्रों में आराम की मुद्रा में दिखाते हैं वही बॉडी स्प्रे, डिओ, परफ्यूम आदि के विज्ञापनों में युवतियां सेक्स अपील करती नजर आती हैं। परिवार नियोजन की सामग्री से सम्बंधित विज्ञापनों में जागरूकता कम और यौनाकर्षण अधिक देखने को मिलता है। ब्यूटी सोप, शैम्पू, बाथ जेल या बॉडी वाश आदि के विज्ञापनों में युवती को अर्धनग्न अवस्था में बाथ टब में नहाते हुए दर्शाया जाता है। तो वहीं क्लोजअप जैसे रोजमर्रा के उपयोग में आने वाले टूथपेस्ट में तक युवती को युवक के आलिंगन में ताजा सांसों का आनंद लेते दिखाया जा रहा है। टमीट्रिमर और बॉडीटोनर जैसे विज्ञापनों में भी स्त्री देह का आकर्षण प्रधान होता है वहीं वोलिनी, मूव, आयोड़ेक्स और झंडूबाम जैसे दर्द निवारक उत्पादों में भी स्त्री देह को ही केंद्र में रखा जाता है जबकि ये उत्पाद सभी के लिए होते हैं। विभिन्न कंपनियों जैसे डॉलर, जॉकी, रूपा, दिव्या, लक्स आदि के द्वारा प्रदर्शित अंतर्वस्त्रों के विज्ञापनों में सेक्स अपील स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। और न जाने कितने ही ऐसे उदाहरण हमें विज्ञापनों में देखने को मिल जाते हैं। देखा जाए तो इन विज्ञापनों के दर्शक

हर आयुवर्ग के लोग होते हैं जिन पर निश्चित ही इस तरह की छवि का विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस तरह के दृश्य स्त्री की छवि को किसी विशेष रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों के प्रति होने वाले यौन अपराधों को भी बढ़ावा देते हैं।

विभिन्न कानून और उनका अनुपालन :–

विज्ञापनों में बढती अश्लीलता को रोकने के उद्देश्य से विज्ञापनों के माध्यम से अश्लील चित्रण पर रोक लगाने हेतु 'महिलाओं का अशिष्ट रूपण प्रतिषेध अधिनियम' १९८६ बनाया गया। इस बिल के अंतर्गत स्त्री आकृति का किसी भी रूप में चित्रण, उसके स्वरूप, शरीर या किसी भी भाग का प्रदर्शन जिसका प्रभाव अश्लील, अप्रतिष्ठाजनक, आपत्तिजनक, भ्रष्ट या जन आचार को चोट पहुँचाने वाला हो, अश्लील माना जाएगा। ऐसे अपराध हेतु 2 वर्ष का कारावास, दो हजार रुपये जुर्माने का प्रावधान है। भारतीय दंड संहिता की धारा २९२ से २९3 तक अश्लील विज्ञापन विरोधी प्रावधान है। 'आपत्तिजनक विज्ञापन अधिनियम' १९५४ भी विशेष तरह के आपत्तिजनक एवं भ्रम फ़ैलाने वाले विज्ञापनों पर रोक लगाता हैं।

८ जनवरी १९९६ को मीडिया में महिलाओं के चित्रांकन सम्बन्धी बिल भी पास किया गया जिसमें महिलाओं की अस्मिता की रक्षा के लिए कुछ विशेष प्रावधान किये गए। संयुक्त राष्ट्र संघ के यूनेस्को द्वारा सितम्बर १९७८ में जनप्रचार सम्बन्धी जो घोषणा की गई थी उसके अनुच्छेद 5 में विज्ञापनों हेतु आचार संहिता बनाने एवं विज्ञापन परिषद् बनाने की बात कही गई। विज्ञापन से सम्बंधित और भी ऐसे अनेक प्रावधान किये गए हैं जिन पर मीडिया द्वारा अमल नहीं किया जा रहा है और न ही कानून द्वारा इनका कड़ाई से अनुपालन करवाया जा रहा है।

प्रेस आयोग ने भी विज्ञापनों में महिलाओं की छवि के दुरुपयोग की कड़ी भर्त्सना की। प्रथम प्रेस आयोग ने १४ जुलाई १९५४ को प्रेस से सम्बंधित सिफारिशें प्रस्तुत की। अपनी रिपोर्ट में आयोग ने कहा की व्यावसायिक विज्ञापनों में महिलाओं की छवि का दुरुपयोग किये जाने से महिलाओं के केवल सेक्स की वस्तु होने सम्बन्धी धारणा को बल मिलता है जो कई अख़बारों द्वारा महिलाओं को बराबरी का स्थान देने तथा उनके व्यक्तित्व को पुरुषों के सामान मानव जीवन के सभी गुणों से संपन्न बताने वाली ख़बरों तथा लेखों के विपरीत हैं। इस सम्बन्ध में आयोग ने सरकार को निश्चित विज्ञापन नीति निर्माण करने का सुझाव दिया था।

ये कानून और नीतियां कितने प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं इसका प्रमाण हम आधुनिक विज्ञापनों में देख सकते हैं। आधुनिक विज्ञापन खुले आम इन कानूनों और नीतियों की धज्जियाँ उड़ाते नजर आते हैं और न्यायिक संस्थाए भी इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाती नहीं दिख रहीं। इन विज्ञापनों पर कोई भी लगाम न तो मीडिया की ओर से है और न ही कानून की ओर से।

क्या हैं समाधान?

अब प्रश्न यह है कि क्या केवल ग्लेमरस सीन्स, कम वस्त्रों वाली स्त्री देह या सेक्स अपील दिखाकर ही उपभोक्ताओं का बाजार खड़ा किया जा सकता है? आखिर कब तक विज्ञापनों के माध्यम से स्त्री को बिकने वाली आकर्षक वस्तु के तौर पर दिखाया जाता रहेगा? ये प्रश्न हमारे हैं और इनके उत्तर भी हमे ही तलाशने होंगे। इस बाजारवादी संस्कृति के लिए केवल विज्ञापनदाताओं को दोष देना बेईमानी होगी। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ और समाज का दर्पण कहा जाने वाला मीडिया और साथ ही समाज भी इस स्थिति के प्रति उत्तरदायी हैं। स्त्री

देह, स्त्री रूप और स्त्री छवि का दुरूपयोग करने वाली इस संस्कृति को समाप्त करने के लिए कड़े कानून बनाए जाएँ साथ ही पूर्व में निर्मित कानूनों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित किया जाये। उपभोक्ताओं को भी इस बाजारवादी संस्कृति के दलदल में डूबने से पहले स्त्री अस्मिता के महत्त्व को समझना होगा और उसकी रक्षा के लिए जागरूक होना होगा। स्त्री शक्ति को भी अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं का दोहन सही दिशा में करने के प्रयास करने होंगे। आर्थिक आत्मनिर्भरता की चाह में अपनी अस्मिता को चोटिल करना स्वयं के साथ अन्याय करना है। यह समझना स्त्री का तो दायित्व है ही साथ ही समाज, कानून व्यवस्था और मीडिया का भी महत्वपूर्ण दायित्व है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

इस शोधपत्र के माध्यम से बदलते परिदृश्य में मीडिया विज्ञापनों में महिलाओं की स्थिति के उस पहलु का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जहाँ महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता तो प्राप्त हुई है किन्तु कहीं न कहीं महिलाओं की क्षमताओं और गुणों का दोहन मीडिया के आर्थिक और व्यावसायिक हितों की पूर्ति के लिए किया गया है। आज महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में खुलकर सामने आ रहीं है और अपनी क्षमताओं का बेहतरीन प्रदर्शन कर रहीं हैं वहीँ आज भी मीडिया के क्षेत्र में महिलाओं को पितृसत्तात्मक मानसिकता से निरंतर संघर्ष करना पड रहा है और इसका सबसे बेहतरीन उदाहरण आधुनिक मीडिया के विज्ञापन है। मीडिया के आकाओं ने निजी हितों के लिए एवं मीडिया उपभोक्ताओं ने अपने मनोरंजन के लिए मीडिया में स्त्री की इस भूमिका को केवल सहर्ष स्वीकार ही नहीं किया है अपितु इस प्रकार के प्रयोगों की निरंतर मांग भी की है ताकि संचार माध्यमों को आर्थिक लाभ मिलता रहे और उपभोक्ताओं का मनोरंजन होता रहे।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि संचार माध्यमों ने स्त्री की क्षमताओं का दोहन अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए किया है। आवश्यकता है समाज की इस मानसिकता को बदलने की। अब अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु महिलाओं को स्वयं ही प्रयास करने होंगे। स्त्री को मीडिया के पूंजीपति और व्यवसायी वर्ग का नहीं बल्कि स्त्रिहितों का पोषक बनने की आवश्यकता है। तमाम शारीरिक और मानसिक शोषण एवं दोहन से बचते हुए अगर हम स्त्रियाँ अपनी क्षमता और शक्तियों का प्रयोग सही दिशा और स्त्री हित में करे तो इन संचार माध्यमों द्वारा अपनी एक स्वच्छ छवि समाज के सामने प्रस्तुत कर पाएँगे और बराबरी से समाज में स्वयं को स्थापित कर पाएँगे।

सन्दर्भ :-

1. 'डिजिटल युग में मास कल्चर और विज्ञापन' – जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह (2010)
2. 'पत्रकारिता आज और कल'–डॉ एस. के. दुबे (प्रकाशित लेख 'स्त्री छवि और संचार माध्यम–डॉ विद्या जैन) 2002
3. 'आधुनिक विज्ञापन कला एवं व्यव्हार' – डॉ अर्जुन तिवारी (2010)
4. 'विज्ञापन' – अशोक महाजन (1994)
5. भू–मंडलीकरण और ग्लोबल मीडिया – जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधासिंह (2008)
6. स्त्री परम्परा और आधुनिकता – राजकिशोर (1999)
7. युद्ध, ग्लोबल संस्कृति और मीडिया – जगदीश्वर चतुर्वेदी (2005)
8. भारत में प्रेस कानून और पत्रकारिता – गंगा प्रसाद ठाकुर, शिव अनुराग पटेरिया (2005)

ईमेल –diksha.journalist@gmail.com, मोबाईल – 8989613009

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 159-164

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' द्वारा अनूदित डा. सी. वीरण्णा का मूल कन्नड़ नाटक 'जनता के राजा शाहू' : प्रकाशक की ओर से

अजिता कुमारि के. डी, शोधार्थी,
डॉ. जयलक्ष्मी पाटील, शोध निर्देशक एवं सहायक प्रोफ़ेसर,
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़।

भारत के इतिहास में छत्रपति शाहू महाराजा के जनमुखी चिंतन एक उज्ज्वल अध्याय है। वे एक विशिष्ट प्रशासक थे, जिन्होंने अपने दृढ़ और अचल निर्धार से दीन–दलितों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, कुशल कार्मियों तथा किसानों के विकास के लिए पथ प्रशस्त किया। और उसके द्वारा हमारे समाज की कई परंपरागत पद्धतियों का अतिक्रमण किया। शाहू महाराजा के ही कार्य हमारे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास में उल्लेखनीय हैं।

शाहू महाराज के अनगिनत महान कार्य :–

भारत के अनगिनत राजाओं में कोल्हापुर रियासत के छत्रपति शाहू महाराज (1874–1922) के सामाजिक चिंतन और समाज के लिए उनकी देन कई दृष्टियों से विशिष्ठ है। 28 वर्षों तक उनका प्रशासन सभी जाति धर्म के लोगों के उद्धार के महान उद्देश्य से युक्त था। अस्पृष्यता निवारण के लिए, शूद्रों में गरीब बच्चों को साक्षर बनाने के लिए, बालिकाओं को कई प्रकार के अधिकार देने, जुलाहों में आत्मस्थैर्य भरने, किसानों को प्रोत्साहित करने उन्होंने जो दृढ निर्धार लिए वे हमारे राजनीतिक–सामाजिक इतिहास के उज्वल अध्याय बनें हैं।

डॉ. बी. आर अंबेडकर जी ने शाहू महाराज की तारीफ में कहा था कि 'शाहू महाराज जैसे मित्र इतःपूर्व अछूतों को प्राप्त नहीं थे। आगे भी प्राप्त होंगे कि नहीं इसमें संदेह है।' ऐसे शाहू महाराज सच्चे अर्थ में जनता के राजा थे। डा. सी वीरण्णा जी से रचित यह नाटक शाहू महाराजा के सर्व समान समाज रचने के संकल्प के स्मरण में हैं। अनुवाद के माध्यम से इस नाटक को हिन्दी पाठकों तक पहुंचाने का कार्य डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' ने सुचारू रूप से संपन्न किया है।

सार्वजनिक विशिष्ट जनोद्धार के सपने लेकर शाहू महाराजा ने सवालों का जो सामना किया, आतंको को सहा और तब भी उन्होनें जो निर्धार लिये वे सबके मन को लगता है। जनता के हालात जानने के लिए छत्रपति शाहू महाराज और देवप्पा दोनों शिकारी के वेष में एक गाँव में प्रवेश करते हैं। वे जानने की कोशिश करते हैं कि लोग इनके बारे में क्या–क्या बातें करते हैं।

लोगों के पूछने परे देवप्पा बताता है कि हम घाटी के नीचे के हैं। शिकार करने आये हैं। तब गाँववालों से पता चलता है कि, शिकार के नाम पर राजा गाँव आते हैं और उनके सैनिक गाँववालों के भेड़, मुर्गी, अनाज सब लूट कर जाते हैं। बदले में कुच नहीं देते।

गावँवाले हठ करते तो ऐसा मारते, कि देह सूजने लगता। राजा को इस बात का पता चलते ही उस पर कठिन कारवाई करने की सोचता है। एक बार राजा ने बिना शस्त्र के बाघ को मारा था। उसके पालतू कुत्ते ने सिंह को भी मार डाला था। राजा को बाघ और शेर से भी बहुत प्यार था।

वह देवप्पा से कहता है– 'राजमहल में जो बड़ा बाघ है न वह विदेश का है। बहुत उपद्रवी था। उसे पालतू बनाने खरीद लाया। बहुत जतन से पालकर एक बार परीक्षा करने उसकी आँख में पट्टी बाँधकर जंगल में छोड़ा। सुबह होते ही रजमहल में हाजिर।'[1] तभी देवप्पा कहता है उसे भी आपपर उतना ही प्यार है, प्रभु।

राजा ने देशभर के पहलवानों को बुलवाकर कोल्हापुर को अखाड़े का देश जैसा बना दिया था। इतना ही नहीं, देवप्पा को भी मिलाकर कईयों को राजमहल में नौकरी, जीवन गुजारने खेती, बुजुर्गों को पेंशन जैसे सिविधाएँ दिलवाए। इतनी सुविधा मिलेगी ऐसा किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था।

राजा ने देखा कि गाँव से बाहर कई कुष्ठ रोगी बिना किसी कि मदद से तड़प रहे थे। तो रानी विक्टोरिया के नाम पर एक आश्रम की स्थापना कर उन सबको वँहा रहने की व्यवस्था कर उनकी शुश्रूषा की व्यवस्था किये गये। वे सब विभिन्न जाति धर्म के थे तो, राजा भी धर्म की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानता था। इसी कारण से उस आश्रम की रसोई का पूरा भार ब्राह्मणों को सौंपकर अन्य सेवा के काम विभिन्न जाति–मतवालों को करने की अनुमति देते हैं। कुल मिलाकर उन रोगियों को एक ठिकाना दिलवाते हैं। एक व्यक्ति गन्ने के रस के यंत्र में हाथ फँसाकर घायल होकर आया था। उस राज्य का गुड़ बहुत नामी था तो एक व्यापार केंद्र स्थापित करने की इच्छा रखते थे। इसलिए बिना खतरे के गन्ने के यंत्र निर्मित करनेवाले को एक हजार रूपये का पुरस्कार घोषित किए। यह भी सूचना दिए कि दस साल तक उस यंत्र के लिए गौरव धन प्रदान करेंगे। ऐसे यंत्र निर्मित करने वाले बुद्धिमान व्यक्ति की खोज कर रहे थे।

दूसरे दृश्य में रघु आकर महाराज को एक विचार सुनाता है। हाल ही में राज्य की तरफ से कर्नल रेजी के लिए भोजन समारोह की व्यवस्था की थी। वह सब कुछ शान से संपन्न भी हुआ था। कुछ दिन बाद फ्रेजरजी के पत्र देखा तो उसमें कुछ षड्यंत्र दिखा रहा था। रघु वह पत्र लाकर राजा को देता है।

राजा पत्र खोलकर पढने लगते है, तो उसमें लिखा था कि कर्नल को इन लोगों ने विषप्राशन करने का प्रयत्न किया था। वह रानीजी से शिकायत की थी कि वह किसी तरह पार हो गए। तभी राजा, फ्रेजरजी को इस मामले में विवरणात्मक पत्र लिखने रघु को कहता है। जरूरत पढ़ने पर रानीजी की तहकिकात करके सत्य की खोज करने के लिए कहते हैं।

नगर के आस–पास के प्रदेशों में चूहों के अधिक मरने से अधिक रोग दिखाई दे रहे थे। इस भयानक रोग से बचने के लिए सभी लोगों नगर छुड़वाकर बाहर ताड़पालों झोंपड़ी बनवाने के लिए कहते हैं। खाली किए गए मकानों की रक्षा के लिए यथोचित पहरेदारों की नियुक्ति करवाया गया। एक बार महाराजा राजमहल से पाकशाला की ओर जा रहे थे, तो अचानक एक बावर्ची उसे वहाँ जाने से मना कर देता है।

राजा के पूछने पर वह कहता है, "कल होने वाले 'पंचगंगा' कार्यक्रम के तहत विप्रवृंद के लिए भोजन

तैयार हो रहा है। आप अंदर जायेंगे तो शुद्धि में भंग हो जाता है।'[2] क्योंकि आप शूद्र है। महाराज यह सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। वे सोच में पड़ गये कि क्षत्रिय कैसे शूद्र बन सकता है। तब बावर्ची कहता है कि गुरू संकराचार्य का कहना है कि आप क्षत्रिय नही। उसी क्षण राजा उसकी जड़ को ही उखाड़ फेंकने के बारे में सोचता है।

हक की लड़ाई :–

पंचगंगा कार्यक्रम के लिए सब लोग एकत्रित हुए थे। रानी, गुरू शंकराचार्य, राजोपाध्याय, नारायण भट्ट, रघुनाथ, राजाराम शास्त्री, देवप्पा आदि। कार्यक्रम से पूर्व राजा कुछ बातों को जानने की इच्छा से आचार्यजी से पूछता है? दोनों के वर्तालाप यहाँ प्रस्तुत है :–

राजा	:	कार्यक्रम से पूर्व आचार्य जी से हमारा एक प्रश्न है?
राजोपाध्याय	:	कौन–सा प्रश्न है प्रभु?
राजा	:	हम इस पवित्र कार्यक्रम में सुचिर्भूत होकर आए हैं। पौरोहित्य करनेवाले आप लोगों ने क्या स्नान कर लिया है?
राजोपाध्याय	:	कभी नहीं पूछा यह प्रश्न, आज कैसे आ गया प्रभु?
राजा	:	कभी नहीं पूछा तो, आज नहीं पूछना चाहिए, ऐसा तो नहीं है न?
शंकराचार्य	:	यह आप की स्व बुद्धि का प्रश्न है या किसी.....
राजा	:	क्यों गुरूजी को हमारी बुद्धिमत्ता के प्रति इतना संदेह ?
शंकराचार्य	:	संदेह नहीं, सब कुछ जब सुचारू रूप से चल रहा है, बीच में इस चिनगारी को किसने छिड़काया।
राजा	:	वह कौन है ? अब वह बात मुख्य नहीं। हमें उत्तर चाहिए बस।
शंकराचार्य	:	उत्तर चाहिए न। इसका उत्तर मैं ही देता हूँ। आप शूद्र हैं न। इसलिए आपके कार्य करने से पहले स्नान न करके, कार्य पूर्ण होने के बाद मैल धोने के लिए स्नान करना चाहिए।
राजा	:	हम क्षत्रिय वंशज हैं न?
शंकराचार्य	:	कदापि नहीं। अब धरती पर क्षत्रिय वंश ही नहीं है।
राजा	:	क्षत्रि धरती पर है ही नहीं तो, हम जो वस्त्राभरण, सोने के सिक्के देते हैं, उनके लिए मैल नहीं है क्या?
राजोपाध्याय	:	महाप्रभु, आज न जाने आप दूसरी राह पर ही चले हैं।
राजा	:	आपने ही उसकी सृष्टि की है। हमारा एक और प्रश्न है। कार्यक्रम वेदोक्त मंत्र के द्वारा क्यों नहीं करते?
ना. भट्ट	:	उसे भी आप के ध्यान में लाया गया है।
राजा	:	क्यों, क्या वह हमारी समझ में नहीं आती?
ना. भट्ट	:	उसके लिए भी गुरूजी ने जो कहा है वही उत्तर है। शूद्रों को वेदोक्त मंत्रों के द्वारा संस्कार नहीं किया जाता है।
राजा	:	हमें आप लोगों ने शूद्र कह दिया। आप के अनुसार आपकी माँ स्त्री भी शूद्र ही ! उनकी

कोख से जन्में आप कैसे ब्राह्मण बन गए?

शंकराचार्य : उसके लिए हमारे पास उत्तर है। जन्मतः सब लोग शूद्र ही होते हैं। संस्कार से ब्राह्मण बन जाते हैं।

राजा : फिर जन्म से शूद्र हमें संस्कार से ब्राह्मण बना दीजिए।

राजोपाध्याय : यह असंभव बात है। हमारी परंपरा में उसके लिए स्थान नहीं है।

राजा : क्यों नहीं? विश्वामित्र ब्रह्मर्षि किसकी परंपरा में बने?

शंकराचार्य : वह सब युग–युगों पहले की बात है। अब वह लागू नहीं होती है। हमारी परंपरा के विश्वास के साथ चलना आपका धर्म है। महाराजा से निवेदन है कि आगे के कार्यकलापों पर ध्यान दें।

उसी क्षण वह राजाज्ञा देते हैं कि, राजमहल के पोरोहित्य मुखिया राजोपाध्याय और नारायण भट्ट तथा उनके परिवार को निकाल दिया जाए। गुरू शंकराचार्य जी के मठ को प्रदान की जानेवाली देन पचास हजार रूपये खजाने में जमा करने का आदेश देते है। उसी दिन से पौरोहित्य की जिम्मेदारी राजाराम शास्त्री को देते हैं। महारानी को भी सूचना देते हैं कि, अंतःपुर में पौरोहित्य के लिए आनेवाले ब्राह्मणों को उसी क्षण निकाल कर, राजाराम शास्त्री के मदद से पर्याय व्यवस्था की जाये।

अमात्यजी को भी सूचना देते हैं कि मराठों को आवश्यक गुरूपीठ स्थापना के तैयारी करें। यह सब देख शंकराचार्य, 'यह हमारी प्रतीक्षा से बढ़कर आगे बढ़ा मार्ग है। किसी ने सपना तक नहीं देखा था कि समय इतनी तेजी से पलट जाता है। हम सार्वभौम सरकार और न्यायालय में अपने हक के लिए लड़कर न्याय प्राप्त करते हैं' कहकर वहाँ से सबके साथ चले जाते हैं।

नवयुग का निर्माण :–

मगर राजा इन सबका परवाह किये बिना कहता है, 'कोई कुछ भी करे शूद्र कहलवाकर आपसे अपमानित हो वैभव से जीने से शूद्र बनकर जीना बड़ा अच्छा है। मगर हमने जो यह कदम रखा है वह मैं जानता हूँ नवयुग का आरंभ है। आगे का निर्णय लेने के लिए अपने हित चिंतकों की सभा राजमहल के सभागृह में आयोजन करने की आज्ञा देते हैं।

राजमहल के सभागृह में राजा ने निर्णय किया कि काया, वाचा, मनसा वह शूद्र बन जाये। वह जानते थे कि वे एक भूखे सिंह की गुफा में प्रवेश करने जा रहे हैं। क्योंकि उनके खिलाफ होकर, उनसे अपमानित लोग अब चुप नहीं रहनेवाले। मगर इसी डर से छुप भी नहीं बैठ सकते थे। किसी एक दिन इसका अंत होना ही था। इसी कारण से उनके राज्य के प्रशासन में पचास प्रतिशत पदों में पिछड़े वर्ग के लोगों को नियुक्त करने के बारे में सोचते हैं। उसके लिए शूद्रों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने की व्यावस्था भी करते हैं। अस्पृश्यों के लिए खोले अलग विद्यालयों को बन्द करके उनके बच्चों को भी अन्य बच्चों के साथ बैठकर सीखने का प्रबंध करवाया गया। पिछड़े वर्गों की नियुक्ति में जिले के पाँच और नगरों में पाँच अस्पृश्यों की नियुक्ति करने की घोषणा करते हैं। राजमहल में भी यही नियम जारी रकते हैं। इस विचार में सरकारी आज्ञा अधिसूचित करके, इस बदलाव को न माननेवालों को आठ दिन में काम से इस्तीफा देने की सूचना देते हैं। इन सभी विचारों को प्रेरित करनेवाले ज्योतिभा फुलेजी का भी आभार प्रकट करते हैं।

षड्यंत्र :-

दूसरी तरफ शिवाजी क्लब में शंकराचार्य, नारायण भट्ट, राजोपाध्याय, तात्याराव, दत्तोपंत, बेळवी आदि के मौजूदगी में सभा चल रहा था। सभी बालगंगाधर तिलकजी के इंतजार में थे। तिलकजी सभा में प्रवेश करते ही राजा को देशद्रोही कहने लगते हैं। 'वह शूद्रों को पचास प्रतिशत देकर एक नया इतिहास रचने जा रहा है।' इसी कारण सभी मिलकर राजा पर गुरुतर आरोप लगाकर उन्हें नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं। इसके समक्ष उपाय भी बनाते हैं– 'कुछ दिन से महारानी की स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण महाराज उनसे सुख वंचित हो गए हैं। तो चार–पाँच दिनों में महाराजा तीन कन्याओं पर बलात्कार करके, किसी को इसकी बनक होने से उनके वध करने की धमकी दी थी। आनेवाले दिनों में हमारे शहर में इज्ज़त से रहनेवाली औरतों का जीना मुश्किल हो जाता है'।

महारानी का भरोसा :-

राजमहल के अंतःपुर में महारानी लक्ष्मीबाई उनकी सखी से बात कर रही है। महारानी सखी, सक्कू से पत्र के बारे में बात करती हैं, इस पत्र को उन्होंने हमें क्यों भेजा होगा? सोचती है। मगर वह क्रोधित नहीं होती है, क्योंकि वह जानती थी कि जैसे पत्र में लिखा है ऐसे तो राजमहल में कोई बलात्कार नहीं हुआ था। फिर भी वह राजा से कहती है– ये सारी कहानियाँ मेरी अस्वस्था के कारण गढ़ी गयी हैं। इसकी इतिश्री करने के लिए आप दूसरा विवाह कर लीजिए। मगर राजा साफ इनकार कर देता है। उसका कहना था कि– 'राजमहल, अंतःपुर को अनावश्यक कुरुक्षेत्र बनाना मुझे भाता नहीं। सोने जैसे बच्चे हैं। उनका पालन–पोषण करेंगे। उससे बढ़कर और सवाल हमारे सामने कई हैं। उनका सामना करेंगें।'

राजा और रघुनाथ के पास से गुज़र रहे थे तो, नीचे गिरे व्यक्ति को कुछ लोग सांत्वाना दे रहे थे। पता लगाने से मालूम हुआ कि उस हौज के पानी को छुआ है समझकर कोई उसे मार रहे थे। लोगों ने देखा तो उसे छुड़ाकर मारनेवाले को बाँध दिया था। राजा को इन सबके बारे में पता चला तो उसी छड़ी से मारनेवाले को मारकर कारागघ्ह में डलवा दिये। मार खानेवाला जो गंगाराम कहलाता था उसे वहाँ के छत्र में सत्य सुधारक होटल प्रारंभ करने के लिए कहते हैं। उसके आवश्यक चीजों का भी इन्तजाम करने की सूचना देते हैं। राजा भी यह आश्वासन देते हैं कि वो भी कभी–कबार चाय पीने वहाँ आ जाएँगें।

वेशधारी शाहू महाराज :-

वेशधारी शाहू महाराज उस्ताद अल्लादिया खान के घर में प्रवेश करते हैं। ताराबाई तनपुरा साफ कर रही थी। वह राजा के श्रेय चाहनेवालों मे से एक थी तो राजा को पहचान लेती है। वह सुप्रसिद्ध नर्तकी थी। ख्यात नामों के सानिध्य में संगीत सीखने पर भी अल्लादिया के पास सीखने आयी थी।

वह उसे राजाश्रय देने की माँग रखता है। तो राजा उसे राजदरबार की सारी सुविधा देने की व्यवस्था करने के लिए दीवानजी से कहते हैं। महानवमी उत्सव में मल्लस्पर्दा, संगीत, नृत्य के साथ नाटक, तमाशा, चित्रकला आदि प्रदर्शनी का आयोजन करके उत्सव की रौनक बढ़ाने की माँग लोगों ने रखा तो वो भी करते हैं। कलामहोत्सव के साथ किसानों को मार्गदर्शन और नये विचारों की जानकारी देनेवाले प्रदर्शन का आयोजन करने का प्रोत्साहन देते हैं। जुलाहों के बुनने का करघा, रेशम, सुगंध द्रव्य उद्यमों का परिचय कराके उसमें लोगों को और अधिक भाग लेने के लिए भी प्रोत्साहित करते हैं।

विकास योजना :-

दीवानजी के साथ जिलाओं से विभिन्न अधिकारियों के सभा बुलाकर विकास योजना के बारे में बात करते हैं। जिसमें पेड़–पौधों की रक्षा करना, पेड़–पौधों को लगाकर पालनेवालों को सरकार की तरफ से मदद। पानी के अभाव को दूर करने के लिए झील, तालाब, नाहर आदि को ठीक करना। मधुमक्कियों का पालन करना जैसे कई विचारों पर ध्यान दिये गये।

पहले सरकार के स्तर पर और दूसरे न्यायालय में पराभव होने से मठ के लिए दान माँगने फिर से शंकराचार्य राजा के पास गये। तब राजा कहते है : "आप के सभी अनुयायियों ने हमें ब्राह्मण द्वेषी समझा है। हम किसी जाती या किसी व्यक्ति से द्वेष नहीं करते हैं। हमारा मूलभूत आशय दीन–दलितों का उद्धार है।" उसी दिन से राजा, शंकराचार्य को संस्कृत कालेज की जिम्मेदारी और मठ के सारे देय और सारी सुविधाओं को लौटाने की व्यवस्था भी किए।

ऐसे अनगिनत महान कार्यों के लिए शाहू महाराज प्रसिद्धि पा चुके हैं। उसकी ऐसे महान कार्यों के लिए ही वे आज भी सबके दिलों–दिमाग में छाये हुए हैं।

संदर्भ :-

1. डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' द्वारा अनूदित डॉ. सी. वीरण्णा का मूल कन्नड़ नाटक जनता के राजा शाहू प्र.सं 2017, पृ. 3.
2. डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' द्वारा अनूदित डॉ. सी. वीरण्णा का मूल कन्नड़ नाटक जनता के राजा शाहू प्र.सं 2017, पृ. 9.

Ajithakumari K D

Ph no- 9900378544

Mail id: yukthataran05@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 165-170

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कामायनी महाकाव्य में प्रसाद की पर्यावरणीय चेतना

श्रीमती पार्वती

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, रा0 स्ना0 महा0 बेरीनाग, पिथौरागढ (उत्तराखण्ड) पिन कोड–262531

सांराश :-

पर्यावरण शब्द परि और आवरण शब्द के योग से बना है। परि शब्द का अर्थ चारों ओर, आवरण शब्द का अर्थ ढका हुआ या आच्छादित है। इस प्रकार हमारे चारों के वातावरण को पर्यावरण नाम से संबोधित किया जाता है। जिसमें समस्त सजीव निर्जीव घटक सम्मिलित हैं। इन सभी तत्वों से ही हमारी प्रकृति की अवधारणा स्पष्ट होती है। प्रकृति के सजीव निर्जीव घटकों के अतिरिक्त मानव निर्मित वस्तुएँ भी हमारे पर्यावरण का अंग हैं। पर्यावरण के सभी घटक जीव–जंतु, वन्य जीव, पेड़ पौधे एंव वनस्पति सभी एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। जैव विविधता हमारे जीवन की आवश्यकता पूर्ति हेतु आवश्यक है। इन सभी के मध्य संतुलन बने रहना बहुत जरूरी होता है। यदि इनका संतुलन बिगड़ा तो मानव जीवन खतरे में पड़ जाता है। इसीलिए पर्यावरण के प्रति मानव की चेतना का विशेष महत्व है। जिससे मनुष्य इन सभी की एक दूसरे पर निर्भरता के महत्व को समझ सके। पर्यावरण के प्रति मानव को सजग करने में साहित्य का भी विशेष योगदान रहा है। हिंदी साहित्य की यदि बात करें तो आदिकाल से आधुनिक काल के साहित्य सभी में किसी न किसी रूप में पर्यावरणीय चेतना मिलती है। जिसमें छायावादी काव्य कामायनी जैसे महाकाव्य का भी विशेष महत्व है। कामायनी महाकाव्य में प्रसाद जी ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में दिखाकर मानव को पर्यावरण के महत्व से परिचित कर, प्रकृति संरक्षण के लिए प्रेरित किया है।

मुख्य शब्द– कामायनी, पर्यावरण, प्रकृति, चेतना, वेद, उपनिषद, छायावाद, जलप्लावन।

प्रस्तावना :-

पर्यावरणीय चेतना साहित्य में प्राचीन काल से ही देखने को मिलती है। भारतीय मनीशियों ने प्रकृति की महत्ता को समझते हुए उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ–साथ व्यावहारिक पक्ष पर भी विशेष ध्यान दिया। सूर्य, चंद्र, वायु को प्रकृति के लिए देवीय वरदान मानते हुए, अलौकिक शक्ति के रूप में उनकी स्तुति की गयी। वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि प्राचीन ग्रंथों में प्रकृति के उपादानों को पूजनीय माना गया है। यह प्रकृति संरक्षण के लिए विशेष महत्व रखता है। हिंदी साहित्य में हर काल में प्रकृति चित्रण किसी न किसी रूप में अवश्य देखने को मिलता है।

छायावादी काव्य में प्रकृति चित्रण विशेष रूप में देखा गया है। प्रकृति की मनमोहक गोद में छायावादी कवियों के हृदय में विभिन्न प्रकार की कल्पनाएँ जन्म लेती हैं। इन्होंने प्रकृति के सौंदर्य पर न्योछावर होकर प्रकृति

के भव्य तथा आकर्षक रूपों को काव्य के माध्यम से चित्रित किया। जो हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है।

जयशंकर प्रसाद छायावाद के आधार स्तंभों में से एक हैं। कामायानी प्रसाद जी का महत्वपूर्ण महाकाव्य है इसमें प्रकृति चित्रण प्रसाद जी ने बड़ी संजीदगी से किया है। जलप्लावन व देव जाति के विनाश और मानव सृष्टि की उत्पति के संकेत भी है। इस महाकाव्य में पंद्रह सर्गो के माध्यम से मानव जीवन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण के साथ ही पर्यावरण के प्रति मानव चेतना को जागृत करने का काम किया गया है। कामायनी में प्रकृति के दोनों रूपों का चित्रण है – 1. प्रकृति का विकराल रूप। 2. प्रकृति का कल्याणकारी रूप।

'कामायनी का आरंभ प्रकृति के कोड़ से होता है और उसका अंत भी प्रकृति की भूमिका में ही नीहित है। आरंभ में प्रकृति विकराल रूप में दिखाई देती है, अंत में आनंददायिनी छाया में विश्राम देकर कामायनी महाकाव्य की महिमा से हृदय को गौरवान्वित कर जाती है'।[1]

वर्तमान युग औद्योगिक क्रान्ति का युग है मानव विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे पहुँच चुका है, किन्तु उसके दुष्परिणामों को पहचानने में मानव को बहुत समय लगा। जब उसके दुष्परिणाम स्वतः उसको दिखाई देने लगे तब मानव को विज्ञान के दो रूपों का एहसास हुआ विकास व विनाश, ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रसाद ने इसका पूर्वाभास कामायनी में दे दिया हो। निश्चय ही कवि विधाता की विशिष्ट रचना ही रही होगी। जो उनके प्रज्ञाचक्षु इस बात को पहले ही समझ चुके थे।

कामायनी के माध्यम से प्रसाद जी ने जो प्रलय घटना का वर्णन किया है उसके विषय में प्रो0 दिवा भट्ट जी लिखती हैं– 'प्राकृतिक शक्तियों की मानव द्वारा खोज, दुरूपयोग तथा तत्जन्य अप्रिय परिणितियों का चित्रण पढकर आश्चर्य होता है कि जिस समय विश्व इन दुष्परिणामों के प्रति बेखबर होकर उन्हें अहोभाव से पूज रहा था। उसी समय भारत में बैठे एक कवि ने भावी घटनाओं के इतने स्पष्ट संकेत कैसे दिए'।[2]

प्रकृति मनुष्य के लिए एक अनोखा वरदान है। जिसकी महत्ता को मनुष्य नहीं समझ पाया और औद्योगीकरण की दौड़ में दौड़ता ही चला गया। उसने पीछे मुड़कर देखना जरूरी नहीं समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि, प्रसाद जी को भावी पीढी के मष्तिस्क का पूर्वाभास हो गया हो। इसीलिए उन्होंने वर्तमान मानव के लिए ही यह पंक्तियाँ निर्मित की है :–

'आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर।
प्रकृति संग संघर्ष निरंतर अब कैसा डर।'[3]

मनुष्य प्रकृति पर अपनी यात्रिंक शक्तियों का प्रहार कर रहा है। परिणाम स्वरूप प्रकृति का प्रकोप अनेक रूपों में देखने को मिलता है। प्रसाद जी कामायनी में देव जाति के वैभव विनाश का संकेत मानव की चेतना को जागृत करने के लिए कहतें हैं। प्रकृति की उपेक्षा का दुष्परिणाम सभी को मिलता है चाहै वह देवता ही क्यों न हो वे कहतें हैं :–

'वे सब डूबे डूबा उनका वैभव, बन गया पारावार
उमड़ रहा था देव–सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार'।[4]

भोग विलास में लिप्त अहंकारी मानव की अनेक सभ्यताएँ प्रलय प्रवाह से विनष्ट हो गयी किन्तु मानव को आभास नहीं है। प्रसाद जी ने कामायनी में मनु के माध्यम से यह बताया है कि मनु प्रलय का साक्षी है। वह सारस्वत नगर का स्रमाट बन जाता है। उसके पश्चात् भी उसकी लालसाएँ शांत नहीं होती। इड़ा जो बुद्धि का

प्रतीक है। सारस्वत नगर की रानी है। मनु उसे वासना की दृष्टि से देखता है। इस वासना पूर्ति हेतु कुछ भी अनैतिक करने को तैयार रहता है। वह वही कार्य करने की सोचता है जो प्रकृति के नियमों के अनुकूल नही है। क्षणिक सुखों के लिए प्रतिशोध की आग में भयंकर नरसंहार जैसे कृत्य को अंजाम देता है। जिसका वर्णन प्रसाद जी इस प्रकार से करते हैं :–

'धूम्रकेतु–सा चला रूद्र–नाराच भयंकर,
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर।।
अंतरिक्ष में महाशक्ति हुँकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठी।।
और गिरीं मनु मुमूर्शु वे गिरे वहीं पर,।
रक्त नदी की बाढ–फैलती थी उस भू पर'।।[5]

प्रसाद जी देव जाति में अवशेष बचे मनु के माध्यम से कहना चाहते हैं कि देव जाति जो कि अत्यधिक शक्ति सम्पन्न थी। संसार के निर्माण विनाश को अपने हाथों में जानकर वह अत्यधिक दंभी हो गयी थी। अपने से अधिक समर्थ किसी को न समझकर और सभी शक्तियाँ हमारे अधीन हैं इस अहंकार में डूबी हुई थी। तभी अचानक प्रलय प्रवाह से सभी प्रकृति की गोद में समा गए। इस प्रकार प्रसाद जी मानो आज के भौतिकवादी मानव को अगाह कर रहै हैं। प्रकृति से बढकर इस संसार में कोई वैज्ञानिक शक्ति नही है। प्रकृति के कहर से स्वयं देवता गण भी नहीं बच सके।

'स्वयं देव थे हम सब तो क्यों न विशृंखल होती सृष्टि,
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।'[6]

भौतिक वाद की अंधाधुंध दौड़ में मानव ने प्रकृति के उपादानों का अत्यधिक दोहन किया है। प्रो0 दिवाभट्ट जी लिखती हैं, 'प्रकृति पर्यावरण जो हमारे अस्तित्व का आधार था उसे हमने नष्ट कर दिया और हम समझने लगे कि हमने बहुत प्रगति कर ली।'[7]

देवभूमि के नाम से विख्यात उत्तराखण्ड राज्य भी आज इस भौतिकवाद की दौड़ पीछे नहीं है अनेक योजनाए परियोजनाएं बनाई जाती है उसके लिए पर्यावरण को अनेक प्रकार से नुकसान पहुँचाया जाता है। और अंततः प्रकृति के दुष्परिणाम निर्दोष को भी झेलना पड़ता है।

वर्ष 2013 की एक घटना, उत्तराखण्ड के केदारनाथ धाम में लगातार मूसलाधार बारिस से व ग्लेशियर के टूटने से बाढ जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी। शिव धाम केदारनाथ जलमग्न हो गया उस समय हजारों श्रद्धालुओं की इस आपदा में जान चली गयी। कुछ लोगों का पता तक नहीं चल पाया। उस समय की केदारनाथ में जो त्राहि मची हुई थी, उस दृश्य की कल्पना करने पर प्रतीत होता है मानों प्रसाद की कामायनी में इन्हीं घटनाओं की भविष्यवाणी नीहित हो। विगत वर्ष 2021 में पुनः इसी प्रकार की घटना चमोली के जोशीमठ की है। ग्लेशियर टूटने से वहां पर चल रही ऋषि गंगा और तपोवन विष्णुगढ परियोजना में काम करने वाले लोगों को जब तक इस मंजर का पता चलता तब तक वे उफनते जल की लहरों में समा चुके थे। इस प्रकार की घटनाएँ प्रतिवर्ष देश के अलग–अलग स्थानों से सुनने को मिलती रहती हैं। ऐसी हृदय विदारक घटनाओं का कारण कहीं न कहीं मानव ही है। औद्योगीकरण की दौड़ में उसने प्रकृति का आवश्यकता से अधिक दोहन किया है, जिसका

परिणाम उसे जलवायु परिर्वतन, अति वृष्टि, बाढ, भूकंप, आँधी तूफान आदि विनाशक शक्तियों के रूप में देखने को मिल रहा है।

यह सत्य है कि मानव इस सृष्टि का सबसे बुद्धिमान प्राणी है। उसने अपनी बुद्धि के बल पर मशीनों के निर्माण से संसार में क्रांति फैलाई है। उसने पूंजीवाद, बाजारवाद, आर्थिक शोषण और घातक अस्त्र शस्त्रों के अविष्कार से विनाश का भय उत्पन्न किया है। आज वह विकास की राह में यहाँ तक पहुँच गया कि जैविक हथियारों का प्रयोग कर अपने को शक्ति सम्पन्न करना चाहता है, किंतु प्रकृति के नियमों के विरूद्ध कार्य करने के विनाशकारी परिणाम से अभी विश्व उभर नहीं पाया है। वैश्विक महामारी कोरोना ने लाखों लोगों को अकाल मृत्यु का ग्रास बना दिया। इस महामारी की कल्पना प्रबुद्ध समझे जाने वाले वैज्ञानिकों ने भी नहीं की होगी। जब इस महामारी की दूसरी लहर ने भारत में अपना कहर बरसाया तो उस समय भी कामायनी का सा दृश्य प्रतीत हो रहा था। चारों तरफ लाशों के ढेर समशानों में लाइनों में रखी अर्थियाँ, कोई किसी की व्यथा सुनने वाला नहीं, सभी घरों में कैद होनें को विवश और सड़कों पर छाया सन्नाटा, इस बात का प्रतीक है। ऐसा लग रहा था, प्रकृति मानव भय से विमुक्त होकर प्रफुल्लित हो रही थी।

'निकल रही थी मर्मवेदना करूण–विकल कहानी सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हंसती सी पहचानी सी'।[8]

कामायनी में प्रसाद जी कहतें हैं कि प्रलय का तांडव चारों और फैला था कोई किसी की करूण पुकार सुनने तक को अवशेष नहीं था। उस समय मनु के मुख से मर्मवेदना तो निकल रही थी, परंतु उसे सुनने वाला वहाँ कोई नहीं था। मानों प्रकृति यह सब देख कर मुस्करा रही हो।

कामायनी में बुद्धि का प्रतीक इड़ा मनु को सारस्वत नगर के संचालन के लिए प्रेरित करती है। तथा प्रकृति की शक्तियों की खोज, उनका उपभोग करने के लिए उपदेश देती है। यांत्रिक सभ्यता की प्रेरणा देती है। वह चाहती है कि मनु प्रकृति के उपादानों का उपयोग करे, वह शोधक बने, 'वह मनु को सारस्वत नगर का सारा भार सोंपकर प्रकृति के गर्भ में छिपे अनेक तत्वों का अनावरण करवाना चाहती है'।[9]

इड़ा द्वारा मनु को इस प्रकार की सीख देना। आधुनिक युग की ही सुरूआत है। यह सत्य है कि परिर्वतन प्रकृति का नियम है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बल पर समाज में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सभी क्षेत्रों में क्रांति कारी परिवर्तन किये हैं। मनुष्य बुद्धि के बल पर जड़ता को भी चैतन्य बना सकता है। विज्ञान के सहारे वह अपना यश संपूर्ण संसार में फैला सकता है। आवश्यकता है बुद्धि के सदुपयोग की। प्रसाद ने कामायनी में बुद्धि का विरोध नहीं किया है। बल्कि मानव अहम का विरोध किया है। इस विषय में नंद दुलारे बाजपेयी का यह कथन है कि– 'प्रसाद ने कामायनी में कंही भी बुद्धि का विरोध नंही किया है, वे तो केवल बुद्धिवाद की अति का विरोध करते हैं'।[10]

प्रकृति का कल्याणकारी रूप :–

प्रसाद ने जहाँ प्रकृति के विकराल रूप से कामायनी की शुरूआत की है वहीं उहोंने प्रकृति के मनमोहक, कल्याणकारी रूप का भी संजीदगी से चित्रण किया है। यह पाठक को स्वतः ही अपनी ओर आकर्षित करती है। प्रकृति का यह स्वाभाविक गुण है उसमें ध्वंस के पश्चात् नव संरचना तंत्र भी विकसित हो जाता है। वह धीरे–धीरे अपने मूल रूप में आने लगती है। प्रसाद जी ने प्रलय के पश्चात् प्रकृति के मोहक रूप का वर्णन भी कामायनी

के विभिन्न सर्गों के माध्यम से दिखाया है।

श्रद्धा, आशा, संघर्ष, आनंद, आदि सर्गों में प्रकृति के सुकोमल रूप का चित्रण किया गया है। प्रकृति यदि अपने स्वाभाविक रूप में होती है तो मनुष्य को शारीरिक लाभ व मानसिक सुकून दोनों प्रदान करती है। प्रलय के पश्चात् का दृश्य इस प्रकार दिखाई दे रहा है :–

'ऊषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अंतनिर्हित हुई।
वह विवर्ण मुख तस्त प्रकृति का आज लगा हसने फिर,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में शरद–विकास नये सिर से'।[11]

कामायनी के आशा सर्ग में मनु और श्रद्धा का मिलन एक नई आशा का संचार उनमें उत्पन्न करता है। यहाँ प्रसाद ने प्रकृति के पूर्व रूप में आने पर उसके सुमधुर सौंदर्य का चित्रण करते हुए मानव मन को आशा और विश्वास से परिपूर्ण कर दिया है। वह प्रकृति के प्रांगण में भावी जीवन के सुंदर स्वप्न देखने लगते हैं–

'अचल हिमालय का सोभनम लता–कलित सुचि सानु शरीर,
निद्रा में सुख स्वप्न देखता जैसे पुलकित हुआ अधीर।'[12]

कहीं प्रसाद जी ने संध्याकालीन बेला में प्रकृति के मनोरम दृश्य का वर्णन करते हुए देश की रक्षा के लिए प्रहरी के रूप में खड़े नागाधिराज पर्वत हिमालय के अदभुत सौंदर्य का वर्णन किया है तो कहीं प्रकृति का मानवीकरण रूप देखने को मिलता है। कैलाश पर्वत के बसंत ऋतु के दृश्य देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे प्रकृति रेशमी वस्त्र धारण करके मनु के सम्मुख उपस्थित हो, चारों ओर फूल खिले हैं, पेड़ों पर नई कोपलें आ गई हैं, चारों और सुगधिंत फूलों की खुशबु बिखरी है। ऐसा लग रहा है जैसे मधुरता फूलों के रस में नहाकर निकली हो :–

'उंमद मधुर मलयानिल दौड़े, सब गिरते पड़ते,
परिमल से चली नहाकर काकली, सुमन थे झड़ते'।[13]
'जैसे बनमाली ने ही बिखरा हो केसर–राज,
या हेमफूट हिमजल में झलकता परछाई निज'।।[14]

मनसरोवर के सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रसाद जी कह रहें हैं कि चारों ओर बर्फ की स्वेत चादर बिछी हुई है और बीच में मानसरोवर है जिसे देखकर ऐसा लग रहा है मानों पन्ना, के ऊपर हीरे का पानी रखा हो चारों ओर पूर्णिमा की चाँदनी बिखरी है। ऐसा दृश्य देखकर किस का मन आनंद विभोर नहीं होगा। संपूर्ण आनंद सर्ग में मानव प्रकृति के सौदंर्य को देखकर आनंदित है।

कामायनी के प्रकृति चित्रण के विषय में कथन है कि 'कामायनी काव्य की प्रमुख विशेषता उसका प्रकृति चित्रण है। वस्तुतः उसमें से प्रकृति चित्रण वाले अंश निकाल दिये जाए तो काव्य में रहेगा ही क्या'।[15] कामायनी का आरम्भ, विकास और उसका पर्यावसान सब प्रकृति के अंश के रूप में होते हैं।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार कामायनी पर्यावरणीय चेतना का महाकाव्य है। जिसमें प्रसाद जी ने प्रकृति के दोनों रूपों की जानकारी मनुष्य को प्रदान की है। जिस प्रकार प्रकृति में सृजन का गुण समाहित है तो, विनाश की लीला भी

उसमें छिपी हुई है। यह मानव को देखना है कि वह किस रूप में प्रकृति को चाहता है।

प्रसाद जी ने अंत में कामायनी में मानव को प्रकृति के अनुकूल नियमों का पालन करते हुए दिखाया है। जिससे जन सामान्य को संदेश मिलता है कि प्रकृति सदैव मानव के लिए कल्याणकारी ही है, यदि मनुष्य उस पर अपनी अनावश्यक शक्ति प्रयोग न करे।

आज आवश्यकता इस बात की है। हमें प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने के लिए औद्योगिक क्रांति के दोनों पहलुओं पर ध्यान देने की है तथा जितनी मात्रा में प्रकृति का दोहन होता है यदि उसी मात्रा में उसके संरक्षण को भी देखा जायेगा तो प्रकृति में संतुलन बना रहेगा क्योंकि प्रकृति की शक्ति से बढकर इस संसार में कोई शक्ति नहीं है।

संदर्भ :-

1. प्रो0 शर्मा, राजकुमार; जयशंकर प्रसाद और कामायनी, प्रकाशन, कालेज बुक डिपो, त्रिपोलिया बाजार जयपुर, पुनर्मुद्रण : 2008, पृ0 105
2. डॉ0 भट्ट, दिवा; साहित्य की प्रतिध्वनियां, आधारशिला प्रकाशन, बड़ी मुखानी, हल्द्वानी, नैनीताल, प्रथम संस्करणः 2005, पृ0 25
3. वहीं, पृ0 26
4. प्रसाद, जयशंकर; कामायनी : एक विवेचन, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2011, पृ0 153
5. वहीं, पृ0 387
6. वहीं, पृ0 160
7. डॉ0 भट्ट, दिवा; साहित्य की प्रतिध्वनियां, आधारशिला प्रकाशन, बड़ी मुखानी, हल्द्वानी, नैनीताल, प्रथम संस्करण : 2005, पृ0 29
8. प्रसाद, जयशंकर; कामायनी : एक विवेचन, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2011, पृ0 149
9. प्रो0 शर्मा, राजकुमार; जयशंकर प्रसाद और कामायनी, प्रकाशन– कालेज बुक डिपो, त्रिपोलिया बाजार जयपुर, पुनर्मुद्रण : 2008, पृ0 56
10. वहीं, पृ0 95
11. प्रसाद, जयशंकर; कामायनी : एक विवेचन, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2011, पृ0 183
12. वहीं, पृ0 189
13. वहीं, पृ0 462
14. वहीं, पृ0 461
15. वहीं, पृ0 21

E Mail- parurastogi123@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 171-174

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ग्रामीण जीवन

डॉ. अशोक कुमार मीणा

अतिथि व्याख्याता, हरिदेव जोशी पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

सारांश :-

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की अधिकांश आबादी गाँवो में रहती है। गाँव के अधिकतर लोग खेती करके अपनी आजीविका चलाते हैं, वे प्रतिदिन प्रातःकाल जल्दी उठकर खेतों में चले जाते हैं और अंधेरा होने तक दिन भर कड़ी धूप, सर्दी या वर्षा की परवाह किए बिना खुले में कड़ी मेहनत करते है। हल चलाने, खेतों की मिट्टी ठीक करने, बीज बोने, खरपतवार हटाने, सिंचाई करने और फसल काटने में ही उनका अधिकांश समय लग जाता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। प्राचीन काल से ही हमारे देश की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि ही रहा है। कृषि पर हमारी निर्भरता के साथ ही यह भी तथ्य हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है कि देश की सत्तर–प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या गाँवों में ही निवास करती है। किसी कवि ने सत्य ही लिखा है– "है अपना हिंदुस्तान कहाँ, यह बसा हमारे गाँवों में।" अतः भारतवर्ष के महत्व का वास्तविक मूल्यांकन यहाँ के गाँवों से ही संभव है। उन्हें किसी भी दृष्टिकोण से पृथक् नहीं किया जा सकता है। प्राचीन काल में 'सोने की चिड़िया' कहलाने वाला हमारा देश धन–धान्य से परिपूर्ण था परंतु विदेशियों के निरंतर आक्रमण तथा इसके पश्चात् अंग्रेजों का आधिपत्य होने के उपरांत भारतीय गाँवों की दशा अत्यंत दयनीय व सभी के लिए चिंता का विषय बन गई।

शब्द संकेत : ग्रामीण मीडिया, आबादी, धन–धान्य, समाचार पत्र, पारम्परिक माध्यम, किसान, ग्रामीण जीवन।

प्रस्तावना :-

सरल और सीधा-सादा जीवन -

भारत के ग्रामीण बड़ा सीधा–सादा और सरल जीवन बिताते हैं। वे आमतौर से कच्चे मकानों में रहते है, जिन पर खपरैल और फूँस की छतें होती है। उनमें प्रकाश हवा आने–जाने के लिए खिड़कियों और रोशनदान प्रायः नहीं होते। किसान खुले वातावरण और शुद्ध वायु में सांस लेते हैं और सादा भोजन खाते हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है और वे बलवान होते है। उनके परिवार कर्मठता और आपसी सहयोग का बड़ा सुन्दर उदाहरण पेश करते है। ग्रामीण महिलायें घर का समूचा काम करने के अलावा अपने पतियों की खेती के कामों में भी मदद करती हैं। अक्सर छोटे–छोटे बच्चे भी अपने मां–बाप के कामों में भरपूर योगदान देते हैं। समूचे परिवार को मिल–जुलकर काम करते देख बड़ी प्रसन्नता होती है।

ग्रामीण जीवन का आनन्द :-

गाँवों में भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। यहाँ भारत की सदियों से चली आ रही परंपराएं आज भी

विद्यमान हैं। यहाँ के लोगों में अपनापन और सामाजिक घनिष्ठता पाई जाती है। यहाँ खुली धूप और हवा का आनंद उठाया जा सकता है। यहाँ हरियाली और शांति होती है। हमारे गाँव भारत की कृषि व्यवस्था के आधार हैं। यहाँ कृषकों का निवास होता है। गाँव के चारों ओर खेत फैले होते हैं। खेतों में अनाज एवं सब्जियों उगाई जाती हैं। गाँवों में तालाब और नहरें होती हैं। इनमें संग्रहित जल से किसान फसलों की सिंचाई करते है। गाँवों में खलिहान होते हैं। यहाँ फसलों को तैयार किया जाता है।

गाँवों में खेती के अलावा पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन जैसे व्यवसाय किए जाते हैं। पशुपालन से किसानों को अतिरिक्त आमदनी होती है तथा कृषि कार्य में सहायता मिलती है। पशुओं का गोबर खाद का काम करता है। पशु दूध देते हैं तथा बैल, भैंसा आदि पशु हल में जोते जाते हैं। कुछ पशु माल ढुलाई में ग्रामवासियों की मदद करते हैं। गाँव का जीवन शांतिदायक होता है। यहाँ के लोग शहरी लोगों की तरह निरंतर भाग–दौड़ में नहीं लगे रहते हैं। यहाँ के लोग सुबह जल्दी उठते हैं तथा रात में जल्दी सो जाते हैं। यहाँ की वायु महानगरों की वायु की तरह अत्यधिक प्रदूषित नहीं होती। यहाँ बाग–बगीचे होते हैं जहाँ के फूलों की सुगंध हवा में व्याप्त रहती है। यहाँ भीड़–भाड़ कम होने से ध्वनि प्रदूषण भी नहीं पाया जाता है। गाँवों में उत्सवों और मेलों की धूम होती है। यहाँ होली, बैशाखी, पोंगल, ओणम, दीवाली, दशहरा, ईद जैसे त्योहार परंपरागत तरीके से मनाए जाते हैं। त्योहारों के अवसर पर लोग आपस में मिलते–जुलते हैं। वे लोक धुनों के नृत्य पर थिरकते हैं। गाँव के लोग आपसी सुख–दुःख में एक–दूसरे का पूरा साथ देते हैं। गाँव के सभी लोग आपसी भाईचारे से रहते हैं। वे आपसी विवाद को अधिकतर पंचायत में ही सुलझा लेते हैं।

भारत के गाँवों में भी अब शहरों की कई सुविधाएँ पहुंच गई हैं। यहाँ बिजली, टेलीफोन, मोबाइल फोन, कंप्यूटर, सड़क, पानी का नल जैसी सुविधाएँ पहुँच रही हैं। वहाँ के किसान आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग करने लगे हैं। अब हल बैल के स्थान पर ज्यादातर ट्रैक्टरों से खेतों की जुताई की जाती है। वहाँ भी अब स्कूल, सार्वजनिक भवन तथा अस्पताल हैं। गाँवों की गलियाँ पक्की कर दी गई हैं। गाँवों में खान–पान की जटिलताएँ नहीं हैं। ग्रामवासी सादा भोजन करते हैं। वे ताजा दूध पीते हैं तथा हरी–ताजी सब्जियाँ खाते हैं। पीने के लिए लोग हैंडपंप, कुएँ या नल के जल का प्रयोग करते हैं। कुछ ग्रामीण नदी–जल से अपनी प्यास बुझाते हैं। हमारे गाँव तेजी से उन्नति कर रहे हैं। ग्रामवासियों को गाँवों में ही रोजगार उपलब्ध कराया जा रहा है। ग्रामवासी अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति अधिक जागरूक हो गए हैं। ग्रामीण नवयुवक एवं नवयुवतियाँ शहर जाकर उच्च शिक्षा एवं नौकरी प्राप्त करती हैं। गाँव के लोग कृषि के अलावा छोटे–मोटे उद्‌घ्योग चलाकर अपना–अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। यातायात के आधुनिक साधनों की मदद से उन्हें अपना माल दूर–दराज के स्थानों तक भेजने में आसानी हो रही है। शहरी प्रभाव के कारण गाँवों में कुछ बदलाव जरूर दिखाई दे रहे हैं परंतु गाँवों की संस्कृ ति में मूलभूत अंतर नहीं आया है। गाँव आज भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आधार स्तंभ हैं।

ऐसा नहीं है कि गांववासी हर समय केवल काम में ही लगे रहते है और मनोरंजन के लिए उनके पास कोई समय नहीं होता। खेती का काम मौसमी होता है। साल में तीन महीने तक खेत में करने को कुछ अधिक काम नहीं रहता। यह समय उनके आराम और आनन्द का समय होता है। इसके अलावा फसल काटते समय वे मिल–जुलकर गाते–नाचते और खुशियाँ मनाते हैं। खेतों में जब काम नहीं होता, तो आपस में मिलकर वे तरह–तरह के लोकनृत्यों में भाग लेते है। दैनिक जीवन में भी वे आनन्द के क्षण निकाल ही लेते है। दोपहर

में पेड़ों की छाया में बैठे वे हुक्का गुड़गुड़ाते हैं या बीड़ी पीने का आनन्द लेते हैं। शाम को वे चौपाल पर इकट्ठे होकर एक–दूसरे के सुख–दुःख का हाल जानते हैं और हंसते–गाते लौटकर सो जाते हैं। उन्हें जीवन में कोई विशेष चिन्ता नहीं सताती।

ग्रामीण जीवन की बुराईयां :–

ग्रामीण जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप निरक्षरता है। अनपढ़ होने के कारण वे चालाक लोगों के कहने में आसानी से आ जाते है और अपना नुकसान कर बैठते हैं। वे अनेक रूढियों के शिकार रहते हैं। उनके अन्धविश्वास का लाभ अनेक ओझा, सयाने और पण्डित उठाते है। उनमें बाल–विवाह की प्रथा व्यापक रूप से फैली हुई है, जिसके कारण अनेक सामाजिक बुराईयाँ पैदा होती हैं। ग्रामीणों के बीच विवाह, जन्म, मृत्यु जैसे सामाजिक अवसरों पर अपनी सामर्थ्य से बढ़कर खर्च करने की प्रथा है। इसके फलस्वरूप वे कर्ज़ के बोझ से दबे रहते हैं। गांवों में छोटी–छोटी बातों को लेकर अक्सर लड़ाई–झगड़े होते हैं और जरा–जरा सी बात पर लाठियाँ निकल आती हैं। कत्ल और खून जैसी वारदातें तो आम बाते हैं। भूमि सबंधी झगडों में लम्बी मुकदमेबाजी चलती है, जिसमें, उनकी गाढ़ी कमाई का एक बड़ा हिस्सा व्यर्थ से बरबाद हो जाता है। बहुत–से ग्रामीण शराब, गांजा, भांग, चरस जैसे नशीले पदार्थों के आदी हो जाते हैं। भारतीय गाँव समय के साथ बेरोजगारी, अज्ञानता तथा पिछड़ेपन का पर्याय बनकर रह गए। भारतीय गाँवों की दयनीय व जर्जर अवस्था के अनेक कारण हैं।

इतिहास की ओर यदि हम दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि मुगलों के आक्रमण के पश्चात् जब देश में अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ, तब गाँवों की दशा अत्यंत चिंतनीय थी। इसका प्रमुख कारण था कि अंग्रेजों ने कभी भी भारत को आत्मसात् नहीं किया। उनका दृष्टिकोण सदैव भारत के प्रति व्यावसायिक ही रहा जिसके फलस्वरूप यहाँ के कुटीर उद्घ्योग तथा कृषि व्यवस्था का ह्रास होता रहा। अंग्रेजों के साथ–साथ जमींदारों व सेठ–साहूकारों के निरंतर शोषण ने भी ग्रामीणों को उबरने का कभी अवसर प्रदान नहीं किया। देश के गाँवों में रहने वाले अधिकांश लोग आज भी रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वासों से ग्रसित हैं।

पुरानी परंपराओं तथा सामाजिक बंधनों ने उन्हें इस प्रकार जकड़ रखा है कि वे स्वतंत्रता प्राप्ति के पाँच दशकों के बाद भी विकास की प्रमुख धारा से स्वयं को पृथक् किए हुए हैं। जातिवाद, भाषावाद जैसी विषमताएँ आज भी उतनी ही प्रबल हैं जितनी वह पहले हुआ करती थीं। झूठी शान–शौकत अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु कुछ लोग सामर्थ्य से अधिक कर्ज ले लेते हैं जिसे वे जीवन पर्यंत चुकाने में असमर्थ रहते हैं। गरीबी और अशिक्षा के कारण लोग निरंतर बच्चे पैदा करते रहते हैं जो उनके जीवन स्तर को तो नीचे की ओर खींचता ही है साथ ही साथ समुचित भरण–पोषण व शिक्षा के अभाव में बच्चों के भविष्य को भी अंधकारमय बना देता है। गाँवों के लोग अभी भी कई प्रकार की ऐसी समस्याओं से जुड़े हैं जिनका समाधान थोड़े से सामूहिक प्रयासों से संभव है। गाँवों में ऊर्जा के गैर–परंपरागत साधनों के प्रयोग की काफी संभावनाएँ हैं परंतु गाँवों की निरंतर उपेक्षा के कारण लोग अभी तक उपले जलाकर खाना पका रहे हैं।

निष्कर्ष :–

गांवों के लोग प्राकृतिक वातावरण में रहने से स्वस्थ और बलशाली तो होते हैं, पर उनके पास धन नहीं होता। वे बलवान तो होते हैं, लेकिन उनमें सभ्यता और सहनशीलता की बडी कमी होती है। वे बड़ी सीधे, सरल और भोले–भाले होते है। चालाकी और मक्कारी उनमे नाममात्र को भी नहीं होती। वे ईश्वर की सत्ता पर पूरा

विश्वास करते है और उसके भय से पाप से दूर रहते हैं। अक्सर वे रूढ़िवादी और अधविश्वासी होते हैं। वे अपने रीति–रिवाजों और परम्पराओं पर जान छिड़कते हैं। उनमें जात–पात का विचार कूट–कूट कर भरा हुआ होता है। समग्र रूप में ग्रामीण बडे सज्जन होते हैं। उनमें शिक्षा का प्रसार करके उनकी सभी बुराइयों आसानी से दूर की जा सकती हैं और ऐसा होने पर ग्रामीण जीवन स्वर्ग के समान बन जायेगा। विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने अपार सफलता अर्जित की है जिसके फलस्वरूप दुनिया सिमटती हुई प्रतीत होती है। विकास की इस दौड़ में भारतीय गाँव भी अब अछूते नहीं रहे हैं।

हमारी सरकार भी ग्रामीण विकास के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। आज दूर–दराज के गाँवों को भी बिजली–पानी आदि सभी जरूरत की चीजें उपलब्ध कराई जा रही हैं। दूरदर्शन व अन्य संचार माध्यमों के द्वारा ग्रामीण लोगों को उत्तम कृषि, स्वास्थ्य व उत्तम रहन–सहन संबंधी जानकारी दी जा रही है। गाँवों को सड़क तथा रेलमार्गों द्वारा शहरों से जोड़ने की प्रक्रिया निरंतर जारी है। गाँवों के विकास हेतु सरकार द्वारा अनेक परियोजनाएँ समय–समय पर प्रस्तुत की गई हैं। इनमें पंचायती राज व्यवस्था भी प्रमुख है जिससे ग्रामीण दशा में काफी सुधार हुआ है। सरकार, ग्रामीणजनों तथा समस्त भारतीय नागरिकों का सामूहिक प्रयास अवश्य ही रंग लाएगा और हमारे भारतीय गाँव आदर्श गाँव बन सकेंगे।

संदर्भ :–

1. चौधरी, सी.एम. ग्रामीण विकास एक अध्ययन, जयपुर सब लाइन पब्लिकेशन 1991
2. सिंह कटार, ग्रामीण विकास सिद्धान्त नीतियां एवं प्रबन्ध, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर 2011
3. दयाल, मनोज, विकास संचार अर्थ अवधारणा एवं प्रक्रिया पाठ, प्रकाशक वर्धमान महावीर विश्वविद्यालय, कोटा, 2008
4. मिस्र कैलाश, आओ गांव चले, जयपुर, पत्रिका प्रकाशन, 1997
5. चौहान आर0वी0सिंह, हमीरपुर तहसील में भूमि उपयोग, पोषण स्तर एवं मानव स्वास्थ्य, शिल्पी पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1992
6. दत्त आर0 एवं सुन्दरम के0पी0एम0, भारतीय अर्थव्यवस्था, टी.बी.एच. पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 1994
7. https://www.drishtiias.com/hindi/daily&updates/daily&news
8. https://eklavyastudypoint.com/Gramin&Vikas&&rural&development
9. https://wwwgraminmediacom.blogspot.com/
10. https://graminmedia.in/
11. wikipedia.com
12. कटार सिंह, अनुवादक यतीन्द्र सिंह सिसोदिया, ग्रामीण विकास, सेज एवं रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011

Mobile : 9414222436, Email : kumarashokam@gmail.com

Address : C&123, Residential Colony, RIICO Area Kukas, Delhi Road Jaipur, (Raj.) 302028

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 175-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्रियों की एक सशक्त आवाज़ : रजनी तिलक

नीलम शर्मा
एम.ए (हिंदी), एम.एड.

स्त्री सम्माननीय होती है, वो अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के किरदार निभाती है, पर आज के युग में स्त्री होना ही सबसे बड़ी चुनौती है, उसको घर के साथ–साथ अपने काम के स्थान को भी साथ लेकर चलना होता है। 21वीं सदीं में जहाँ स्त्री और पुरुष में समानता की बात की जाती है, वहीं समाज में आज भी स्त्रियों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समानता की बात केवल किताबों में ही है, वास्तविकता में समानता के नाम पर स्त्रियों को अपने हक़ के लिए आज भी लड़ना ही पड़ रहा है। साहित्य में भी कौशल्या बैसंत्री द्वारा लिखित 'दोहरा अभिशाप' 1999 में छपा था, साहित्य में एक दलित स्त्री को उभरता देख पुरुषसतात्मक समाज ने ऐसा वातावरण बनाया कि उसके 11 वर्षो के बाद 2011 में ही सुशीला टाकभोरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' हिंदी साहित्य जगत में आई।

हिंदी का दलित साहित्य जिस प्रकार से विश्व में अपनी पहचान बना रहा है। उसी प्रकार से दलित स्त्री कवियित्रियाँ भी अपनी पीड़ा को अपने तक सीमित न रख कर उसे अपने शब्दों में सबके सामने अभिव्यक्त कर रही हैं। दलित साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति को भली–भांति व्यक्त नहीं किया जा रहा था। इसी कारण से अपनी परिस्थिति को स्वयं प्रकट करने के लिए दलित साहित्य में वह स्वयं उतरी।

नारी की करुण–अवस्था को वही समझ सकता है, जिसने वह स्थिति स्वयं भोगी हो। स्त्रियों की इन्हीं परेशानियों को समझते हुए समाज को आईना दिखाने का बीड़ा उठाया रजनी जी ने। रजनी तिलक जी का पूरा जीवन न केवल दलित वर्ग के लिए ही अपितु सब वर्ग की महिलाओं के लिए लड़ते हुए बीता। उनका स्वयं का जीवन ही बेहद संघर्ष भरा रहा। एक दलित स्त्री होने के कारण शायद उन्होंने परिस्थतियों को बहुत नजदीक से देखा और समझा था, इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में हर वर्ग की स्त्री की दशा को उकेरा है। एक्टिविज्म की शुरुआत इन्होंने रजनी स्वराज के नाम से की। इन्हें उत्तर भारत की सावित्री बाई फुले कहा जाता है। ये साहित्य जगत के साथ साथ राजनीति में भी बहुत सक्रिय थीं।

रजनी तिलक का स्वरुप एक ऐसी सशक्त दलित महिला का था, जिन्होंने अपने संघर्षो से न केवल दलित महिलाओं के लिए बल्कि स्त्री आन्दोलन को भी एक नई आवाज़ दी। यह लेखिका, कवियत्री होने के साथ –साथ एक सक्रिय संघठनकर्ता भी रहीं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि इन्होंने स्वयं को विभिन्न प्रकार के धार्मिक और पितृसतात्मक आडम्बरों से न केवल खुद को दूर रखा, बल्कि अपने साथियों के प्रति सहानुभूति न रख कर उनको भी तर्क सम्मत जीवन जीने और पितृसता जाति की जकड़नो से बाहर निकलने के लिए

लगातार प्रेरित करती रहीं। इन्होंने कभी भी स्त्रियों को पुरुषों से अलग दुनिया बनाने को नही कहा, क्यूँकि उनका मानना था कि स्त्री की प्रगति तभी हो सकती है जब समाज में उनके उचित स्थान प्राप्त होगा।

इनकी शख्सियत एक ऐसी महिला की रही है, जो न किसी से डरी और न ही अन्याय होता हुआ देख सकती है। 1972 में मथुरा बलात्कार मामले पर पूरे दिल्ली में आन्दोलन किये और वह एक स्वायत महिला समूह के साथ भी जुड़ी।

तिलक जी शिक्षा को बहुत महत्व देती थीं। उनकी आर्थिक स्थिति ठीक न होते हुए भी किसी प्रकार उच्च माद्यमिक शिक्षा पूरी की और आईटीआई में व्यवयसायिक शिक्षा में प्रवेश लिया। वह शिक्षा के महत्व को समझ गई थीं, कि शिक्षा ऐसी शेरनी का दूध है जो पिएगा वो दहाड़ेगा जरुर। इन्होंने 'भारत की पहली शिक्षिका' के रूप में सावित्री माई फुले की जीवनी लिखी और 'सावित्री बाई फूले समग्र' का संपादन किया। इन्होंने अपनी कविता 'शिक्षा का परचम' में स्त्रियों को सीता, कुंती, द्रौपदी जैसा न बनने की सीख दे कर सावित्री फुले बनने को कहा है।

एक स्त्री होने के कारण वो स्त्री की हर परेशानी से भली–भांति परिचित थी। उनकी 2 कविताएँ 'औरत – औरत में अंतर' और 'औरत' में नारी की स्थिति का बहुत ही यथार्थ चित्रण किया है कि नारी चाहे भंगी हो, चाहे बामणी, चाहे डोम हो या चाहे ठकुरानी सब सुबह शाम अपना अपना काम करती है। कोई नारी होने के कारण सताई जाती है तो कोई दलित नारी होने के कारण। सब में एक सी प्रसव पीड़ा है, एक सा ही वात्सल्य है। औरत औरत होती है उसका न कोई धर्म न कोई जात होती है।

इनकी 'बुद्धी चाहिए युद्ध नहीं' ऐसी कविता है जो आज के युग में बहुत ही महत्वपूर्ण कविता है। युद्ध एक ऐसी गैरजरुरी चीज़ है जिसमें केवल नरसंहार ही होता है।

रजनी जी का ऐसा प्रखर व्यक्तित्व उनके पारिवारिक सदस्यों के कारण ही था। 2017 में उनकी आत्मकथा 'अपनी जमीं अपना आसमान' ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन से आई। 120 पेजों में 22 उपशीर्षकों में बाँटकर लिखी गयी है। आत्मकथा बचपन से शादी तक कालखंड की है। आत्मकथा में 4 मुख्य पात्र है। पहला बड़ा भाई मनोहर। जिससे लेखिका सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। अपने भाई के कारण ही एक डरी, सहमी, शर्मसार, हीन भावना के बोझ से दबी तिलक से रजनी फिर रजनी तिलक बनती है।

दूसरा महत्वपूर्ण पात्र भाई जी यानी लेखिका के पिता। तीसरी महत्वपूर्ण पात्र उनकी माँ सावित्री देवी। माँ जैसी स्वाभिमानी, आत्मविश्वासी, मेहनती, समय से आगे की सोच रखने वाली, मस्त भाव से जीने वाली चरित्र ही दलित महिलाओं की प्रेरणा स्तोत्र है।

चौथा और सबसे महत्वपूर्ण पात्र जो लेखिका के जीवन को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है और उन्हें प्रेरणा देता है– रमेश भोंसले एम.एल.ए. का बेटा। वह कहती हैं– 'रमेश और मेरा रिश्ता ऐसा था, जैसे वह मेरी ज़िन्दगी में उगते सूरज जैसा था। जिसकी पहली किरण से मैंने नई ज़िन्दगी देखी और ज़िन्दगी के नए अर्थ सीखे'।

रजनी तिलक जितनी कमाल की लेखिका थीं, उतनी ही कुशल कवियत्री भी थीं। इनका पहला कविता संग्रह 'पदचाप' 2000 में तब आया था जब दलित साहित्य को लेकर काफी हलचल थी। पुरुष साहित्यकार ही सक्रिय थे। महिला साहित्यकार परदे के पीछे रहना ही लाजमी समझा जाता था, पर रजनी तिलक की कविता

की खासियत ही यही रही कि इन्होने केन्द्र में आकर बात की।

'पदचाप' कविता संग्रह में जहाँ हिंदी में दलित साहित्य और दलित साहित्य में दलित स्त्री लेखन की पदचाप सुनाई दी, वहीं 2014 में प्रकाशित कविता संग्रह 'हवा सी बेचैन युवतियाँ' में स्त्रियों की स्वायत्ता और स्वतंत्रता का आभास होता है, साथ ही न केवल सामाजिक स्तर पर दलित स्त्री की पीड़ा, उसके संत्रास को अभिव्यक्त करती है बल्कि पढ़ी लिखी सुशिक्षित स्त्रियों को सामाजिक उतरदायित्व का निर्वाह करने के लिए प्रेरित करती हैं। इसमें उनकी आशा, आकांशा, और भावना स्पष्ट रूप से दिखाए दी है। उनका कहानी संग्रह 'बेस्ट ऑफ़ करवाचौथ' उनकी अपनी ही कहानी है जिसमें उन्होंने ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक समाज का पर्दाफाश किया है। इन कहानियों के द्वारा लेखिका ने यह स्पष्ट किया है कि कैसे परम्परा के नाम पर नारियों का उत्पीड़न किया जाता रहा है। ये सब कहानियाँ हर स्त्री को अपने ही जीवन की कथा लगती है। मैत्रयी पुष्प ने भी अपने एक साक्षात्कार में कहा है कि 'करवाचौथ पतिव्रत होने का एक सार्टिफिकेट है, जिसे हर साल रेनेयू करवाना पड़ता है'।

इनके द्वारा मानवीय मूल्यों के साथ जीवन के हर संघर्ष को किसी चुनौती की तरह स्वीकारना और उसके लिए लड़ना उनका सहज मानवीय गुण रहा है, इसलिए शायद वह 'लड़ाकी' जैसे नाम से भी सुशोभित रहीं। उनके विद्रोही स्वभाव के कारण ही उनको इस यह उपनाम दिया गया। यह बात 'हां मैं लड़ाकी हूँ 'शीर्षक कविता में स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। स्वयं रजनी जी कहती थी कि उनको लड़की कहलाना पसंद है। कवियत्री का यह स्वीकारना उनकी कविता में बेहद सहज भाव के साथ सकारात्मक रूप में आता है।

जो लोग समाज में स्त्री को कमतर समझते हैं उनको जवाब देती हुई अपनी कविता 'जीरो' में कहती हैं कि जो लोग स्त्री को कुछ अहमियत नही देते और उसको जीरो समझते है वो भूल जाते है कि जीरो भी संख्या में बदल कर अपना स्थान रख सकता है। जीरो हर बार प्लस होकर बनती है प्यार का दरिया, समा लेती है सारी कुंठाएँ। जीरो हूँ स्त्री हूँ, पर जो असम्भव है वो सब कर सकती हूँ। जीरो के बिना इस समाज और पुरुष का कोई वर्चस्व नहीं। जीरो तो हमारी एक विशेषता है इसका परिचय सारे समाज से करवाना है।

इनकी एक कविता 'प्यार' स्त्रियों की शादी के लिए इच्छाएँ और उनकी समस्याओं का बखूबी बयान करती है। 'कहूँ क्या' शीर्षक कविता में स्त्री के वर्गीय एवं जातीय भेद को ललकारती है। 'आदिपुरुष' कविता में पुरुषवादी समाज की पोल खोलते वह दलित पुरुषों में पनपी पुरुषवादी मानसिकता को चुनौती देती है और उन्हें आईना दिखाते हुए कहती हैं कि तुम्हारी नजरों में स्त्री सुंदर है तो ये उसका मेरिट है, नहीं तो उसका डीमेरिट है। इसी प्रकार से सवर्ण लोग अपने को मेरिट समझते है और तुम लोगों को डिमेरिट, फिर तुम्हारी सोच में नया क्या है। इस कविता से सीधे–सीधे दलित अधिकारों के लिए लड़ने वाले लोगों के समक्ष प्रश्न खड़ा करती है कि जो तुम्हारे भीतर भेदभाव की दृष्टि है वो कैसे ख़तम होगी।

यकीनन एक कवि या लेखक के साहित्य की अहमियत इसी वजह से होती है कि वह अपने समाज में घटित होने वाली घटनाओं और अपने परिवेश तथा परिस्थितियों को बखूबी देखता, परखता और महसूस करता है। रजनी तिलक ने एक स्त्री होने के साथ, एक दलित महिला होने के कारण स्त्री की सब परिस्थितियों की भूक्त–भोगी रही थी। उन्होंने न केवल दलित महिलाओं की स्तिथि को बल्कि समाज में हर वर्ग की महिला की परिस्थिति का वर्णन भली–भांति से अपने साहित्य में किया है। उनके द्वारा लिखी गयी प्रत्येक कविता हर स्त्री

को अपनी सी लगती हुई अन्दर से झकझोर देने वाली है। इनका संघर्ष वास्तविक था ये इनके साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। रजनी तिलक की कविताएँ वंचित, दलित वर्ग की मुखर आवाज़ है। उनकी काव्य भाषा दिखावटी, बनावटीपन से दूर सीधी, सरल, सपाट और अनगढ़ भाषा है।

सन्दर्भ :-

1. पुस्तक : दलित निर्वाचित कविताएँ पृष्ट–147, प्रकाशन : इतिहास बोध, रचनाकार : रजनी तिलक, संस्करण २००६
2. पुस्तक : दलित निर्वाचित कविताएँ पृष्ट–144, प्रकाशन : इतिहास बोध, रचनाकार : रजनी तिलक, संस्करण 2006
3. पुस्तक : दलित निर्वाचित कविताएँ पृष्ट 149, प्रकाशन : इतिहास बोध, रचनाकार : रजनी तिलक, संस्करण 2006
4. http://feminism.com
5. http://streekal.com
6. पुस्तक : 'अपनी जमीं अपना आसमान, रचनाकार : रजनी तिलक, संस्करण : 2017

neelamshams073@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 179-182

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भाषा और समाज का अंतर्संबंध

अंकित कुमार राय
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

भाषा ही मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है और भाषा की सहायता से ही समाज बनता है। प्रकृति और समाज के अन्य तत्वों की तरह 'भाषा' भी विकासमान है। इस सम्बंध में सोवियत वैज्ञानिक 'पावलोव' की यह स्थापना ध्यान देने योग्य है कि– 'स्थूल चिंतन पशु में भी होता है और विचार–प्रक्रिया के निम्नतम धरातल पर पशु और मानव में अंतर नहीं है। मनुष्य भाषा की रचना दो कारणों से कर सका। उसके जीवन की परिस्थितियाँ पशुओं से भिन्न थीं। पशु भी ध्वनि संकेतों से काम लेते हैं। मानव अपनी भाषा–रचना का कार्य इसी पशु–स्तर से आरम्भ करता है। दूसरा कारण उसकी शारीरिक विशेषताएँ हैं जिनसे वह ध्वनि–संकेतों को रचने और उनका व्यवहार करने में पशुओं से अधिक सक्षम हुआ है। किसी ध्वनि–विशेष से किसी वस्तु अथवा कार्य का सम्बंध जोड़ना–यह व्यवहार पशु और मानव दोनों में देखा जाता है और वहीं से भाषा की उत्पत्ति आरंभ होती है।'

भाषाविदों में सस्यूर के 'लांग' और 'परोल' के समानांतर ही चॉम्स्की की 'भाषिक क्षमता' और 'भाषिक व्यवहार' की संकल्पनाएँ महत्वपूर्ण हैं। इन सब मान्यताओं में भाषा के 'विषमरूपी' रूप को नकारकर भाषा के 'समरूपी' रूप को ही माना जाता रहा है। पिछले कुछ वर्षों में भाषा विज्ञान में ऐसी विचारधारा उभरी है जो यह मानती है कि भाषा की प्रकृति विषमरूपी है, समरूपी नहीं। लोगों के भाषा व्यवहार में जितने भाषाभेद दिखाई देते हैं और सामाजिक संदर्भ के आधार पर लोग जिस प्रकार इन भाषाभेदों में से एक भेद का चयन करके उसका प्रयोग करते हैं, उसे देखते हुए भाषाविद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भाषा की प्रकृति विषमरूपी होती है और भाषा विशेष का व्याकरण एक नहीं होता। वस्तुतः विभिन्न सामाजिक स्थितियों में किसी भाषा के जितने रूपों का प्रयोग होगा भाषा का व्याकरण भी उतने ही व्याकरणों का समूह होगा।

भाषा और शब्द का संसार कितना व्यापक हो सकता है यह पाब्लो नेरुदा की एक कविता 'WORD' में चमत्कारिक रूप से व्यक्त किया गया है :–

'मनुष्य के लिए चुप्पी मौत है,
केश तक में भाषा का विस्तार है,
मुख बिना होंठ हिले बोलता है,
हठात्त आंखें शब्द बन जाती हैं।'

दरअसल मनुष्य की वही कल्पना जो भाषा की उत्तेजना से अवधारणाओं को जन्म देती है, जड़ और

चेतन बाहरी संसार से अनवरत मिलने वाले संवेदनाओं को अर्थ और इन्हें मिलाकर उसके सांस्कृतिक जीवन को आकार देती है।

उत्तर आधुनिकता के बड़े पैरोकार जॉक देरिदा ने कहा था कि 'शब्द अपने से बाहर किसी चीज की ओर इंगित नहीं करते, लेखन कलम का नृत्य है।' देरिदा भाषाई अनिर्णय को बल देने के लिए इस बात की ओर बार–बार ध्यान खींचता है कि शब्दों के अर्थ बदलते रहते हैं। शब्दों के अर्थ संदर्भों के अनुसार बदलते हैं यह तो एक सच्चाई है, लेकिन इससे अनिवार्य रूप से अर्थों की अनिश्चितता पैदा हो यह जरूरी नहीं। भाषा के प्रयोग संदर्भों के बदलने से बदलते हैं। इसके बावजूद नए संदर्भों में भी अर्थ निश्चित होता है। उदाहरण के लिए एक शब्द 'नजर' को लें :–

'वह नज़र चुराने लगा है।
उसे नज़र लग जाती है।
वह स्वास्थ्य पर नज़र रख रहा है।
उसकी नज़र बहुत पैनी है'।

इन सब में संदर्भ के हिसाब से अर्थ बिल्कुल निश्चित है लेकिन 'अर्थ' समान हो, ये आवश्यक नहीं है।

मानव और प्रकृति का यह शाश्वत अंतर्विरोध है कि वह प्रकृति का ही अंश है, उससे बंधा हुआ है, साथ ही निरंतर उस पर विजय पाने का प्रयत्न भी करता है। यह अंतर्विरोध सामाजिक विकास का एक कारण है। सामाजिक विकास से भाषा सम्बद्ध है, भाषा द्वारा ही मनुष्य अपने प्रयत्न संगठित करता है, अपने ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता है, इसलिए मानव और प्रकृति का अंतर्विरोध भाषा के विकास का भी कारण है।

मनुष्य की आर्थिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक आवश्यकताएं बदलती रहती हैं। इसलिए यह बिल्कुल संभव है कि किसी काल विशेष में भाषा उनकी पूर्ति का माध्यम न बन सके। उदाहरण के लिए आदिम साम्यवाद की अवस्था में जो भाषाएं काम आती रही होंगी, वे सामंती अवस्था की भाषाओं से कम विकसित रही होंगी, क्योंकि सामंती व्यवस्था में मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताएं और ज्ञान पहले से बढ़ जाते हैं।

बाह्य अंतर्विरोधों से भाषा के सभी तत्व समान गति से नहीं बदलते। सबसे ज्यादा परिवर्तन शब्द–भंडार में होता है। भाषा का कोई भी तत्व अपरिवर्तनशील नहीं है। भाषा परिवर्तित ही नहीं पूरी तरह नष्ट भी हो सकती है। किसी समाज की भाषा में बाह्य प्रभावों से कितना परिवर्तन होता है, यह उस प्रभाव की शक्ति पर निर्भर है। साथ ही समाज के गठन, उसके प्रतिरोध, उसके सदस्यों के भाषा–प्रेम पर भी निर्भर है। उदाहरण के लिए, फ्रांसिसीयों के पास 'उच्चतर संस्कृति' थी। फ्रांसीसी भाषा के जो शब्द अंग्रेजी में आए वे 'अभिजात वर्गीय' थे। किंग और क्वीन तो बच गए लेकिन शासन–व्यवस्था के प्रायः सभी शब्द फ्रांस की देन है :– स्टेट, गवर्नमेंट, कंट्री, पॉवर, मिनिस्टर, कॉउन्सिल.....आदि।

इसी प्रकार युद्ध, धर्म, खेलकूद, फ़ैशन, कला, क्राइम, क़ानून आदि से संबंधित अनेकानेक शब्द अंग्रेजी में फ्रांसीसी भाषा से आये। बारहवीं सदी के एक लेखक जॉन आंव सल्सबरी ने लिखा था कि, "अपनी भाषा में अधिकाधिक फ्रांसीसी शब्द भरना उस समय का फैशन था। इसी कारण फ्रांसीसी से ढ़ेरों गैर पारिभाषिक शब्द लिए गए। इंग्लैंड राजनीतिक रूप से ही पराधीन न था, उसका उच्च वर्ग मानसिक रूप से फ्रांस का गुलाम था।"

जर्मनी फ्रांस का पड़ोसी है किंतु जर्मन भाषा में इतने फ्रांसीसी शब्द नहीं आये। कहा जाता है कि जर्मन जनता ने फ्रांसीसी शब्दों को भीतर घुसपैठ करने की पूरी छूट न दी थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी भाषा का शब्द भंडार उसे बोलने वालों के जातीय चरित्र का द्योत्तक होता है। अंग्रेजी विद्वान तर्क देते हैं कि उनके कोश में जर्मन और फ्रांसीसी भाषाओं से ज्यादा शब्द हैं, इसलिए वह सबसे समृद्ध भाषा है। इस पर तर्क देते हुए सेल्डन कहते हैं कि, "हमारे पास जितने शब्द हैं उतने विचार नहीं है, एक ही बात के लिए आधे दर्जन शब्द हैं।" शब्द को अपना बनाने के लिए उसे सीखना होता है, अपना बनाने का अर्थ है उसका व्यवहार कर सकना। उसे सीखने और उसका व्यवहार करने में मेहनत करनी पड़ती है। अंग्रेजी के जिन पारिभाषिक शब्दों को हिंदी में ज्यों–का–त्यों उतार लेने की बात कही जाती है, उनसे स्वयं अंग्रेजी को बहुत लाभ पहुंचा हो ऐसा मालूम नहीं होता है। इससे अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही भाषाएँ अप्राकृतिक ही हुईं हैं।

किसी समाज के बाह्य अंतर्विरोध भाषा की स्थिति पर किस प्रकार का प्रभाव डालते हैं, यह उस समाज की आन्तरिक स्थिति पर निर्भर है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी या फारसी के शब्द उस तरह हिंदी में नहीं घुस पाए जिस तरह अंग्रेजी में फ्रांसीसी शब्द भर गए थे। इसका कारण यह है कि जातीय या सांस्कृतिक उत्पीड़न के खिलाफ यहां की जनता जम कर लड़ी और उसमें अपनी जातीय संस्कृति के लिए प्रबल अभिमान था। चौसर और शेक्सपियर की अंग्रेजी में लैटिन और फ्रांसीसी स्त्रोतों से आये हुए शब्दों की तुलना में सुर, तुलसी, कबीर, जायसी की रचनाओं में अरबी–फारसी शब्दों की संख्या बहुत कम है।

फ़ारसी का सबसे अधिक प्रभाव हमारे शब्द भंडार पर पड़ा। अरबी–फारसी के सैकड़ों शब्द हमारे मूल शब्द–भंडार के अंग बन गए हैं। आदमी, जानवर, इशारा, आसान, लेकिन, बिल्कुल, अगर, असल, अदालत, गुलाम, कफ़न, लायक आदि कितने ही शब्द हिंदी और उसकी बोलियों में प्रचलित हैं। हिंदी के विशेषता यह है कि उसके अपने शब्द बहुत कम अपदस्थ हुए।

भाषा और समाज के अंतर्संबंधों पर बात करते हुए स्तालिन ने लिखा है कि जब दो भाषाओं की टक्कर होती है तो उनसे एक तीसरी नई भाषा नहीं बनती। वास्तव में आमतौर से कोई एक भाषा इस टक्कर में जीत जाती है, अपनी व्याकरण–व्यवस्था और मूल शब्द भंडार को सुरक्षित रखती है और उन्हें अपने आंतरिक विकास के नियमों के अनुकूल संबद्धित होती रहती है तथा दूसरी भाषा क्रमशः अपना मूल्य खो देती है और धीरे–धीरे मर जाती है।

वर्तमान में हम कह सकते हैं कि भाषा जड़ इकाई न होकर प्रवाहमान धारा है जो अपने विकास–नियमों का पालन करने के अलावा बाह्य अंतर्विरोधों को भी प्रतिबिंबित करती है। यदि दो गण मिलकर संघ बनाएं तो दोनों ही भाषाएं एक–दूसरे को अवश्य प्रभावित करेंगी। व्यक्तिगत संपत्ति और वर्ग–भेद के जन्म के बाद जातियों और उनकी भाषाओं में परस्पर संघर्ष होना साधारण नियम सा रहा है। यदि भारत के लोग अंग्रेजी शासन का प्रतिरोध न करते, तो वे भी या तो अधिकांश नीग्रो जनों की तरह अपनी भाषा खो बैठते या अंग्रेजी से प्रभावित कोई गीची भाषा (नीग्रो की अंग्रेजी से उत्पन्न वह भाषा रूप जिसे गोरे–काले लोग समझ नहीं पाते) बोलते होते। बाह्य अंतर्विरोध इतने तीव्र हो सकते हैं कि कोई भाषा निर्मूल ही हो जाए या दूसरी भाषा से बहुत अधिक प्रभावित हो या दोनों के मिश्रण से एक नए ढंग की भाषा का निर्माण हो। शब्द–भंडार में बहुत बड़े परिवर्तन अक्सर इन बाह्य अंतर्विरोधों के कारण होते हैं। दो भाषाओं का परस्पर आदान–प्रदान उन्हें बोलने वालों के सामाजिक संबंधों

पर निर्भर रहता है। इस प्रकार बाह्य अंतर्विरोध दो तरह के हुए–पहला प्रकृति से अंतर्विरोध, दूसरा दो समाजों का अंतर्विरोध। ये दोनों ही भाषा के विकास को अब तक प्रभावित करते रहें हैं।

सभ्य समाज के साहित्यकारों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों का चिंतन भाषा के उसी मूलाधार पर टिका है जिसका निर्माण प्रकृति से निरन्तर युद्ध करते हुए आदिम समाज–व्यवस्था के मानव ने किया था। सभ्यता के युग में मनुष्य ने शब्द रचना की, पुराने तत्वों के आधार पर नए शब्द गढ़े, बाहर से शब्द उधार लिए, अपने पुराने शब्दों को नया अर्थ दिया, किन्तु उसने भाषा की सृष्टि नहीं की। ध्वनियों के उच्चारण में मनुष्य अव्यक्त से व्यक्त, अस्पष्ट से स्पष्ट, अनिश्चित से निश्चित रूपों की ओर बढ़ा है। हम भाषा को सतत अंतर्विरोधों की स्थिति में पाते हैं।

उपरोक्त भाषा की प्रगति का चिरन्तन कारण है। यदि मनुष्य को पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाये, वह अपने अंतर्जगत और बाह्यजगत का पूर्ण स्वामी बन जाये और यह कहने की स्थिति में हो जाये कि– "पाकर तुम्हे फिर और कुछ पाना न रहता शेष है" तो फिर भाषा का विकास भी रुक जाए। साधारण, सामान्य, श्रमरत मानवों की आवश्यकताएं बदलती हैं, उनका ज्ञानक्षेत्र विस्तृत होता है, इसलिये भाषा में भी विकास होता है। मनुष्य के ज्ञानक्षेत्र के विस्तार के साथ भाषा का अर्थबोध निरंतर बढ़ता रहता है।

भाषा का विकास दो स्तरों पर होता है। पहले स्तर पर अन्य भाषाओं के तत्व मिलते हैं, शब्द भंडार घटता–बढ़ता है, भाषा के प्रयोग की परिधि विस्तृत होती है, इसे हम भाषा का रूप संबंधी विकास कह सकते हैं। दूसरी ओर सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप उसकी अभिव्यंजना क्षमता बदलती है, वह एक नए स्तर की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती है। इसे हम भाषा का विषयवस्तु सम्बन्धी विकास कह सकते हैं। दोनों ही प्रकार का विकास सामाजिक कारणों से होता है। बाह्य अंतर्विरोधों से साधारणतः रूप सम्बन्धी परिवर्तन होते हैं, समाज के अपने अंतर्विरोधों से विषयवस्तु सम्बन्धी परिवर्तन होते हैं। ये दोनों प्रकार के अंतर्विरोध परस्पर सम्बद्ध हैं। वर्तमान में भी साहित्य कला, विज्ञान, संचार, तकनीक आदि के क्षेत्रों में नई प्रगति के कारण भाषा की अभिव्यंजना–क्षमता भी प्रभावित हो रही है। व्यवस्था के बदलने से भाषा का अन्तर्सम्बन्ध भी बदलता है, ये चिरंतन सत्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भाषा और समाज– डॉ. रामविलास शर्मा।
2. हिंदी भाषा का समाजशास्त्र – रवींद्रनाथ श्रीवास्तव।
3. भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा विवेचना – संजीव राव जगन्ननाथन।
4. आलोचना की सामाजिकता – मैनेजर पाण्डेय।
5. भाषा का संसार – दिलीप सिं।
6. An Introduction to Socio Linguistics & Ronald Wordhaugh
7. The Shadow of Language & George Yule
8. Socio Linguistics & R. A. Hudson

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 183-187

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पलटू साहिब की वाणियों में गुरू का स्वरूप एवं गुरू की महत्ता

डॉ० सविता

मकान नं० 2710, अर्बन स्टेट जींद, हरियाणा।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विश्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन भलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

भारतीय संस्कृति में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा परब्रह्म माना गया है। गुरु ही अपने शिष्य के अज्ञान–अंधकार को दूर करता है तथा उसे ज्ञान के पथ की ओर अग्रसर करता है। गुरु के पद को सबसे अधिक सम्मान निर्गुण भक्ति साहित्य में प्रदान किया जाता है, यही कारण है कि प्रत्येक निर्गुण कवि या संत ने अपने काव्य में गुरु की महिमा का वर्णन अवश्य किया है। संत कबीर गुरु की महिमा बताते हुए कहते हैं कि–

भली भई जू गुर मिल्या, नहीं तर होती हाँणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जाँणि।।[1]

संत कबीर के समकालीन संत गुरु रविदास जी सदगुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि गुरु की संगत के बिना भाव नहीं पनपता तथा भाव के बिना कभी भक्ति नहीं हो सकती–

साध संगत बिन भाव नहीं उपजै, भाव बिन भक्ति क्यों होइ तेरी।
कहि रैदास राजा राम सुन विनति, गुरु प्रसादि क्रिया करौ न देरी।[2]

गुरुग्रंथ साहिब गुरु की महिमा को प्रकट करने वाला विशाल आगार है। 'गुरुग्रंथ साहिब' में गुरु की महत्ता के बारे में कहा गया है कि–

सतगुरु नानक परगट्या, मिट्टी धुंध जग चानण होइया।
ज्यूँ कर सूरज निकल्या, तारे छपे अंधेर फलोवा।।[3]

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य के उदित हो जाने पर सभी तारे छिप जातें हैं तथा सारा अंधकार भी नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सतगुरु के प्रकट होने पर या सच्चे गुरु का सान्निध्य मिलने पर अज्ञानता का सारा अंधकार नष्ट हो जाता है तथा यह सम्पूर्ण संसार ज्ञान के आलोक से जगमगाने लगता है।

निर्गुण भक्ति साहित्य में 'गुरु' को विशेष अर्थों में प्रयोग किया जाता है। गुरु शब्द दो शब्दों के योग से निष्पन्न है–गु तथा रु। गु का अर्थ है गुहा अर्थात् गुफा या अज्ञान तथा रु का अर्थ है रुह या आत्मा। वस्तुतः गुरु वह है जो हमारी चेतना अर्थात् आत्मा को अज्ञान के अंधकार से दूर ले जाता है तथा ज्ञान के प्रकाश की

ओर अग्रसर करता है।

निर्गुण भक्ति साहित्य की समस्त 'धूरी' गुरु की महिमा के इर्द–गिर्द ही घूमती है। इसलिए प्रत्येक निर्गुण कवि ने गुरु का अलग–अलग तथा महात्म्य बताया है। इसी प्रकार पलटू साहिब ने भी गुरु के स्वरूप तथा महत्ता पर अत्यधिक वाणियों की रचना की है।

पलटू साहिब का समय :–

पलटू साहिब के समय के बारे में अत्यधिक जानकारी नहीं मिलती है। इनके समय तथा जन्म स्थान के विषय में 'पलटू साहिब की बानी' नाम पुस्तक में इस प्रकार उल्लेख मिलता है– पलटू साहिब उन्नीसवें शतक विक्रमीय में वर्तमान थे। अवध के नवाब शुजाउद्दोला और हिन्दुस्तान के बादशाह शाह आलम उनके समकालीन थे, जिनके हुए डेढ़ सौ बरस का जमाना बीता। यह महात्मा सदा गृहस्थ आश्रम में रहे और उनके वंश के लोग अब तक नगपुर जलालपुर के गाँव में मौजूद हैं।[4]

पलटू साहिब के गुरू :–

पलटू साहिब के गुरु का नाम गोविंद जी था। इनके गुरुनामा धारण करने के पीछे एक कहानी है, जो 'पलटू साहिब की बानी' नामक पुस्तक में इस प्रकार बताई गई है–

"पलटू साहिब ने नगपुर जलालपुर गाँव में एक काँदू बनिया के कुल में जन्म लिया, जिसे भजनावली में गंगा जलालपुर के नाम से लिखा है। यह गाँव फैजाबाद के जिले में आजमगढ़ की पश्चिम सीमा से मिला हुआ है। गंगा जलालपुर नाम का कोई भी गाँव आजमगढ़ या फैजाबाद जिले में नहीं है। यहीं उनके पुरोहित गोविंद जी महाराज रहते थे और दोनों ने बाबा जानकीदास नामक साधु से उपदेश लिया था, पर उनकी भाांति नहीं हुई। इसलिए सार वस्तु की खोज में वे दोनों निकले। गोविंद जी जगन्नाथपुरी को जाते थे कि रास्ते में भीखा साहिब के दर्शन मिले, जिनसे गुप्त भेद प्राप्त हुआ। तब गोविंद जी पलटू साहिब के पास लौट आये और पलटू साहिब ने इनसे सार वस्तु का उपदेश लेकर उन्हें गुरु धारण किया।[5]

पलटू साहिब के अनुसार गुरू का स्वरूप :–

पलटू साहिब ने गुरु के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि जो कोई कर्म के बंधन से विमुक्त हो चुका है, ऐसे व्यक्ति को ही गुरु के रूप में धारण करना चाहिए। जो सच्चे गुरु ही होते हैं, वे लोभ–मोह से कोसो दूर होते हैं। सच्चे गुरु को जगत से कोई आशा नहीं होती। सच्चा गुरु स्तुति या निंदा को समान समझता है। सच्चा गुरु पाप–पुण्य के भाव तथा गर्मी–सर्दी के भाव से भी ऊपर उठा हुआ होता है। सच्चा गुरु कंचन तथा कांच को एक समान समझता है। सच्चे गुरु के लिए कोई व्यक्ति मित्र नहीं होता तथा कोई व्यक्ति उसका शत्रु भी नहीं होता। जो कोई व्यक्ति किसी भी भाव से आता है, गुरु उसका प्रेमपूर्वक सत्कार करते हैं। वास्तव में सच्चे गुरु का मिलना बहुत कठिन कार्य है। आजकल जगह–जगह पर लोगों ने अपने मठ स्थापित कर लिये हैं तथा उन मठों के मठाधीश बनकर बैठे हुए हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि इन मठाधीशों में बहुत कम ही गुरुता का गौरव पाया जाता है।

पलटू साहिब ने अनेक स्थलों पर गुरु के स्वरूप या लक्षणों पर विचार किया है। गुरु को लक्ष्य करके उन्होंने एक पूरा पद इस प्रकार लिखा है–

बुझि विचारि गुरु कीजिये, जो कर्म से न्यारा।

कर्म–बंधन हरि दूरि है, बूड़हू मंझधारा।।
काम–क्रोध जिनके नहीं, नहीं भूख पियासा।
लोभ मोह एकौ नहीं, नहिं जग की आसा।।
ज्यों कंचन ज्यों कांच है, अस्तुति सौ निंदा।
जोग–भोग जिनके नहीं, नहिं संग्रह त्यागी।।
बन्द मोश एकौ नहीं, सत शब्द के दागी।
पाप–पुण्य जिनके नहीं, नहीं गर्मी पाला।
पलटू जीवन मुक्त ते, साहिब के लाला।।[6]

वस्तुतः गुरु का स्वरूप इतना विराट तथा विशाल होता है कि उसे शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं होता है। इसी कारण संत कबीर कहते हैं कि गुरु के स्वरूप को कोई नहीं लिख पाया है–

सब धरती कागद करुँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुंद की मसि करुँ, गुरु गुन लिखा न जाए।

परन्तु संत कवियों की वाणियों में गुरु की वंदना, गुरु का प्रसाद, गुरु की दया–करुणा, गुरु का स्नेह, गुरु की कृपा दृष्टि आदि विषयों पर ही अधिकतर लेख मिलते हैं। पलटू साहिब भी गुरु के स्वागत में एक मंगलाचरण पद इस प्रकार लिखते हैं, जो गुरु के गुणों तथा स्वरूप से सम्बंधित है–

सतगुरु को घर लै आवोंगी, फूलन सेज बिछावोंगी।
सरगुन दरि कै दाल घनैहों, निगुन भात रिन्हावोंगी।
प्रेम प्रीति कै चौक पुरैहौं, सबद कै कलस धरावोंगी।
रतन जड़ित की चौकी पर लै, सतगुरु को बैठावोंगी।
ज्ञान के भार सुमति कै झारी, सतगुरु कँह जेवांवोंगी।
तत्तु गारि कै अत्तर लगावों, त्रिकुटी मँह पौढ़ावोंगी।
पलटूदास सोवन लगे सतगुरु, सुखमन बेनियाँ डोलावोंगी।[7]

पलटू साहिब के कुछ पद प्रश्नोत्तर शैली में भी निबद्ध हैं, जिसमें वे गुरु से प्रश्न पूछते हैं तथा स्वयं ही इनका उत्तर भी देते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि निर्गुण भक्ति काव्य में प्रश्नोत्तर शैली बहुत प्रसिद्ध रही है। कबीर तथा धर्मदास के प्रश्नोत्तर भक्ति साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार कमाली तथा कबीर के प्रश्नोत्तर शैली में निबद्ध पदों में उच्च स्तर की आध्यात्मिक चर्चा मिलती है। इसी प्रकार की उच्च स्तर की आध्यात्मिकता तथा रहस्यवादिता पलटू साहिब के पदों में भी मिलती है। इनका एक पद इस प्रकार हैं, जब वे गुरु से प्रश्न पूछते हैं–

गुरु से भेद पुछन को आया।
कौन गुरु से मुंड मुंडाया, कहवा आसन लाया।
कौन गुरु का सिमरन किन्हा, विरथा जन्म गंवाया।
अलख पुरुष से मूँड मुँडाया, गगन में आसन लाया।
ओं नाम सब ही घट व्यौपै, ता से रगड़ लगाया।

दत्तात्रेय आदि के जोगी, चौबिस गुरु बनाया।
संत जोग एकौ नहिं जाना, ता तें भटका खाया।
इंगला–पिंगला सुखमन नाड़ी, अनहद डंक जगाया।[8]

गुरू का महत्व :-

निर्गुण भक्ति साहित्य में गुरु को गोविंद से भी बढ़कर बताया गया है। 'हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहीं ठौर' अर्थात् परमात्मा हमसे रुष्ट हो जाये तो हम गुरु की शरण में जा सकते हैं, परन्तु यदि हमारा गुरु हमसे रुष्ट हो जाये, तो हमारा कोई ठौर–ठिकाना नहीं है।

सतगुरु ही शिष्य की कपट–किवाड़ी को खोलता है तथा आत्मिक दुर्गुणों को दूर भगाने का कार्य करता है। जब सच्चे गुरु की संगत मिलती है, तो व्यक्ति की अर्थात् शिष्य की आत्मिक चेतना का विकास होने लगता है। सच्चे गुरु की संगत के महत्व को इंगित करते हुए पलटू साहिब कहते हैं कि–

को खोलै कपट किवरिया हो, सतगुरु बिन साहिब।
नैहर में कछु गुन नहिं सीखो, ससुरे में भई फुहरिया हो।
अपने मन की बड़ी कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो।
पाँच पच्चीस रहै घट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो।
पलटूदास छोड़ि कुल जतिया, सतगुरु मिले संघतिया हो।[9]

पलटू साहिब के अनुसार सच्चा सतगुरु ही सही डगर (मार्ग) का पता बता सकता है। गुरु के मार्गदर्शन के बिना शिष्य कभी भी अपनी मंजिल पर नहीं जा सकता। जो व्यक्ति अपने गुरु को सर्वस्व मानकर उनके हर आदेश को स्वीकार करके शिरोधार्य करते हैं, ऐसे शिष्य या साधक ही इस भव सागर को पार कर सकते हैं। जो व्यक्ति गुरु की आज्ञा को नहीं मानते, वे इसी संसार–सागर की मंझधार में उलझ कर रह जाते हैं।

गुरु अपने शिष्य के सभी दुखों या गमों के भार को अपने सिर पर धारण कर लेता है तथा शिष्य को बेफिक्र कर देता है। गुरु अपने शिष्य के गमों को गम नहीं मानता, अपितु वह इन गमों में भी मस्त रहता है, क्योंकि ये गम उसके अपने न होकर उसके शिष्य के हैं। वस्तुतः शिष्य के सभी प्रकार के दुख–दर्द को मिटाने का कार्य एक सच्चा सतगुरु ही कर सकता है। सतगुरु के इसी महात्मय को वर्णित करते हुए पलटू साहिब कहते हैं–

देख रे गुरु गम मस्ताना, जानैगा कोई साधु सयाना।
जियते मरै सोई पहिचाने, गैब नगर सहजै–चढ़ि जाना।
इंगला–पिंगला चंवर ढुरावै, सुखमन निसु दिन हनत निसाना।
तुरिया चढ़ि जब गरजन लागे, छवि देखत सुर भूप लसाना।
गुरु गोंविंद मासूक मिले हैं, आसिक ह्वै पलटू बौराना।।[10]

पलटू साहिब ने शब्दों तथा पदों के अतिरिक्त साखियों की रचना भी की थी। इनकी साखियाँ भी गुरु के महत्व को कहती हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि भक्ति रूपी नाव में शिष्य बैठ तो गया, किन्तु उसे लहर को पार करने के लिए केवट (गुरु) की आवश्यकता है–

पलटू सतगुरु सबद की, तनिक न करै विचार।

नाव मिली केवल नहीं, कैसे उतरै पार।।[11]

पलटू साहिब की अन्य साखियों में भी विभिन्न उपमानों तथा रूपकों के माध्यम से गुरु के महत्व को दर्शाया गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि निर्गुण भक्ति साहित्य में गुरु को 'संत' की उपाधि प्रदान की जाती है। पलटू साहिब संतों की महिमा बताते हुए कहते हैं कि–

संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोऊ न छोट।
आतम–दरसी मिहीं है, और चादुर सब मोट।।
पलटू ऐना संत हैं, सब देखै लेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं।।
वहि देवा को पूजिये, सब देवन के देव।
पलटू चाहै भक्ति जो, सतगुरु अपना सेव।।
सतगुरु केरे सबद की, लागी मन में चोट।
पलटू इन में बचि गया, कादिर ही की ओट।।[12]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पलटू साहिब की बाणियों में गुरु का जो स्वरूप उल्लेखित है, वह निर्गुण भक्ति साहित्य की परम्परा के अनुरूप ही है। पलटू साहिब ने सतगुरु को ही भक्ति का मूल माना है। गुरु की संगत से ही सब आंतरिक विकार नष्ट होते हैं तथा हमारी चेतना में एक नव प्रकाश झिलमिलाने लगता है। गुरु ही हमारे भ्रम के भेद मिटा सकता है तथा हमारे अज्ञान के अज्ञान को दूर कर सकता है। गुरु सभी प्रकार के सांसारिक तथा भौतिक बंधनों की जकड़ से दूर होता है तथा अपने शिष्य के मोह के बंधनों की जकड़ को भी ढीला करता है। पलटू साहिब के अनुसार जब किसी शिष्य को सच्चा सतगुरु मिल जाता है, तो वह शिष्य अपने–आप ही सही मार्ग की ओर चलने लगता है। वस्तुतः गुरु के महात्मय को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। गुरु का गौरव केवल अनुभूति का विषय है। जिस शिष्य ने इस गौरव को अनुभव कर लिया, वह शिष्य अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में अर्पित कर देता है तथा गुरु से एक ही प्रार्थना करता है कि वह उसे अज्ञान के अंधकार से बाहर निकाले। गुरु तथा शिष्य के इन्हीं आत्मिक तथा अध्यात्मिक अनुभावों को पलटू साहिब ने बड़ी सूक्ष्मता तथा मार्मिकता के साथ अभिव्यंजित किया है।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक, श्याम सुन्दर दास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृ०
2. रैदास बानी, सम्पादक, डॉ० शुकदेव सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2011, पृ०–193
3. संत परम्परा और गुरु नानक, सम्पादक, डॉ० श्रीधर मिश्र, हिन्दी साहित्य परिचय, बम्बई 1992, पृ०–76
4. पलटू साहिब की बानी, भाग–3, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद 2007, पृ०–3
5. वही, पृ०–2
6. वही, पृ०–1
7. वही, पृ०–20
8. वही, पृ०–54
9. वही, पृ०–24
10. वही, पृ०–57
11. वही, पृ०–68
12. वही, पृ०–68

riturazz88@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 188-191

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शारीरिक शिक्षा तथा योग का अन्तर्सम्बंध

रमेश कुमार
प्रवक्ता, शारीरिक शिक्षा

शारीरिक शिक्षा ऐसा विषय है, जो कई विषयों की सामग्री को अपने भीतर समेटे हुए है। इन सब विषयों में सबसे महत्वपूर्ण विषय है–योग शास्त्र। शारीरिक शिक्षा की तरह योग शास्त्र की पृष्ठभूमि भी शारीरिक क्रियाओं पर ही आधारित है। अतः योग शास्त्र के बिना शारीरिक शास्त्र या शारीरिक शिक्षा नामक विषय अधूरा ही है। जिस प्रकार शारीरिक शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त विशाल तथा विस्तृत है, उसी प्रकार योग शास्त्र का क्षेत्र भी अत्यन्त फैला हुआ है। योग शास्त्र में चार प्रकार के योग माने गये हैं–हठयोग, राजयोग, कर्मयोग तथा ज्ञानयोग। इन सभी योगों में हठयोग ही शरीर शास्त्र का विषय है। अन्य तीन यौगिक क्रियाओं का सम्बंध मानसिक क्रियाओं से ही अधिक जुड़ा हुआ है। अतः योग शास्त्र का 'हठयोग' ही शारीरिक शिक्षा से निकटता से जुड़ा हुआ है। इसी जुड़ाव या सम्बंध को व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध नारायण ने कहा है–"हठयोग योग भाास्त्र की वह शाखा है जो कि पार्थिव शरीर, उसकी रक्षा, उसकी भलाई, उसके स्वास्थ्य और उन सब बातों का, जो भारीर को उसकी प्राकृतिक और असली दशा में रखते हैं, वर्णन करता है। यह जीवन को स्वाभाविक रीति से जीने का मार्ग बताता है।"[1]

योग का अर्थ :–

योग शब्द संस्कृत की युज् के साथ घञ् प्रत्यय के संयोग से निर्मित है। युज् धातु का दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है–जोड़ना तथा मन की स्थिरता। भारतीय ज्ञान परम्परा में भी योग शब्द को दोनों अर्थों में प्रयोग किया जाता है। महर्षि पंतजलि ने योग को परिभाषित करते हुए लिखा है– योगश्चितवृत्ति निरोधः[2]

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही मेरा योग है। इसके अतिरिक्त आचार्य हरिशद्र ने वचन, मन तथा कर्म को संयमित रखने वाले कार्य व्यापार को योग कहा है। वे कहते हैं–

अध्यात्मं भावनाऽध्यानं समता वृत्तिसंशयः।
मोक्षेण योजनाः योगः एषः श्रेष्ठो यथोत्तरतम्।[3]

अर्थात् आध्यात्मिक भावना तथा समता की भावना का विकास करने वाला, मनोविकारों को नष्ट करने वाला, मन, वचन और कर्म को संयमित रखने वाला धर्म व्यापार ही श्रेष्ठ योग है।

उपरोक्त परिभाषाओं में योग को मानसिक क्रियाओं के साथ संयुक्त किया गया है। परन्तु यहाँ यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि किसी भी व्यक्ति की मानसिक दशा उसकी शारीरिक दशा पर ही आधारित होती है। यदि किसी व्यक्ति की शारीरिक दशा अच्छी न हो, तो उस व्यक्ति की मानसिक दशा कभी भी अच्छी नहीं होगी।

मानव अपने समस्त क्रिया कलाप शरीर के माध्यम से ही सम्पन्न करता है। यह शरीर अनेक व्याधियों

(बीमारियों) का घर होता है। इस शरीर को बीमारियों से बचाने के लिए मानव जीवनभर प्रयास करता रहता है। जिस प्रकार किसी मशीन के सुचारु संचालन के लिए उसकी समय–समय पर देखभाल की जाती है, उसी प्रकार योग द्वारा इस शरीर रूपी मशीन की देखभाल की जाती है। शारीरिक शिक्षा का एक अन्यतम उद्देश्य यही है कि हमें अपने शरीर को नीरोगी रखना चाहिये। उसी प्रकार शरीर को नीरोगी रखना ही योग का उद्देश्य है। इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध नारायण सिंह का कहना है कि–"योगशास्त्र यह सिखलाता है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को एक शारीरिक कल देता है, जो कि उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल हुआ करती है, और उसे उस कल को ठीक दशा में रखने और यदि मनुष्य की भूल से कल कुछ बिगड़ जाए, तो उसके मरम्मत करने के साधन भी देता है। योगी लोग इस शरीर को महाचैतन्य भाक्ति की कारीगरी समझते हैं। वे इसके संगठन को एक चलती हुई 'कल' समझते हैं, जिसकी कल्पना और परिक्रिया अत्यन्त चातुरी और स्नेह का परिचय देती है। योगी लोग जानते हैं कि यह देह उसी महाचैतन्य के कारण है। वे जानते हैं कि यह चैतन्य इस पार्थिव देह में सर्वदा लगातार काम कर रहा है और जब तक कोई व्यक्ति उसके नियम का अनुयायी बना रहता है, तब तक वह स्वस्थ और सुदृढ़ भी बना रहता है। वे यह भी जानते हैं कि जब मनुष्य इस नियम के प्रतिकूल चलता है, तो इसका परिणाम बीमारी और गड़बड़ होती है।[4]

योग का मूलाधार श्वास माना जाता है। एक योगी अपनी विभिन्न यौगिक क्रियाओं को 'श्वास' के माध्यम से ही सम्पन्न करता है। श्वास विज्ञान में विभिन्न श्वास क्रियाएँ प्रचलित हैं, जो सीधे रूप से व्यक्ति के स्वास्थ्य से जुड़ी हुई हैं। कपालभाति, रेचक, कुंभक, अनुपूरक आदि यौगिक दशाओं का आधार श्वास ही है। इसके अतिरिक्त योग ही हमें सिखाता है कि हमें नाक से साँस लेनी चाहिये तथा पूरी मात्रा में साँस लेनी चाहिये। 'श्वास विज्ञान' नामक पुस्तक के नवें अध्याय 'पूरी साँस का शारीरिक प्रभाव' नाम लेख में प्रसिद्ध नारायण ने पूर्ण श्वास के महत्त्व को इस प्रकार उल्लेखित किया है–"पूरी साँस लेने वाला, पुरुष हो या स्त्री, क्षयी रोग और फेफड़ों के अन्य रोगों से तो बिलकुल ही निर्भय हो जाता है, सर्दी–जुकाम होने की संभावना जाती रहती है। क्षयी रोग शरीर का जीवट कम होने से होता है और कम हवा के अन्दर जाने से जीवट कम होता है। जीवट के कम होने के कारण नाना प्रकार के रोगों के कीटाणु शरीर पर आक्रमण कर बैठते हैं।

अधुरी साँस लेने से फेफड़ों का अधिकांश भाग बेकार रहता है और ऐसे ही भाग बीमारियों के कीटाणुओं का आह्वान करते हैं। ये कीटाणु रुग्ण अंग में डेरा जमाकर फिर से तहलका मचा देते हैं। यदि फेफड़ों के अवयव अच्छे स्वस्थ्य रहेगें, तो वे कीटाणुओं को दबा बैठेगें। फेफड़ों के अंगों को अच्छा और स्वस्थ रखने का एक ही उपाय है कि उनसे काम लेकर उन्हें खूब दृढ़ बनाते रहें।[5]

शारीरिक शिक्षा तथा योग को जोड़ने वाली एक अन्य महत्वपूर्ण कड़ी है–अनुशासन या नियम बनाना। शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में नियम पालन की सबने अधिक आवश्यकता होती है। जो खिलाड़ी जितना अनुशासित रहेगा, वह उतनी ही अधिक प्रगति करेगा। शारीरिक शिक्षा का प्रत्येक खेल अनुशासन से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार यौगिक क्रियाएँ भी अनुशासन के बल पर ही संचालित होती है। अगर किसी यौगिक क्रिया में किसी तरह का प्रमाद या लापरवाही की जाती है, तो शरीर का सम्पूर्ण स्वास्थ्य चक्र बिगड़ जाता है। अतः शरीर को स्वस्थ रखने तथा शारीरिक गतिविधियों के सुचारु संचालन के लिए 'अनुशासन' महती भूमिका निभाता है। यह अनुशासन जीवन के सभी पक्षों; यथा–सुबह जल्दी उठना, समय पर भोजन करना, नियम पालन करना, सही

समय तथा स्थिति के अनुसार व्यायाम करना आदि विषयों से जुड़ा हुआ है।

शारीरिक शिक्षा तथा योग को जोड़ने वाला एक उद्देश्य है–आरोग्यता। शारीरिक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य ही यही है कि व्यक्ति को स्वस्थ रहना चाहिये। इसी प्रकार योग भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को केन्द्र को रखकर ही करना चाहिये। शारीरिक व्यायाम करने के उपरान्त तथा यौगिक क्रिया करने के पश्चात व्यक्ति को शरीर की मालिश करनी चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने इस मालिश के बारे में इस प्रकार कहा है–

शरीरायास जननं कर्म व्यायामं संज्ञितम्।
तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमर्दनीयात् समन्ततः।[6]

अर्थात् शरीर के परिश्रम से उत्पन्न कर्म को व्यायाम कहा जाता है। व्यायाम करने के उपरान्त शरीर की चारों ओर से मालिश करनी चाहिए।

आचार्य सुश्रुत की उपर्युक्त अवधारणा को पाश्चात्य संसार तथा जापान एवं चीन आदि देशों ने स्वीकार किया। इन देशों में व्यायाम करने के उपरान्त शरीर की मालिश करने का नियम प्रचलित हैं। इन देशों में इस मालिश को 'एक्युप्रेशर' कहा जाता है। एक्युप्रेशर के माध्यम से शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बंधित केन्द्रों को दबाया जाता है। इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र कुमार राजीव कहते हैं–"एक्युप्रेशर लैटिन तथा अंग्रेजी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अभिप्राय गहरी मालिश या प्रेशर है। हाथों से यह प्रेशर पैरों, कानों, चेहरे तथा शरीर के कुछ अन्य भागों पर दिया जाता है, जिन्हें प्रतिबिम्ब या रिफ्लैक्स केन्द्र कहते हैं। इन केन्द्रों का शरीर के विभिन्न अंगों से सीधा सम्बंध होता है। रोग की अवस्था में इन केन्द्रों पर प्रेशर देने से दर्द कम होता है। ज्यों–ज्यों दर्द कम होता जाता है, त्यों–त्यों रोगी के अंगों की क्रिया सामान्य होती जाती है। कई पेचीदा और पुराने रोगों में जितना भीघ्र आराम एक्युप्रेशर से आता है, वह अन्य किसी पद्धति से संभव नहीं है।[7]

यहाँ यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि शारीरिक गतिविधि करते समय तथा यौगिक क्रिया करते समय शरीर के विभिन्न अंगों पर एक निश्चित मात्रा में दबाव पड़ता है, यह दबाव एक चिकित्सा के रूप में कार्य करता है। यौगिक क्रियाओं के द्वारा जाने–अनजाने शरीर के कई केन्द्रों पर प्रेशर पड़ता है, जो अनायास ही एक्युप्रेशर का स्वरूप धारण कर लेता है तथा व्यक्ति के स्वास्थ्य की बढ़ौतरी करता है।

शारीरिक शिक्षा द्वारा स्थौल्य अर्थात् मोटापे को दूर किया जाता है। मोटापा अपने–आप में एक रोग है। मोटापे से ग्रसित व्यक्ति कई रोगों का घर बन जाता है। जो व्यक्ति शारीरिक गतिविधियों में संलग्न रहता है या यौगिक क्रियाओं का पालन करता है, उस व्यक्ति से मोटापा स्वतः ही दूर हो जाता है। कई बार हमने देखा है कि मोटापे से ग्रसित व्यक्ति ही जल्दी से बीमारियों का शिकार होते हैं। परन्तु यदि वह व्यक्ति शारीरिक गतिविधियों द्वारा या यौगिक क्रियाओं द्वारा अपनी बीमारियों को दूर करने का प्रयास करता है, तो उसे अपने प्रयास में अवश्य सफलता मिलती है। जैसे ही व्यक्ति का मोटापा दूर होने लगता है, व्यक्ति का शरीर छरहरा हो जाता है और व्यक्ति में रोगों से लड़ने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। अतः शारीरिक शिक्षा तथा योग मोटापे को दूर करने वाले सबसे बड़े कारक हैं।

शारीरिक शिक्षा मानसिक तनाव को दूर करने में सहायक है, इसी प्रकार यौगिक क्रियाएँ भी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालती है। मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही आधारित

होता है। हमारे मानसिक स्वास्थ्य के आधार पर ही हमारे विचारों का निर्माण होता है तथा विचार परम्परा के आधार पर ही हमारे जीवन की गाड़ी चलती है। इसी विचार को प्रकट करते हुए 'योग मनोविज्ञान' नामक पुस्तक में कहा गया है कि–"योग एक स्वतंत्र दर्शन भी है, जो सचमुच में अगर देखा जाए तो सम्पूर्ण मनोविज्ञान ही है। यह जीवन–यापन का सच्चा पथ–प्रदर्शन विज्ञान है। योग मनोविज्ञान का प्रायोगिक अंश है। इसलिए किसी न किसी रूप में वह दर्शन में आ जाता है। अतः इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। योग दर्शन पर अनेक भाष्य हुए हैं। वर्तमान समय में प्राप्त सभी भाष्यकारों का मत यह है कि महर्षि पतंजलि स्वयं योग दर्शन के प्रथम वक्ता नहीं है। स्वयं महर्षि पतंजलि ने समाधि–पाद के प्रथम सूत्र 'अथ योगानुशान' में यह बता दिया है कि यह योग प्राचीन काल से चला आ रहा है। अनुशासन शब्द से व्यक्त होता है कि इस विषय का शासन महर्षि पतंजलि से पूर्व का है।[8]

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि योग नामक विषय भारतीय संस्कृति से सम्बंधित वह विषय है, जो शारीरिक शिक्षा का जनक, उन्नायक, पालक, संवर्धक आदि कहा जा सकता है। योग की अवधारणा ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त से मानी जा सकती है, क्योंकि योग के प्राचीनतम सूक्त 'हिरण्यगर्भ सूक्त' ही माने गये हैं। इसके बाद महाभारत काल में तो स्वयं कृष्ण को ही 'योगीराज' कहा गया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि योग की अवधारणा शुद्ध भारतीय अवधारणा है। इसी अवधारणा को विश्व के अनेक देशों तथा सभ्यताओं ने स्वीकार किया, जो आगे चलकर विभिन्न शारीरिक आयामों तथा कलाओं में ढलकर शारीरिक शिक्षा या शारीरिक शास्त्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

शारीरिक शिक्षा तथा योग के सामान्य तथा विशेष उद्देश्य एक समान हैं। ये दोनों ही विषय व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य से सम्बंधित हैं। इन दोनों विषयों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी समान रूप से विकसित हुई है। इन दोनों विषयों के संस्थागत तथा प्रायोगिक उद्देश्य भी एक समान हैं। इन दोनों विषयों के द्वारा सौल्य का अपकर्षण होता है, तनाव दूर होता है, मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, ध्यान की अवस्था बनती है, अनुशासन की भावना का विकास होता है। इन सभी समानताओं तथा समान उद्देश्यों के आधार पर यह तथ्यात्मक निष्कर्ष निकलता है कि शारीरिक शिक्षा तथा यौगिक क्रियाएँ भिन्न–भिन्न आयाम नहीं हैं, अपितु ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. प्रसिद्ध नारायण, श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस, 1917, पृ०–1
2. पतंजलि, पांतजल योग–सूत्र, पा० 1, सं० 2
3. आचार्य हरिभद्र, योगबिन्दु, पृ०–31
4. प्रसिद्ध नारायण सिंह, श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस, पृ०–13
5. प्रसिद्ध नारायण, भवास विज्ञान, इंडियन प्रेस, प्रयाग, पृ०–61
6. सुश्रुत संहिता, अध्याय–9
7. राजेन्द्र कुमार राजीव, अद्भुत चिकित्सा पद्धतियाँ, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ०–61
8. डॉ० शांतिप्रकाश आत्रेय, योग मनोविज्ञान, दी इन्टरनेशनल स्टैगडर्ड पब्लिकेशंस, वाराणसी, 1935, पृ०–1

गाँव– निगाना कलां, जिला–भिवानी, हरियाणा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 192-194

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में नगरीय परिवेश

डॉ. बड्लाद श्रीनिवास राव

हिन्दी प्राध्यापक, एस. के. बी. आर. सरकारी महाविद्यालय, माचर्ला, पलनाडु जिला, आन्ध्र प्रदेश।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में ग्राम नहीं, नगर ही मुख्यतः चित्रित हुआ है। यहा नगर खासकर आधुनिक कहानी की संवेदना का केंद्र बन गया। इसलिए इस कहानी को श्नगर चेतनाश की कहानी भी कहा जाता है। दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, लखनऊ, कानपुर, अहमदाबाद जैसे घनी आबादी या औद्योगिक प्रतिष्ठानों से भरे नगर आधुनिक कथाकार की चेतना पर छाए है। स्वतंत्रता के बाद के वर्षों के आकडों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय में नगरों में जनसंख्या की बेहिसाब बढ़ोतरी हुई है। अपने ग्राम, कस्बे नगरों को छोड़कर रोजी–रोटी की तलाश और बेहतर जीवन जीने की सुविधाओं की प्राप्ति की आकांक्षा में शिक्षित–अशिक्षित नवयुवकों के रेले के रेले इल महानगरों में आ बसे और शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार ने इस प्रक्रिया को और अधिक तेज किया।

जो कहानीकार १९५० – ५५ में कस्बे से दिल्ली, बंबई, कलकत्ता जैसे नमरों में आ बसे, उनका मन नगर परेवेश को सहजता में ग्रहण नहीं कर पाए। इसलिए कुहारीकार महानगर में आकर जीवन मूल्यों में परिवर्तन, संबंधों के धोधापन, बेगानेयन, जीवन में आई रिक्तता, ऊब और एकरसता, महानगर की अशांति को अपनी कहानियों में अभिव्यक्त दे रहे हैं, इसके पश्चात् जन्म से ही शहर में पैदा हुये कथाकारों की पीडी भी इसी परिवेश में थी। इस कथा–पीढ़ी की कहानियों का स्वर बिल्कुल दूसरा है, वे अपने वातावरण के कहानियों में अपने ढंग से जी रहे हैं। परिणामतः महानगर आज कहानी की संवेदना का केंद्रीय बिंदु हो गई है।

औद्योगिक प्रतिष्ठानों की व्यवस्था से जूझती ट्रेड–यूनियन राजनीति में आए दिन जुलूस, हड़ताल तोड़–फोड़, आदि की राजनीति और बेहतर साधन प्राप्त करने के लिए संघर्षरत नौकरीपेशा वर्ग के 'बंध' और अन्य आयोजनों के नगर और महानगर के जीवन को और अधिक विषाक्त कर दिया। नगरीय और विशेषतः महानगरीय जीवन के चे बहु आयामी संदर्भ आधुनिक हिन्दी कहानी का यथार्थ बनकर आए कहानी में इन जीवन स्थितियों को पूरी प्रामाणिकता में जीया है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी में नगरीय और विशेषतः महानगरीय जीवन की समस्याएँ ही चित्रित नहीं हुई है। अपितु यह कहानी जीवन के अन्य पक्षों का जो चित्रण करती है, उसका परिदृश्य भी नगरीय अथवा महानगरीय है। रेणु, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, मार्कण्डेय, मधुकर सिंह, राजेन्द्र अवस्थी, मणि मधुकर, मेहरून्निसा परवेज, बलराम, मिथिलेश्वर आदि कुछ कहानीकारों के अतिरिक्त अधिकांश कथाकारों की कहानियों की पृष्ठ भूमि महानगरीय है। गाँव और कस्बों की कहानियाँ भी अधिकांशतः अपनी मानसिकता और चेतना में महानगरीय हैं।

उनमें भी गाँव था कस्बे के नगरीकरण से उत्पन्न पीड़ा लक्षित की जाती है।

कमलेश्वर की कहानियाँ इस कथन के प्रमाणस्वरूप है। उनका कथाकार दिल्ली और मुंबई में बैठकर भी जिस महानगर को चित्रित करता है, उसमें कस्बे के जीवन–मूल्य टूटने का बड़ा भारी दर्द हैं। 'खोई हुई दिशाएँ' 'दिल्ली में एक मौत', 'दुःखभरी दुनिया', 'बदनाम बस्ती', 'अकाल', 'भूखे और नंगे लोग' आदि उनकी कहानियाँ महानगरीय पृष्ठभूमि पर ऐसी कहानियाँ हैं जिसमें गाँव और कस्बे के जीवन–मूल्य विलुप्त हो जाने का दर्द अपनी पूरी सच्चाई से उभारा है।

आज कहानियों में प्रेम, विवाह आदि के जरा जीवन–मूल्य, स्त्री–पुरुष संबंधों के विविध स्तर, राजनीतिक समस्याएं और अर्थतंत्र से जुड़े प्रश्न जिस रूप में चित्रित है, उनको अधिकांशतः महानगरीय पृष्ठभूमि में ही विश्लेषित किया गया है। क्लब होटल, सांस्कृतिक संगठन, गोष्ठियाँ, नए फैशन, 'माँड' जीवन जीने की सुविधाएँ, डास, बार, बियर, डिस्को थे आदि, जो आधुनिक कहानी में आए हैं, वे भी शहरी और महानगरीय जिंदगी का ही हिस्सा है। इस प्रकार सभी रूपों में, अधिकांशतः आधुनिक कहानी अपनी मानसिकता में महानगरीय है।

जीवन-मूल्य :-

कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएं', 'अपने देश के लोग', 'अपना एकांत', 'पराया शहर', आदि कहानियों में अपना परिवेश और जीवन मूल्य छूटने का यह दर्द बड़ी शिद्दत से अभिव्यक्त हुआ हैं। 'खोई हुई दिशाएँ' का चंदर महानगर दिल्ली में स्वयं की पहचान, निजता की तलाश में भटकता है। इसे पग–पग पर जो बेगानापन सालता है, वह परिवेश छूटने का ही दर्द है। अपने छोटे से शहर में डाकखाने का बबू, बैंक काउंटर पर बैठा क्लर्क दुकानों के नामपट्ट में व्यक्तिका सारा इतिहास अभी कुछ तो उसका जाना–पहचाना है, किंतु यहाँ आकर वह बेगानेपन के जिस समुद्र में आकंठ डूबा है, इसमें उसे अपना पिछला परिवेश और जीवन–मूल्य रह–रहकर याद आते हैं।[२]

'पराया शहर' का सुखवीर पंद्रह साल दिल्ली में रहकर भी यहाँ का नहीं हो पाया। उसे दिल्ली अपना घर नहीं लगती और दिल्ली में बाहर से आए प्रत्येक व्यक्ति की यही स्थति है, 'जिससे बातचीत होती है, वह अपने – अपने शहर या गांव या कस्बे को याद करता है और अजनबीपन की झलक आंखों में उतर आती है।'[३]

गोविंद मिश्र की 'कचक्रौंध' एक ऐसी ही सफल और सशक्त कहानी है। 'कचकौंध' के 'पंडितजी', 'तीस साल बाद दिल्ली में आकर महसूस करते हैं कि बिजली कितनी बदल गई है। उन्हें लगता है कि शहर में हर चीज मटियामेट के रास्ते बह रही है। नगर के लोग देश तक सोना, 'बेड–टी' पीना और राम–नाम के बजाय अखबार में सिर गड़ाकर पडे रहना, शौच के पश्चात् शास्त्रों द्वारा बताए गये विधान से मृतिका मिट्टी से हाथ साफ न करके साबुन का प्रयोग जिससे मोजे के बाथरूम गंदे न हो जाएं, आदि उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। घर से बाहर अस्पताल में डॉक्टरों का दवा देते रहना और यह भी पता न चलना कि रोग क्या है– महानगरीय जीवन की ऐसी अनेक विसंगतियाँ तथा विदूपताएं कहानी में बड़ी सूक्ष्मता से अंकित हैं। कहानी महानगरीय जीवन के इन बिंदुओं को छूने के साथ–साथ अपने में महानगरीय जीवन के अनेक संदर्भ समेटे हुए है, यथा भ्रष्ट व्यवस्था, नौकरशाही और राजनीतिक गलाजन पर तीव्र व्यंग्य, किंतु इतनी सशक्त कधा की भरपूर चर्चा हिन्दी कहानी समीक्षा में नहीं हो सकी है।

महानगर संबंधी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित होने पर भी इस कहानी की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

यद्यपि गोविंद मिश्र की ही 'गलत अंबर' को इनमें स्थान मिला, किंतु 'कचकौंध', 'गलत नंबर' की अपेक्षा बहुत अधिक सशक्त कहानी है।[४]

काशीनाथ सिंह की 'दलदल' का नायक भी बीस वर्ष की लंबी अवधि शहर में बिताकर भी वहाँ का नहीं हो पाया है। यहाँ रहते हुए भी वह अपनी कोई न कोई पहचान कायम रखना चाहता है जिससे उसे अपने परिवेश और उसके जीवन–मूल्य छूटने का दर्द महसूस न हो। [५]

प्रणवकुमार वंधोपाध्याय की 'अलेक्जेंडर' कहानी भी इसी महानगरीय बोध को संप्रेषित करती है कि 'दिल्ली रहने योग्य नहीं है, दिल्ली सिर्फ शुरु में ही अच्छी लगी थी। फिर एकदम से महसूस होने लगा था कि यहाँ एक खास किस्म की घुटन है।' [६]

निर्मला ठाकुर की 'बेधर दिवारें' में पिता–पुत्र की उस पीडी को प्रस्तुत किया गया है जिनमें शहर की रीति नीति को अपनाकर एक बड़ा भारी अंतराल आ गया है। यह पीढ़ियों का अंतराल उन पीढ़ियों का है जो शहर में आकर बस गई है। पहली पीढ़ी से शहर में आकर बसी थी, किंतु दूसरी पीढ़ी शहर में ही जन्मी और पली – बढ़ी तो यह अपनी पारिवारिक परंपरा, परिवेश और मूल्यों से कटकर बहुत दूर जा पड़ी। बाबूजी इसी मानसिकता से पीड़ित हैं, 'जिंदगी–भर नौकरी करते हुए भी एक नौकरी–पेशा की शहरी मानसिकता उनमें नहीं आ पाई। इधर वे महसूस कर रहे हैं कि पूरा घर उनके नेतृत्व में छूटकर अलग जा पड़ा है। घर के सारे निर्णय उनके खिलाफ लिए गए है। छोटी बहु नौकरी करती है, हेमा कॉलेज में पढ़ती है। पूरे घर का वातावरण नामालूम तरीके से बदल गया है। उनके सामने चीजें इतनी तेजी से बदलती गई हैं कि वे पचा नहीं पाते हैं।'[७]

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी में गाँव और कस्बे का परवैश और जीवन–मूल्य छूट जाने का दर्द बहुत खूबी से उकेरा गया है। यह पीड़ा महानगरीय संस्कृति और जीवन के थोथेपन की पीड़ा है।

सन्दर्भ :–

1. द्रष्टव्य – पुष्पयान सिंह, 'कमलेश्वर' के कहानीकार की मूल संवेदना 'भाषा', जून १९७७
2. कमलेश्वर 'खाई हुई दिशाएँ', पृ. ३०
3. वही, 'पराया शहर', पृ. १३४
4. गोविन्द मिश्र, 'कचकौंध' सारेका – अप्रैल १९७३
5. काशीनाथ सिंह 'सुबह का डर', दलवल पृ. ४३
6. प्रणव कुमार, वंद्योपध्याय, 'अलेक्जेंडर' आजकल, मार्च १९७१
7. निर्माला ठाकुर, 'बेधर दीवारें', सारिका, जुलाई १९७४

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 195-197

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा–साहित्य में ग्राम जीवन

दिवाकर शर्मा

विद्यार्थी, महर्षि दयानंद विवि., रोहतक (हरियाणा)

स्वातंत्र्योत्तर काल का साहित्य मानव जीवन से जुड़ा साहित्य है। ग्राम जीवन से प्रभावित साहित्यकारों ने ग्रामीण परिवेश एवं ग्रामीण जनजीवन की समस्याओं को केंद्र में रखकर लेखनी चलाई हैं। स्वतंत्रता के बाद योजना विकास आदि से संबंधित बदलाव के जो ग्राम जीवनपरक नए आयाम कथा साहित्य में उभरकर आए हैं। वे समकालीन संदर्भों से विशेषतः जुड़े होने के कारण यद्यपि नव–विकसित प्रबुद्ध नागरिक रुचि–संपन्न पाठकों के लिए विशेष आकर्षक सिद्ध नहीं हुए तथापि वास्तविकता यह है कि इनका चित्रण अनेक दृष्टियों से युक्त–संगत था। राष्ट्र की कई ग्राम इकाइयाँ नवाकर पाने के लिए संघर्षरत है तो कथाकार कैसे उपेक्षा कर जाएं? कथाकारों ने ग्राम विकास का चित्रण अत्यंत तीखेपन से दर्शाया है। जैसे– पंचायत, पंचायत सेक्रेटरी, ग्राम–सेवक, सभापति एवं सरपंच आदि का चित्रण हुआ हैं। नए गाँव की संरचना सहकारी खेती, भूमि सुधार से लेकर कृषि क्रांति तक दृष्टि गई है। 'परती परिकथा', 'धरती मेरी माँ', 'बदलती राहे', 'ग्रामसेविका' आदि उपन्यासों में यही विकास का स्वर अंकित है। मधुकर सिंह की कहानी "पंचायती परमेसरों का दुरूख' में गांव के मजदूर उचित पारिश्रमिक के अभाव में शहर में मजदूरी करने लगे हैं।"[1] स्वतंत्रता के बाद गाँव का किसान भी चतुर एवं सजग हो गया है, वह सरकार द्वारा लागू योजनाओं एवं कार्यक्रमों के विषय में अपने हितों का ध्यान रखते हुए सोचने लगा है। उनकी दृष्टि यथार्थवादी हो गई है।

स्वाधीनता के बाद समसामयिक घटनाओं का चित्रण हुआ है। देश का विभाजन और नरसंहार एवं राजनीति का चित्रण 'झूठा सच' जैसे उपन्यास में अंकित हुआ है। 'चोली दामन', 'इंसाफ', 'कठपुतली', 'काले कोस' आदि उपन्यास तथा 'मलबे का मालिक (मोहन राकेश), 'हिंदू मुस्लिम भाई भाई' (अज्ञेय), 'दरारे' (अमृतराय), 'सीमा' (बलवंत सिंह), 'सीमांत' (मनोज वसु) आदि कहानियाँ प्रकाश में आई हैं।

गांवों को समृद्ध बनाने के लिए गावों का विकास होना चाहिए, इस पर कई अर्थशास्त्रियों ने बल दिया। कृषि प्रधान देश में ग्रामीण जीवन से जुड़े जमीदारी उन्मूलन, पंचवर्षीय योजनाएं, समुदायिक विकास योजनाएं, कुटीर उद्योग, पंचायत, भूदान सहकारी खेती एवं कृषि विकास आदि के विशाल प्रभावशाली आर्थिक कार्यक्रम नवनिर्माण की वांछित दिशा में अग्रसर करने के लिए कार्यान्वित हुए, जिनमें स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा लेखकों ने सामाजिकता के एवं सांस्कृतिक भूमियों से संपृक्त होने के कारण जमीन से संबंधित स्थितियों एवं आर्थिक समस्याओं का चित्रण कथा साहित्य में हुआ हैं।

भारत में लगभग 70 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती हैं। किसान के जीवन का आधार खेती–बाड़ी,

जंगल–पहाड़, नदी आदि रहे हैं। गाँव में धीमी गति से ही सही लेकिन समय अनुसार बदलाव अवश्य होते रहे हैं। किसान जीवन पर कई उपन्यास लिखे गए हैं। उन उपन्यासकारों में शैलेश मटियानी, रामदरश मिश्र, शिव प्रसाद सिंह, श्री लाल शुक्ल आदि प्रमुख हैं। स्वाधीनता के पश्चात ग्रामीणों ने अपने सुखमय जीवन का सपना देखा था, जिसकी अभिव्यक्ति छठे दशक के ग्रामीण एवं किसान जीवन से संबंधित उपन्यासों में हुई है। ग्रामीण निम्न वर्ग सदियों से जिनमें जमीदारों के शोषण एवं दमन का शिकार रहा है। जिसके सदस्यों से जिनमें बच्चे एवं स्त्रियाँ भी शामिल है। जमीदार उसी प्रकार काम लेता है जैसे अपने पालतू पशुओं से लेता है। 'बलचनमा' में 'बलचनमा' एक ऐसे परिवार का सदस्य है, जिसमें सब के सब मजदूर ही हैं। उनकी माँ तथा बहन और बचपन से ही खुद जमीदार के यहाँ काम करते हैं। यहाँ वास्तविक जीवन की सच्चाई दिखाई गई है। "बबलू' उपन्यास मजदूरों के साथ विभिन्न रूपों में होने वाले अत्याचार, अन्याय, शोषण आदि के साथ–साथ सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के यथार्थ स्वरूप को प्रतिबिंबित करने वाली एक सशक्त कृति है।"[2]

शिव प्रसाद सिंह भी मूलतः ग्राम चेतना के कहानीकार रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण जीवन के यथार्थ को मानवीय दृष्टि से देखा है। 'आर पार की माला', 'कर्मनाशा की हार', 'इन्हें भी इंतजार है' आदि प्रकाशित हुए हैं। प्रायः उपेक्षित, शोषित, दलित एवं पीड़ित ग्रामीण जनों को केंद्र में रखकर अपनी कहानियों का सृजन किया है। हमारी ग्रामीण व्यवस्था पर आज भी जमीदार, साहूकार और भूस्वामी वर्ग का दबदबा कायम हैं। भूमि सुधारों का अभाव, बेगार, प्रथा, खेत मजदूरों का शोषण, उनकी उपज की कम कीमत देना, आधुनिक मशीनों के इस्तेमाल द्वारा उन्हें रोजगार और व्यवसाय से वंचित करना किसानों के कर्ज तले दबकर आत्महत्या करना। गरीब और निम्न वर्ग की स्त्रियों के साथ बलात्कार और जमीदारों और किसानों में संघर्ष हमारे ग्राम एवं किसान जीवन की कटु वास्तविकताएँ है।"[3] गावों की समस्त परंपरावादी, शोषक एवं प्रतिगामी शक्तियाँ जो जनसाधारण के आर्थिक विकास में बाधक है, इस जमीदार वर्ग में निहित हैं। इनके विविध नाम और रूप हैं। पर इनकी व्याप्त सार्वदेशीक सत्ता निर्विवाद है।

रामदरश मिश्र के उपन्यास में गाँव की गरीबी का चित्रण हुआ है। स्वाधीनता के बाद जमीदारी उन्मूलन निसंदेह एक प्रगतिशील आर्थिक कार्यक्रम था परंतु कथा साहित्य में चित्रित कथ्यों से स्पष्ट है कि उसका लाभ उन लोगों को नहीं हुआ जो भूमि से जुड़े रहकर भी भूमिहीन की नियति भोग रहे हैं। विवेकी राय का कहना है कि "कृषि–सुधार के समूचे आर्थिक विकास कार्यक्रम भू–वासियों के लिए ही वरद सिद्ध हुए।"[4] भूमिहीन की वास्तविक पीड़ा का चित्रण मायानंद के उपन्यास 'माटी के लोग', 'सोने की नैया' में हुआ है। उनके मन की समस्त इच्छाएँ अपनी जमीन और अपने हल–बैल के सपनों में केंद्रीय हो गई है।

गाँव के मध्यम वर्ग का चित्रण भी कथा साहित्य में उभरकर सामने आता है। मध्यवर्गीय नारी की मर्म पीड़ा का करुण चित्रण मन्नू भंडारी की कहानी 'क्षय' में हुआ हैद्य पिता क्षयग्रस्त है और पुत्री कुंती अध्यापिका जीवन व्यतीत कर ऋण, अकेलेपन और घोर अवमानना एवं दुर्वह उत्तरदायित्वों के बोझ को उठाती है। गाँव की श्रम एवं पारिश्रमिक संबंधी घिसी–पिटी परंपराएँ भी श्रमिकों को नगर–सेवी बनने के लिए विवश कर देती है। विवेकी राय का मंतव्य है कि "प्राचीन ग्राम–व्यवस्था नई परिवर्तित स्थितियों में कदापि संतोषजनक सिद्ध नहीं हो सकतीद्य उसे यथावत स्थिर रखने की सामंतवादी दुराग्रहवृत्ति आज संघर्ष का कारण बन रही है।"[5]

मिथिलेश्वर ग्रामीण प्रवेश से जुड़े कथाकार हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में वह हर एक परिवर्तन देखने

को मिलता है; जो ग्रामीण समाज से संबंधित है, उन्होंने ग्रामीण जीवन के सामाजिक समस्याओं के साथ गाँव के बदलते मूल्यों का भी चित्रण किया है। ग्रामीण समाज में अनेक तरह की समस्याएं दिखाई देती हैं। जैसे– शिक्षा की समस्या, चिकित्सा की समस्या, यातायात से संबंधित समस्याएं, और असुरक्षा की भावना आदि। मिथिलेश्वर ने अपने कथा साहित्य में गाँव की अभावग्रस्त जिंदगी का यथार्थ चित्रण किया है। मनुष्य के जीवन में शिक्षा का विशेष महत्त्व है। शिक्षा से ही मनुष्य का विकास होता है, अशिक्षा के कारण गाँव के लोग हमेशा पीछे रह गए हैं। 'युद्धस्थल' उपन्यास एक विधवा नारी 'रामशरण बहू' की कहानी है। गाँव में बच्चों को पढ़ने के लिए पाठशाला का निर्माण किया गया लेकिन पाठशाला में सिर्फ दो कमरे और दो बरामदे हैं। गाँव में उच्च शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं होता है।

गरीबी मनुष्य को लाचार बना देती है। ग्रामीण समाज में आर्थिक विषमता के कारण मनुष्य को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। कपड़ा, रोटी, मकान की बुनियादी आवश्यकता पूर्ण करने में गरीब व्यक्ति असमर्थ रहता है। मिथिलेश्वर की एक कहानी में दो शिक्षित बेरोजगार युवकों के पास अच्छी धोती एवं कमीज तक नहीं होती; इस सामाजिक यथार्थ के प्रति हमें जागरुक करने का कार्य लेखक ने किया है। हमारे देश में बेरोजगारी की संख्या अधिक है, बेरोजगारी की समस्या ग्रामीण लोगों के लिए बहुत भयंकर समस्या रही हैं। बदलते ग्रामीण मूल्यों के संदर्भ में डॉ. शिव प्रसाद सिंह का 'अलग अलग वैतरणी' उपन्यास बहुत ही महत्वपूर्ण है। ग्रामीण परिवेश के बदलते मूल्यों और उसके परिणाम स्वरूप गाँव टूटने की परिस्थिति का जितना सफल चित्रांकन इस उपन्यास में हुआ है; वह अन्यत्र बहुत कम है। डॉ. राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' उपन्यास में अलगाववादी विभाजन की विभीषिकाओं से ग्रस्त है।

निष्कर्ष :-

स्वातंत्रोत्तर काल के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन के विविध आयामों का चित्रण हुआ हैं। ग्राम जीवन विशेषतः कृषि व्यवसाय से जुड़ा है। किसानों की कृषि से जुड़ी अनेक समस्याएँ हैं। अधिकांश साहित्य में ग्रामीण राजनीति, रूढ़िवादिता, ग्राम–योजना, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, पूंजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण आदि विषय समाज के सामने उजागर हुए हैं। बिजली, परिवहन, मनोरंजन, शिक्षा आदि सुविधाएँ जो आधुनिक युग में हर आदमी के लिए आवश्यक है; वह प्राप्त करने में गाँव के जनसामान्य असमर्थ ठहरते हैं। इसका वास्तविक अंकन कथा साहित्यकारों ने बहुत सटीक हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. राजेंद्र कुमार, स्वातंत्रोत्तर हिंदी कहानी में ग्राम जीवन ओर संस्कृति, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ. 236
2. डॉ. गजाधर प्रसाद शर्मा, हिंदी कथा–साहित्य में सामाजिक यथार्थ, त्रिभुवन प्रकाशन इलाहाबाद, पृ. 58–59
3. डॉ. सुशीला गुप्ता, प्रेमचंद रचना संसार (पुनर्मुल्यांकन), हिन्दुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन मुंबई, पृ. 180
4. विवेकी राय, स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा–साहित्य और ग्राम–जीवन, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, पृ. 210
5. वही, पृ. 229

पता– राम मंदिर, मौ. हसनपुरा, बावल (123501) ईमेल– dsg5ict@gmail.com, मो. 9671616905

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 198-203

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आदिवासी कहानियों में वर्णित जल, जंगल, जमीन और बेबसी : समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. पवन कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, राज्य शैक्षिक एवं अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

सारांश :-

जल, जंगल और जमीन जीवन का मूल आधार है, इसके बिना जीवन के भौतिक अस्तित्व तक की बात नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रत्येक जीवधारी तथा अजीव धारी को जल की आवश्यकता होती है। आदिमकाल से ही मनुष्य अपने आवास के लिए ऐसे स्थान का चयन करता था, जहाँ जल की उपलब्धता हो पीने के लिए जल, पशुओं के चारागाह और खेती के लिए जमीन मिल जाने पर अपना डेरा वहीं रोक देता था। नदियों के किनारे की भूमि में उपजाऊपन अधिक होने के कारण आदिम मनुष्य ने अपने कबीले बसायें होंगे या वन क्षेत्रों में रहना प्रारंभ किया होगा। आदिवासी प्रकृति के प्रति विशेष आस्था रखते हैं। नदियों, कुंओं का जल लेने से पूर्व वह श्रद्धानत होते हैं, पेड़ से फल तोड़ने से पहले उससे प्रार्थना करते हैं। मूर्ति पूजा के स्थान पर प्रकृति की पूजा करते हैं।

प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने की आवश्यकता होती है वह प्रकृति का दोहन करतें हैं न कि अनियंत्रित शोषण। विकास के नाम पर सरकारें बांध बनाकर जंगलो और जलाशयों को नष्ट कर करती है जिसके परिणाम स्वरुप स्वाभाव से ही सरल आदिवासियों को अपने प्राकृतिक निवासों से हाथ धोना पड़ता है। जंगल कानूनों में बार–बार बदलाव कर आदिवासियों के जंगल से सभी अधिकार नष्ट कर दिए गए यदि कभी वही जलाऊ लकड़ियाँ लेने के लिए जंगल जाते हैं तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है और व्यवस्था द्वारा नए–नए तरीकों से उनका शोषण किया जाता है। अनेक आदिवासी कहानीकारों ने इस विषय को बड़ी मुखरता से उजागर किया है।

प्रमुख शब्द :- स्वातंत्र्योत्तर, हिंदी, आदिवासी, कहानी, जल, जंगल, जमीन, बेबसी, क्रांति, स्त्री।

आलेख का विस्तार :-

जल, जंगल और ज़मीन पर अधिकार के लिए आदिवासियों के संघर्ष और माओवाद से जुड़कर सशस्त्र क्रांति करने वाली अनेक कहानियाँ मिलती है। उन्ही की जमीनों से उन्ही को निष्काषित कर दिया गया और यदि वे अपने लगाये पेड़ो से फल तोड़ते है या भोजन पकाने के लिए लकड़ियाँ तोड़कर लाते हैं तो उन्हें चोर की संज्ञा दी जाती है। योजनाबद्ध रीति से बाहरी लोग, व्यापारी जंगलो का आर्थिक लाभ के लिए उपयोग करते हैं। बाहरी लोग स्वामी बनकर बैठ गए और उस जमीन के स्वामी अपनी ही जमीनों पर मजदूर बनकर काम करने

के लिए मजबूर हैं। उनकी जमीनों पर फैक्ट्री जब बन गयी हैं और उस ज़मीन का मालिक मजदूर।

इसकी पुष्टि वाल्टर भेंगरा 'तरुण' ने 'जंगल की ललकार' नामक कहानी में बुदु मुंडा को पुलिस पकड़कर थाने ले जाते वक्त लेखक का कथन– "वैसे सभी को पता है, जंगल की मोटी लकड़ियाँ और पेड़ काटकर कौन ले जाता है। शहर से शम्भू सेठ ट्रक लेकर आता है और रातों–रात उस पर लकड़ी लादकर वापिस चला जाता है। उस समय कोई फोरेस्ट गार्ड जंगल में नहीं आता। लेकिन जब गाँव के लोग जलावन के लिए लकड़ियाँ काटते है जो वह चावल दाल से लेकर मुर्गा और पैसे भी वसूल लेता है।"[1]

युवा चिन्तक गंगा सहाय के अनुसार 'जमीन आदिवासी जीवन का मूलाधार है।'[2]

जनार्दन गोंड की कहानी 'भंडुआ' में एक गुंडा राजेश हराड़े जंगल, जमीन और आदिवासियों की मूल भूमि को अपनी जागीर समझता है – "ये जंगल, जमीन, जीव, नदी, पहाड़, झरना और जवान छोरियाँ, सब मेरी जागीर है। मैं जो चाहूँ, कर सकता हूँ।"[3]

'गरीबी अभिशाप है' यदि ऐसा कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। गरीबी को दरिद्रता की भी संज्ञा दी जाती है। सामान्य अर्थो में जिस व्यक्ति के पास मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भी अर्थ या निधन का अभाव होता है उसे गरीब मान लिया जाता है।

समाज शास्त्र विश्वकोष के अनुसार गरीबी को दो रूपों में परिभाषित किया गया है :–

"निरपेक्ष के अर्थ में, यह एक ऐसी दशा है जिसमें एक व्यक्ति के जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक संसाधनों का अभाव या कमी होती है। सापेक्षित रूप में, समाज के अन्य व्यक्तियों की तुलना में व्यक्ति या समूह के पास संसाधनों के अभाव या कमी की स्थिति को गरीबी कहते हैं।"[4]

'आदिवासी नहीं नाचेंगे 'कहानी संग्रह की कहानी' प्रवास का महीना में संथाल समूहों के रोजगार के लिए प्रवास करने की घटना का उल्लेख है। भूख और गरीबी से बेहाल युवती तालामई केवल 2 ठण्डे ब्रेड पकोड़े खाने और 50 रूपये के लिए अपना शरीर नुचवाने के लिए तैयार हो जाती है, यह अत्यंत दुःखद त्रासदी है और गरीबी के कारण उत्पन्न मजबूरी का दस्तावेज है।

"क्या तुम भूखी हो?" जवान तालामई को कोने में बुलाता है।

"तुम्हे खाना चाहिए?

"हाँ" तालामई ने उत्तर दिया।

"तुम्हे पैसे चाहिए?"

"हाँ"

"क्या तुम मेरा कुछ काम करोगी?"

तालामई जानती है कि वह किस काम के बारे में बात कर रहा है ''यह काम उसने कोयला रोड़ पर कई बार किया है....."[5]

हाँ सदा सौभेन्द्र शेखर की अन्य कहानियों जैसे 'हिसाब बराबर', 'दुश्मन के साथ दोस्ती', 'अंतिम इच्छा', 'सिर्फ एक रंडी' में आदिवासियों के जीवन में गरीबी के कारण उत्पन्न समस्यायों को उजागर किया गया है। 'दुश्मन से दोस्ती कहानी में अपनी सौतन को दुश्मन मानने वाली सुलोचना अंत में आर्थिक तंगी के चलते उससे दोस्ती कर लेती है, अपनी बेटी को उसके साथ शहर भेज देती है जहाँ उसकी इज्जत को खतरा है। बेहरा

आदिवासी स्त्री सुलोचना अपने पति को वश में नहीं कर पाती उसकी सौतन मोहिनी शराब बेचने वाली गरीब महिला थी, पैसे के लालच में उसने सुलोचना के पति से शादी की और पति के मर जाने के बाद आदित्यपुर के सेठ के यहाँ रखैल के रूप में रखा।

".....हालाँकि वह उसे दो चीजे दे सकता था, जिसकी उसे सबसे ज्यादा चाहत थी : पैसे और स्थायित्व।"[6]

मंगलसिंह मुंडा की कहानी 'धोखा' में गरीबी का चित्रण कुछ इस प्रकार मिलता है–"....ठिठुरती ठण्ड में सिर पर तो तीन तह लकड़ी के गट्ठर।...सेठ साहूकारों की 'धु धु आई' खा–खाकर कुछ रुपयों में अपना माल बेच देते आते हैं....सस्ते में क्यों न बेचें? ऐसा न होने पर घरों में चूल्हा ही न जले इनका।"[7]

'मुझे क्षमा कर दें' कहानी के केंद्र में एक बेरोजगार युवक अविनाश है जो पढाई लिखाई में शुरू से ही अव्वल था, रेलवे, बैंक और स्टाफ सिलेक्शन इत्यादि की अनेकों लिखित परिक्षाएं देने के बाद भी साक्षात्कार में सफलता नहीं मिलती। दोस्त विनय कॉलेज की पढाई के बाद छोटी सी स्टेशनरी की दुकान चलाता है। अविनाश के परिवार में रिटायर्ड पिता और बहन प्रभा है, प्रभा प्राईवेट नौकरी करके परिवार चलाती है। प्रभा भी हताश और विवश है। परिवार के रूखे व्यवहार के कारण और बेरोजगारी के कारण कुंठित और निराश अविनाश आत्मदाह कर लेता है।

'जोहन मास्टर' नामक कहानी में जोहन मास्टर के आर्थिक हालात बहुत अच्छे नहीं है उनकी पत्नी सलोमी घर खर्च के लिए सिलाई का काम करती है। मिशनरी स्कूल के मास्टरों का वेतन बहुत कम होता है या यूँ कहें की वेतन न होकर वह सेवा कार्य के बदले दिया गया पारितोषिक है, पारिश्रमिक नहीं। जोहन मास्टर कहानी में गरीबी, अशिक्षा, कौशलों की कमी, बंद, हड़ताल, कुछ भी हो सकता हैं, लोगों का व्यापार बंद है, दुकाने बंद हैं, रिक्शा बंद हैं, गाड़ी घोड़ा बंद हैं और शिक्षा के संस्थान भी यानि लॉकडाउन जैसी स्थिति का वर्णन है, जिसका कारण नक्सलवाद भी हो सकता है या फिर राजनितिक दलों के आवाह्न पर बाज़ार बंद जैसी स्थितियाँ। 'जोहन मास्टर' में रिक्शे वाले का दारुण दुःख दिखाया गया है, विभिन्न सामाजिक संगठनो द्वारा शहर बंद के आह्वाहन को अनुचित ठहराते हुए लेखक ने अपनी बात बेबाकी से कही है।

'बेबसी' में फूलो का बड़ा लड़का जतरू गाँव की गरीबी को देखकर वहां रहना नहीं चाहता। फौज में भर्ती होना चाहता था और अंततः वह फौज में भर्ती हो जाता है। उसके बाद उसका माँ से और परिवार से नाता लगभग टूट गया था। छोटा बेटा मंगरा मैट्रिक के बाद शहर पढाई के लिए जाता है और पढाई पूरी करने के बाद शहर के एक बैंक में नौकरी करने लगता है। वह भी अपना परिवार बसा लेता है और गाँव से नाता तोड़ लेता है। माँ से मिलने नहीं आता, शहर गया वहीं का होकर रह गया। गरीबी से तंग आकर फूलो की बेटी करमी अच्छी जिंदगी की तलाश में गाँव छोड़कर दिल्ली भाग गयी थी।

रोजी–रोटी की तलाश या अन्य अभावों के कारण गाँव को छोड़कर शहर आये आदिवासियों के जीवन सरल नहीं है। 'एक नयी राह' कहानी में अपनी जवानी को अपने मालिकों के कारोबार को बढाने में लगाने वाले प्रभाकर को नए मालिकों ने आते ही काम से निकलने की योजना रचना कर ली। नए मालिकों को चापलूस कर्मचारी अधिक प्रिय लगने लगे। प्रभाकर बहुत ही निष्ठा एवं ईमानदार कर्मचारी था, वह मालिकों के काम को अपना काम समझता रहा और खुद को खपाता रहा, परन्तु नए मालिकों ने नए नियम गढ़े और दो–दो वर्ष के

अनुबंध पर प्रकाश को काम पर रखा प्रकाश बूढ़ा तो नहीं हुआ था परन्तु उसे काम से निकाल दिया गया, प्रौढ़ावस्था में नौकरी से निकाले जाने से प्रभाकर आहत हो जाता है और उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है।

भूख और गरीबी का ऐसा आलम पसरा है आदिवासी बस्तियों में कि बयां करते ही दर्द आँखों में उतर आता है, शोध कार्य में यथार्थ अनुभव विस्तार के लिए मैं स्वयं मध्य प्रदेश के अनेक जिलों जैसे छिंदवाडा, कटनी, अनूपपुर, पन्ना की आदिवासी बस्तियों में गया और आदिवासी जीवन को बहुत करीब से देखने और समझने का अवसर मुझे मिला। वाल्टर भेंगरा "तरुण" के पात्रों की जीवन शैली और इनकी जीवन शैली में बहुत अधिक साम्यता है, वाल्टर भेंगरा "तरुण" की कहानियों के पात्र कोई जादुई या तिलिस्मी पात्र नहीं हैं, एक–एक पात्र यथार्थ के धरातल पर गढ़ा गया है। 'पोठी' कहानी में गरीबी भी ऐसी की लोग कुछ भी खाने को तैयार है, आज जहाँ लोग अपने भोजन में कैलोरी की मात्रा की जाँच करने के बाद भोजन कर रहे हैं, डाईटीशियन की सलाह के बिना एक कौर नहीं तोड़ते वहीं दूसरी ओर गरीब आदिवासी खेतों से घोंघी और नालों से मछलियाँ पकड़कर खाने के लिए मजबूर हैं।

हजारीलाल मीणा की कहानी 'विरासत' में गरीबी का ऐसा आलम है कि कर्ज चुकाने का नाम ही नहीं लेता, बाप–दादाओं का कर्ज पोते भी नहीं उतार पाए। गरीब आदिवासी पुराना कर्ज चुकाने के लिए नया कर्ज लेते है और फिर नया कर्ज उतारने के लिए फिर कर्ज लेते है ...कर्ज को कभी न ख़त्म होने वाले रोग की भांति दिखाया गया है। कर्ज कैंसर और कोविड–19 की भांति हैं, जिसे प्राणों की भूख बहुत है।

मध्य प्रदेश के पन्ना जिले की पवई तहसील में अनेक आदिवासी गाँव हैं, जिनमें हडा, जूही और सोनादर गाँव प्रमुख हैं। गरीबी से बेहाल इनकी कथा कुछ अलग ही है। बंधुआ प्रथा का अंत कानूनी तौर पर भले ही हो गया है परन्तु यहाँ यह प्रथा आज भी जीवित है। गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी के कारण यहाँ बंधुआ मजदूर मिलते है। कलदासलेहा में लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर पहाड़ के ऊपर अनेक आदिवासी गाँव हैं जो अत्यंत दयनीय स्थिति में जीवन यापन कर रहे है।

निष्कर्ष :-

वाल्टर भेंगरा 'तरुण', गंगासहाय मीणा, हरिराम मीणा इत्यादि सभी रचनाकारों ने गरीबी का वर्णन अपनी कहानियों में किया है। वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों के मध्य शिक्षा का प्रचार प्रसार करने के लिए अनेक सरकारी योजनायें बनी। करोड़ो रुपयों की योजनायें लागू की गयीं, आदिवासी आश्रमशालाओं का खुलना, छात्रवृति योजनायें, पोषण योजनायें इत्यादि आदिवासी शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से देशभर में लागू की गयीं साथ ही राज्य सरकारों ने अपने–अपने राज्य की आवश्यकता के अनुसार अनेक स्थानीय योजनाओं को चलाया परन्तु अभी तक आदिवासियों में शैक्षिक पिछड़ापन देखा जा सकता है।

जनवरी 2020 में मैंने मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के बिजुरी गाँव में आदिवासी जीवन को नज़दीक से समझने के लिए अर्जुनगढ़ तहसील के एक गाँव में गया, जल स्त्रोत के नाम पर गाँव में एकमात्र सिंटेक्स की प्लास्टिक की टंकी ज़मीन में गड़ी हुई थी। जिसमें गंदगी के अतिरिक्त थोड़ा पानी था, छोटे कीड़े कुलबुला रहे थे और मच्छर भिनभिना रहे थे। गाँव के बड़े बुजर्गो, स्त्री पुरुषों एवं स्कूल जाने वाले बच्चो से मिला। पूरे गाँव में केवल दो ही ऐसे बच्चे मिले जो आठवीं कक्षा तक पढ़े थे। स्त्रियाँ घर का कार्य करती है और पुरुष पत्थर

की खदान में काम करते हैं। पूरे दिन 12 घंटे से अधिक काम करते है, मेरे पूछने पर मुझे कुछ मजदूरों नें बताया कि हमें तीन सौ रूपये साप्ताहिक वेतन मिलता है।

मुझे दुःखद आश्चर्य हुआ कि एक ओर सरकार न्यूनतम मजदूरी जैसे कानून ला रही है और उनके क्रियान्वयन का प्रचार–प्रसार कर रही है, वही दूसरी ओर मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से कुछ सौ किलोमीटर की दूरी पर वायदे खोखले से प्रतीत होते दिख रहे हैं। गाँव में हाईमास्क लाइट का पिलर विकास के नाम पर कई वर्षो से पड़ा है उससे गाँव के प्रकाशित होने की बात तो दूर, उसे खड़ा करने वाला भी कोई दूर–दूर तक नज़र नहीं आता। शिक्षा के स्तर की बात तो दूर, आंगनवाड़ी केंद्र के संचालकों, आशा वर्कर, सरपंच और निगम पार्षद से मुलाकात की और अपने अनुभव और आदिवासियों की समस्याओं से उन्हें अवगत करवाया 'सब कुछ ठीक हो जायेगा का आश्वासन लेकर मैं इसी उम्मीद में वहां से आ गया की जब अगली बार मैं यहाँ आऊंगा तब तक बहुत सी चीज़े ठीक हो चुकीं होंगी।

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले के भैसरोड गढ़ अभ्यारण क्षेत्र में बसे अरेणा कलां गाँव (गणेशपुरा) भील जनजाति निवास करती है। इस अभ्यारण क्षेत्र में कुल 20 से अधिक गाँव है। लगभग प्रत्येक गाँव में प्राथमिक पाठशाला है और गणेशपुरा में माध्यमिक पाठशाला है लेकिन शिक्षा के प्रति लोगों में जागरूकता का अभी तक अभाव है। आजीविका के साधन के रूप में तेंदू पत्ता तोड़ना और वृक्षों से गोंद निकलना है। मध्य प्रदेश के कटनी जिले के कूडो पारधी मौहल्ले में एकमात्र शिक्षित लड़की भूलन से मेरी बातचीत हुई। भूलन अभी दसवीं कक्षा की छात्रा है और कूड़ो गाँव में अन्य कोई शिक्षित स्त्री–पुरुष, लड़की–लड़का नहीं है। बेरोजगारी का आलम कुछ ऐसा है किन इनके पास अपनी जमीन है जिस पर यह खेती कर सकें और न ही इन्हें कोई अपने पास काम पर रखता है। पारधी समुदाय में बारे में स्थानीय लोगों में बहुत भय का वातावरण है यहाँ के स्थानीय लोग इनसे घृणा भी करते हैं।

स्थानीय लोगों के अनुसार –"हम इनके गाँव में आज तक नहीं गए ये चोर, लुटेरों और हत्यारों का गाँव है, जो उस गाँव में जाता है वापिस नहीं आता।" इस दृष्टिकोण को सुनकर मेरे विचार संकल्प में बदल गया और मई की उसी दोपहर अपने एक परिचित श्री देवेन्द्र विश्वकर्मा को लेकर उस गाँव में गया, बातचीत की, आदिवासी लोगों की सरलता से मैं बहुत प्रभावित हुआ। आदिवासी लोगों के लिए चलायी जा रही अनेक सरकारी योजनाओं की जानकारी उनके साथ सांझा की। उसी गाँव के युवा निवासी श्री राजेश पारधी से लम्बी मुलाकात की और चारपाई पर बैठकर कई घंटे बातचीत की तथा आदिवासी जीवन को बहुत ही नज़दीक से देखने समझने, महसूस किया। गाँव के अधिकांश लोगों के पास कोई काम धंधा नहीं है। बेरोजगारी की मार से सब त्रस्त है कोरोना महामारी के कारण सब काम धंधे चौपट होने की बात अनेक ग्रामीणों ने कही। अनेक परिवार रुद्राक्ष की माला, उल्लू के नाखून और यौन उत्तेजक औषधियाँ इत्यादि बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों और सड़कों पर बेचने का काम करते हैं। बहुत ही मुश्किल से जीवनयापन हो पाता है।

विभिन्न हिंदी कहानियों में भी आदिवासी जीवन में दीनता का चित्रण मिलता हैं। गरीबी के कारण शारीरिक शोषण करवाने पर मजबूर मुंगली के बारे में ईंट भट्टे का बिचौलिया कहता है–" इनकी गरीबी की आग इनकी भयंकर है कि फूल जैसे मासूम चेहरे भी जलकर खाक हो जाते हैं। यह तो देख रहें हैं न, कितनी सुंदर और चरित्रवान लड़की है। मुंगली नाम है इसका। ठेकेदार रघुनाथ के जाल में फंस गयी बेचारी।"[8]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. 'तरुण', वाल्टर भेंगरा, पृष्ठ संख्या 106, जंगल की ललकार, सत्यभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2014
2. मीणा, गंगासहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, पृष्ठ संख्या 25, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017, पुनर्मुद्रण 2019
3. टेटे, वंदना, संपादक, गोंड, जनार्दन, कहानी 'भंडुआ', लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ, पृष्ठ संख्या 188, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017
4. रावत, हरिकृष्ण, समाज शास्त्र विश्वकोश, पृष्ठ संख्या 270, रावत पब्लिकेशन, संस्करण 2017
5. हाँसदा, सौभेन्द्र शेखर, प्रवास का महीना : कहानी, आदिवासी नहीं नाचेंगे, पृष्ठ संख्या 49, राजपाल एंड संस दिल्ली, संस्करण 2018
6. हाँसदा, सौभेन्द्र शेखर, दुश्मन से दोस्ती : कहानी, आदिवासी नहीं नाचेंगे, पृष्ठ संख्या 76, राजपाल एंड संस दिल्ली, संस्करण 2018
7. मुंडा, मंगल सिंह, कहानी–धोखा, संपादक–वंदना टेटे, लोकप्रिय आदिवासी कहानियां, पृष्ठ संख्या 34, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017
8. मुंडा, मंगल सिंह, कहानी–धोखा, संपादक–वंदना टेटे, लोकप्रिय आदिवासी कहानियां, पृष्ठ संख्या 36, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017

अणुडाक– pawankbhardwaj@gmail.com, सचल दूरभाष–8447003240

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 204-209

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गुप्तकाल में कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था का संरचनात्मक विकास

डॉ. अवध नारायण

वर्तमान शोधपत्र का उद्देश्य गुप्त काल में कृषि के विकास के साथ–साथ सिंचाई व्यवस्था में संरचनात्मक विकास का अवलोकन करना है। उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तत्कालीन साहित्यिक साक्ष्य और पुरातात्विक साक्ष्यों का गहन अध्ययन किया गया है, साथ ही साथ गुप्त काल के पूर्व कृषि और सिंचाई व्यवस्था के विकास को दर्शाया गया है। कृषि एवं सिंचाई के विकास में राजकीय दायित्व पर भी चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द :– कृषिगत अर्थव्यवस्था, श्रेणी, सिचाईं यंत्र, भूमि, करारोपण।

मानव संस्कृति एवं सभ्यता के भौतिक विकास में नवपाषाण काल का विशेष स्थान है। नवपाषाण काल में कृषि और पशुपालन सबसे पहले आरंभ हुआ हालांकि नवपाषाण काल के पहले के काल में यथा पुरापाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल में मानव का जीवन निर्वहन शिकार और संचय पर निर्भर था, परंतु मध्य पाषाण काल तक आते–आते मानव जंगली अनाजों का संग्रहण करना सीख चुका था। नवपाषाण काल में मानव ने पहिए का आविष्कार कर लिया था तथा इस काल में अनाजों को उगाने के साथ ही साथ मृदभांड निर्माण की प्रक्रिया में भी पारंगत होना प्रारंभ हो गया था इन्हीं विशेषताओं के आधार पर पाषाण काल को मानव संस्कृति के विकास में क्रांति काल के नाम से जाना जाता है।

भारत के प्रथम नगरी सभ्यता सिंधु सभ्यता में कृषि के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इस काल में सिंधु एवं उसकी सहायक नदियों द्वारा लाए गए जलोढ़ मिट्टी अत्यंत उपजाऊ होती थी एवं कृषि कार्य के लिए उपयुक्त माना जाता था। डी0डी0 कौशांबी महोदय के अनुसार सैन्धव सभ्यता के लोग संभवतः हल के प्रयोग से परिचित नहीं थे इसके स्थान पर कुदाल का प्रयोग करते रहे होंगे हालांकि हमें वर्तमान चोलिस्तान (पाकिस्तान) के प्रौढ़ हड़प्पा स्तर से हमें मिट्टी के बने हुए हल के खिलौने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही हरियाणा में बनावली एवं हिसार से भी हल के खिलौने के अवशेष प्राप्त होते हैं। लोथल एवं रोजदी से क्रमशः धान, बाजरे और रागी के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। सामान्यतः सिंधु सभ्यता के लोग गेहूं,जौ, मटर सरसों, तिल, कपास आदि की खेती करते थे। यद्यपि इस काल में नहर के द्वारा सिंचाई के साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। संभवतः वे जलाशयों का प्रयोग सिंचाई के लिए करते रहे होंगे। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समय में वर्षा भी पर्याप्त होती थी।

वैदिक संस्कृति प्रधानतः ग्रामीण संस्कृति थी। इस काल की जानकारी हमें वैदिक साहित्य से प्राप्त होती है। ऋग्वेद के दसवें मंडल में कृषि का उल्लेख प्राप्त होता है। हालांकि ऋग्वेद में केवल जौ का उल्लेख मिलता है जबकि यजुर्वेद में गेंहूँ, चावल, मूंग, उड़द आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कृषि का प्रयोग अनेक बार हुआ है तथा देवताओं द्वारा कृषि कार्य में भाग लेने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में पानी की कमी होने पर सिंचाई के लिए कुओं के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता हैं। (ऋग्वेद 1/55/8) कृषि को हानि पहुंचाने वाले कीड़े–मकोड़े पक्षियों तथा कभी–कभी सूखा तथा अत्यधिक वर्षा का उल्लेख प्राप्त होता है।

उत्तर वैदिक काल आते–आते कृषि उपकरणों में पर्याप्त प्रगति दिखाई पड़ती है। अपेक्षाकृत उन्नत उपकरणों ने कृषि के विकास अथवा पर्याप्त खाद्यान्न उत्पादन में अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस कार्य में वर्ष भर में 3 फसलें ली जाती थी जिसमें गेहूं, जौ, कपास, तिलहन, फल एवम सब्जियाँ मुख्य फसलें थी। उत्तर वैदिक काल में भी खेत व्यक्तिगत संपत्ति समझी जाती थी। उत्तर वैदिक काल में फसल काटने के लिए लोहे के उपकरणों का साक्ष्य प्राप्त होता है। अथर्ववेद में दुर्भिक्ष जैसे सूखा, बाढ़, बिजली आदि के प्रभाव को समाप्त करने के लिए मंत्र दिए गए हैं। इसके साथ ही वर्षा के समय से होने एवं पर्याप्त होने के लिए भी मंत्रों का रचना किया गया है। अथर्ववेद में सिंचाई के लिए नहर खोदने का उल्लेख प्राप्त होता है। अथर्ववेद में नदियों को मोक्षदायिनी कहा गया है। वैदिक साहित्य में फसल काटने के पूर्व किसानों द्वारा उत्सव मनाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

छठी शताब्दी ई0पू0 भारतीय इतिहास में एक संक्रमणकालीन अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। इस समय करारोपण और राजनीतिक विस्तार ने जन से जनपद व महाजनपदों के उदय का मार्ग प्रस्तुत किया और इन्हीं महाजनपदों ने आगे चलकर बड़े साम्राज्य की नींव रखी। इस संपूर्ण प्रक्रिया में कृषि व कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। तत्कालीन साहित्यिक ग्रंथों में कृषि भूमि व कृषि के विस्तार के संदर्भ में अनेक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। मौर्यकालीन ग्रंथ अर्थशास्त्र में उल्लेख प्राप्त होता है कि दूरस्थ क्षेत्रों में कृषि प्रसार के लिए राज्य की तरफ से अतिरिक्त सुविधा व करो में छूट प्रदान की जाती थी। कृषि कार्य में उपकरणों के प्रयोग व व्यापार–वाणिज्य गतिविधियों के प्रसार ने कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को और मजबूत किया।

गुप्त काल के पूर्व कालीन कृषिगत विकास का व्यवस्थित स्वरूप दिखाई पड़ता है। प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रसार व व्यवस्थित करारोपण ने कृषि क्षेत्र में नवीनतम सुधारों को जन्म दिया।

गुप्त काल में कृषि के क्षेत्र में वृद्धि हुई थी। इसका प्रमुख कारण इस काल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में हुआ विकास था, साथ ही साथ किसी राज्य की आर्थिक व्यवस्था का आधार थी।

विष्णु पुराण में कृषि को भी विद्या की श्रेणी में रखागया है। वार्ता के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य को रखा गया। वार्ता शब्द वृत्ति से निकला है जिसका अभिप्राय कार्य या व्यवसाय से था। सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास व विकासशील तकनीक ने कृषि उपकरणों को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। परिणाम स्वरूप सर्वदा कृषि अपने प्रयोजनीय उपकरणों से सुसज्जित होती रही है। धातुओं में लोहा सर्वाधिक मजबूत एवं तीक्ष्ण होने

के कारण उपयोगी सिद्ध हुआ और इससे सम्बन्धित तकनीकी का विकास हुआ जिसका प्रमाण मेहरौली का लौह स्तम्भ है। लोहे का ज्ञान होने के कारण कृषि क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। प्रमुख कृषीय उपकरणों में हल, कुदाल, फावड़ा, हंसिया आदि वैदिक काल से ही थोडेघ बहुत परिवर्तन–परिवर्द्धन के साथ चले आ रहे थे। समय के साथ कृषकों ने आवश्यकतानुसार कुछ नये उपकरणों का निर्माण किया।

300 ई० से 600 ई० की अवधि से सम्बन्धित कृषि वर्ग के विविध पक्षों का कुछ विस्तृत ज्ञान 'वराह मिहिर' की 'बृहत्संहिता' और अमरसिंह के 'अमरकोश' से होता है। वराह मिहिर ने वृहत्संहिता में बीजों की गुणवत्ता बढ़ाने एवं भूमि को अधिक उर्वरा बनाने के तरीके बताएँ हैं।" बृहत्संहिता में ऋतु–विज्ञान सम्बन्धी अनेक बातों का विचार किया गया है। जिनसे स्पष्ट है कि उस युग में भी भारतीय कृषक अपनी समृद्धि के लिए प्रकृति पर निर्भर था। अमरकोश में बारह प्रकार की भूमि का जिक्र आया है– (1) उर्वरा (2) ऊसर (3) मरू (4) अप्रहत (5) सद्बल (6) पंकिल (7) जलप्रायमनुपम (8)कच्छ (9) शर्करा (10) शर्कवती (11) नदीमातृक (12) देव मातृक।

गुनैधर लेख दानपत्र में 11 पाटन भूमि का भी जिक्र आया है।

नारद स्मृति के उल्लेख के अनुसार :–

सम्वत्सरेणार्धखिलं खिलं तद्वत्सरैस्त्रिभिः।
पंचवर्षविसन्नं तु स्यात् क्षेत्रमटवीसमम्।।

एक वर्ष तक खाली पड़ी रहने वाली भूमि अर्धखिल, तीन वर्षों तक खाली पड़ी रहने वाली भूमि खिल तथा पाँच वर्षों तक खेती न की जाने वाली भूमि अरण्य–सदृश्य होती है।

बृहस्पति स्मृति से हमें तत्कालीन युग में प्रचलित हल की बनावट, खेतों के लिए भूमि तैयार किए जाने की विधि, कृषि वर्ग में काम आने वाले औजारों, भूसी निकालने की प्रक्रिया, खेत की जुताई, विभिन्न अन्नों और फलों आदि की बुवाई और स्थानान्तरण–रोपण के शुभ मुहूर्त तथा विधियों, वनस्पतियों के रोगों और उनके उपचार अच्छे खेत की स्थिति, विभिन्न खाद्यों और अन्न पैदावारों की किस्मों आदि का पर्याप्त ज्ञान होता है।"

गुप्त काल में उत्तर भारत में नदियों से अधिकतर सिंचाई होती थी। इस समय मानसूनी वर्षा से भी कृषि के लिए पर्याप्त पानी मिल जाता था किंतु पश्चिमी एवं मध्य भारत में नदियों से सिंचाई करना संभव नहीं था। अतः अनेक तालाब, झील और कुएँ खुदवाए गए। नारद ने भी खेत की सिंचाई के लिए पानी लाने वाली खेय (नालियों) और पानी को रोकने वाले बंध्य (बांधों) का उल्लेख किया हैस बृहस्पति स्मृति में उल्लेख मिलता है कि सरकार उन लोगों को सख्त दंड देती थी जो नहरों, तालाबों एवं कुओं को तोड़ते थे। जूनागढ़ अभिलेख से गुप्तकालीन सिंचाई व्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण मिलता है। अमरकोश से पता चलता है कि गुप्तकाल में नदियों से नहर निकाली गई और जलाशय भी बनाए गए। अमरकोश में पानी खींचने वाले एक यंत्र को घंटी यंत्र कहा गया। अग्नि पुराण में कृषि के वृद्धि के लिए सिंचाई के साधन जुटाना राजा के प्रमुख कर्तव्य है। हर्षचरित में बाणभट्ट ने थोड़ा बहुत सिंचाई के संबंध में लिखा है। हर्षचरित में कूपों एवं जलाशयों का वर्णन सिंचाई के लिए मिलता है।

कृषि में मदद करने के लिए सिंचाई के महत्व को भारत में शुरुआती समय से मान्यता दी गई थी। इस

काल में सिंचाई के लिए एक अन्य विधि घटी–यन्त्र या उपयोग होता था। साक्ष्य बताते हैं कि कृषि प्रधान समाज में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। पुजारियों और प्रशासकों को राजकोषीय और प्रशासनिक रियायतों के अनुदान के साथ गुप्त विकास के अन्तर्गत सामंती विकास सामने आया। धार्मिक अनुदान दो प्रकार के होते थे : अग्रहार अनुदान ब्राह्मणों के लिए होता था, जिसका अर्थ होता था सदा, वंशानुगत और कर–मुक्त। देवघर अनुदान मन्दिरों की मरम्मत और पूजा के उद्देश्य से लेखकों और व्यापारियों जैसे धर्मनिरपेक्ष शक्तियों को दिया जाता था।

भूमि अनुदान ने भारत में सामंती विकास का मार्ग प्रशस्त किया। किसानों का दमन भूमि अनुदान के प्राप्तकर्ताओं को दिए गए अधीनता के अधिकार के कारण भी हुआ। अनुदान प्राप्तकर्ता भूमि के सम्पूर्ण उपयोग के लिए, या इसकी खेती करने के लिए अधिकृत थे। दान की गई भूमि को कुछ शर्तों पर किरायेदारों को सौंपा जा सकता था। इसने किरायेदारों को उनकी भूमि से बेदखल करने के अधिकार को भी निहित किया। कुछ हालत में जबरन श्रम (विष्टि) लगाने और कई नए लगान और करों के कारण किसानों की स्थिति को गुप्तकाल में नकारात्मक सन्दर्भों में देखा जाता है।

विभिन्न प्रकार के अनाजों के साथ–साथ फल तथा मसालों आदि की भी कृषि होती थी। गुप्तकाल में चावल, गेहूँ, अदरक, सरसों, तरबूज, इमली, नारियल, नाशपाती आड़ू, खुबानी, अंगूर, सन्तरा आदि की खेती होती थी। गांधार अभिलेख में कुओं, तालाबों, पीने का पानी एकत्र करने, उद्यानों, झीलों, पुलों आदि नगरीय सुविधाओं का उल्लेख किया गया है।" ह्वेनसांग के अनुसार पश्मिोत्तर प्रदेशों में ईख और गेहूँ पैदा किए जाते थे एवं मगध तथा मगध के पूर्व में चावल।

रोमिला थापर के अनुसार जोत की भूमि का मूल्य परती भूमि के मूल्य से तैंतीस प्रतिशत अधिक होता था। भूमि की प्रकृति के अनुसार मूल्य भी अलग–अलग होता था। इस समय जो फसलें पैदा की जाती थीं वे शायद कई शताब्दियों तक अपरिवर्तित बनी रही।फसलों का उत्पादन भी इस काल में तीनो मौसम में होता था।

वराह मिहिर ने तीन तरह की फसलों का उल्लेख किया है। एक फसल श्रावण के महीने में तैयार होती थी, दूसरी वसन्त में और तीसरी चैत्र या वैशाख में। साधारणतया सभी तरह की उपज जो आजकल होती है उस युग में भी हुआ करती थीं। ऐसी फसलों की चर्चा अमरकोश में भी है। गेहूँ, धान, ज्वार, बाजरा, चना, मटर, दालें, तिल, सरसों, कपास, नीलअलसी, अदरक, सब्जियाँ, काली मिर्च, आदि विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था। उस युग में धान के जैसे शाले और कगल आदि अनेक प्रकार हो गए थे। यही नहीं चावल की एक फसल तो 60 दिनों में तैयार कर ली जाती थी।" गुप्तकाल में कृषि के अत्यधिक प्रसार के पीछे सबसे बड़ा कारण वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत शूद्रों की अधिकारिता में वृद्धि थी। जैसा कि पूर्व काल के धर्म शास्त्रों के अनुसार शूद्रों को केवल ऊपर के तीन वर्णों की सेवा का कार्य करना चाहिए परन्तु हम गुप्तकालीन स्मृतियों में देखते हैं कि शूद्रों को कृषि करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। सम्भवतः कृषि के अत्यधिक प्रसार तथा कृषि श्रमिकों की माँग ने शूद्रों की अधिकारिता में वृद्धि की जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से गुप्तकाल की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है।

"गुप्तकाल तक भारत में भूमि पर राजा के पूर्ण स्वामित्व का सिद्धांत लोकप्रिय हो चुका था। पूर्वकालीन धर्मशास्त्रों का अवलोकन करें तो मनु ने राजा को समस्त भूमि का सर्वोच्च स्वामी माना है। गौतम ने ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबको राजा की सम्पत्ति बताया है। मेगस्थनीज के अनुसार भारत में किसान राजा को भूमिकर और उपज का एक–चौथाई हिस्सा देते थे क्योंकि यहाँ समस्त भूमि राजा की सम्पत्ति मानी जाती थी।" इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गुप्तों से पूर्व ही भूमि को राजा की सम्पत्ति माना जाता था परन्तु गुप्तकाल तक यह पूर्णस्थापित सिद्धान्त बन चुका था भूमि अनुदानों के सन्दर्भ में इस परिघटना को पूर्णतः समझा जा सकता है। गुप्तकाल में, ब्राह्मण पुरोहितों का भू–स्वामी के रूप में उदय, किसानों के हितों के अनुकूल नहीं था। ब्राह्मण पुरोहितों को दान में जो भूमि दी जाने लगी उससे अवश्य ही बहुत–सी परती जमीन आबाद हुई। लेकिन इस अनुदानभोगी वर्ग का भार भी स्थानीय किसानों के ऊपर पड़ा। मध्य और पश्चिम भारत में किसानों से बेगार भी लिया जाने लगा। दूसरी ओर, मध्य भारत के जनजातीय इलाकों में ब्राह्मण अनुदानभोगियों ने बहुत सारी परती जमीन को आबाद कराया और खेती की अच्छी जानकारी प्रचलित की।"

"गुप्तकाल में भी राजा का समस्त भूमि पर स्वामित्व था। विविध अभिलेखों से स्पष्ट है कि गुप्तकालीन नरेश सम्पूर्ण गाँवों अथवा ग्रामों को धार्मिक उद्देश्यों हेतु दान देते थे। ऐसा वे तभी कर सकते थे जब भूमि पर उनका मूलभूत अधिकार माना जाता रहा होगा। ऐसे उदाहरणों से दान पाने वाला न केवल राज्य को मिलने वाले कुछ करों को वसूल करने का अधिकारी हो जाता था वरन् कभी–कभी उसे अन्य सभी प्रकार के करो को वसूल करने का अधिकार मिल जाता था। जब कोई नागरिक व्यक्तिगत रूप से कोई भूमि क्षेत्र दान देता था तो उसे प्रशासन से इसकी अनुमति लेनी होती थी क्योंकि किसी भूमि को दान मुक्त करने का अधिकार केवल राजा को ही था। ज्यादातर अभिलेखों के अनुसार एक बार दान देने के बाद कोई राजा या उसके वंशज उसे वापिस नहीं ले सकते थे लेकिन कुछ दान पत्रों में स्पष्टतः कहा गया है कि दान पाने वाले के द्वारा राजद्रोह, ब्रह्महत्या, राजा को विष देना, चोरी और अन्य कुछ अपराध किए जाने पर दान में दी गई भूमि वापिस ली जा सकती थी।"

"अगर किसी ब्राह्मणेत्तर व्यक्ति का कोई पुत्र भाई और पत्नी नहीं होती थी तो उसके मरने पर राजा उसकी सम्पत्ति का मालिक समझा जाता था। राजा का भूमि पर स्वामित्व उसके द्वारा वसूल किए जाने वाले करों से भी प्रमाणित होता है। बहुत सी बंजर और उर्वर भूमि राजा के व्यक्तिगत अधिकार में होती थी। निधियों व खानों पर राजा का अधिकार माना जाना अभिलेखो ंसे प्रमाणित है।"

गुप्त युगीन राजाओं ने कृषि उन्नति व बेहतर, सिंचाई व्यवस्था के लिए सराहनीय कार्य किया तथा किसानों के कष्टों को दूर करने के लिए समय–समय पर तत्पर रहे जिससे कृषि–कर्म पद्धति में उत्तरोत्तर विकास होता गया। आधुनिक भारतीय कृषि प्रणाली कहीं न कहीं इससे प्रभावित दिख रही है।

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश गुप्त काल में भारत में कृषि का विकास और सिंचाई की संरचनात्मक प्रगति का विश्लेषण करना था। प्रस्तुत शोध पत्र के विश्लेषण के बाद यह कहा जा सकता है कि भारत में कृषि विकास का एक लंबा इतिहास रहा है। प्राचीन भारत में व्यवस्थित कृषि का प्रारंभ हम सिंधु सभ्यता से मान सकते हैं जो छठी शताब्दी आते–आते गुप्त काल तक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा। साहित्यिक साक्ष्यों में सिंचाई व्यवस्था

को राज्य का प्रमुख कर्तव्य माना है, अर्थात सिंचाई झील, नहर, तालाब, बांध आदि का संरचनात्मक व्यवस्था करना राज्य का प्रमुख दायित्व माना गया।

निष्कर्षतः हम यह पाते हैं कि गुप्त काल में कृषि और सिंचाई की संरचनात्मक व्यवस्था में राज्य की सहभागिता ने इनके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :-

1. बंधोपाध्याय, इकोनॉमिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन एंशियन्ट इण्डिया, पृ0 132, अथर्व 3, 13.
2. पाण्डेय, जयनारायण, पुरातत्व विमर्श प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2015.
3. चौधरी, एस. सी. राय. (2016), सम्पूर्ण भारत का सामजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, (संस्करण– प्रथम), दिल्ली सुरजीत पब्लिकेशंस।
4. त्रिपाठी, रमाशंकर (अनु0) (2015) मृच्छकटिकम्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
5. पाठक, रश्मि, (2012) प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, दिल्ली : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस।
6. बाशम, ए. एल. (2015) अद्भुत भारत, (अनुवादक– वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय), आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी।
7. मजुमदार, रमेशचंद्र और अल्तेकर, ए. एस. (2000) भारत जन का इतिहास, आगरा : केंद्रीय हिन्दी निदेशालय।
8. राय, उदयनारायण, (1998), प्राचीन भारत में नगर तथा नगर–जीवन, प्रयागराज : लोक भारती प्रकाशन।
9. शर्मा, रामशरण, (2018), भारत का प्राचीन इतिहास, (अनुवादक– देवशंकर नवीन एवं धर्मराज कुमार), (प्रथम हिन्दी संस्करण), दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. सिंह, डॉ. शरद (2008), प्राचीन भारत का सामजिक एवं आर्थिक इतिहासश (संस्करण– प्रथम). वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।

bablupcb@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 210-213

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी कहानी का यह दौर

राजेश 'कमाल'

मु.पो.–बुडानियां, वाया–मंड्रेला, तहसील–चिड़ावा, जिला–झुंझुनूं, राज.–333025

हिन्दी कहानी भाषा–शैली और विषय–वस्तु की दृष्टि से बेहद समृद्ध स्थिति में है। हिन्दी कहानी विश्व साहित्य में भी सम्मान की दृष्टि से देखी जा रही है। हिन्दी की उत्कृष्ट कहानियां अनुवाद के जरिये विश्व–भर में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं। सही मायने में तो प्रेमचंद से हिन्दी कहानी का विकास शुरू होता है। उसके बाद तो हिन्दी कहानी ने पलट कर नहीं देखा। जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, अज्ञेय, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, ज्ञानरंजन आदि प्रभृति रचनाकारों से होती हुई कहानी यहां तक सकुशल पहुंची है। अब तक हिन्दी कहानी के विकास काल को सौ बरस से ऊपर हो चुका है।

वैसे तो कहानी आदिकाल से ही मानव–सभ्यता के लिए शिक्षा और मनोरंजन का साधन रही है। मानव ने सभ्यता के आरंभ से ही अपने सुख–दुख को कहानी और गीत के माध्यम से व्यक्त किया है। कहानी के वर्तमान रूप के पीछे दादी–नानी की कहानियां ही रही हैं, जो मौखिक परंपरा में हजारों सालों से चली आ रही थी। मुझे भी अपने बचपन की वो सर्दियों की शामें याद हैं जब खाना खाने के बाद मेरे ननिहाल में पूरा परिवार एक साथ बैठता था और मेरे नाना कोई न कोई बात, किस्सा या कहानी कहते थे। वो किस्से अधिकतर पौराणिक ही होते थे लेकिन रोमांच और कल्पना से भर देते थे।

आज तथाकथित आधुनिकतावादी भले ही पुराणों को अनर्गल कह कर गालियां देते होंगे पर जिस रोमांच और कल्पना शक्ति को वहां ऊंचाई मिली है वो अन्यत्र दुर्लभ है। हिन्दी कहानी पर हिन्दू मिथकीय प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। मेरे नाना की उन कहानियों ने मुझे ऐसा आदी बना दिया था कि जिस दिन कहानी नहीं सुनता ढंग से नींद ही नहीं आती थी। सर्दियों की लगभग सभी शामें नाना के किस्से सुनकर ही गुजरती थी। आज मैं कहानियां लिखता हूं तो उसका श्रेय कहीं न कहीं मेरे नाना को भी जाता है। लगभग हर घर में ही कोई न कोई किस्सागो होता था। अब टी.वी. और मोबाइल आने के बाद यह परंपरा खत्म ही हो गई है। बच्चे अब अंग्रेजी पढ़ाई और कैरियर की दौड़ में लग गए हैं। उनके पास अब बुजुर्गों से किस्से–कहानी सुनने का समय ही नहीं है। मगर कहानी–किस्सों का रूप बदला है वे खत्म नहीं हुए हैं। अब उनका लिखित एवं अभिनित रूप लोकप्रिय है, जो पुस्तकों में और सिनेमा में है।

हिन्दी कहानी ने अब तक अनेक पड़ाव पार किए हैं। उन पड़ावों को पार करते हुए वह समृद्ध ही होती गई है। कहानी की कलात्मकता में निखार आया है। कहानी के कथ्य ने भी जीवन के लगभग सभी आयामों को छुआ है। चाहे वह ग्रामीण जन जीवन हो, भाहरी जन जीवन हो, पिछड़ों–दलितों का जीवन हो, नारी का जीवन

हो, आदिवासियों का जीवन हो, वेश्या का जीवन हो, चाहे वह किन्नरों व भिखारियों का जीवन हो इन सभी के जीवन को कहानी–उपन्यासों में पूरी विश्वसनीयता के साथ उकेरा जा रहा है। इन तबकों से सिर्फ कहानियां ही नहीं बल्कि कहानीकार भी सामने आ रहे हैं। वे सब आज अपने नये विचार, नई शैली और अछूते कथ्य के साथ अपनी धमाकेदार उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। आज अनेक पत्र–पत्रिकाएं भी कहानी को विशेष स्थान प्रदान कर रही हैं। आज हिन्दी आलोचना भी कहानी को ही अधिक तवज्जो दे रही है। कहानी लेखक अन्य की बनिस्पत शीघ्र ही लोकप्रियता हासिल कर लेते हैं। आज कवि की बनिस्पत कहानीकार को विशेष दृष्टि से देखा जाता है।

अच्छी बात यह है कि इस दौर की कहानी किसी खास वाद से मुक्त है। आज कहानी लेखक ने अपनी निजी विचारधारा विकसित कर ली है। और वह अपनी विचारधारा के साथ बिल्कुल सहज है। वह विचारधारा को अपने पांव की बेड़ी नहीं बनने देता। वह समय–समय पर अपनी इस विचारधारा के चौखटे तोड़ता रहता है। अब कहानी पर कोई विचारधारा हावी नहीं रहती। अब लेखक पात्रों की विचारधारा के अनुसार चलता है। किसी खास राजनीतिक विचारधारा के साये में लिखी रचना को वैसे भी अब कम ही स्वीकार किया जाता है। लेखक तो दूर अब तो साधारण पाठक भी झंडाबरदारों से बिदकने लगा है। कहानी में भी जहां कोई वैचारिक झंडा दिखाई दिया वहां से ही पाठक के दिमाग में खरास पनपने लगती है। यह खरास उसे साहित्य से काट देती है। झंडाबरदार भले ही एक–दूसरे की पीठ थपथपाते रहते हों लेकिन पाठक उनके पास जाने वाला नहीं।

हिंदी में आज भी कई पुराने झंडाबरदार बचे हुए हैं, जिन्होंने पाठकों को जोड़ने के बजाय तोड़ने का ही काम किया है। साहित्य को टी.वी., मोबाइल की अपसंस्कृति ने भी उतना नुकसान नहीं पहुंचाया होगा जितना कि तथाकथित क्रांतिकारी झंडाबरदारों ने पहुंचाया है। हिंदी साहित्य को उसके देश–काल एवं संस्कृति से ही काट कर रख दिया। निरी विदेशी बौद्धिक जुगाली के अलावा इनके साहित्य में कुछ नहीं बचा। वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, कबीर, तुलसी, मीरा, भारतेंदु, प्रेमचंद, जयशंकर, निराला, महादेवी आदि की स्वस्थ साहित्यिक परंपरा को खारिज कर दिया गया। बरगद, पीपल, नीम, तुलसी के पेड़–पौधों को उखाड़ कर विदेशी पौधों के गमलों से घर को सजाने का काम किया गया। मगर सुखद है कि अब उनकी पकड़ साहित्य पर ढीली पड़ती जा रही है। नये और उर्जावान लेखक उनके दंभ को तोड़ रहे हैं। धीरे–धीरे वे उन पाठकों को साहित्य की तरफ खींच रहे हैं जो विमुख हो गए थे।

आज का कहानीकार पूर्णकालिक लेखक नहीं है। वह जीवन–यापन के लिए किसी न किसी नौकरी या व्यवसाय में बंधा है। नौकरी के बाद जो समय बचता है उसमें ही वह अपना लिखना–पढ़ना कर पाता है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे कई उत्तरदायित्व भी निभाने पड़ते हैं। अपने इस थोड़े से कीमती समय में वह वही चीज लिखता है जो उससे अपने को लिखवाती है। लाजिमी है कि वह बेहतर रचना ही बनेगी। इसीलिए अब चाहे वह नया लेखक हो या स्थापित रचनाकार हो, वह कम लिखता है मगर बेहतर, स्तरीय और विश्वसनीय ही लिखता है। आज की कहानी इसी ताजगी से भरपूर है। बिल्कुल ताजा अछूते विषयों को लेकर लिखी कहानियां देखने को मिलती हैं। हाशिये के लोग जिनमें आदिवासी, किन्नर, भिखारी आदि को लेकर अच्छी कहानियां देखने को मिली हैं। महेंद्र भीष्म कृत उपन्यास ''मैं पायल'' में मुख्य पात्र पायल एक किन्नर है। डॉ. लवलेश दत्त की कहानी ''नवाब'' में हिजड़ों को करुणा, त्याग और प्रेम आदि गुणों से युक्त आम इंसान दिखाया

गया है। श्याम जांगिड़ कृत ''उदास हथेलियां'' उपन्यास में भिखारियों के जीवन को पूर्ण संवेदना से उकेरा है।

नई कहानी से पहले कहानीकार का एक सामाजिक उद्देश्य भी रहता था। वह कहानियों के माध्यम से सामाजिक बदलाव की कामना करता था। प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से कहानी में कोई न कोई संदेश रहता था। वर्तमान कहानी में कहानीकार की ऐसी कोई कामना नहीं है। न वह इस दंभ में है कि लेखन से वह दुनिया या समाज में कोई क्रांति या बदलाव कर देगा। उसे जो रुचिकर लगता है वही लिखता है। वह सिर्फ संवेदना जगाने का काम करता है। यही उसका अभिष्ट है। आज का लेखक अपने को किसी संस्था या आंदोलन का एक्टिविस्ट या लीडर नहीं मानता। वह तो तब लिखता है जब लिखना जरूरी हो जाता है। आज की कहानी में लेखक का भोगा हुआ यथार्थ उभर कर सामने आता है। जब लेखक के अनुभव और अनुभूति की सघनता हो जाती है तो वह उसे अपनी रचना के माध्यम से मुक्त करता है। यही मुक्ति लेखक की मुक्ति कहलाती है। अन्य विधा की बजाय लेखक कहानी में ज्यादा विश्वसनीयता के साथ सामने आता है। वह एक काल्पनिक पात्र के माध्यम से भी अपने अनुभव और यथार्थ को लिख सकता है तो कभी खुद भी पात्र के रूप में अपनी कहानी कह जाता है। यही बात आज की कहानी और कहानीकार को अलहदा बनाती है।

इस समय हर तबके से कहानीकार निकल कर आ रहे हैं। शोषित–पीड़ित वर्ग से भी कई बेहतरीन कहानीकार अपनी धमाकेदार उपस्थिति दर्ज करवा चुके हैं। नये शिल्प और नये कथ्य के साथ उपस्थित हैं। अगर एजेंडाधारी पत्र–पत्रिकाओं में उनको स्थान नहीं मिलता है तो वे सोशल मीडिया पर अपनी रचना के साथ उपस्थित हो रहे हैं। कुछ तो सोशल मीडिया पर स्टार का दर्जा पा चुके हैं। भले ही तथाकथित स्थापित झंडाबरदार उन्हें हिकारत से देखते हों पर उन्हें नजरअंदाज करके आगे नहीं बढ़ा जा सकता। इसके अलावा भी कहानीकारों की एक लंबी फेहरिस्त है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ, वंदना शुक्ल, जय श्री रॉय, गीता श्री, रूपा सिंह, गीतांजलि श्री, कविता, वंदना राग, इंदिरा दांगी, उमा, तसनीम खान, श्याम जांगिड़, सलिल सुधाकर, सृंजय, अजय नावरिया, चंद्रकांत राय, भागचंद गुर्जर, नितिन यादव, उमाशंकर चौधरी, संदीप मील, हरिराम मीणा, माधव राठौड़, सतीश छिंपा, मनोज रूपड़ा, पंकज सुबीर आदि–आदि कहानीकार अपनी ऊर्जावान कलम से निरंतर कहानियां लिख रहे हैं और चर्चित हो रहे हैं। मुझे जो नाम तुरंत याद आए वही मैंने यहां लिखे हैं। इस सूची में अनगिनत नाम हो सकते हैं, जो हिंदी कहानी के विकासक्रम को निरंतर गति दे रहे हैं। हिंदी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं में भी कहानी अपने विकसित दौर में पहुंच चुकी है। क्षेत्रीय भाषाओं में अनेक लेखक बेहतरीन कहानियां लिख रहे हैं। राजस्थानी, मराठी, गुजराती, असमिया, पंजाबी, बांगला, उड़िया, तमिल, कन्नड़, कोंकणी आदि भाषाओं में विपुल कथा–साहित्य रचा जा रहा है। इनके हिंदी अनुवाद से हिंदी कहानी समृद्ध हुई है। परस्पर अनुवाद की स्वस्थ परंपरा विकसित होनी चाहिए।

आज की हिंदी कहानी ने आलोचना के प्रतिमान तोड़े हैं। आलोचक को नई दृष्टि विकसित करने के लिए बाध्य किया है। आधुनिक कहानी सोशल मीडिया के माध्यम से एक नया पाठक वर्ग तैयार कर रही है। आज इंटरनेट का जमाना है। आज का युवा इंटरनेट का दीवाना है। कहानीकार अपनी रचना को सोशल मीडिया के माध्यम से ग्लोबल विस्तार देता है। विश्व के किसी भी कोने में हिंदी का पाठक अपने प्रिय लेखक की रचना का स्वाद ले सकता है, और तुरंत अपनी प्रतिक्रिया भी लेखक तक पहुंचा सकता है। अनेक प्रतिभाशाली लेखकों को

सोशल मीडिया ने बेहतरीन मंच प्रदान किया है। वरना तो वह तथाकथित बड़े लेखकों, आलोचकों और संपादकों की जी–हुजूरी न करने के कारण अपठित एवं अप्रकाशित ही रह जाता। अब इन झंझटों से मुक्त आज का कहानीकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी का मुखापेक्षी नहीं है।

अतः यह दौर हर तरह से कहानी लेखन के लिए श्रेष्ठ है। हालांकि अब भी साहित्यिक संस्थाओं पर सत्ताधारी पार्टियों के समर्थक एवं कार्यकर्त्ता ही काबिज हैं। साहित्यिक पुरस्कारों की रेवड़ियां वो अपनों को ही बांट रहे हैं। इससे साहित्य का भला हो या न हो पर वे अपनों का तो भला कर ही जाते हैं। यही बात है कि पुरस्कार किसी रचना के श्रेष्ठ होने का मानदंड नहीं हो सकते। काल का सामना वही रचना कर सकती है जो माद्दा रखती हो। प्रेमचंद के गोदान को किसी पुरस्कार की जरूरत नहीं है। तुलसी के रामचरित के सामने नोबेल भी फीका है। मुक्तिबोध की अंधेरे में को किसी प्रकाश की जरूरत नहीं है। कहने का मतलब है कि जिसे समय रचता है उसे समय ही बचाता है। उसे किसी पुरस्कार, आलोचक या संस्थान या सत्ता की जरूरत नहीं होती।

मो0–9785508951

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 214-222

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी भारत के माथे की बिंदी

दीप्ति अग्रवाल

अतिथि अध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय।

14 सितम्बर का दिन हमारी मातृभाषा हिन्दी का दिवस है। हर भाषा के पास अपना दिन नहीं होता। हिन्दी बहुत भाग्यशाली है कि उसके पास अपना दिन है और यह दिनराष्ट्रीय महत्त्व और गर्व का दिन है। लेकिन हमारा कर्तव्य केवल हिन्दी दिवस पर हिन्दी को महत्त्व देने से पूरा नहीं हो जाता है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्कभाषा और भारत की अस्मिता की पहचान है इस बात को हर भारतीय को ध्यान में रखना होगा और हिन्दी को सभी तरह के कार्यकलापों में प्रयोग में लाना होगा साथ ही उसकी राष्ट्रीय पहचान के साथ वैश्विक पहचान को मजबूत करना होगा तभी असली हिन्दी दिवस मनाने का सही अर्थ होगा क्योंकि हिन्दी हमारे भारत देश के माथे की बिंदी है।

हमें अंग्रेजों से आजाद हुए आज 75 वर्ष हो गए। इस आजादी की लड़ाई में हिन्दी के योगदान के विषय में राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने एक बार कहा था, "उस समय हिन्दी के समाचार पत्र और पत्रिकाओं ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आवाज बुलंद की थी जबकि अंग्रेज़ी के समाचार पत्र उनकी खुशामद में लगे हुए थे।[1] आज आजादी के 75 वर्ष के अमृत–महोत्सव में मैं यह उक्ति इसलिए दोहरा रही हूँ क्योंकि– हिंदुस्तान के साथ अपनी भाषा हिन्दी को भी राज–सिंहासन पर बिठाना जरूरी है। बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के जो हिन्दी, संस्कृत और तुलसी साहित्य के अनन्य साधक थे, ने एक बार कहा था कि संस्कृत भाषाओं की महारानी, हिन्दी बहुरानी और अंग्रेज़ी नौकरानी है। हिन्दी तो भारत की प्राण भाषा है और हमें इस भाषा के महत्त्व को स्वीकारते हुए इसे उचित सम्मान देना जरूरी है। इस बात के समर्थन में महात्मा गांधी ने 20 अप्रैल 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन में कहा था, 'हिंदुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।[2] भारत की आजादी के उपलक्ष्य में बी. बी. सी. ने गांधी से अंग्रेजी भाषा में संदेश देने को कहा तब भी गांधी जी ने कहा,"दुनिया से कह दो गांधी अंग्रेजी भूल गया।"[3]

हमारी इस राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा और जन भाषा हिन्दी ने अपनी 1000 वर्ष की यात्रा में अनेक उतार चढ़ाव देखें, अनेक पड़ाव पार किए हैं और उसकी इस यात्रा की सफलता की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह जनशक्ति की भाषा है, इसमे अपनी लचीलेपन की विशेषता के कारण जन जन से जुडने की अद्भुत शक्ति हैं। राजभाषा का अर्थ है जिस भाषा के माध्यम से शासन प्रशासन अपना राजकाज चलाये। 14 सितम्बर सन् 1949 को हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में संविधान ने अधिकृत किया गया था। इसीलिए इस दिन को हम 'हिन्दी दिवस' के रूप में मनाते हैं।

हिन्दी का महत्त्व आपको, मुझे, हम सबको पता है फिर भी हम अनजान बने हुए है। 2011 की जनगणना के अनुसार हम भारतीय 121 करोड़ का आंकड़ा पार कर चुके हैं जिसमें से लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी भाषा पढ़ने–लिखने और बोलने में सक्षम है। व्यवहार, व्यापार और बाजार हिन्दी के बिना अधूरा है। मनोरंजन की दुनिया, बॉलीवुड, विज्ञापन, मीडिया और जनसंचार और टीवी सीरियल में हिन्दी क्या स्थान रखती है सबको पता है। टीवी के जो कार्यक्रम पहले अंग्रेजी के लिए जाने जाते थे जैसे डिस्कवरी, हिस्ट्री, एनिमल प्लेनेट आदि अब हिन्दी में भी उपलब्ध हैं। फेसबुक, ट्वीटर, वाट्स एप पर हिन्दी में संदेश धड़ल्ले से भेजे जा रहे हैं। ब्लॉग, मेल, ई बुक आदि में भी हिन्दी तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। साहित्य सृजन में प्रेमचंद, जय शंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, फणीश्वर नाथ रेणु आदि बड़ी संख्या में बड़े बड़े नामचीन साहित्यकार हुए है। अब तक भारतीय ज्ञानपीठ के 52 पुरस्कार में से 10 हिन्दी की झोली में आए हैं लेकिन फिर भी ऐसा क्यों है कि राजभाषा के रूप में हिन्दी आज भी अंग्रेजी की दासी बनी हुई है? यह एक बहुत बड़ी विसंगति है कि जनभाषा हिन्दी और राजभाषा हिन्दी के बीच एक चौड़ी खाई है।

2011 की जनगणना के अनुसार केवल 254,678 लोगों का यह मानना है कि हम अंग्रेजी में ज्यादा अच्छी अभिव्यक्ति कर सकते है। लेकिन फिर भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी आगे खड़ी है। संसद में सारी बहस हिन्दी में होगी लेकिन जब वह चर्चा विधेयक बन कर कानून के रूप में आता है तब वह अंग्रेजी में होता हैं बाद में उसका अनुवाद हिन्दी में होगा। क्यों आज आजादी के 75 साल बाद भी हम अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त नहीं हो पा रहे है? क्यों हमारे भीतर हिन्दी को लेकर हीन भावना है? क्यों हम गुलामी की भाषा को बोलने में गर्व समझते हैं और हिन्दी बोलने में हीनता? संविधान के 343 से लेकर 351 अनुच्छेद राजभाषा हिन्दी के प्रावधानों से जुड़े हैं लेकिन प्रशासन में आज भी उसे उचित आसन नहीं मिल पा रहा है? क्यों? हिन्दी जानने, बोलने, लिखने वाले का उतना सम्मान नहीं है जितना अंग्रेजी से जुड़े व्यक्ति का? क्यों अपने ही देश में हमने अपनी ही भाषा हिन्दी को इतना बेगाना बना दिया है? मैं ये नहीं कह रही कि अंग्रेजी सीखना अनुचित है लेकिन जब वह अंग्रेजी हमारी ही संस्कृति पर प्रहार करे तब उस पर लगाम लगाना आवश्यक है। मैं भी उसी पीढ़ी की हूँ जिसने एक समय में हिन्दी से अतिशय लगाव होते हुए भी हिन्दी को छोड़कर अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करके गर्व का अनुभव किया था और अंग्रेजी में ही विद्यार्थियों को पढ़ाती थी। लेकिन जैसे जैसे परिपक्वता आई, ज्ञान बोध हुआ, बहुत से ऐसे विदेशी विद्वानों से मिलना हुआ जो अपनी मातृभाषा को लेकर गर्वित थे और जिन्हें अंग्रेजी नहीं आती थी लेकिन अपने विषय में पारंगत थे, (उनमें से कुछ विद्वान तो ऐसे भी थे जो विदेशों में गर्व से हिन्दी पढ़ा रहे थे), तब यह एहसास हुआ कि हिन्दी मेरी रगों में बहती है और मुझे अंग्रेजी छोड़ कर हिन्दी को ही अपना कार्यवाहक बनाना चाहिए।

इस निश्चय के बाद मैंने शादी के 18 साल बाद हिन्दी में एम ए करने का गौरव प्राप्त किया और हिन्दी साहित्य में ही दिल्ली विश्वविद्यालय और इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय में शिक्षक के तौर पर काम करना पुनःआरंभ किया। इसमें बिलकुल दो राय नहीं है कि फ्रांस के लोग अपनी मातृभाषा फ्रांसीसी, स्पेन के लोग स्पेनिश और जर्मन के लोग जर्मन बोलने में गर्व महसूस करते है, अंग्रेजी नहीं। यह, मैं किताबों में पढ़ी हुई बात नहीं अपने अनुभवों से आपको बता रही हूँ। कुछ अनुभव आपके साथ साझा करना चाऊंगी जैसे एक बार मुझे लंदन में घूमते हुए 2 गोरी महिलाएं मिली जो गांधी की प्रतिमा के आगे फोटो खिंचवा रही थी, मैं उनकी तरफ देखकर मुसकुराई

और इंग्लिश में पूछा Do you know Gandhi? उनमें से एक ने कहा We, France, No, English, फिर उन्होने मुझसे पूछा इंडिया? गांधी? मैंने हाँ में गर्दन हिलाई और उस महिला ने हंस कर अपनी बाहें मेरी तरफ फैला दी और मुझे अंक में भर लिया मानो मुझे छू कर वो गांधी को याद कर रही थी, मेरे, आपके देश के प्रति कृतज्ञता दिखा रही थी। मुझे उनसे मिलने की खुशी, अपने देश, गांधी पर गर्व के साथ–साथ बहुत आश्चर्य इस बात का हुआ कि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती थी।

इसका कारण यह था कि जो भी गोरा होता है, हम सोच लेते हैं– ये अंग्रेज़ है और इसे इंगलिश तो आती ही होगी लेकिन ऐसा नहीं है। गोरा फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल कहीं का भी हो सकता है। वो महिला पेशे से डॉ थी उन्हें अपनी मातृभाषा पर गर्व था और उनको अंग्रेजी न आने को लेकर कोई हीन भावना नहीं थी। दूसरा वाकया जर्मन एयरपोर्ट पर हुआ। म्यूनि एयरपोर्ट पर हमें जर्मन भाषा ना आने के कारण, किसी से भी कुछ पूछने में भारी मशक्कत का सामना करना पड़ा। क्योंकि आधिकारिक लोगों को छोड़ कर सभी का हाथ अंग्रेजी में तंग था। तीसरा वाकये में मेरी बेटी से उसके नॉर्वे के एक दोस्त ने पूछा कि ऐसा क्यों है कि आप भारतीय लोग जब भी आपस में बातें करते हो तब अंग्रेजी में बात करते हो, जबकि आपके देश की भाषा तो हिन्दी है? हमारे नॉर्वे में तो ऐसा नहीं है वहाँ तो हमें जहां बहुत जरूरत होती है वही अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं बाकी तो नॉर्वेजियन में ही काम करते हैं और हमारे देश में भी, बाहर देश से कोई काम करने आता है तो उसको भी नॉर्वेजियन आवश्यक रूप से सीखनी पड़ती है। मेरी बेटी ने मुझे बताया कि उस घटना के बाद अपने हिन्दी ना बोलने पर उसे बहुत शर्मिंदगी हुई और उसने अपने भारतीय दोस्तों से मातृभाषा हिन्दी में ही बात करना आरंभ कर दिया और अब वही सब मिलकर पुराने हिन्दी मुहावरें और शब्दों पर खूब ठहाके लगाते हैं।

जब छोटे छोटे देश अपनी भाषा को लेकर गर्व महसूस करते हैं तब हम, इतने महान देश के वासी, इतनी महान संस्कृति, भाषा के वाहक, क्यों अपनी भाषा को सम्मान देने में हिचकते हैं? भई हिन्दी हमारी पहचान है, हमारी माँ है। इस बात में भी कोई दो राय नहीं कि अंग्रेजी एक बहुमुखी और अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। अंतः हमें अंग्रेजी के प्रति उदासीनता दिखाकर अपनी प्रगति नहीं रोकनी है। लेकिन हमें हिन्दी के मूल्य पर अंग्रेजी नहीं सीखनी है। दोनों भाषाओं कों साथ–साथ चलाना चाहिए। हमारे देश में अंग्रेजी हिन्दी को तहस–नहस कर रही है। 1975 से अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की मानो बाढ़ सी आ गई है। हिन्दी का सारा दारोमदार मानो हिन्दी पट्टी क्षेत्र पर है या गरीब के कंधों पर है। और अब तो यह हाल है कि इस बार हिन्दी पट्टी के भी एक बड़ी संख्या में छात्र हिन्दी में अनुतीर्ण हो गए हैं, मतलब अंग्रेजी में तो वे पहले ही संघर्षशील थे अब हिन्दी में भी मात मिल गई। ठीक है अंग्रेजी का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि वैश्विक रूप से आपसी संवाद की भाषा में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई है लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं हैकि इसी के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति होगी। जितना ज्ञान एक बच्चा अपनी मातृभाषा के माध्यम से कर सकता है उतना दूसरी भाषा में नहीं। यह बात भी मैं आपको एक उदाहरण से समझा सकती हूँ। केरल में एक प्राइमरी विद्यालाय का दौरा करते हुए बहुत से बच्चों से मिलना हुआ उनका हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में ही हाथ तंग था लेकिन गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान की जानकारी में वे बहुत आगे थे। मलयालम भाषा के माध्यम से उन्हें सभी विषयों की जानकारी दी जा रही थी। ज्ञान तो ज्ञान है भाषा तो उस ज्ञान को अधिगम करने का एक साधन मात्र है। और जब हमारी मातृभाषा हिन्दी है तो हमें कोई भी बात सीखने में आसानी हमें हिन्दी में ही होगी।

नवजागरण के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने कहा था :–

''निज भाषा उन्नति है सब उन्नति का मूल
निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय के सूल।।''

इसी बात के समर्थन में नेल्सन मंडेला की उक्ति बिल्कुल सटीक बैठती है। उन्होने कहा :– 'यदि आप किसी से ऐसी भाषा, में बात करते है जो उसे समझ में आती है तो वह उसके दिमाग तक पहुँचती है लेकिन यदि आप उससे उसकी मातृभाषा में बात करते हैं तो बात उसके दिल में उतरती है।"

मुझे कई बार मेरे विद्यार्थी शिकायत करते हैं कि मैम हिन्दी के शब्द कठिन है याद नहीं रहते। लेकिन मेरा मानना है कि शब्द कठिन नहीं है, फर्क अभ्यास की कमी का होना है। उदाहरण के तौर पर दिल्ली में सभी मेट्रो स्टेशन के नाम जैसे विश्वविद्यालय, केंद्रीय सचिवालय आदि के नाम बार बार अभ्यास के कारण क्या आपकी जबान पर नहीं चढ़ गए हैं? वैसे आप ध्यान से मनन करेंगे तो हिन्दी अन्य भाषा की अपेक्षा बहुत सरल भाषा है। हिन्दी में जैसा हम बोलते हैं, वैसा ही लिखते हैं। अन्य भाषा की तरह कोई अक्षर साइलेंट नहीं, किसी शब्द के उच्चारण और लेखन में भेद नहीं। सभी ध्वनियों के लिए अलग अलग वर्ण है। भाषा के विषय में विद्वानों का भी मत है कि शब्द कठिन या सरल नहीं होते, हाँ कोई विशेष शब्द कठिन हो सकता है। परंतु शुरू में कठिन लगने वाले शब्द, शब्दावली से परिचित हो जाने पर आसान लगने लगते है, इसलिए वैज्ञानिक शब्दों के हिन्दी पर्याय इस्तेमाल से, अभ्यास से आसान लगने लगेंगे।

श्री राजकिशोर, वरिष्ठ सहायक संपादक, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली का कहना है–सरकारी हिन्दी के कठिन होने की शिकायत वही करते हैं,जो हिन्दी का इस्तेमाल नहीं करना चाहते। यदि यह हिन्दी बहुत सरल होती, तो यही लोग शिकायत करते कि यह तो बिलकुल सड़क की भाषा है–तकनीकी कामों के लिए इस्तेमाल कैसे की जा सकती है? अतः समस्या भाषा का स्वरूप नहीं बल्कि उसकी व्यवहार करने की राजनीतिक इच्छा है।"[4]

भारत की 90 प्रतिशत जनसंख्या आसानी से हिन्दी समझ जाती है लेकिन हम उस पर अंग्रेजी थोप रहे हैं। सबसे पहली आजादी मानसिक होती है। अगर मन मुक्त न हुआ तो न शरीर मुक्त हो सकता है न आत्मा। अंग्रेज़ भारत माता के शरीर को तो मुक्त कर गए परंतु अंग्रेजी का भूत अब भी हमारी आत्मा में घुस कर बैठा है और हमारे मन पर राज्य कर रहा है। हम अंग्रेजों से तो आजाद हो गए लेकिन 200 वर्षों तक अंग्रेजों के गुलाम रहने के कारण अंग्रेजी से आज भी मुक्त नहीं हो पाये है और आज भी विदेशी भाषा होते हुए भी अंग्रेजी हमारी हिन्दी पर भारी पड़ रही है। हिन्दी क्यों महारानी के पद पर नहीं बैठ पा रही है? कहते हैं ना अंग्रेज़ चले गए अंग्रेजी छोड़ गए। इसका मुख्य कारण है– हिन्दी के प्रति अनास्था और हीन भावना का होना।

डॉ. धर्मवीर भारती ने एक बार कहा था," किसी भाषा की प्रतिष्ठा केवल इसलिए नहीं होती कि वह व्याकरण, लिपि, साहित्य संपदा दृष्टि से कितनी सम्पन्न है, न कि इस आधार पर कि वह कितने लोगों द्वारा बोली जाती है। इसकी प्रतिष्ठा मूलतः इस आधार पर होती है कि जिनकी वह भाषा है जो उसे बोलते है, उनमें तन कर खड़े हो सक्ने की रीढ़ है या नहीं? आज हिन्दी का संकट यही है कि हिंदी भाषी जन रागात्मक निष्ठा के सांस्कृतिक स्तर पर भाषा से कटा हुआ है।' हमारे अंदर यह भावना बहुत प्रबल हो गई है कि अगर हम हिन्दी में बात कर रहे हैं या किसी विषय पर हिन्दी में चर्चा कर रहे हैं तो हम उससे जो भली भांति अंग्रेजी में बोल

रहा है, से कमतर है। इसका एक बड़ा कारण राजनीतिक वर्चस्व भी है।

आज अंग्रेजी वैश्विक संपर्क भाषा इसलिए ही बन पायी ना कि एक समय में ब्रिटेन के राज का सूर्य पूरे विश्व में चमक रहा था। ताकतवर लोगों की भाषा को भी ताकतवर माना जाता है और उसे चाहे इच्छा से सीखे या मजबूरी में लेकिन सबको सीखनी पड़ती है। इस बात के लिए आपको एक उदाहरण देती हूँ – 2009 के आसपास स्वीडन के दूतावास के सचिव ने एशियाई देश जापान, चीन और भारत के आर्थिक विकास को देखते हुए स्वीडन में चीनी, जापानी और हिन्दी का क्रेश कौर्स आरम्भ किया। जापानी और चीनी में तो शामिल होने बहुत से लोग आए लेकिन हिन्दी छात्रों की कमी रही, कारण पूछने पर पता चला कि चीन में बिना चीनी भाषा के और जापान में बिना जापानी भाषा के काम नहीं चल सकता। हाँ भारत में हिन्दी के बिना काम चल जाएगा बस अंग्रेजी आनी चाहिए। मैं मानती हूँ जब यह हाल रहेगा तो आपकी युवा पीढ़ी अगर अंग्रेजी की तरफ आकर्षित होती है तो इसमें आपका कोई दोष नहीं है।

लेकिन आज भारत देश बहुत ताकतवर बन गया है उसकी आर्थिक, सामरिक, राजनैतिक ढांचा बहुत मजबूत हो गया है, और अब इस बात में भी कोई दो राय नहीं है कि जिस दिन युवा पीढ़ी अपने देश की भाषा पर गर्व करना सीख लेगी तब वो दिन दूर नहीं होगा जब हिन्दी के कौर्स की कक्षाएं भी भरी रहेंगी, संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हिन्दी को वैसी ही मान्यता मिल जाएगी जैसी बाकी छः भाषाओं (अंग्रेज़ी, मेंडेरिन, रूसी, अरबी, स्पेनिश और फ्रांसीसी) को प्राप्त है बस जरूरत है हिन्दी को मन और आत्मा से अपनाना। डेनमार्क की अर्चना पेनयूली का कहना है जब तक हम हिन्दी को व्यावहारिक तौर पर नहीं अपनाएँगे, जब तक माता–पिता बच्चों को हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे, जब तक हम इसे पेट की भाषा नहीं बनाएँगे– तब तक इसका महत्त्व नहीं बढ़ेगा उनका कहना है डेनिश केवल पाँच मिलियन लोगों की भाषा है लेकिन पूरे डेनमार्क में छाई हुई है, कोई भी इमिग्रेंट या मल्टीनेशनल में काम करने आए विदेशी को डेनमार्क आने पर डेनिश सीखनी ही होगी। जबकि हिन्दी पांच सौ मिलियन की भाषा हैतब भी हिन्दी को वह महत्त्व प्राप्त नहीं जो डेनमार्क जैसे छोटे देश की भाषा को प्राप्त है।

हम भारतीय हिन्दी में कामकाज करने को लेकर हतोत्साहित रहते हैं। हमें हिन्दी कठिन लगती है क्यों? इसके भी बहुत से कारण है जैसे हमें राजभाषा नियमों और आदेशों की जानकारी नहीं है, हम हिन्दी में लिखते समय स्वाभाविक भाषा का इस्तेमाल नहीं करते है, जो व्यक्ति या अधिकारी दूसरे को हिन्दी भाषा के प्रति हतोत्साहित करता है उसे इस भाषा का उचित ज्ञान नहीं होता है, अंग्रेजी बोल कर हम अपने आप को उच्च समझते हैं, कभी–कभी हिन्दी में हस्तलिखित टिप्पणी/प्रारूप को पढ़ने में कठिनाई होती है, कई बार हिन्दी की लंबी लंबी टिप्पणियाँ लिखने से संबन्धित अधिकारी को पढ़ने में अधिक समय लगता है आदि, आदि। लेकिन इन कारणों को दूर करना कोई कठिन काम नहीं है बस जरूरत है दृढ़ इच्छा शक्ति का होना। हिन्दी भाषा के विकास से देश के आम आदमी का कितना कल्याण होगा इसके बारे में हम कभी गंभीरता से नहीं सोचते। राष्ट्रीय सहारा की 23.9.92 की एक रिपोर्ट के अनुसार जब से बैंकों में हिन्दी में कामकाज शुरू हुआ है तब से आम आदमी बैंक आने से घबराता नहीं है। आम आदमी हिन्दी में पढ़ कर, पूछ कर बिना सहायता के अपने काम काज निपटा रहा है।

हिन्दी के एक विद्वान का मानना है हिंदी माँ दुर्गा की तरह है। जिस प्रकार माँ दुर्गा के मिथक की रचना

सभी देवताओं के तेज से मिलकर हुई थी, उसी प्रकार हिन्दी की भी रचना सारी बोलियों के समुच्चय से हुई है। भारत की बहुत सी बोलियों का हिन्दी से आपसी प्यारऔरसौहार्द का रिश्ता है। हिन्दी, हमारी संस्कृति का प्रतीक है तू, तुम, आप का फर्क हम सभी भली भांति जानते हैं लेकिन अंग्रेजी में इसके लिए 'यू' इकलौता शब्द है। वर्तमान में हिन्दी के प्रति इसी अतिशय प्रेम और सम्मान के कारण प्रधानमंत्री रहते हुए अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा को 2000 और 2002 में हिन्दी में संबोधित किया था। 2017 में सुषमा स्वराज ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया और अब नरेंद्र मोदी इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। नई शिक्षा नीति में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने पर और त्रिभाषा फोरमुला अपनाने का प्रावधान किया गया है। भारत के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग ने सभी विभाग, पद पारिभाषिक शब्दावली के लिए हिन्दी में उपयुक्त शब्द सुझाए हैं। हिन्दी का महत्त्व को भारत की संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के त्रि–आयामी प्रकार्य के रूप में विस्तार देने के लिए मुझे, आपको, सरकार को, हम सबको मिलकर साझा प्रयास करने होंगे।

यह तो हुई भारत में हिन्दी की बात– अब हिन्दी की वैश्विक स्थिति की बात करे तो हिन्दी विश्व के सबसे बड़े भाषा परिवार भारोपीय परिवार की प्रमुख भाषा है। 2019 में वर्ल्ड लैङ्ग्वेज डेटाबेस एथनोलोग के 22वें संस्करण में बताया गया कि सम्पूर्ण विश्व में 615 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी भाषा का स्थान तीसरा है जबकि 1132 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा अंग्रेज़ी का स्थान प्रथम और 117 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली चीनी भाषा मैंडेरिन का स्थान दूसरा है।[5]

हिन्दी केवल भाषा की वाचक नहीं है बल्कि भारतीय संस्कार ,भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, भारतीय समाज, भारतीय चेतना की भी वाहक है। सिर्फ भारत में ही नहीं ग्लोब के लगभग 100 देशों में किसी ना किसी क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग होता है चाहे वह जीवन के विविध क्षेत्र हो, या अध्ययन, अध्यापन हो। यह अक्षय वट की भांति है। जिस प्रकार भारत में यह अंतर्प्रान्तीय शैलियों जैसे– बंबइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी, दखिनी हिन्दी, नागपुरी हिन्दी आदि रूप में विकसित हुई है उसी प्रकार विदेशों में प्रवासी हिन्दी के रूप में फीजी हिन्दी, सरनामी हिन्दी, नैताली हिन्दी, गयानी हिन्दी, त्रिनिदादी हिन्दी, मॉरीशस की हिन्दी आदि के रूप में अवतरित हुई है।[6]

भारत से बाहर जहां जहां हिन्दी बोली जाती है उनमें है पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव, म्यांमार, इन्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड, चीन, जापान, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, केन्या, रूस, अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यू–जीलैंड, बलगारिया आदि। फीजी में तो 2017 तक हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त था। ऑक्सफोर्ड की हिन्दी डिक्शनरी में हिन्दी के अनेक शब्द शामिल है जैसे संविधान, सूर्य नमस्कार, आधार, गुलाब–जामुन, दादागिरी, अच्छा, डब्बा, हड़ताल, बापू, शादी आदि। पड़ोसी देश चीन में ही 11 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। रामचरितमानस का अनुवाद चीन के प्रो. जिन डींग हाँ ने किया है और चीन के प्रो. वाङ शू और च्यांग चिन्ग ख्वेई हिन्दी के प्रचार–प्रसार में लगे हुए है। जापान के प्रो ताकाकुसु ने जापान में हिन्दी की लौ जलाई। जापान के ही प्रो हिन्देयाकी इशीदा और दोशीकुमी मिजुनो, सेत्स सुजुकि, प्रो. मिजोकामी आदि हजारों विद्यार्थियों को हिन्दी शिक्षण दे रहे हैं।

इंग्लैंड के कैम्ब्रिज, ऑक्सफोर्ड, लंदन एवं यॉर्क विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषा के अध्ययन–अनुसंधान का काम चल रहा है। यहाँ डॉ रोनाल्ड स्टुअर्ट मेकग्रेगर, डॉ रूपर्ट स्नेल, रूस के मॉस्को विश्वविद्यालय, लेनिङ्ग्राद

विश्वविद्यालय, रूसी मानविकी विश्वविद्यालय, सेंट पीटर्सबर्ग आदि विश्वविद्यालयों में पीटर वरान्निकोव, जाल्मन डीम शित्स, अलेक्सान्दर सेंकेविच, येवूनी येलीशेव, हंगरी के इमरे बांगा, फ़िनलैंड के हेलसिंकी विश्वविद्यालय में प्रो. तातिक तिक्के, जेन्स ब्रोरगिन, इटली के प्रो.जोर्जो मिलोनेत्ती, डॉ. के जी फ़िलिपी, फ्रांस की सी बोदिवील, आस्ट्रेलिया के रिचर्ड बाज, कनाडा के प्रो क्रिस्टोफर आर किंग, उज्बेकिस्तान के प्रो आजाद समाटोव, रोमानिया की प्रो निकोलाय ज्वेर्या, श्रीलंका की इंद्रा दासनाय के विदेशों में हिन्दी की अलख जगा रहे हैं। अमरीका के 110 से ज्यादा विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है।

यहाँ प्रो. माइकल शपीरों प्रो. कैरीन शोमर, प्रो क्रिस्टी मेरिल, प्रो. फिलिप लुट्जेनडोर्फ, प्रो. सारा कोहिम आदि हिन्दी के प्रचार प्रसार में जुटे हैं। बहुत से प्रवासी भारतीय भी अपने हिन्दी प्रेम के कारण इन देशों में हिन्दी की मशाल को जलाए हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह हिन्दी के बढ़ते प्रभाव का ही कारण है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में ही पिछले 10 वर्षों में हिन्दी सीखने आने वाले छात्रों की संख्या ढाई गुणी हो गई है। हिन्दी का उद्देशय भारत के त्रि आयाम से आगे बढ़कर चौथे आयाम के रूप में विश्वभाषा बनकर उभरना है। इसका राजनैतिक और कूटनीतिक पक्ष है– हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा के रूप में मान्यता मिलना। दूसरा व्यावहारिक पक्ष है हिन्दी को बाजार और कम्प्युटर की भाषा के रूप में विकसित होना। आज सम्पूर्ण विश्व भारत से जुड़ना चाहता है और अगर भारत से जुड़ना है तो इसके लिए उसे हिन्दी से जुड़ना ही पड़ेगा। आपको जानकार आश्चर्य होगा कि हिन्दी विश्व के 180 से भी ज्यादा विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। कुछ विद्वानों ने हिन्दी के लिए जो उक्तियाँ दी है वो मैं आपको पढ़कर सुनाती हूँ :–

चेकोस्लोवाकिया के ओदोलेन स्मेकल का कहना है कि, ''हिन्दी भारत की सामासिक संस्कृति की प्रतीक है''। (प्रतिवेदन, पृष्ठ 51, द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन) जापान के प्रोफ दोई का कहना है, 'यदि संसार में एक संपर्क भाषा हो तो वह हिन्दी ही हो सकती है''। (प्रतिवेदन, पृष्ठ 54, द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन) स्वीडन के श्री श्लीनाद पियर्सन का कहना है– '' हिन्दी की जय! विश्व की जय! (प्रतिवेदन, पृष्ठ 62, द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन)

मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, फीजी आदि सुदूर देशों में हिन्दी कितनी समृद्ध है और कैसी पहुंची इसकी कहानी बहुत अनोखी है। 150 वर्ष पहले 1834 से 1920 में ब्रिटिश के उपनिवेश भारत से (उस समय हम अंग्रेजों के गुलाम थे) अनुबंधित श्रमिकों को पाँच से 10 वर्ष के अनुबंध पर गन्ने की खेती और अन्य श्रम के कार्यों के लिए ले जाया गया था। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आए प्रवासी श्रमिकों के लिए आपसी बातचीत करने के लिए हिन्दी परस्पर संपर्क का माध्यम बनी। इस विषय में दक्षिण अफ्रीका के भवानी दयाल सन्यांसी ने कहा, "यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि केवल दक्षिण अफ्रीका ही नहीं प्रत्युत जिन–जिन उपनिवेशों में हमारे देशवासी गिरमिट प्रथा में गए हैं –यद्यपि वे एक–दूसरे से हजारों कोस दूर हैं, कोई प्रशांत महासागर के तट पर है तो कोई हिन्द महासागर के किनारे कोई अमेरिका के दक्षिणीय भाग में –उन सभी देशों के प्रवासी भारतीयों ने पारस्परिक व्यवहार के लिए एकमत से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा स्वीकार किया–उसी से अपनी तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति की। उन्होने उस समय से लेकर आज भी भारतीय संस्कृति, हिन्दी भाषा, धर्म की ज्योति को जलाए रखा है।

जैसे मॉरीशस के रामगुलाम का कहना है मैं मूलतः भारतीय हूँ, हिन्दी हमारी विरासत है इसमें हमारी

संस्कृति के प्राण है।"

फीजी के काशीराम कुमुद लिखते हैं, 'हम रक्तबिंदु से सींच सींच हिन्दी बिरवा पनपाते हैं'।[7]

इसी तरह सूरीनाम के महातम सिंह हिन्दी को अस्मिता की पहचान बताते हुए लिखते हैं :– 'अब दुनिया के लोगों सुन लो, एक खबर मस्तानी हिन्दी सीखो हिन्दी बोलो हिन्दी से ही हिन्दुस्तानी।'[8]

इन देशों में उस समय भारतीय श्रमिक हीनभावना से ग्रस्त थे और अंग्रेज़ी के सामने अपनी विभिन्न बोली मिश्रित हिन्दी को लेकर कुंठित रहते थे और हिन्दी को अइली–गइली, गंवार भाषा समझते थे लेकिन आज इन देशों में भारतवंशी अपनी हिन्दी की विशिष्ट शैली, अपनी अस्मिता की पहचान को लेकर गर्व महसूस करते हैं। उनकी इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने एक कविता आपके साथ साझा करना चाहूंगी कृपया ध्यान दे–कविता का शीर्षक है–

''माँ हिन्दी
माँ तो माँ है
चाहे वो सजी–धजी हो
या मैली–कुचौली
परिष्कृत हो या
अइली–गइली
मानक हो या
टूटल–फूटल
किचन में हो या संसद में
मोरिशिसिसन साड़ी में हो
या नैताली मैक्सी में
त्रिनिदाद के परिधान में हो
या फीजी फ्रॉक में
सरनामी वेश में हो
या गयाना के बाने में
रहेगी तो महतारी ही ना
जिसके आँचल में है खुशबू
मेरे वतन की
जिसके मंत्र में है
मंदिर का संगीत
जिसके गले लगकर
पा जाऊँ मैं सुकून
जिससे मैं बाँटू
दुख, पीड़ा, प्रेम सभी

जो फेरे सिर पर हाथ तो
ज्यों घाव पर मोरपंख छुला दे
उसके अंक में
मैं पाऊँ खुद को महफूज
वो मेरी माँ है
मेरा गर्व, मेरी शान
मेरी पहचान उसी से है।
जय हिन्दी!''

आज भी यहाँ के भारतवंशी हिन्दी बोलने में गर्व महसूस करते हैं और अब तो इन देशों में चटनी संगीत के रूप में हिन्दी का नया रूप सामने आने लगा है। हिन्दी की वैश्विक प्रतिष्ठा बढ़ने के ही कारण महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा ने 2014 में सात देशों के 12 विश्वविद्यालयों के साथ हिन्दी पढ़ाने की ज़िम्मेदारी के समझौते हुए हैं। बस जरूरत है विदेशी और भारत सरकार हिन्दी को निरंतर प्रोत्साहित करती रहे और इसके विकास के लिए योजनाओं पर कार्यान्वयन होता रहे।

जाते–जाते आपसे अपना एक अनुभव और साझा कर लूँ। अमरीका के बोस्टन शहर के स्टेशन में मैंने सामने से देखा लोकल ट्रेन आ रही है मैं उसको पकड़ने के लिए दौड़ी तो उसके अश्वेत ड्राईवर ने ट्रेन रोक ली और जैसे ही मैंने ट्रेन में कदम रखा, उसने कहा नमस्ते मैडम,–18 डिग्री तापमान में सुदूर अमेरिका के अनजान शहर में नमस्ते शब्द कानों में मानो मिश्री घोल गया। मैंने मुस्कराते हुए उसका जवाब दिया। उसने आगे कहा मुझे हिन्दी आता, हिन्दी गाना सुनता, हिन्दी फिलिम देखता। मैंने उससे बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाया। यह हिन्दी का ही कमाल था जो हम दो अनजान लोगों को, अनजान देश में इतने करीब से जुडने के लिए पुल का काम कर रही थी। इसी उम्मीद के साथ कि आज से हम सभी हिन्दी को अंग्रेजी से अधिक मान देंगे और हिन्दी पढ़ेंगे, बोलेंगे, लिखेंगे और हिन्दी में काम काज करेंगे। इसके साथ साथ आने वाली पीढ़ी को भी गर्व से हिन्दी सिखाएँगे। क्योंकि अब समय आ गया है कि उच्च स्तर पर भारत संघ के मंत्री और सचिव गण हिन्दी और केवल हिंदी में कामकाज करने की आदत डालें और बाकी काम अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं के अनुवादकों को करने दे। सब राजभाषा के रूप में हिन्दी सफल हो जाएगी तो रोजगार के अवसर और हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनने के अवसर अपने आप उसके कदम चूमेंगे।

संदर्भ :-

ई 127 फेज 2, अशोक विहार दिल्ली–52
Email : deeptiaggarwalmail@gmail.com

1. हिन्दी दैनिक जागरण, नई दिल्ली, दिनांक 5–1–1992
2. सम्मेलन पत्रिका भाग 55 संख्या 3–4 24वां अधिवेशन
3. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का पत्रक
4. विकास प्रभा, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, कफ परेड मुंबई –400005 की हिन्दी त्रैमासिकी, जुलाई–सितम्बर 1991
5. https://testbook.com
6. वर्मा, विमलेश कान्ति. हिन्दी स्वदेश में या विदेश में,सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली. पृ 25, 255
7. कुमुद, काशीराम.(हिन्दी बिरवा) विमलेश कान्ति वर्मा फिजी में हिन्दी की साहित्यिक परिधि, भाषा, मार्च/अप्रैल, 2003. पृ 55
8. सिंह, महातम. सौजन्य से डॉ मोहन कान्त गौतम, सूरीनाम में हिंदी का इतिहास वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएं सुरिन्दर, गंभीर (संपा) प्रवासी भारतीयों में हिन्दी की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2017. पृ 84

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 223-233

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन कवियों की कथानक रूढ़ियाँ

गौरव वर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध-सार :-

उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता हैं कि साहित्यक अभिप्राय तथा कथानक रूढ़ि अंग्रेजी के 'मोटिफ' शब्द का पर्याय है कथा में गतिशीलता को बनाये रखने के लिए कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया जाता है।

कथानक रूढ़ि में यूरोपीय विद्वानों का भी योगदान मिलता है हिन्दी साहित्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' से शुरुआत की।

मध्यकालीन कथानक रूढ़ि जो भक्ति काल में चन्द्रायन मधुमालती, मृगावती पद्मावत, रसरतन और रामचरित मानस में भी दिखाई देता हैं। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बोधा, ठाकुर आलम आदि ने कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया है। बोधा की विरहवारीश और आलम द्वारा रचित 'माधवानल काम–कंदला' में भी देखने को मिलता है।

मध्यकालीन कथानक रूढ़ियों को ब्रजविलास श्रीवास्तव ने दो भागों में किया है कवि कल्पित जिनमें प्रेम मूलक रूढ़ियाँ और रोमांचक कथानक रूढ़ियाँ और दूसरी लोकाश्रित कथानक रूढि का वर्णन किया है। कुछ अन्य कथानक रूढ़ियों का भी वर्णन किया गया है।

अतः कहा जा सकता कि मध्यकालीन काव्यों में कथानक रूढ़ि का प्रयोग खूब मिलता है जो कथा की घटनाओं को सरस और विस्तृत बनाकर गति और उपयुक्त मोड़ प्रदान करती हैं।

बीजक शब्द :- 1. 'मेटिफ', 2. कथानक रूढ़ि, 3. भक्तिकाल, 4. रीतिकाल, 5. पद्मावत, 6.रामचरित मानस, 7. आकाशवाणी, 8. उजाड़ नगर, 9. मूर्तिकन्या और प्रेम, 10. माधवानल कामकन्दला।

'अंग्रेजी में 'मेटिफ' का अर्थ प्रधान अभिप्राय या भाव होता हैं हिन्दी में उसके कई अर्थ प्रचलित हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कथानक रूढ़ि' शब्द को प्रसन्द करते हैं। डॉ. सत्येन्द्र ने इसके लिए 'अभिप्राय' और कथानक रूढ़ि दोनों शब्दों का प्रयोग किया हैं।'

'अंग्रेजी के 'मोटिफ' शब्द के लिए 'कथानक रूढ़ि' (कथा रूढ़ि) और 'अभिप्राय' (मूल अभिप्राय) – इन दो शब्दों का ही प्रयोग साधारणतः किया जा रहा हैं।'

कथानक रूढ़ि से तात्पर्य :-

किसी कथा के कहने के उस विशेष प्रकार के ढाँचे से हैं जिसका प्रयोग प्रायः सभी कथाओं में किया

गया– 'कथाकार इन घटनाओं की योजना इस ढंग से करता हैं कि उनके द्वारा कथा के चरित्रों का विकास वातावरण की सृष्टि तथा कथा में विकास हो।'

यूरोपीय विद्वानों का कथानक रूढ़ि में योगदान :–

भारतीय साहित्य की कथानक रूढ़ियों के विषय ब्लूम फील्ड ने अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी के जर्नल की छत्तीसवी, चालीसवी, एकतालीसवी जिल्दों में कई लेख लिखें हैं और 'पेजर' ने कथा सरित्सागर के नये संस्करण में अनेक महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी हैं।

इस विषय पर अन्य कई यूरोपियन पंडितों ने भी विशेभ भाव से परिश्रम किया हैं जिनमें डबल्यू नार्मन ब्राउन का नाम उल्लेखनीय हैं यद्यपि जर्मन पंडित की कृतियाँ बहुत पुरानी हो गई हैं तथापि वे इस विषय के जिज्ञासुओं के काम की चीज हैं। साधारणतः इन पंडितों ने कहानियों के अभिप्रायों के विषय में ही काम किया है परन्तु उस अध्ययन का उपयोग परवर्ती ऐतिहासिक कथाओं के क्षेत्र में भी उपयोगी हैं।

हिन्दी साहित्य में कथानक रूढ़ि :–

सर्वप्रथम कथानक रूढ़ियों की ओर हिन्दी जगत् का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी को प्राप्त हैं जिन्होंने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में इनके महत्व से परिचित कराया।

कथानक रूढ़ि की परिभाषा :–

हजारी प्रसाद द्विवेदी :– 'संभावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ि में बदल गए हैं।'

डॉ. नामवर सिंह :– 'अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए चकवा–चकवी, चकोर, अशोक, हंस, कामदेव, कोकिल, चम्पक, सहकार (आम) आदि कवि–समयों की विषयवस्तु को भी 'मोटिफ' कहा हैं।'

डॉ. शम्भूनाथ सिंह :– 'इन कथानक रूढ़ियों में से कुछ तो निजंधरी विश्वासों पर आधारित होती हैं और कुछ कवि–कल्पना–जन्य (सम्भावना के कारण) होती हैं जो बार–बार प्रयुक्त होकर रूढ़ि बन गई है।'

ब्रजविलास श्रीवास्तव :– काव्य में अभिप्राय मुख्य रूप से उस परंपरागत विचार आइडिया को कहते है जो अलौकिक और अशास्त्रीय होते हुए भी उपयोगिता के कारण कवियों द्वारा गृहीत होता हैं और बाद में चलकर रूढ़ि बन जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के उपरांत कहा जा सकता है कि जो घटनाएँ कथा को सरस और विस्तृत बनाकर गति और उपयुक्त मोड़ प्रदान करती हैं वे कथानक रूढ़ियाँ कहलाती हैं।

'स्त्री की दोहद कामना' एक चिर प्रचलित भारतीय कथानक रूढ़ि है, जिसके अनुसार प्रत्येक गर्भवती स्त्री की इच्छा पूर्ति उसके पति द्वारा अनिवार्य है। इस प्रकार यह रूढ़ि परम्परागत ढंग से काव्य या कथा में आज प्रचलित है। अतः कहा जा सकता है कि सामान्यतः कथा को गतिशील, सरस, चमत्कारिक, रोमांचक एवं कुतुहलपूर्ण बनाने के लिए कथाकार कुछ घटना परक विशेषताओं के आश्रित होता हैं जो कथाकाव्यों और लोक–कथाओं में दीर्घकाल से ही व्यवहत है ऐसी घटनाओं के अनुकरण का नैरन्तर्य कथानक रूढ़ि कहलाता है।

कथानक :–

रूढ़ियाँ कथाओं में घटना–व्यापार को आगे बढ़ाती हैं। अलौकिक तथा आश्चर्य जनक क्रिया–कलापों का समाधान प्रस्तुत करती हैं और श्रोताओं तथा पाठकों में उत्सुकता की वृद्धि करके कथा को रोचक बनाती हैं इनका विविध वर्गीकरण किया गया है :–

1. पात्र रूप में – कथाओं में देवता, असमान्य पशु, चुडैल, राक्षस, अप्सरा, गन्धर्व किन्नर, जैसे अप्राकृत–अलौकिक प्राणी और परम्परा प्रथित मानव जैसे सबसे प्रिय छोटा बालक, क्रूर 'सौतेली माँ'।

2. कतिपय ऐसी वस्तुओं के रूप में जो कथा–व्यापार में काम आती हैं जैसे– जादू की वस्तुएँ असामान्य खोज, अद्‌भूत विश्वास आदि।

3. घटनामूलक– घटनामूलक के अन्तर्गत बहुत बड़ी संख्या में कथानक रूढ़ियाँ आ जाती हैं इससे स्पष्ट हैं कि कथानक–रूढ़ि में कथा वस्तु के प्रायः सभी अंग अनुस्यूत हैं, क्योंकि कथानक का निर्माण घटना, चरित्र और कार्य तीनों के योग से होता है इस प्रकार कथानक– रूढ़ियों को कथानक का लोक–कथात्मक रूप कहा जा सकता है।

प्रत्येक देश के साहित्य में अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण कुछ साहित्य–सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन जाती है और यान्त्रिक ढंग से उनका प्रयोग साहित्य में होने लगता है। इन सभी रूढ़ियों को साहित्यक अभिप्राय कहते हैं।

मध्यकालीन कथानक रूढ़ियाँ :–

'भारतीय इतिहास के मध्यकाल का प्रारम्भ हर्षवर्धन की मृत्यु (648) के बाद माना जाता है तथा उन्नीसवीं शताब्दी को इसका अन्तिम छोर स्वीकार किया गया हैं। इस लम्बी कालावधि के भी दो भाग स्वीकृत है– पूर्व मध्ययुग (लगभग 12 वीं शताब्दी तक) और उत्तर मध्य युग (13वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी तक) इतिहास की इसी काल सीमा में भारतीय साहित्य के इतिहास का मध्यकाल (8वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक) स्वीकार किया गया है और इसी समय–सीमा के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल (13वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक) पूर्वमध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल तथा उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल के खण्ड़ों में विभाजित स्वीकृत हैं।'

मध्यकालीन साहित्य इन रूढ़ियों और अभिप्रायों का जीता–जागता उदाहरण हैं वैष्णव–भक्ति सामान्य लोक जनों की वस्तु थी। इसी कारण इसका प्रसार और प्रचार लोकभाषा के माध्यम से किया गया था। मध्ययुगीन कवियों का जुड़ाव लोक जीवन से होने के परिणाम स्वरूप इनकी रचनाओं में लोकाश्रित रूढ़ियाँ और अभिप्राय नैसर्गिक रूप में अंकित हुए हैं जबकि उत्तर मध्यकाल अथवा रीतिकालीन कवियों का संबंध लोक से न होकर अप्रत्यक्ष रूप में ही दिखाई देता है।

भक्तिकाल :– 'भक्तिकाल के प्रबन्धकाव्यों में कथानक रूढ़ियों को बहुत अधिक स्थान मिला है। हिन्दी के प्रेमाख्यानक कथा काव्यों का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनमें चन्दायन, मधुमालती, मृगावती, पद्‌मावत् तथा मधुमालती एवं रसरतन आदि हैं। रामचरित मानस का भी इस दृष्टि से कम महत्व नहीं है।'

रीतिकाल :– डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव के कथानानुसार की जा सकती हैं 'पूर्वमध्यकाल में साहित्य का जो प्रवाह लोकाश्रित हो गया था। उत्तर मध्यकाल में वह फिर राज दरबारों में चला गया। पर उत्तर मध्यकाल

में युगीन परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण राज्याश्रित काव्यधारा अधिक बलवती हो गयी। यद्यपि लोकाश्रित काव्यधारा का प्रभाव भी टूटा नहीं मन्द अवश्य हो गया।'

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि बोथा, ठाकुर आलम आदि ने लोकाश्रित रूढ़ियों का प्रयोग किया हैं। कवि बोथा ने तो प्रेमाख्यानपरक 'विरहवारीश' नामक प्रबंध काव्य की रचना की है। उन्होंने अपने काव्य में बुंदेलखंड क्षेत्र में प्रचलित कथानक रूढ़ियों, रीति–रिवाजों, विश्वासों आदि का सजीव रूप में चित्रण किया है। इसी प्रकार कुछ कथानक रूढ़ियाँ आलम द्वारा देखने को मिलती है।

डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव– ने कथानक रूढ़ियों को दो भागों में विभक्त किया है– 'कवि–कल्पित एवं लोकाश्रित कथानक रूढ़ियाँ। कवि–कल्पित कथानक रूढ़ियाँ अलौकिक एवं चामत्कारिक होती हैं यद्यपि इन रूढ़ियों की कल्पना सामग्री बहुत कुछ लोक–विश्वास पर ही आधृत हैं किन्तु ये लोक विश्वास पर आश्रित नहीं होती। क्योंकि इनका निर्माण कवि की सर्जनात्मक–कल्पना द्वारा ही संभव है जबकि लोकाश्रित कथानक रूढ़ियाँ, लोक–विश्वास पर आधारित होती हैं और ये अवैज्ञानिक असंभव एवं भ्रममूलक होती है।'

कवि कल्पित– 'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में प्रयुक्त कवि–कल्पित कथानक–रूढ़ियों को विषय और शिल्प की दृष्टि से प्रेममूलक और रोमाचक इन दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

प्रेममूलक कथानक रूढ़ियाँ– कथाकारों ने अपनी कथाओं में नायिका के हृदय में नायक के प्रति और नायक के हृदय में नायिका के प्रति आकर्षणजन्य प्रेम उत्पन्न कराने के लिए विभिन्न रूढ़ियों का अवलंबन लिया है।

स्वप्नदर्शन–जन्य प्रेम– प्रेमाख्यानक काव्यों में कहीं–कहीं स्वप्न दर्शन द्वारा भी प्रेम उत्पन्न होने का वर्णन मिलता है 'रसरतन' का नायक सूरसेन और नायिका रम्भावती एक दूसरे को स्वप्न में देखते हैं। स्वप्न दर्शन मात्र से ही दोनों के हृदय में परस्पर आकर्षण उत्पन्न हो जाता है इस स्वप्न दर्शन में रति और कामदेव का हाथ था यथा–

'हौ चलिहो चम्पावती, सूर सैनि धरिभे।
सपनांतर रम्भा उरहँ करन विरह उपदेस।।

'मधुमालती' में भी इस कथानक रूढ़ि का संकेत मिलता है।

यथा–

कुँवर एक सपने मैं देखा। सपन रूप सौतुंख कर लेखा।
विघने मदन मूरति निरमएऊ। जम न होइ पै जिउ लै गएऊ।।'

चित्रदर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति :-

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में इन्द्रावती, चित्रावली और रत्नावली की प्रेमकथा का आरम्भ चित्र दर्शन से ही होता है।

चित्रावली में कुमार उस चित्रसारी में चित्रावली का चित्र देखकर प्रेम विह्वलता में आत्मसंज्ञा ही भूल जाता है चित्र देखते ही उन्मत्तता की यह स्थिति होती है कि–

'कबहूँ सीस पाइ तर थरही, कबहुँ ठाढ होइ विनती करई।
कबहूँ चाहै अंचल गहा, हाथ न आवं अचक मन रहा।।

कुमार वही रखे हुए रंग और तलिका से चित्रावली के पास ही अपना चित्र भी बना देता हैं। चित्र में उसका मस्तक रत्नावली के चरणों पर रहता हैं–

हिए विचारि चित्र तव लिखा, वहि चरनतर आपन सिखा।'

रूप–गुण–श्रवण–जन्य आकर्षण– जायसी ने पद्मावत में रतनसेन और पद्मावती का प्रेम प्रसंग आरम्भ करने के लिए इसी रूढ़ि का सहारा लिया शुक द्वारा पद्मावती के रूप गुण का वर्णन सुनकर ही रतनसेन के मन में पद्मावती के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है।

'हीरामन शुक द्वारा पद्मावती के किये गये, नख–शिख वर्णन को श्रवण कर रत्नसेन मूर्छित हो जाता है, और प्रेम की अलौकिक चोट की अनुभूति करने लगता है। यथा–

सुनतहि राजा गा मुरूछाई। जानहुँ लहरि सुरूज कै आई।।

प्रेम धाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जाने पै सोई।'

मूर्तिकन्या और प्रेम– मूर्ति अथवा अन्य किसी जड़ वस्तु के रूप में सुन्दरी नायिकाओं की स्थित होना भारतीय कथा–साहित्य का प्रिय और बहु प्रयुक्त रूढ़ि हैं–

'हिन्दी प्रेमाख्यानों में आलमकृत 'माधवानल कामकन्दला' में इस रूढ़ि का उपयोग किया गया हैं जयन्ती नामक अप्सरा शापग्रस्त होकर वन में शिला के रूप में पड़ी रहती हैं और माधव द्वारा उसका उद्धार होता है।'

शुक–शुकी– मध्यकालीन प्रबन्धकाव्यों में शुक–शुकी का मुख्यत दो रूपों में उपयोग किया गया है–

1. कहानी कहने वाले वक्ता–श्रोता के रूप में।
2. कथा के पात्र–प्रायः प्रेम संघटक और संदेश वाहक के रूप में।

शुक द्वारा कथा वर्णन का ही दूसरा रूप उन कथाओं में दिखलाई पड़ता है जिनमें शुक–शुकी या शुक सरिका के परस्पर संवाद के रूप में कथा कही जाती है।

हिन्दी के मध्यकाल की विरहिणी नायिकाओं के दुख के समय तो इन पक्षियों ने ही सबसे अधिक सहायता की हैं पद्मावती के प्रेम में डूबे हुए रतनसेन को नागमती की वियोग व्यथा की सूचना देकर उसे चित्तोड और नागमती की याद दिलाने का कार्य एक पक्षी करता है।

प्रिया–प्राप्ति के लिए योगी बनना– प्रिया प्राप्ति के लिए नायक का योगी के वेश में जाना मध्यकाल के हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों का विशिष्ट रूढ़ि हैं। 'मधुमालती' में नायक ने गोरख वेश धारण कर लिया।

सप्त समुद्रों की यात्रा– योगी होने के बाद वन, पर्वत, समुद्र आदि भयंकर स्थानों और दुरुह मार्गों से होकर जाने का वर्णन भी सभी प्रेमाख्यानक काव्यों में मिलता है।

'चित्रावली' में भी योगी नायक अनेक नगरों और स्थानों की यात्रा करने के बाद समुद्र के निकट पहुँचता है और कुटीचर द्वारा सप्त समुद्रों के पार एक अंधेरी में लाया जाता है–

सिंहलद्वीप की कन्या से विवाह– सिंहल देश की कन्या से प्रेम और विवाह पद्मावत का महत्वपूर्ण रूढ़ि है।

'हिन्दी में यह रूढ़ि का एक अन्य उदाहरण जान कृत रत्नावली में मिलता है जिसमें राजकुँवर रत्नावली से विवाह करके लौटते समय मार्ग में सिंहल देश की कन्या से भी विवाह करता है।'

उद्यान में नायक-नायिका मिलन :-

'रामचरित मानस राम और सीता में प्रथम दर्शन–जन्य प्रेम जनक फुलवारी में ही होता है।

'चित्रावली में कौलावती के मन में सुजान के प्रति प्रेम फुलवारी में ही उत्पन्न होता है अपनी फुलवारी में नायक सुजान को देखकर वह मूच्छित होकर गिर पड़ती है–

कोलावती आइ फुलवारी, फैलि गई चहुँ दिसि सब बारी।'

मंदिर में नायक–नायिका मिलन– कवि आलम ने अपनी 'स्याम–सनेही' रचना में रूक्मिणी और कृष्ण के मिलन स्थान के रूप में गौरी मंदिर का वर्णन किया है। गौरी मन्दिर में दोनों का मिलन और यही से कृष्ण–रूक्मिणी को अपने साथ ले जाते हैं–

'जानहू गौरी यहै पूजीया। देवी रीझि अनुग्रह कीन्हा।'

वन में सरोवर के पास सुन्दरी कन्या का दर्शन– कथा साहित्य के प्रेम संघटक अभिप्रायों में वन में सरोवर के पास सुन्दरी कन्या का दर्शन और प्रेम सबसे अधिक प्रचलित हैं–

'मृगावती में भी राजकुँवर आखेट के समय हरिणी का पीछा करते हुए एक सरोवर तक पहुँचता है वह हरिणी उसमें कूदकर अदृश्य हो जाती है एक वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद राज कुँवर इसी सरोवर में स्नान के लिये आई मृगावती को वस्त्र–हरण के द्वारा प्राप्त करता है।'

रोमांचक कथानक रूढ़ियाँ– समुन्द्र–यात्रा के समय जलपोत का टूटना– मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में पद्मावत, मधुमालवती, इन्द्रावती, चित्रावती और पुहुपावती में अभिप्राय के रूप में इसका प्रयोग किया गया है।

'मधुमालती' में यह रूढ़ि का प्रयोग है नायक योगी रूप धारण करने के बाद तुरन्त समुद्र यात्रा ही करता है चार मास तक जल में यात्रा करने के बाद अचानक एक दिन समुन्द्र में भयंकर तूफान आता हैं चारों और अंधकार छा जाता हैं, दिशा का ज्ञान नहीं रह पाता हैं ओर अन्त में लहरों के आघात से बोहित टूट जाता हैं। नायक के अतिरिक्त अन्य सभी मित्र परिजन समुन्द्र में डूब जाते हैं।

'किन्तु विधि की कृपा से नायक को सम्मुख काष्ठफलक दिखलाई पड़ जाता है और उस काठ के सहारे कुमार अचेत स्थिति में एक निर्जन तट पर पहुँचता हैं–

भौ कुंअरहि जे काठ–अधारा। समुद्र लहरि उठी अपारा।'

भरूण्ड–हंस आदि की पीठ पर यात्रा– चित्रमुकुट कथा में योगी रूप में राजा चित्रमुकुट अनेक गिरिवरों और वनखण्डों को पार कर समुन्द्र के किनारे पहुँचता है उसके साथ के सभी राजकुमार उस समुन्द्र को देखकर डर जाते हैं वहाँ कोई नाव भी नहीं दिखाई पड़ती। ऐसे समय में मार्ग–दर्शक हंस राजा की सहायता करता हैं और उसे अपने पंख पर बैठाकर समुद्र पार, रानी चन्द्रकिरन के देश को ले जाता है–

विलपत छाड़े राज कुँवारे। चढ़ि बैठे हंसा पांष पसारे।।

राज कुँवर पंछी भए सरग चढ़े इहि भेष।

उजाड नगर– भारतीय कथा–साहित्य में जन–शून्य नगर की चर्चा प्रायः आती हैं।

मधुमालती में नायक कुमार मधुमालती की खोज में भटकते हुए एक भयंकर उजाड़ वन में पहुँचता है वहाँ एक महल में उपनायिका प्रेमा के दर्शन होते हैं जो एक वर्ष से उस जन हीन स्थान में एक राक्षस की वन्दिनी होकर निवास कर रही थी–

'एक बरसि था मोहि एहि ठाऊँ,
सपने न–सुना मानुस नाऊ।'

वन मार्ग में भूलना– हिन्दी के कई प्रेमाख्यानक काव्यों का प्रारम्भ इसी घटना से हुआ है कुछ नायक नायिका मिलन के मुख्य अभिप्राय के सहायक के रूप में इसका उपयोग किया गया है।

'इन्द्रावती' के 'मधुकर–खण्ड' में उपश्रुति के सहायक के रूप में इसका–उपयोग किया गया है। वन मार्ग भूलने से मधुकर को दो पक्षियों की बातचीत सुनने का अवसर मिलता हैं और उस बातचीत में मालती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर नायिका प्राप्ति का प्रयत्न प्रारम्भ होता है।'

विवाह के लिए असामान्य कार्य–संपादन की शर्त – 'रामचरित मानस् में राम सीता का विवाह–प्रसंग, 'विवाह के लिए असमान्य कार्य सम्पादन की शर्त के अभिप्राय को लेकर निर्मित हुआ है।

'रामचरितमानस' में सीता के विवाह के लिये कठिन कार्य– सम्पादन की शर्त इस रूप में रखी गई है–

नृप भुज बल विधु सिव धनु राहू। गरुअ कठोर विदित सब काहू।।
रावनु बान महा भट भारे। देवि सरासन गवहि सिधारे।।'

लोकाश्रित कथानक रूढ़ियाँ :-

सत्यक्रिया– मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध–काव्य 'सत्यवती कथा' में सत्यवती अपने पतिव्रत की सत्यक्रिया द्वारा सूर्योदय नहीं होने देती है। यहाँ पति को मृत्यु के शाप से बचाने के लिए सत्यवती को सत्यक्रिया का सहारा लेना पड़ता हैं सत्यवती निश्चय करती है कि वह प्रातः काल ही नहीं होने देगी। इस आश्चर्यजनक घटना के घटित होते ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारद तथा अन्य देवता और किन्नर, गन्धर्व आदि उस सती के पास जाकर अन्धकार दूर करने की प्रार्थना करते हैं पुनः सत्यवती सतीत्व की सत्यक्रिया के द्वारा ही अन्धकार को दूर करती है–

'जौ मैं सती जाइ अंधियारा
होइ विहान सकल संसारा।'

परकाय–प्रवेश– योगशास्त्र में वर्णित अनेक सिद्धियों में 'परकाय प्रवेश' थी एक सिद्धि हैं इस सिद्धि या विद्या के द्वारा कोई व्यक्ति अपने शरीर को छोड़कर किसी दूसरे जीवित या मृत प्राणी में प्रवेश कर सकता है।

परकाय प्रवेश के अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण– कथाकोश कथा सरित्सागर, प्रबन्ध चिन्तामणि तथा बेताल–पंचविशंति में मिलते हैं कथाकोश में राजकुमार अमरचन्द अपनी नवविवाहिता पत्नी जयश्री के प्रेम और सतीत्व की परीक्षा के लिए दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है, परिणाम स्वरूप उसका शरीर निर्जीव हो जाता है जयश्री उसके मृत शरीर को लेकर ज्यों ही चिता में प्रवेश करने जाती है वह पुनः अपने शरीर में वापस आ जाता है।'

उपश्रुति– किन्ही दो मानवेतर प्राणियों– पशु–पक्षी, राक्षस आदि की बातचीत की उपश्रुति और उससे महत्वपूर्ण सूचना को प्राप्त होना भारतीय कथाओं के सबसे अधिक प्रचलित और उपयोगी कथा–कौशलों में है।

मध्यकाल के हिन्दी कवियों में नूरमुहम्मद ने अपने काव्य 'इन्द्रावती' की उपकथा– मधुकर–मालती– प्रसंग में इस अभिप्राय का प्रयोग किया हैं मधुकर आखेट के समय जंगल में भटककर एक वृक्ष के नीचे लेट जाता है उसी समय दो शुक उस वृक्ष पर आकर बैठते हैं और उनकी वार्ता प्रारम्भ हो जाती है। मधुकर वृक्ष के नीचे लेटे हुए उनकी बातचीत सुनता रहता है उनमें से एक नायिका मालती के देश और उसके रूप सौन्दर्य आदि की

कहानी सुनाते हुए कहता है कि ऐसी सुन्दरी कन्या संसार में कही नहीं है साथ ही वह उसके देश में पहुँचने तथा उसे प्राप्त करने का उपाय बतला देता है।

रूप परिवर्तन :- रूप परिवर्तन कथा साहित्य की एक प्रिय कथानक–रूढ़ि हैं देवी–देवताओं द्वारा रूप परिवर्तन। राक्षस, राक्षसी, पिशाच, आदि के रूप–परिवर्तन सम्बंधी कथारूप विशेष महत्व रखते हैं।

'रामचरितमानस' में सीता हरण के लिए एक ओर तो मारीच कंचन मृग बनकर राम को वन में दूर ले जाता हैं और दूसरी ओर रावण ब्राह्मण–रूप में छल पूर्वक सीता का हरण करता है।'

कहीं–कहीं नायिका भी अन्य रूप धारण करती हैं– जैसे– मृगावती में नायिका–मृगी का रूप धारण करती हैं वह बताती हैं– मृगी का रूप मैंने तुम्हारे लिए ही धारण किया था। दूसरी बार भी तुम्हारे लिये ही यहाँ पहुँची। मैंने एकादशी के पवित्र दिन पर ही तुम से भेंट करने का संकल्प किया था–

'मिरगावती कहा सुनु राजा। तुम लगि मिरग धरी हम छाया।'

आकाशगमन :- मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में इनमें से अधिक विधाओं का किसी न किसी रूप में प्रयोग किया गया हैं हनुमान भी आकाश मार्ग से उड़कर सबेरा होने के पूर्व ही संजीवनी जड़ी लाते हैं यहाँ हनुमान अलौकिक शक्ति के चित्रण द्वारा पाठक को प्रभावित और चमत्कृत करने के लिए इस अभिप्राय का उपयोग किया ही गया है।

मृत व्यक्ति का जीवित होना– मृत व्यक्तियों को जीवित कर देने का अभिप्राय भी लोक कथाओं में बहुत प्रयुक्त हुआ हैं इस प्रकार की रूढ़ि रीतिमुक्त प्रबंध में मिलती है।

माधव व कंदला दोनों की मृत्यु का वर्णन बोधा और आलम दोनों के काव्य में मिलता हैं विक्रमादित्य दोनों की मृत्यु के इस भयंकर अपराध के प्रायश्चित के निमित्त चिता में जलकर मर जाने के लिए ज्यों ही तैयार होते हैं बेताल आकर उन्हें रोकता हैं और ऐसा करने का कारण पूछता है सारा वृत्तांत सुनकर वह पाताल से अमृत लाकर नायक–नायिका को पुनः जीवित कर देता हैं इस प्रसंग का वर्णन दोनों कवियों ने अपने–अपने काव्य में किया हैं– 'सुधा प्रवेस कंठ मो जबहीं। कहि या दोस्त उठो द्विज तबही'।

अज्ञान में अपराध और शाप :- कथा काव्यों में मुख्यतः अज्ञान में अपराध और शाप का कथानक रूढ़ि के रूप में प्रयोग हुआ है शाप संबंधी प्रसंग कवि बोधा के 'विरहवारीश' प्रबंध में मिलता हैं एक दिन काशी में आए हुए एक ब्राह्मण ने वहाँ के सभी पंडितों को हरा दिया था यही बात जब लीलावती को मालूम हुई तो उसने भी शास्त्रार्थ किया और ब्राह्मण को पराजित किया। स्त्री द्वारा पराजित होने और नगरवासियों द्वारा हंसी उड़ाए जाने पर इस ब्राह्मण ने लीलावती को वैधव्य का दुख भोगने का शाप दिया–

'सपहास भए पर जरयौ विप्र। तिहि साप दीन्ह बानि ताहि छिप्र।
जस हन्यौ मोर अभिमान बाल। तस हौं दीनों यह साप हाल।'

अन्य सामान्य कथानक रूढ़ियाँ :- 'ऊपर जिन लोकाश्रित कथाभिप्रायों का विवेचन किया गया है उनके अतिरिक्त अन्य कुछ ऐसे सामान्य अभिप्रायों का प्रयोग मध्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में हुआ है जो कथा साहित्य के ही नहीं, समूचे भारतीय शिष्ट और लोक साहित्य के बहुप्रचलित अभिप्राय हैं।'

देवी देवता–शिव पार्वती– देवी देवताओं में भी लोक कथाओं में शिव–पार्वती का वर्णन है।

'विरहवारीश में शिव द्वारा सहायता करने के अनेक प्रसंग हैं जब ब्राह्मण लीलावती को शाप देते हैं तो

वह दुखी होकर बारह वर्ष तक कठिन तपस्या करती है तत्पश्चात महादेव प्रसन्न होते हैं तभी उसने महादेव से कामदेव के समान पति का वरदान माँगा–

'साप सबै बनिता पर बीती। चरन सरन संकर कौ चीती।

आलम की रचना 'स्याम सनेही' में रूक्मिणी गोरी–पूजा करती है। वह सुन्दर वर माँगती हैं–

गवरि पूजि इतनो जनि खगहू
केवल नैन सुन्दर वरू मागहु
हित पूजा देवी के करहू'

शकुन–अपशकुन संबंधी कथानक रूढ़ि– चन्दायन में इस कथानक रूढ़ि का अच्छा प्रयोग हैं। वाजिर द्वारा रूप वर्णन श्रवण करके रूपचन्द चाँद को अपनी.... पत्नी बनाने का निश्चय करता हैं इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह अपनी विशाल चेतना लेकर चाँद के पिता राजा राय महर के ऊपर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करता है युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगते हैं–

'सूके रूख कागरिरियाये। जोगी आवा भसम चढ़ाये।
दहिने दिसिहुत भर्रा आवा डंवरू बायें हाथ बजावा'।।

आकाशवाणी :- आकाशवाणी तो भारतीय साहित्य का इतना प्रचलित अभिप्राय है कि सभी काव्य रूपों में समान रूप से इसका प्रयोग किया गया है। मध्यकाल के अधिकांश पौराणिक और रोमांचक शैली के प्रबन्ध काव्यों में आकाशवाणी का विभिन्न प्रयोजनों से उपयोग किया गया है।

भविष्य सूचक स्वप्न– समाज में बहुत सी बातें अन्ध–विश्वासों के आधार प्रचलित रहती हैं मानव जीवन में ये विभिन्न रूपों में व्याप्त रहती है, यथा– स्वप्नों के द्वारा अनुमान लगाना।

'जायसी के पद्मावत में भी पद्मावती और रत्नसेन के भावी मिलन की सूचना स्वप्न के माध्यम से पद्मावती को प्राप्त होती हैं–

'देव पूजि जस आइउं काली। सपन एक निसि देखिउं आली।।
जनु ससि उवौ पुरुष दिसि कीन्हा। औ वि उदौ पछिवँ दिसि लीन्हा।।'

षद्रऋतु और बारह मासा के माध्यम से विरह वेदना :-

भारतीय प्रेमाख्यानपरक प्रबंधों में ऋतुओं एवं बारह महीनों के वातावरण के आधार पर विरह–वर्णन की पुरानी कथानक रूढ़ि हैं। बोधा ने 'विरह वारीश' में प्राचीन काल से चली आ रही परिपाटी के अनुसार विरहिणी नायिका के विरह का चित्रण किया है। उन्होंने लीलावती के वियोग वर्णन में बारहमासा पद्धति को अपनाया है लीलावती माधव से बिछुड़ने के पश्चात् विरह–ज्वाला में जलती रहती है–

जेठ मास पुहुपावती तजी माधवा मित्त।
ता दिन ते लीलावती धीरज धरयौ न चित्त।।

कवि ने ज्येष्ठ मास से लेकर बैसाख तक के बीच में लीलावती की करुण–दशा का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट है कि रीतिमुक्त काव्य में प्रचलित भारतीय कथानक रूढ़ियों का मणिकांचन संयोग हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी सूफी काव्य में पौराणिक आख्यान, डॉ. उमापति चन्देल, प्रकाशक–अभिनव प्रकाशन, पृष्ठ 274
2. वही, पृष्ठ 274–275
3. मध्य युगीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त–काव्य रूढ़ियों का अध्ययन, डॉ. देवनाथ चतुर्वेदी, प्रकाशक– हिन्दी भवन विश्व भारती, शान्ति निकेतन, पृष्ठ 198
4. हिन्दी और फारसी का सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. निवास बत्रा, प्रकाशक– नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ 331
5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक– बिहार राष्ट्र भाषा–परिषद, संस्करण– तृतीय–1961, पृष्ठ 80
6. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोकतत्त्व– जगदेव कुमार शर्मा, प्रकाशक– संजय प्रकाशन– प्रथम संस्करण–2003, पृष्ठ 253
7. मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यानों के कथानक का अध्ययन, डॉ. इन्दु बाली, प्रकाशक–Published by Reserach Publictions in Social Science. पृष्ठ 10
8. मध्यकालीन लोक–चेतना – सम्पादक डॉ. रवि कुमार, 'अनु' – प्रकाशक– संजय प्रकाशन, पृष्ठ 158
9. मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त काव्य रूढ़ियों का अध्ययन, डॉ. देवनाथ चतुर्वेदी, प्रकाशक– हिन्दी भव विश्वभारती, शान्ति निकेतन, पृष्ठ 199
10. रीतिकालीन रीतिमुक्ति काव्य में लोकतत्व– जगदेव कुमार शर्मा, प्रकाशक– संजय प्रकाशन– प्रथम संस्करण–2003, पृष्ठ 25
11. वही, पृष्ठ 257
12. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में कथानक रूढ़ियाँ – डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रकाशक– हिन्दी प्रचारक संस्थान– प्रथम संस्करण–1968, पृष्ठ 111
13. मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त काव्य रूढ़ियों का अध्ययन – डॉ. देवनाथ चतुर्वेदी, प्रकाशक– हिन्दीभवन विश्वभारती शन्ति निकेतन, पृष्ठ 203
14. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में कथानक रूढ़ियाँ– डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रकाशक– हिन्दी प्रचारक संस्थान–प्रथम संस्करण–1968, पृष्ठ 123
15. मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त काव्य रूढ़ियों का अध्ययन – डॉ. देवनाथ चतुर्वेदी, प्रकाशक– हिन्दी भवन विश्व भारती, शन्ति निकेतन, पृष्ठ 201
16. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ – डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रकाशक– हिन्दी प्रचारक संस्थान– प्रथम संस्करण–1968, पृष्ठ 136
17. वही, पृष्ठ 156
18. वही, पृष्ठ 162
19. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोकतत्व– जगदेव कुमार शर्मा, प्रकाशक– संजय प्रकाशन– प्रथम संस्करण–2003, पृष्ठ 261

20. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ – डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रकाशक– हिन्दी प्रचारक संस्थान– प्रथम संस्करण–1968, पृष्ठ 172
21. वही, पृष्ठ 177
22. वही, पृष्ठ 189
23. वही, पृष्ठ 199
24. वही, पृष्ठ 207
25. वही, पृष्ठ 229
26. वही, पृष्ठ 242
27. वही, पृष्ठ 276
28. हिन्दी और फारसी का सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, लेखक डॉ. श्री निवास बत्रा, प्रकाशक– नागरी प्रचारणी सभा, पृष्ठ 381
29. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोक तत्व – जगदेव कुमार शर्मा, प्रकाशक– संजय प्रकाशन– प्रथम संस्करण–2003, पृष्ठ 267
30. वही, पृष्ठ 265
31. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ – डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रकाशक– हिन्दी प्रचारक संस्थान– प्रथम संस्करण–1968, पृष्ठ 303
32. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य में लोकतत्व – जगदेव कुमार शर्मा, प्रकाशक संजय प्रकाशन– प्रथम संस्करण–2003, पृष्ठ 266
33. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त काव्य रूढ़ियों का अध्ययन– डॉ. देवनाथ चतुर्वेदी, प्रकाशक– हिन्दी भवन विश्व भारती, शान्ति निकेतन, पृष्ठ 241

मो. 8447668439

ई–मेल–gaurav.du2015@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 234-236

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में विविध विमर्श

(संजीव कृत – 'खुली आँखें' कहानी के संदर्भ में)

डॉ. बलवंत बाळासाहेब शिवाजी

सहयोगी प्राध्यापक, कर्मवीर भाऊराव पाटील (स्वायत्त) महाविद्यालय, पंढरपूर।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में संजीव एक प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में रहे है। संजीवजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बांगर कुल गांव सुलतानपूर में 6 जुलाई 1947 में हुआ है। उन्होंने 38 साल तक इंडियन आयरन एंड स्टील कंपनी की रासायनिक प्रयोगशाला में रसायन विशेषज्ञ के रूप में काम किया है। वे पीछले सात सालों से 'हंस' पत्रिका के साथ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं से संपादक लेखक के रूप में जुडे है। अब तक लगभग उनकी 150 कहानियाँ और 14 उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। जिसमें – 1) सुत्रधार, 2) धार, 3) सावधान! निचे आग है 4) किशनगढ के अहेरी, 5) राकेस, 6) जंगल जहाँ से शुरू होता है, 7) पाँवतले की दूब, 8) फाँस, 9) आकाशचर्चा, 10) रानी की सराय, 11) डायन (बाल उपन्यास) अब तक के उनके साहित्य सृजन के लिए संजीव को विविध पुरस्कार मिले है 'सारिका', 'कथाक्रम', 'अंतराष्ट्रीय इन्दू शर्मा', 'भिखारी ठाकूर', प्रेमचंद, पहल, सुधा, स्मृति, इक को श्रीयल शुक्लस्मृति आदि अनेकानिक।

डॉ. संजीव के साहित्य के बारे में डॉ. सुनील कुमार लवटेजी का कहना है, कि संजीव जी का साहित्य तार्किक मार्क्सवाद की ओर जानेवाला है। अर्थात संजीवजी शोषित –पीडित किसान, दलितों की कथा को वाणी देनेवाले कहानीकार है।

संपादक संजीव जी की अगस्त 2022 में 'हंस' पत्रिका में खुली आँखे कहानी प्रकाशित हो चुकी है। प्रस्तुत कहानी देश की वास्तव स्थिति के प्रति संकेत करती है। जिसमे देशप्रेम के साथ वह समाज को कुछ सवाल भी पुछते है। मणिपूर के मनोरमा की कहानी सोचने के लिए विवश करनी वाली है। मनोरमापर पैरामिलिटरी फौज के जवानों ने रेप कर के उसे मारकर खेत में फेंक दिया था। मणिपूर के दूराम चानू शर्मिला का कहना है कि, अर्ध सैनिकबलों के जवानों ने बस स्टेंड पर दस आदमियों को भूनडाला गोलियों से मरनेवालो में 'नेशनल घ्वार्ड' विनर और एक बुढी भी थी। इस बात का जवानों को अपूस्तर न शर्म है। जैसे वे निर्जीव पदार्थ है। सरकार के लिए ये घटना इम्पोदरटेंट है। इस घटना के खिलाफ मणिपूर की जवान लडकी शर्मीला अनशन के लिए बैठती है।

भारत के वीरांगनाओं की कहानी तो कुछ अलग है। जौहर में जल मरना हो या जला दी गई हो, जो पति के लिए आरक्षित है, या पतिव्रता है, देश को बचाने वाली लक्ष्मीबाई हो, सामने नग्न होनेवाली हर जगह मूँह मारनेवाले पति के बारे में या देश–दुनियां के इन औरतों ने कभी सोचा हैं। इस प्रकार का सवाल संजीवजी प्रस्तुत

कहानी के व्दारा पूछकर व्यवस्था के प्रति संकेत करते है। इसमें सोलह साल की शर्मिला का अनशन बडा था या अण्णा हजारे का तेरह दिनों का अनशन बडा है।

क्या देश में किसानों की स्थिति अलग है। किसान कौन है? खलिस्तानी नक्सली, आतंकवादी, देशद्रोही या सत्ता के दुलारों की प्रतिक्रिया है। देश कहाँ से कहां जा रहा है? प्रतिवाद करनेवालों के लिए गोली मारी जाती है। नपुंसक सवाल पूछने से इसमें कोई परिवर्तन होनेवाला नही है। खुली आँखों से देखो देश में क्या–क्या हो रहा है? देश में सब रेपिस्ट है, तो बाढ विपदा में अपने प्राण की बाजी लगाकर देश और समाज को बचाने के लिए कौन जाता है। रेप करनेवाले कहाँ से आते है, यह सब के सब इस देश में रहनेवाले है। इसको इंसान बनाने के बजाय हत्यारा, रेपिस्ट बनाया जाता है। यह सब कौन करता है?

झारखंड के सोनी सोरी की कहानी तो सबको मालूम होनी चाहिए। वह झारखंड में टीचर थी। सजा के रूप में उसकी योनी में पत्थर के टूकडे ठूंस दिए गए थे। ऐसी स्थिति में किससे नफरत करनी चाहिए?

जग्गू अपनी जोरू से नफरत करता है, मारपीट करता है, लगता है, उसको शोषण का लांईसेस मिल गया है। सर्वंट क्वार्टर का पडोसी जब जग्गू को समझाने की कोशिश करता है, तब जग्गू कहता है– 'तुम बीच में न आओ', बद्री तो अच्छा बहुत दरद है तो लिवाजाओ ना – पृष्ठे 23

स्त्री शोषण के साथ धार्मिक और सामाजिक प्रथा की, बात अलग ही है। बलदेव की कहानी कुछ इससे अलग नहीं हैं। भक्त टाईप का आदमी है, रात के दस बजे तक बाहर रहता है, जब तक कपडे, रूपये, पैसे नोट तक धो नहीं लेता, तब तक पत्नी के साथ घर में नहीं जाता। रवींद्र के बीमारी की खबर चारो ओर फैल चुकी थी। कमांडेट साहब ने रजनीगंधा के फुलों का गुलदस्ता देकर उसके चेहरे को गौर से देखने लगे क्योंकि कमाडेंट साहब, रवींद्र ठाकूर और शर्मीला की प्रेम कहानी जानते थे। प्रेम कहानी तो एक बहाना है, वे देश की वास्तव स्थिति पर प्रकाश डालना चाहते है। शर्मीला ने जब अनशन शुरु किया था, तब वह 26 की थी, जब अनशन तोडा तब चवालीस वर्ष की थी। कमांडेंट साहब ने यह वास्तव में रवींद्र को बातो–बातों में काउंसलिंग करके नॉर्मल किया। किन्तु काउंसिलिंग नहीं यह कोर्ट मार्शल था।

देश की राजनीति में बदलाव की आवश्यकता है। कहानीकार ने देश में घटित घटनाओं के प्रति संकेत किया है– सरकार आती है, सरकार जाती है, जैसे– हंगर स्ट्राइक का महत्व, मनोरमा की उपेक्षा, अपमान, अनशन तुडवाने के लिए वीआयपी गुंडे आते है। ईमानदार कोशिश तुड़वाने के लिए अंधे कानून का साथ, एक ओर ईमानदार कोशिश को जलील करने का काम शुरू है। कहानी में दूसरी ओर रवींद्र सिंह की विचित्र बीमारी का परिचय दिया जाता है।

रवींद्र के हाथ में मेडिसिन है–

> कमाडेंट साहब ने जब पूछा तब पता चला दिस इज माय मेडिसिन सर! पृष्ठ 25
>
> पर यह है क्या?
>
> गौमाता का पवित्र प्रसाद है।

इसके अलावा और भी है जैसे पवित्र गौ–मूत्र! गौमाता के खुरों की पवित्र धुल, गौबर, गौ के कारण विश्व का कल्याण हो जाता है। गौ के पेट में तैतींस करोडऋ देवता वास करते है। गौमाता का महिमा महान है, उस पर ध्यान देने की बात बतायी जाती है। भगवान राम के वंशंजों का अपना काम शुरू है। इससे ऐसे लगता है,

कि जाहिलों को समाज में जहर फैलाने की छूट है, तो दूसरी ओर सभी लोगों को पनिशमेंट। इससे लग रहा था, कि कमांडेट साहब के घर में और मन में ऐसे विचारों के लिए कोई जगह नहीं है।

पुरूष प्रधान व्यवस्था में औरतो के लिए इस देश में घर, समाज में कोई स्थान नहीं है क्या? आगे चलकर मणिपूर की मनोरमा, इरोम की चानू शर्मिला, सानीदारी जो जिन में अन्याय के विरूद्ध खड़े होने की आग थी, क्या हुआ वे मर गई, मार दी गई,लड रही थी, समाज को सवाल पूछ रही थी, बताइए हम कहां गलत है, मैं अपने देश से प्रेम करती हूँ।

कौशलेंद्र सिंह अपने दोस्त रवींद्र ठाकूर की कहानी सुनकर कहने लगे, मैं चिकित्सक बनकर आया था, मरीज बनकर जा रहा हूँ। कमांडेट साहब कौशलेंद्र सिंह की पत्नी हेलन रोने लगी। कहानीकार संजीव ने बताया है, कि अपने आसपास का परिवेश खुली आँखों से देखिए, जैसे– नोटबंदी का आलम, कोरोना काल में मजदूरों की वापसी, किसान आंदोलन में 700 किसानों का मरना, कृषि विरोधी बिल, हत्या, बलात्कार देश प्रेम के नाम पर इन्सानियत के दुश्मनों को खुली आँखों से देखने की सलाह देते है।

कहानी में अंग्रेजी भाषा के शब्द, वाक्य मेडिकल साईन्स और बिमारी आदि से संबंधित शब्दों का उल्लेख मिलता है। कहानी पाठक को प्रभावित करती है। कहानी में काव्यात्मक पंक्तियाँ भाषा शैली के कारण कहानी की कथावस्तु पाठक के मन में कुतुहल निर्माण करती है। साथ ही साथ पात्र सवांद, वातावरण आदि के कारण भारत देश के विविध संदर्भों की जानकारी मिलती है। कहानी की कथा पुरूष प्रधान पात्र रवींद्र से संबंधित है। इसके अलावा अन्य पात्रों में कमांडेट साहब, कौशलेंद्र सिंह, उनकी पत्नी हेलन, शर्मिला, सुशील, जग्गु आदि का उल्लेख मिलता है।

कहानीकार ने कहानी के माध्यम से देशप्रेम के नाम पर देश को लुटने वालों को गोली मारनी चाहिएँ क्या? इस प्रकार का सवाल पुछा है। अपने विवेक हमेशा सावधान स्थिति में रखिए, इसमें ही समाज और देश की भलाई है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. फाँस – संजीव
2. उपन्यासकार संजीव – किसान की आत्महत्या यथार्थ और विकल्प संपादक – प्रो. संजय नवले
3. हंस – संपादक संजीव
4. खुली आँखे – संपादक संजीव 'हंस पत्रिका' – अगस्त 2022

मो.नं. 9423803062

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 237-240

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Domestic Violence : Psychological Effects on Children

Dr. Geeta Pandey, Assistant Professor,
Department of Psychology, L.S.M.Govt.P.G. College, Pithoragarh, Uttarakhand

Abstract :-

Domestic violence is a global problem among families. Domestic violence includes any form of violence, suffered by a person from a biological relative but typically is the violence suffered by women, by male members of her family or relatives. In India all the women who were the victim of domestic violence had experienced punching or slapping. In addition to physical injuries sustained, it is common for women to suffer psychological damage. Not only women but also domestic violence has its negative effects of the physical and psychological development of their children also. Domestic violence negatively impacted children's behavior for lifelong even from mother's womb. Children who are exposed to domestic violence experience emotional, mental and social damage that can affect their developmental growth. . Butt impacts that domestic violence on children are still being ignored.

Key words :- Domestic violence

Domestic violence is an ongoing experience of physical, psychology and sexual abuse in the home that is used to establish power and control over another person. An abuser is often a person who has a power over the person being abused and they can be well known to the person being abused. They could be a, partner, relative or family member. Domestic violence includes any form of violence suffered by a person from a biological relative but typically is the violence suffered by women, by a male member of her family or relatives. In India all the women who were the victim of domestic violence had experienced punching or slapping. In just under a quarter of incidents reported weapons has been used ranging, bottles and glasses to knives, scissors, sticks, clubs and blunt instrument.

The Australian Medical Association produced a position statement asserting that "Domestic violence is an abuse of power. It is the domination, coercions, intimidation and victimization of one person by another by physical, sexual or emotional means within intimate relationships" (Kelsey Hegartyet.al. 2000). Women experience at far greater rates than men do, and women and children often live in fear as a result of the abuse that is used by men to maintain control over their partners.

Domestic violence is a major public health problem and is very common in women attending clinical practice. National Family Health Survey (NFHS) data indicate that over 30% of Indian women have been physically, sexually or emotionally abused by their husband at some point their lives (chattopadhyay, 2019).

According newspaper, The Hindu (December 25, 2020) domestic violence against women remained a prime cause of concern for the Ministry of Woman and Child Development in 2020 with over 5,000 such complaints received in the year. The National Commission for Women was flooded with complaints of domestic violence in March as lockdown, imposed in view of the corona virus (COVID-19) outbreak, forces women to remain confined to homes with their abusers. The number of complaints went on increasing through the months and in July, a record number of 660 such complaints were received. Over 5,000 complaints of domestic violence were received by NCW in 2020.

Psychological effect on Children :-

The majority of the medical literature to date has focused on the effect of domestic violence on the primary victim. What effect dose witnessing domestic violence have on secondary victims, such as children. The environment play a very important role in the personality development of child. According Manglani (2013) in environment context home environment had been identified as being a contributing factor in a child's personality, educational, cognitive and affective development. Home is a important determinant for shaping one's mental, emotion and behavioral capacities along with their physical and social structure. Domestic violence creates insecurity for children because the home is a place where children feel they are safe, but if domestic violence occurs, the home is no longer a safe place for them.

Children who witness domestic violence or are victims of abuse themselves are at serious risk for long-term physical and mental health problems Gilbert et.al(2015). Children who are exposed to domestic violence experience emotional, mental and social damage that can affect their developmental growth. Post-traumatic stress disorder (PTSD) can result in children from exposure to domestic violence. The trauma that children experience when they witness domestic violence in the home, plays a major role in their development and physical wellbeing. They feel socially isolated and unable to make friends. Domestic violence negatively impacted children's behavior for lifelong even from mother's womb. An unborn child may be injured in the womb due to violence aimed at the mother's abdomen. An infant exposed to violence may have difficulty developing attachments with their caregivers and in extreme cases suffer from failure to thrive.

A preschooler's development may be affected and they can suffer from eating and sleep disturbances. A school aged child may struggle with peer relationships, academic performance and

emotional stability. An adolescent may be at higher risk of substance miss user of dating violence.

Studies shows that living with domestic violence can cause physicaStudies shows that living with domestic violence can cause physical and emotional harm to children in the following was :

Ongoing anxiety and depression.

Emotional distress

Find it hard to manage stress

Low self esteem

Develop phobia and insomnia

Physical symptoms, such as headaches and stomachaches

Abuse drugs and alcohol

Be aggressive towards friends and school mates

Janice M. et.al. (1995) found their research that children from families with domestic violence tended to have more difficulties than children from nonviolent families. In the study of Alytia& Sandra (2001), 120 women and their children between age of 7 and 12, participated. In the overall results support the ecological framwork and trauma theory in understanding the effects of domestic violence on women and children. Rather than focusing on internal pathology, behavior is seen to exist on a continuum influenced heavily by the context in which the person is developing. According to Edleson J. L. (1999) depression is a common problem for children who experience domestic violence.

The child often feels helpless and powerless. More girls internalize their emotion and show signs of depression than boys. Boys are more apt to act out with aggression and hostility. They often develop anxiety, fearing. Grief, shame and low self-esteem are common emotions that children exposed to domestic violence experience. Ashbourne, L. (2002) said that children exposed to violence in their home often have conflicting feelings towards their parents. For instance, distrust and affection often coexist for the abuser. The child becomes overprotective of the victim and feels sorry for them. Children in homes where one parent is abused may feel fearful and anxious. They may always be on guard, wondering when the next violent will happen. Children who witness or are victim of emotional, physical or sexual abuse are at higher risk for health problem as adult. These can include mental health condition, such as depression and anxiety. They may also include diabetes, obesity, heart disease, poor self-esteem and other problems (Monat, S.M. &Chandler,R.F. 2015).

Conclusion :-

Children need to grow up in a secure and nurturing environment. Where domestic violence exists, children are scared about what might happen to them and the people they love. Witnessing violence in the home can give the child the idea that nothing is safe in the world and that they are not

worth being kept safe which contributes to their feelings of low self-worth and depression. Each child responds differently to abuse and trauma. Some children are more resilient, and some are more sensitive. Some children act out through anger and are more aggressive than other children.

Witnessing violence between parents may also be at greater risk of being violent in their future relationships. The impact of domestic violence on children is immense and can often affect them for the rest of their lives. Domestic violence happening in home environment has its negative effects of the physical and psychological development of children. The impacts that domestic violence on children are still being ignored. Children do not have to see the violence to be affected by it.

Reference :-

1. Kelsey Hegarty, Elizabeth D Hindmarsh and Marisa T Gilles (2000)"Medicineandthe Community" Med J Aust 2000, 173(7) : 363-367.
2. The Hindu (December, 25.2020). Rtes. Hindu (December, 25.2020). Received by the National Commission for Women (NCW) in2020
3. Janica M. Attala, Kerry Bauza, Heather Pratt, Denise Vieira (1995) "Integrative review of effects on children of witnessing domestic violence" Issues in comprehensive pediatric nursing 18(3), 163-172, 1995.
4. Alytia A Levendosky, Sandra A Graham-Bermann (2001) "Parenting in battered women: The effects of domestic violence on women and their children" Journal of family violence 16 (2), 171-192
5. Edleson, J. L., (1999) "Problems Associated with Children's Witnessing of Domestic Violence". Archived 2007-08-20 at the Wayback Machine.
6. Ashbourne, L. (2002) "Children Exposed to Domestic Violence" Archived 2009-10-07 at theWayback Machine.
7. Manglam, A.(2013) "Defence Style : A function of Home Environment Indian Journal of Community Psychology, 2013, 9(2), 415- 425. ISSN-0974-2719
8. Monnat, S.M., Chandler, R.F.(2015) "Long Term Psysical Health Consequences of Adverse Childhood Experiences." The Sociologist Quarterly, 56(4): 723-752.
9. Gilbert, L.K., BreidingM.J., MerrickM.T.
10. ParksS.E.,Thompson,W.W., Dhingra,S.S., Ford, D.C. (2015). Childhood Disease : An update from ten states and the District of Columbia2010. American Journal of Preventive Medicine, 48(3) : 345-349

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 241-247

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विकास के खोखलापन के बीच आरोहण का भ्रम

(संदर्भ : संजीव की कहानी 'आरोहण')

रजनी चावला

ए–276, गली नं0– 20, सुशांत विहार, इब्राहिमपुर एक्सटेंशन, बुराड़ी, दिल्ली–110036

संजीव प्रमुख रूप से कहानी और उपन्यास दो विधाओं में समान रूप से रचनाशील रहे हैं। कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में एक साथ तो कई लेखक लिखते रहे हैं परंतु दोनों ही विधाओं पर समान रूप से विषय का ज्ञान, पकड़ और क्रियाशीलता कम ही लेखकों में मिलती है। किसी लेखक का कहानीकार पक्ष मजबूत होता है तो किसी की उपन्यास लेखन की दक्षता। परंतु संजीव ऐसे कथाकार हैं जो दोनों ही विधाओं के लेखन में सिद्धहस्त हैं। कुछ कथाकार पहले कहानियां लिखते हैं फिर उपन्यास लिखने लगते हैं और फिर वे निरन्तर उपन्यास ही लिखते रह जाते हैं। परन्तु संजीव के साथ ऐसा नहीं है। उन्होंने कहानियों और उपन्यास में एक तारतम्यता बना रखी है। उनके लेखन में एक निरन्तरता है।

उपन्यास और कहानी वे समानान्तर रूप से और अनवरत रच रहे हैं। परन्तु यह उनके शिल्प की विशेषता ही है कि उनकी कहानियों और उपन्यास में कहीं भी यह नहीं लगता कि वे विधा के स्तर पर चूक रहे हैं। या फिर विधा के स्तर पर शिल्प एक–दूसरे पर हावी हो रहा है। उनकी कहानियों में कहानी का शिल्प है और उपन्यास में उपन्यास का। जबकि वे समानान्तर रूप से दोनों विधाओं में रचनारत रहते रहे हैं। जब उनका उपन्यास प्रकाशित होकर चर्चित हो रहा होता है ठीक उसी समानान्तर उनकी कहानी भी कहीं न कहीं प्रकाशित हो रही होती है। संजीव की तरह लेखन में निरन्तरता विरले लेखकों में ही मिलती है।

संजीव ने खूब लिखा है परन्तु उनके यहां अतिरिक्त बहुत कम है। उन्होंने खूब लिखा लेकिन अतिलेखन के शिकार वे कभी नहीं हुए। उनका लगभग सारा का सारा लेखन एक जरूरी लेखन है। जरूरी लेखन इस संदर्भ में भी कि वह अपने समय के जरूरी सवालों से जूझते हैं। वे लेखक की जिम्मेदारी को समझते हैं। और समझते ही नहीं हैं बल्कि अपनी लेखनी से उस जिम्मेदारी को निभाते भी हैं। उनका लेखन सिर्फ लिखने के लिए नहीं है बल्कि वह अपने समय के जरूरी सवाल के जवाब को ढूढ़ने की कोशिश है। समाज में जो जरूरी विषय हैं और यदि उन्हें लगता है कि उस पर लिखा जाना चाहिए तो वे काफी मेहनत के साथ काम करके उस पर अपनी लेखनी चलाते हैं। जंगल जहां शुरू होता है, सूत्रधार, प्रत्यंचा ऐसे ही उपन्यास हैं। इस संदर्भ में कई कहानियों के भी नाम लिए जा सकते हैं।

संजीव द्वारा रचित 'आरोहण' कहानी उनकी चंद प्रमुख कहानियों में से एक है। अपने प्रकाशन के साथ ही यह कहानी चर्चा में बनी रही। यह कहानी पहली बार 'सारिका' पत्रिका के अंक अप्रैल 1976 में प्रकाशित हुई

थी जिसके संपादक उस समय कमलेश्वर थे।

इस कहानी को कमलेश्वर जैसे बड़े लेखक की पसंद बनने का तो अवसर मिला ही आगे चलकर इस कहानी को पाठकों का प्यार भी खूब मिला। नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी जैसे महत्वपूर्ण आलोचकों ने भी इस कहानी को हिन्दी कहानी के इतिहास में एक आवश्यक कहानी माना। आरोहण का अर्थ होता है–चढ़ना या सवार होना। मानव जीवन में उतार–चढ़ाव तो हर पड़ाव पर आते हैं फिर चाहे वह ग्रामीण जीवन परिवेश हो या शहरी जीवन का। लेखक ने आरोहण कहानी के माध्यम से ग्रामीण परिवेश और पर्वतीय या पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया है कि किस तरह शहरी, मैदानी या समतल स्थानों में रहने वाले लोगों की तुलना में पर्वतीय और पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले ग्रामीणों का जीवन कितना कठिन, दुखद, कष्टमयी और संघर्षों से भरा होता है। आरोहण कहानी पर्वतीय क्षेत्र 'माही' में रहने वाले एक ग्रामीण परिवार के दो भाइयों– रूप सिंह और भूप सिंह के जीवन संघर्ष पर आधारित है कि किस तरह छोटा भाई रूप सिंह पहाड़ी क्षेत्र में रहते कष्टमयी जीवन से त्रस्त होकर परिवार को छोड़कर शहर की तरफ पलायन कर जाता है परंतु बड़ा भाई भूप सिंह वहीं 'माही' में रहकर अपने बूढ़े माता–पिता के साथ जीवन के तमाम संघर्ष करते हुए जीवनयापन करता है।

लेखक ने कहानी के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस तरह कुछ लोग इस विपदा को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं और उनसे जूझने का अथक प्रयत्न कर एक सफल रास्ता खोजते हैं, परंतु कुछ लोग इस चुनौती से हारकर, दुखी होकर पलायन का रास्ता अपना लेते हैं। रूप सिंह ने भी भाहरी पलायन का रास्ता अपनाया और परिवार को विपदा में छोड़ खुद भाग खड़ा हुआ। आज वही रूप सिंह ग्यारह वर्षों बाद पढ़–लिखकर एक अच्छी नौकरी पाकर अपने गाँव 'माही' लौट रहा है तो उसके मन में संतुष्टि होने के बजाए लाज, अपनत्व, झिझक और अजीब तरह के डर का एक मिश्रित सा भाव उसे घेर रहा है क्योंकि ग्यारह वर्ष पहले जो रूप सिंह पर्वतीय क्षेत्र के कष्टदायी जीवन से त्रस्त होकर शहर की तरफ विस्थापित हो गया था वही रूप सिंह उस वक्त यह भूल गया था कि उसके साथ उसका परिवार था जिसे वह कष्ट में छोड़ भाग आया था। उसके गाँव को छोड़ने के कुछ वक्त बाद ही गाँव में हिमस्खलन हुआ जिसमें उसके बूढ़े मां–बाप, घर और तीस नाली खेत सब कुछ मलबे में दबकर नष्ट हो गए परंतु इसे बड़े भाई भूप सिंह की किस्मत कहा जाए या बदकिस्मती कि वह अकेला बच गया और उसकी आंखों के सामने सब कुछ ध्वस्त होता चला गया।

एक कहावत है–सिर पर पहाड़ टूटना। असल जीवन में यह कहावत सुनना बहुत भारी नहीं लगता। परंतु भूप सिंह के जीवन में यह कहावत अपने भयावह रूप में सच साबित हुई क्योंकि जब हिमस्खलन हुआ तो बहुत बर्फ गिरी जिसका भार छोटा सा हिमांग पहाड़ न सह सका और वह अपने साथ एक गृहस्थ जीवन को लेकर ढह गया और देखते ही देखते मलबे में तब्दील हो गया। इस कहानी में लेखक असल जीवन में पहाड़ी जीवन कितना कष्टदायी और मुश्किल है, उसे जताने का प्रयत्न कर रहा है। पहाड़ों में रहने के लिए व्यक्ति को हर चीज़ के लिए कितनी मेहनत–मशक्क्त करनी पड़ती है क्योंकि पहाड़ों में न बिजली है, न पानी, न शिक्षा, न स्वास्थ्य सेवाएं और न ही रोज़गार के साधन। एक ओर शहरी जीवन है जहां हर प्रकार की सुख–सुविधाएं आपके इर्द–गिर्द उपस्थित रहती हैं और एक तरफ पहाड़ों का जीवन है जहां हर वस्तु के लिए आपको संघर्ष करना पड़ता है।

संजीव ने पहाड़ी जीवन के यथार्थ को जितना अंदर तक घुसकर दिखाने का प्रयत्न किया है शायद ही कोई लेखक अभी तक इस मुद्दे को इतनी गहराई के साथ उठा पाया है जबकि संजीव खुद पहाड़ी क्षेत्र के नहीं हैं और न ही उन्होंने वहाँ के जीवन को जिया है। दरअसल संजीव ने जिसे आरोहण कहा है वास्तव में हमारे जीवन का वह अवरोहण है। यह कहानी दो संस्कृतियों के बीच टकराहट को उत्पन्न करती है। एक तरफ आज भी व्यक्ति अपनी सभ्यता, अपनी जमीन, अपने ग्रामीण परिवेश से जुड़ा है और उसी को बचाए रखने के लिए इतनी पीड़ा सह रहा है वहीं दूसरी तरफ शहरीकरण है जिसकी सुख–सुविधाओं, चमक–दमक, खान–पान, रहन–सहन में हम इस कदर मदांध हो गए हैं कि हमें हमारे हाथ से छूटता हुआ ग्रामीण यथार्थ दिखाई नहीं देता। परन्तु जिन्दगी में विकास की चकाचौंध के पीछे तेज गति में भागता हुआ व्यक्ति एक दिन यह समझता है कि उसे अंततः प्राप्त क्या हुआ। बहुत दूर निकल जाने के बाद जब वह ठहरकर, मुड़कर पीछे देखता है तो उसे लगता है कि वह इस बीच अंदर से पूरी तरह रीत चुका है। मनुष्य का अंदर से खाली होना इस मनुष्यता को कठघरे में खड़ा करता है। इसलिए इस कहानी को पढ़ते हुए बार–बार यह लगता है कि जिसे आज कुलीन भाषा में आरोहण कहा जा रहा है वास्तव में वास्तविक जीवन में वही जीवन का अवरोहण है।

यह तो जीवन का कटु सत्य है कि जब आम आदमी अपनी संस्कृति और सभ्यता को बचाए और बनाए रखने के ख्वाब मन में संजोएगा तो उसका मरना या उसका जीवन कष्टदायक होना तो तय है। यहॉ भी भूप सिंह अपनी सभ्यता और संस्कारों को बचाते हुए तमाम यातनाएं सहकर भी अपने परिवेश और मिट्टी से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार 1936 में लिखा गया प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास, जिसमें होरी और उसके बेटे गोबर में मौलिक संस्कारों की टकराहट है। होरी चूंकि एक किसान है इसलिए वह तमाम कष्ट, पीड़ा, कर्ज को वहन करने के बावजूद अपने व्यवसाय से जुड़ा रहता है और अंत में मरते दम तक एक गोदान की इच्छा को मन में पाले हुए ही प्राण त्याग देता है जबकि उसका बेटा गोबर खेती और किसानी जीवन से त्रस्त होकर शहरी विस्थापन का रास्ता तलाशता है और अपने मौलिक कर्तव्यों को भुलाकर शहरी जीवन व्यतीत करता है जिसकी भरपाई किसान के रूप में होरी अपने जीवन को नष्ट करके करता है। यह एक प्रकार का विरोधाभास है या कहें विडम्बना ही है कि जितना गोबर जैसी नई पीढ़ी अपने आरामदेह जीवन के लिए संसाधन का दोहन करेगी या अपने जीवन में विलासिता को तलाश करेगा उसी अनुपात में होरी जैसा किसान अपने जीवन में कष्ट भोगेगा या फिर वह अपनी किसानी से विस्थापित होगा। आरोहण कहानी में भी यह कन्ट्रास्ट मौजूद है।

'गोदान' में गोबर, झुनिया के पूछने पर कि क्या वह अब परदेश ही रहेगा, गोबर परदेश की तारीफों के पुल बांध देता है–''और यहां बैठकर क्या करूंगा? कमाओ और मरो, इसके सिवा यहां और क्या रखा है? थोड़ी–सी अकल हो और आदमी काम करने से न डरे, तो वह भूखों नहीं मर सकता। यहां तो अकल कुछ काम ही नहीं करती।'' आगे गोबर शहर की तारीफ कर कर के पूरे गांव वालों को अपना दिवाना बना लेता है। वह भोला काका को कहता है–''तुम चलो लखनऊ काका। पांच सेर दूध बेचो, नगद। कितने ही बड़े–बड़े अमीरों से मेरी जान–पहचान है। मन–भर दूध की निकासी का जिम्मा मैं लेता हूं। मेरी चाय की दुकान भी है। दस सेर दूध तो मैं ही नित लेता हूं। तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा।'' तो शहर की तारीफ करते हुए जो पीढ़ी वहां भागती है वह गांव वाले के समक्ष एक विरोधाभास उतपन्न करती है। यही विरोधाभास 'गोदान' से लेकर 'आरोहण' तक में व्याप्त है। यह विरोधाभास वास्तव में विकास की पूरी अवधारणा पर सवाल खड़े करता है।

दरअसल 'आरोहण' कहानी में जिस विषय को उठाया गया है। वह है इस कहानी के पात्रों की खुद्दारी। भूप सिंह जो इस कहानी का मुख्य पात्र है उसके व्यक्तित्व में बुलंदी और खुद्दारी है। उसकी पहली पत्नी शैला जो सूपिन में कूदकर मर गयी उसमें भी खुद्दारी थी और उसका बेटा महीप वह भी खुद्दार है जो अपना घर–परिवार, मां–बाप होते हुए भी खुद्दारी से जीवन व्यतीत कर रहा है और अपने तरीके से अपने जीवन की चढ़ाई कर रहा है। सवाल है कि यह खुद्दारी कहां से आती है? इस खुद्दारी का सीधा सम्बन्ध महत्वाकांक्षाओं की सीमितता से है। गांव के लोग जहां तक अभी बाजार और बाजारवाद की मानसिकता नहीं पहुंची है उनके अंदर अभी मुनाफा, स्वार्थ और अपने हित को ऊपर रखने की सोच नहीं आयी है उनकी खुद्दारी अभी बची हुई है। भूप सिंह पहाड़ पर तमाम कष्टों और संकटों से घिरा बैठा है परन्तु रूप सिंह के सामने अगर चढ़ कर बात कर पा रहा है तो इसकी ताकत उसकी खुद्दारी ही उसे देती है।

संजीव ने यहां पर जमीन के बरक्स पहाड़ की ऊंचाई को खड़ा किया है। जमीन के सारे ऐशो–आराम, ऐय्याशी के सामने भले ही पहाड़ का जीवन बहुत कठिन और संकट भरा लगता हो परन्तु पहाड़ के इस जीवन पर जो ईमानदारी और सद्चरित्रता है वह उसे बड़ा बना देता है। इतना बड़ा कि रूप सिंह अपने बड़े भाई भूप सिंह के सामने आंख उठा नहीं पाता। खुद संजीव पाखी के विशेषांक में अपूर्व जोशी और प्रेम भारद्वाज को दिए अपने साक्षात्कार में इसे खुद्दारी की कहानी मानते हैं। उन्होंने इस बात को समझाना चाहा कि जिन्दगी में खुद्दारी ही एक ऐसी चीज है जिस अकेले के सहारे भी जीवन जीया जा सकता है। वे लिखते हैं–''मैंने सोचा कि खुद्दारी एक अकेली चीज है जो आदमी को जिन्दा रख सकती है। अन्यथा जिन्दगी में इतने धक्के होते हैं कि जिन्दा रहना मुश्किल हो जाता है। तो 'आरोहण' मुख्य रूप से खुद्दारी की कहानी है जो कई स्तरों पर है।''

भूप सिंह पहाड़ के कश्टों के बीच जीवन बिता रहा है वहीं रूप सिंह इसी पहाड़ी जीवन से सीखे हुए पर्वतारोहण को अपना व्यवसाय बना सरकारी नौकरी लेकर सुख से जीवन व्यतीत कर रहा है। यह पर्वतारोहण भूप सिंह के लिए उसके जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है जबकि इसी पर्वतारोहण के कारण रूप सिंह ने अपने जीवन को सुखमय बना रखा है। कहानी का यह बहुत ही दिलचस्प प्रसंग है जब बूढ़ा तिरलोक रूप सिंह को खड़ी पहाड़ी पर चढ़कर अपने घर जाने का रास्ता सुझाता है तब रूप सिंह जो जमीन पर पर्वतारोहण सिखलाता है, का पसीना चुहचुहाने लगता है। वह कहता है ''वो बात नहीं दादाजी, पहाड़ों पर तो हम पत्थरों, खूंटों, रस्सों, कुल्हाड़ी और दूसरी चीजों के सहारे चढ़ते हैं। यहां तो साथ लाए नहीं।''

इसी प्रसंग के विस्तार में जब भूप सिंह से छोटे भाई रूप सिंह की मुलाकात होती है और वह उसे घर ले जाता है तब रूप सिंह उस पहाड़ पर चढ़ नहीं पाता। और तब भूप सिंह गमछे के साथ रूप सिंह और शेखर को खींच कर पहाड़ पर चढ़ाता है। यह एक प्रतीकात्मक स्थिति है। आज रूप सिंह के पास सब कुछ है परन्तु अंदर की ताकत खत्म हो गयी है। भूप सिंह अपनी परम्परा, अपनी संस्कृति को अगोड़े हुए बैठा है तो उसकी अंदर की ताकत बढ़ती गयी है। रूप सिंह जिस भौतिक संस्कृति का यहां प्रतिनिधित्व कर रहा है लेखक यहां दिखलाना चाह रहा है कि वह भीतर से कितना खोखला हो चुका है। भौतिक संस्कृति, एक ऐसी संस्कृति जहां मनुष्य की दूसरे संसाधनों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। यह एक प्रकार की गुलामी का एक दूसरा रूप है। रूप सिंह और भूप सिंह एक ही मिट्टी से उपजे हुए हैं परन्तु दोनों की ताकत और दोनों के आत्मविश्वास में कितना

फर्क आ गया है। पहाड़ एक ही है परन्तु रूप सिंह को इस पर चढ़ने के लिए तमाम तरह के सहारों की जरूरत महसूस होती है जबकि भूप सिंह के भीतर इतनी ताकत और आत्मविश्वास अभी संचित है कि वह खुद ही नहीं बल्कि रूप सिंह और शेखर दोनों को अपने सहारे खींच कर ऊपर ले जाता है।

रूप सिंह, जिसका जीवन भौतिक स्तर पर बहुत सफल दिखता है वह कितना सफल है यह कहानी को पढ़ते हुए पता चलता है। यह कहानी वास्तव में दो जीवन स्थितियों को आमने–सामने रख देती है। रूप सिंह को लगता है कि वह जिस जीवन को जी रहा है उसमें वह बहुत आनंदित है और उसका बड़ा भाई बहुत कष्ट में है। वह अपने बड़े भाई को इस कष्ट से निजाद दिलाना चाहता है और उसके सामने उसे अपने साथ चलने का प्रस्ताव रखता है। भूप सिंह इस प्रस्ताव पर बहुत ध्यान दिए बिना इसे टाल देता है। वास्तव में यह कहानी जीवन को लेकर दार्शनिक स्तर पर यह उलझाव पैदा कर देती है कि हम जिसे सुख, शांति या विकास का रास्ता कहते हैं वास्तव में वह कितना सही है। रूप सिंह जिस जीवन में अपने बड़े भाई को ले जाकर उसे भौतिक सुख देना चाहता है वह सुख कितना सुख है और कितना उसका सिर्फ छद्म रूप इसे कहानी में सिर्फ भूप के सामने आए प्रस्ताव पर उसके अनदेखा करने के तरीके को देखकर ही समझा जा सकता है। इस प्रस्ताव पर भूप सिंह की शारीरिक भाषा पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वह इसे अनदेखा करता है और ठीक उसी समय वह बैलों की भूख की आवाज सुनने लगता है। यह दृश्य इस तरह है –

''बैलों की डकार में अधूरा रह गया वाक्य।

'ओह! इन बन्दों को तो मैं भूल–ई गया, आज, 'भूप को जैसे उनकी सुधि अब आई हो फिर जोर से बोले 'सुण लिया, सुण लिया।''

लेखक के द्वारा रचित यह दृश्य और अपने छोटे भाई के प्रस्ताव के बदले में बैलों को दिया गया यह जबाव 'सुण लिया, सुण लिया' एक तरह से इस उपभोक्तावादी संस्कृति के खोखलेपन को दिखलाने के लिए सृजित किया गया है।

इस कहानी में आरोहण कौन कर रहा है और अवरोहण कौन, इसे बहुत गहराई में उतर कर समझने की जरूरत है।

अगर ऊपर चढ़ने को आरोहण कहते हैं और शाब्दिक अर्थ में भूप सिंह चढ़ाई चढ़ रहा है तो उसके जीवन के कष्ट को देखते हुए कहानी में आगे लगने लगता है कि यह आरोहण नहीं बल्कि अवरोहण है। लेकिन फिर दूसरे ही पल जब भूप सिंह की संतुष्टि या उसकी खुद्दारी दिखती है तब रूप सिंह अंदर से खोखला दिखने लगता है और तब लगता है कि असली आरोहण तो भूप सिंह का ही है। वहीं दूसरी तरफ जो रूप सिंह भौतिक रूप से सफल दिख रहा है आगे चलकर अपने खोखलेपन में वह आरोहण की तरफ होते हुए भी अवरोहण लगने लगता है। परन्तु दिलचस्प यह है कि भूप सिंह जो पहाड़ के कष्ट वाली जिन्दगी को जी रहा है वह चाहे आरोहण कर रहा हो या अवरोहण वह अपने सुख या दुख से किसी और को प्रभावित नहीं कर रहा है। लेकिन समतल में ऐशो–आराम की जिन्दगी जी रहा रूपसिंह अपने भौतिक सुख से पहाड़ के जीवन को प्रभावित कर रहा है।

यह इस कहानी में अंडरटोन है कि जमीन की जिन्दगी का जो भी सुख है वह धीरे धीरे प्रकृति और पहाड़ को प्रभावित करता है। पहाड़ की जिन्दगी को इस सुख की कीमत चुकानी पड़ती है। पहाड़ का ऊंचा होते चले जाना फिर उसका पिघंल जाना ये सारे असंतुलन इस बढ़ती चमक–दमक और बढ़ती यांत्रिकता की ही तो देन है।

इस कहानी में भूप सिंह का जो चरित्र है वह तो एक्सपोज्ड है परन्तु विचार करने की जरूरत है रूप सिंह के चरित्र पर। यह चरित्र एक फंसा हुआ चरित्र है। वह भगोड़ा है। अपना घर–परिवार, अपनी जिम्मेदारी, अपनी परम्परा, अपनी संस्कृति सब छोड़कर वह भाग जाता है। पूरी कहानी को पढ़ते हुए वह एक बुरे चरित्र के रूप में सामने भी आता है। पूरी कहानी में रूप सिंह अपने अपराध बोध में घिरा हुआ भी रहता है। वह कहानी के आखिरी हिस्से में कहता है 'दादा! ये सब देख–देखकर, सुन–सुनकर मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है।' भूप सिंह भी अंततः रूप सिंह को दोषी करार देता है और इस बात का वह उसे अहसास भी करवाता है। पहले वह अपने भाई से कहता है ''तूं कहेगा, चढ़ सिर्फ मैं रहा था, बाकी सब उतर रहे थे; मैं कहता–नहीं, अपणे–अपणे हिस्से की चढ़ाई तो सभी चढ़ रहे थे। चढ़ने का सबका अपणा–अपणा तरीका है।''

और कहानी के अंत में वह अपने भाई की सारी संवेदनाओं को ठुकराता है तब कहता है 'भौत इन्साफ किया तुम सबी ने मेरे साथ– भौत। अब माफ करो भुइला। खुद्दारी को बखस दो। अब तो जिन्दा रहणे तक न ई बल्द उतर सकदिन, न हम।' भूप सिंह का दिया हुआ यह अपराधबोध सही भी है। रूप सिंह को किसी भी तरह सही करार भी नहीं दिया जा सकता है। परन्तु सवाल यह उठता है कि रूप सिंह जिस चमक–दमक और आराम की जिन्दगी के लिए पहाड़ से नीचे उतर जाता है उसे इसके लिए मजबूर किसने किया। जिस चमकदार और आराम की जिन्दगी को वह चुनता है वह उसके सामने परोसी किसने। अगर उसके सामने यह परोसा गया है तो एक आम इंसान के रूप में उसका इसमें फंसना एक सामान्य सी प्रक्रिया है। और फिर आगे चलकर खुद्दारी का खत्म होना, स्वार्थ का बढ़ना, अपनी परम्परा–संस्कृति को विस्मृत करना सब आगे की स्वचालित और अवश्यंभावी प्रक्रिया है। यह बहुत अजीब है कि हम कहानी पढ़ते हुए भूप सिंह को नायक और रूप सिंह को खलनायक के रूप में रूपांतरित कर देते हैं। परन्तु रूप सिंह तो मात्र एक माध्यम भर है। एक अदना सा चरित्र। खलनायक क्या वाकई रूप सिंह है या यह परिस्थिति? यह विकास का असंतुलित रास्ता। रूप सिंह तो विकास के इस असंतुलित रास्ते का एक छोटा सा, अदना सा पात्र भर है।

आरोहण खुद्दारी की कहानी है। खुद्दारी कैसे बचती है इसकी कहानी है। लेकिन साथ–साथ यह इसकी भी कहानी है कि जो व्यक्ति अपनी खुद्दारी नहीं बचा पाता है उसके सामने चकाचौंध भरी दुनिया ऐसे परोसी गयी है कि वह अपने आप को रोक नहीं पाता है। एक सामान्य जिन्दगी के सामने अगर इतनी रोशनी होगी तो उसकी आंखें चौंधियायेंगी ही। वह व्यक्ति दोषी है परन्तु यह कहानी उस ओर भी इशारा करती है कि मुख्य रूप से दोशी तो वह असंतुलित विकास का रास्ता है जिसने कभी सोचा नहीं कि जब चमक इतनी बढ़ेगी तो उसके नीचे अंधेरा भी उतना ही फैलेगा। वरिष्ठ कवि राजेश जोशी ने अपनी एक कविता में इस विरोधाभास को दिखाने का प्रयास किया है। कविता का शीर्षक है 'बिजली का मीटर पढ़ने वाले से बातचीत'।

इस कविता में राजेश जोशी बिजली की मीटर रीडिंग लेने आने वाले से पूछते हैं कि इस सरकार ने जितना प्रकाश फैलाया उसकी तो एक रीडिंग है परन्तु इस बीच जितना अंधेरा फैलाया गया उसको मापने का क्या तरीका है।

कविता में वे कहते हैं –''क्या तुम्हारी प्रौद्यौगिकी में कोई भी ऐसी भी हिक़मत है/ अपनी आवाज को थोड़ा–सा मज़ाकिया बनाते हुए/ मैं पूछता हूं/ –जिससे जाना जा सके कि इस अवधि में/ कितना अंधेरा पैदा किया गया हमारे घरों में?'' तो समाज में इस प्रकाश और अंधकार के बीच की चौड़ाई बढ़ती ही जा रही

है। जहां प्रकाश है वहां रौशनी की चकाचौंध है और जहां अंधेरा है वहां घोर अंधेरा। भूप सिंह कहता है– ''तू गया। तेरे पीछे मां गई। बाबा गए। फिर भौला गई। सबसे आखिर में महीप भी चला गया हमें छोड़कर।'' सही बात है कि रूप सिंह के बाद की पीढ़ी महीप की पीढ़ी है। रूप सिंह के बाद महीप भी नीचे चला गया। महीप यहां नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। भूप सिंह पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो अपने संस्कारों से बंधा हुआ है। यह दो पीढ़ियों, दो संस्कृतियों, दो संस्कारों की आपसी टकराहट की कहानी है। पहाड़ घूमना एक बात है, पहाड़ पर रहना दूसरी बात। रूप सिंह के लिए भी वह पहाड़ अब एक घूमने की जगह हो गयी है जो कभी उसका घर हुआ करता था।

आरोहण कहानी में जो सबसे अधिक चौंकाने वाली बात है वह है पहाड़ की पूरी डिटेलिंग, वहां की भाशा, वहां का संघर्ष। पहाड़ के संघर्ष को इतनी बारीकी से एक ऐसे लेखक के द्वारा पकड़ा जाना जो खुद पहाड़ के नहीं हैं, हैरत में डालता है। नामवर सिंह ने इस कहानी को लेकर जो बात कही है वह बहुत सटीक है। –''मेरे जेहन में इनकी (संजीव की) जिस कहानी ने गहरी छाप छोड़ी, वो थी– 'आरोहण'। मुझे याद नहीं पहाड़ में रहने वाले किसी लेखक ने ऐसी मजबूत कहानी लिखी हो। संजीव पहाड़ के नहीं हैं। बावजूद इसके उन्होंने ऐसी अच्छी कहानी लिखी है जो किसी चमत्कार से कम नहीं है। इस कहानी में गढ़वाली भाषा की जो छौंक है जो उसे विशिष्ट बनाती है।''

संजीव के पूरे लेखन में शोध का बहुत महत्व है। संजीव के मित्र और चर्चित लेखक शिवमूर्ति लिखते हैं – ''जितना शोध लेखन के लिए संजीव भाई करते हैं उतना हिन्दी के कम ही लेखक करते होंगे। इस केमिस्ट रह चुके लेखक की केमिस्ट्री क्या है? कहां–कहां से बीनता–बटोरता है अपने उपादान?'' शिवमूर्ति ने आगे बतलाया है कि कैसे लेखक के रूप में संजीव एक विषय पर वर्षों शोध करते रहते हैं। तो आरोहण कहानी भी इसी शोध का हिस्सा है। बिना शोध के यह कहानी संभव ही नहीं थी। खुद संजीव ने अपनी बातचीत में इसे स्वीकार किया है –''आरोहण के लिए, चढ़ने के लिए माउन्टेनियरिंग की नॉलेज बहुत जरूरी है। मेरी जितनी भी कहानियां हैं उनमें टेक्निकल नॉलेज होना बहुत जरूरी था अन्यथा कहानी फेल हो जाती।'' तो संजीव ने कहानी को कभी फेल होने नहीं दिया। उनकी प्रत्येक कहानी उनकी इसी शोधात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

संदर्भ :-

1. गोदान, प्रेमचंद, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, संस्करण–1993, पृ0–215
2. वही, पृ0–220
3. न रुका, न चुका हूं, संजीव का साक्षात्कार, पाखी, संजीव विशेषांक, सितम्बर 2009, पृ0–179
4. आरोहण, संजीव, पाखी संजीव विशेषांक, सितम्बर 2009, पृ0–26
5. वही, पृ0–30
6. वही, पृ0–29
7. जिद (कविता संग्रह), राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2015, पृ0– 41
8. आरोहण, संजीव, पाखी, संजीव विशेषांक, संपादक–अपूर्व जोशी, सितम्बर 2009, पृ0–29
9. है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूं, नामवर सिंह, पाखी, संजीव विशेषांक, सितम्बर 2009, पृ0–111
10. संतन को कहां सीकरी सो काम, शिवमूर्ति, पाखी, संजीव विशेषांक, सितम्बर 2009, पृ0–85
11. संजीव का साक्षात्कार, पाखी, संजीव विशेषांक, सितम्बर 2009, पृ0–179

मो0– 9910525101 rajnichl@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 248-253

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के भक्ति-काव्य में माया का स्वरूप

सुरेन्द्र दलाल
भोधार्थी, हिन्दी विभाग, OSGU, हिसार, हरियाणा।

निर्गुण भक्ति साहित्य में 'माया' को अज्ञान या अज्ञान का प्रतिरूप माना जाता है। माया का सर्वप्रथम उल्लेख उपनिषद् साहित्य में मिलता है। भवेताश्वतरोपनिषद् में माया के बारे में बताते हुए कहा गया है–

मायां तु प्रकृतिं विधान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।[1]

अर्थात् प्रकृति को माया जानना चाहिये और महेश्वर को मायावी जानना चाहिये। उसी के अवयव भूत अर्थात् कार्य–करण संघात से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है।

उपर्युक्त मंत्र में प्रकृति को माया कहा गया है तथा परमेश्वर को मायावी बताया गया है। इसका भावार्थ यह है कि परमेश्वर ने खेल–खेल में इस संसार का निर्माण किया है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत सत्य नहीं है, अपितु परमात्मा का एक खेल है। उस परमात्मा ने इस माया (प्रकृति) की रचना की है, अतः उसे मायावी कहा गया है। इस मंत्र का एक अन्य गूढ़ार्थ यह भी है कि माया वस्तुतः अज्ञान ही है। जो व्यक्ति इस संसार को सत्य मान लेता है, वह व्यक्ति माया अर्थात् अज्ञान के वशीभूत है। संसार को सत्य मानने वाला व्यक्ति कभी भी 'सत्य ज्ञान' के स्वरूप को नहीं जान पाता क्योंकि उसकी चेतना को अज्ञान के आवरण ने पूर्ण रूप से ढक लिया है।

इस माया को अविद्या भी कहा जाता है। सदानन्द ने अपने ग्रंथ वेदान्तसार में माया अर्थात् अविद्या को इस प्रकार परिभाषित किया है–

अज्ञानादि सकल जडसमूहः अवस्तु
अज्ञानवन्तु सदसद्भ्याम भविनिर्वचनीयः।[2]

अर्थात् अज्ञान सकल जड़ समूह में व्याप्त है। यह सद् तथा असद् से हीन होने के कारण अनिर्वचनीय माना जाता है।

निर्गुण भक्ति साहित्य में इस संसार को मिथ्या माना जाता है। यह 'मिथ्या' शब्द भी अज्ञान, अविद्या, माया के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। संत कबीर, गुरु रविदास, पलटू साहिब आदि निर्गुण भक्त कवियों ने इसी मिथ्या ज्ञान को माया कहा है। संत कबीर कहते हैं कि यह माया एक दीपक के समान है और मानव एक पतंग के समान है; सभी मानव इसी माया के वशीभूत होकर इसी के जाल में फँसते चले जाते हैं। बहुत कम लोग ही माया के चंगुल से बच पाते हैं।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि–भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान में, एक आध उबरंत।।[3]

गुरु रविदास भी माया के विषय में कहते हैं कि इस माया ने समस्त सांसारिक पुरुषों को निगल रखा है।

बरजि हो बरजि बीठुले, माया जब जग खाया।
महा प्रबल सबहैं बस करिये, सुर नर मुनि भरमाया।[4]

यह अज्ञान माया बहुत शक्तिशाली है। बलवान से बलवान व्यक्ति को भी यह अपने वश में कर लेती है। देवता, नर, मुनि, साधु, संत, संन्यासी गृहस्थी आदि सभी को इस माया ने अपने भ्रम जाल में बाँध रखा है। इसी बात को पलटू साहिब ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

माया ठगिनी जग बौराई।
देवतन के घर भई अप्सरा, जोगी के घर चेली।
सुर नर मुनि सबको खाइसि है, है अलमस्त अकेली।[5]

माया का गूढ़ार्थ :–

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने अपने भक्ति साहित्य में अनेक स्थलों पर माया के स्वरूप का चित्रण किया है। 'आनन्द आधार' नामक पुस्तक में माया शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं :– "माया शब्द दो शब्दों के योग से निष्पन्न है मा तथा या। मा का अर्थ है नहीं तथा या का अर्थ है जो, अर्थात् जो नहीं है, यह माया है। कहीं–कहीं धन के संदर्भ में भी माया शब्द का प्रयोग किया जाता है। अद्वैत वेदांत में माया का अर्थ है अविद्या। इस माया (अविद्या) की भाक्ति के कारण ही यह संसार सत्य प्रतीत होता है। जैसे ही इस अविद्या का नाश होता है, वैसे ही संसार के सत्य का शान हो जाता है कि यह संसार मिथ्या है तथा एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है।[6]

माया का व्यापक स्वरूप :–

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' की भक्ति–साहित्य विषयक चार पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिसमें उन्होंने निर्गुण भक्ति के गूढ़ सूत्रों को सुंदर तथा सहज शैली में प्रस्तुत किया है। 'आनन्द आधार' नामक पुस्तक में वे कहते हैं कि यह काया भी माया के जाल में बँधी हुई है, जब तक इस जाल को नहीं तोड़ा जाता, तब तक हरि अर्थात् परमात्मा का दीदार नहीं हो सकता। परमात्मा के प्रकाश को माया की घनघोर घटा ने ढ़क रखा है। इसी विषय को उन्होंने कुछ यूँ लिखा है–

काया माया के सखि सब जाल, जाल का बंधन है।
माया ने फैला रखा तेरे घट के अन्दर जाल सखि,
तोड़ो तोड़ो री सखि ये जाल, पार एक चंदन है।
माया घटे तो मनुवा रोता, रोता है दिन–रैन सखि।
रोते रोते हैं सखि नर–नार, अजब ये क्रंदन है।
माया की घनघोर घटा से, घिरा हुआ प्रकाश सखि,
करो करो री सखि घटा पार, जहाँ पर कुंदन है।
मानसिंह माया के त्याग बिन, मिलते ना हरि रूप कभी।

त्यागो त्यागो री सखि मद भाव, यही मेरा वंदन है।[7]

इसी पुस्तक में माया को मकड़ी के जाल का रूपक देते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि जिस प्रकार एक मकड़ी रोज–रोज जाले बनाती रहती है, उसी प्रकार मानव भी माया के लोभ के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के उल्टे–सीधे क्रिया कलाप करता रहता है। एक दिन ऐसा आता है, जब मकड़ी अपने बनाये हुए जाल में ही फँस जाती है। वह इस जाले से बाहर निकलने का प्रयास तो करती है, परन्तु उसकी सभी कोशिशों बेकार हो जाती हैं और वह उसी जाले में अपने प्राण त्याग देती है। उसी प्रकार मानव भी स्वनिर्मित जाल में उलझा हुआ है और इस जाल से बाहर निकलने को कोई भी उपाय उसे नहीं सूझता है। जो साधक माया के सही स्वरूप को जान लेता है, केवल वही साधक माया के चंगुल से मुक्त हो सकता है। अपनी इसी बात को उन्होंने एक पद के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है–

माया मकड़ी का ताणा, ना उलझ–उलझ मर जाना।
माया मकड़ी नित प्रति ही, जाल बनाती नये–नये,
इसके जाल में फँस के तू, जीवन को ना उलझाना।
माया अपना रूप दिखाकर, ललचाती मानव का मन,
मन को काबू रख ले बन्दे, ना माया देख लुभाना।
माया के इस भ्रम जाल से, बचना ना आसान कभी,
फँसा लिये हैं अपने जाल में, बड़े–बड़े बलवाना।
मानसिंह माया को तजकर, ध्यान हरि का कर ले तू।
राम नाम का सुमरण करके, जीवन सफल बनाना।[8]

इंसान के पास जब धन आता है, तो वह इस धन के अभिमान में फूला नहीं समाता। यह धन भी माया का ही प्रतिरूप है। इस धन का कोई भी ठिकाना नहीं है क्योंकि इसका स्वभाव बड़ा चंचल है। धन कभी भी एक स्थान पर नहीं टिकता है। जब मानव पर धन–माया का नशा छाता है, तो वह दूसरे मनुष्य को कमतर या हीन मानने लगता है। धन के प्रभाव के कारण मानव खुद को खुदा मानने लगता है तथा पैसे को ही सम्मान की दृष्टि से देखता है। ऐसे लोगों को सम्बोधित करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि यह धन–माया कागज की नाव के समान है। इस नाव के सहारे कोई भी व्यक्ति संसार सागर से पार नहीं उतर सकता। जो व्यक्ति धन–माया के मद में चूर हैं, उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि उनका सारा सामान यहीं पर धरा रह जायेगा। मानव के घट (शरीर) के भीतर जो वास्तविक धन (ब्रह्म) है, मनुष्य को उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये–

बन्दे तज माया अभिमान।
माया के जो फेर पड़ा, वो रहता ना इंसान।
माया का मद जब छाता, इंसान तुझे न भाता,
खुदा बना है खुद में तू, माया को माने मान।
तू धन से मोल लगाता, इन्सान तोल नहीं पाता,
भंडार भरा जो घट में, उसे पाता न पहचान।

माया कागज की नैया, न उतरै पार खिवैया,
वो डूब–डूब मर जाता, और देता अपनी जान।
मानसिंह माया का, अभिमान करै क्यूँ भारी,
सब यही धरी रह जाये, तेरे साथ न चले सामान।[9]

'शब्द साधना' नामक पुस्तक में ही माया को छाया का रूपक देते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि माया तथा छाया दोनों एक ही समान है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति छाया को नहीं पकड़ सकता, उसी प्रकार माया भी मानव की पकड़ में नहीं आती है। अपनी बात को उन्होंने इस प्रकार रखा है :–

क्यूँ जोड़े तू धन माया।
अंत समय तरे हाथ लगै ना, धन माया की छाया।
धन माया को जोड़ के तुने, माया से भंडार भरे,
एक भंडार भरा तेरे भीतर, उसे खर्च नहीं पाया।
धन से केवल भोग–भोगता, विषयों में तेरा रमता मन,
धन के भ्रम में भूल गया, तेरे भीतर कौन समाया।
माया का कोई सार नहीं है, सार बिना कोई मोल नहीं,
आनन्द सार भरा भीतर, तू जानैगा तज माया।
मानसिंह इस भ्रम जाल से, माया जाल फैलाती है,
झूठ के मार्ग चलती है ये, सत् मार्ग ना भाया।[10]

'सहज समाधि' नामक पुस्तक में माया को मानव का सूत्रधार बताते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि जिस प्रकार एक नाटक में सब कुछ उसके सूत्रधार द्वारा नियंत्रित होता है, उसी प्रकार जीवन रूपी नाटक में सब कुछ माया द्वारा नियंत्रित है। माया नाचती है और माया ही नचाती है। मानव के सभी सम्बंधों का आधार भी माया है। सभी प्रकार के कारोबारों का आधार भी माया है। जब तक मानव इस माया के साथ जुड़ा रहता है, तब तक मानव दाता (परमात्मा) के विराट स्वरूप को नहीं जान पाता। जिस मानव के तार माया से जुड़े हुए हैं, उसका सम्पर्क कभी भी परमात्मा से नहीं हो पाता है। इसलिए कवि बार–बार यही कह रहे हैं कि हमें माया से दूर रहने का प्रयास करना चाहिये :–

माया नाचे, माया नचावै माया सूत्रधार, ये नाच दिखाया है।
माया के सब बने घरौंदे, माया का संसार, यहाँ सब माया है।
माया ने सब बंधन जकड़े, माया का है प्यार, ये खेल रचाया है।
माया से सब काम और धंधे, माया कारोबार, जो तुने पाया है।
माया त्यागकर देख प्राणी, दाता का विस्तार, वो घट में छाया है।
मानसिंह माया के संग में, जोड़ न लेना तार, ये जग उलझाया है।[11]

इसी पुस्तक में माया के बंधनों को तोड़ने का आग्रह करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि केवल सतगुरु का सच्चा ज्ञान ही माया के बंधनों को तोड़ सकता है। जग की सभी जड़–जंगम वस्तुओं को माया का प्रतिरूप मानते हुए कवि कहते हैं कि ये सभी वस्तुएँ माया का ही घर हैं। ये अपने विभिन्न स्वरूप

दिखाकर हमें ललचाती हैं तथा अपने जाल में फँसा लेती है। माया सभी व्यक्तियों को अपने जंजाल में फँसाती है। जो व्यक्ति सच्चे सतगुरु के उपदेशों को मानकर माया का स्वरूप जान लेता है, केवल वही व्यक्ति माया के बंधनों से दूर रह सकता है, अपनी इसी बात को उन्होंने इस पद में व्यक्त किया है–

सतगुरु ले लेकर ज्ञान, माया के बंधन तोड़ो।
माया का कोई सार नहीं है, माया है अज्ञान तेरा,
तुम ज्ञान का मार्ग चुन लो, अज्ञान का मार्ग छोड़ो।
जग की सारी नश्वर चीजें, माया का ही रूप बनी,
तुम इसके जाल में फँसकर, दाता से मुख ना मोड़ो।
ये माया संग नहीं चलेगी, यहीं छोड़कर जाएँगे,
जो संग में तेरे जायेगा, तुम उससे नाता जोड़ो।
मानसिंह माया से बचकर, कोई–कोई साधु रहता है,
बाँधी है इसने दुनिया, बाँधे हैं लोग करोड़ों।[12]

'अनहद का नाद' पुस्तक में माया के अनेक रूप बताते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि माया अपने अनेक रंगों से अपना स्वरूप दिखाती है। संसार में चहूँ ओर माया की ही आग लगी हुई है। अपनी इसी बात को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं–

माया अपने रंग दिखाती, दिखा–दिखा निज राग रे!
इस माया के फँद काटकर, पाओ अटल सुहाग रे!
योगी में भोगी मिल जाते, करैं योग का भोग रे!
सही संत के पास मिलेगा, सच्चा–सा बैराग रे!
जकड़ रखा है सब माया ने, कोई–कोई बच पाता रे!
चारों ओर ही लगी हुई है, बस माया की आग रे!
इस माया के रूप कई हैं, कई हैं इसके भाव रे!
सब भावों में भरे हुए हैं, माया के ही भाग रे!
मानसिंह माया से बचना, इतना ना आसान रे!
बड़े–बड़े योद्धा कसती है, माया ऐसा नाग रे![13]

माया का मकड़जाल इस प्रकार फैला हुआ है कि यह मानव को कभी भी बाहर नहीं निकलने देता। कभी यह माया मोहमाया बन जाती है, कभी महामाया बन जाती है, तो कभी योगमाया बन जाती है। माया के इन तीनों स्वरूपों का अलग–अलग वर्णन करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं :–

माया अपने रूपों से, खुद का स्वरूप दिखाती।
पहले रूप में मोहमाया ही, मोह का जाला बुनती,
अपने जाल में उलझाकर ये, मकड़ी ज्यूँ उलझाती।
महामाया का रूप धारकर, रूप दूसरा बुनती है,
माया अपने इसी रूप में, पग–पग पर इठलाती।

माया अपने योगरूप से, योग की माया बनती है।
माया का ये रूप तीसरा, दुनिया इसको गाती।
मानसिंह तीनों रूपों को, जो कोई साधु जान गया।
उस साधु को ये माया फिर, कभी नहीं भ्रमाती।[14]

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने माया के विभिन्न स्वरूपों को अनेक उपमानों तथा अनेक रूपकों के माध्यम से समझाया है। माया के जितने भी रूप हो सकते हैं, उन सभी रूपों का विस्तृत वर्णन उनके निर्गुण भक्ति काव्य में मिलता है। कवि के अनुसार इस संसार की प्रत्येक वस्तु में माया का प्रतिरूप झलक रहा है, परन्तु माया के इस स्वरूप को केवल साधु जन ही पहचान पाते हैं। जब कोई व्यक्ति सच्चे गुरु की शरण में जाता है, तो गुरु द्वारा प्रदान किये गये ज्ञान के कारण उस व्यक्ति के माया के बंधनों की जकड़ ढ़ीली पड़ने लगती है। गुरु के ज्ञान के बिना माया का पर्दा नहीं हटता। जब तक माया का यह पर्दा विद्यमान रहता है, ब्रह्म का स्वरूप भी छिपा रहता है। माया की घनघोर घटा के पीछे ही ब्रह्म का कुंदन रूप में निवास है। इसी कुंदन को ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में भी वर्णित किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि माया के जितने भी स्वरूप, प्रकार या भेद हो सकते हैं, उन सभी भेदों का निरूपण डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में हुआ है। इसके साथ–साथ माया के प्रभावों का वर्णन भी इनके काव्य में मिलता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के निर्गुण काव्य की यह विशेषता है कि वे निर्गुण के जिस मूल तत्व का वर्णन करते हैं, उसका सांगोपांग चित्रण करते हैं। कवि की यह वर्णन शक्ति 'माया' के स्वरूप चित्रण में भी प्रकट होती है क्योंकि उनके वर्णन में 'माया' का कोई भी स्वरूप नहीं बच पाया है। इनकी यह वर्णन शीलता ही साधक के ज्ञान में वृद्धि करती है तथा साधक के सतगुरु के रूप में उसका पथ प्रदर्शित करती है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. भवेताश्वेतरोपनिशद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, 4.10
2. सदानन्द, वेदांतसार, 1/38
3. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक–श्याम सुंदर दास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली–2008, पृ०–60
4. रैदास बानी, सम्पादक–डॉ० शुकदेव सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–2011, पृ०–78
5. पलटू साहिब की बानी, भाग–3, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद–2007, पृ०–60
6. आनन्द आधार (भूमिका भाग से), डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ–2019, पृ०–8
7. वही, पृ०–32
8. वही, पृ०–53
9. शब्द साधना, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ–2019, पृ०–53
10. वही, पृ०–23
11. सहज समाधि, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ–2020, पृ०–77
12. वही, पृ०–56
13. अनहद का नाद, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ–2021, पृ०–53
14. वही, पृ०–16

surenderdalal1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 254-258

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जायसी के 'पदमावत' में काव्य प्रयोजन परम्परा

डॉ. नीलाक्षी जोशी

विभाग प्रभारी, हिन्दी, एल0 एस0 एम0 रा0 स्ना0 महा0 पिथौरागढ़।

जायसी प्रेमगाथा परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। और 'पदमावत' उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। जायसी ने अपना जन्म सन् ६00 हिजरी (सन् १४९२) में हुआ बताया है। जायसी का पूरा नाम मलिक मोहम्मद जायसी। 'मलिक अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है स्वामी, सरदार आदि। 'फारसी' भाषा में मलिक का अर्थ है अमीर बड़ा व्यापारी आदि। कहा जाता है कि जायसी के पूर्वज अरब से आये थे। वे जायस के कंचाने मुहल्ले के रहने वाले थे, अतः जायसी कहे गये। 'मलिक' वंश परम्परा की उपाधि है और जायस के निवासी थे, अतः नाम पड़ा – 'मलिक मोहम्मद जायसी'।

जायसी के 'पदमावत' में इस प्रेम गाथा काव्य में भारतीय और मसनवी दोनों ही शैलियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। पदमावत में जायसी ने फारसी मसनवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए रत्नसेन और पद्मनी के प्रेम का निरूपण किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार '' यद्यपि पदमावत की रचना संस्कृत प्रबंध काव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर नहीं है, फारसी की मसनवी शैली पर है, पर शृंगार, वीर आदि के वर्णन चली आती हुई भारतीय काव्य परम्परा के अनुसार ही हैं। इसका पूर्वार्द्ध तो एकांत प्रेममार्ग का भी आभास देता है, पर उत्तरार्द्ध में लोक पक्ष का भी विधान है। पद्मनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न करने वाला है।''[1]

डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार ''काव्यतत्व में भावव्यंजना की दृष्टि से ''पदमावत'' अत्यन्त उच्च कोटि का काव्य है। काव्य की शैली में सर्वत्र प्रौढ़ता एवम् गंभीरता परिलक्षित होती है। इसकी भाषा अवधी है तथा छंद योजना में नियमित रूप में चौपाई व दोहे का प्रयोग किया हुआ है। समग्ररूप में यह एक अत्यन्त उच्च कोटि का प्रबंध है।[2]

''जायसी का विरह वर्णन बड़ा विषद् है। इन्होंने विरहग्रस्त प्रेमी और प्रेमिका के साथ सारे संसार की सहानुभूति दिखलाई है और सब चराचर, पशु–पक्षी आदि को विरह वेदना में व्याप्त बतलाया है। गेहूँ का हृदय भी विरह के कारण फटा हुआ है और कौआ विरह के कारण काला है। कहीं–कहीं उनका विरह वर्णन अत्युक्ति की मात्रा को पहुँच गया है किन्तु बिहारी के विरह वर्णन से कुछ भिन्न है। इसमें इनकी अत्युक्तियाँ विरह की विशम वेदना के संकेत रूप प्रतीत होते हैं, उनमें शब्दों का चमत्कार नहीं। जायसी की अधिकाँश अत्युक्तियाँ उत्प्रेक्षा–सूचक 'जनु', 'मानो' आदि अव्ययों के कारण वास्तविक जगत की न होकर कल्पना की बात रह जाती

हैं। जहाँ पर जायसी ने अत्युक्ति को घटना का रूप दिया है (जैसे की पक्षी द्वारा नागमती की चिट्ठी ले जाते का वर्णन) वहाँ वे बिहारी की भाँति हास्यास्पद बन गये हैं इसमें मुसलमानी काल की वीभत्सता भी आ गयी है, हर जगह रक्त के आँसू गिरते है। इसमें हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों का समन्वय हैं। इनके विरह में अत्युक्ति अवश्य है किन्तु इसके साथ ही इसमें अनुभूति की तीव्रता भी दिखलाई देती है।

जायसी बहुश्रुत थे। उन्होंने ज्योतिश, हठयोग और भातरंज का भी अच्छा ज्ञान दिखलाया है। ..... जायसी ने अपने ग्रन्थ ठेठ अवधी भाषा में लिखे हैं। इनकी अलंकार योजना बड़ी सुन्दर है। इनके अलंकार अलंकारों के उदाहरणस्वरूप नहीं लिखे गए हैं वरन् भावों के साथ गुँथे हुए हैं। 'पदमावत के कारण जायसी की कीर्ति हिन्दी संसार में अक्षय बनी रहेगी।''[3]

''जायसी अत्यन्त कल्पनाशील और संवेदनशील प्राणी थे। उन्होंने पद्मावत, अखरावट आदि काव्यों में बिम्बों की एक बड़ी संख्या प्रस्तुत की है जो उनकी कल्पनाशीलता का स्पष्ट प्रमाण है। उन्होंने कल्पना के द्वारा अपने प्रत्येक पात्र और प्रत्येक भाव के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है। जिसके कारण वह प्रत्येक पात्र और प्रत्येक भाव के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थपित किया है। जिसके कारण वह प्रत्येक पात्र के अनुकूल और प्रासंगिक बिम्ब विधान कर सके हैं। जो पात्र की प्रतीकात्मकता, चरित्र–चित्रण आदि के योग देने के साथ–साथ कथा में भी सहायक होते हैं। प्रत्येक भाव और स्थल पर मार्मिक और व्यंजनापूर्ण बिम्ब योजना उनकी संवेदनशीलता का परिचय देती है।''[4]

जायसी के काव्य में आचार्य मम्मट का काव्य प्रयोजन :–

व्यवहारपरिस्पन्दनसौन्दर्य व्यवहारिभिः।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनमौचित्यमाप्यते।।
चतुवर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम।
काव्यामृतरसेनान्त चमत्कारो वितन्यते।।[5]

काव्यकृति कुलीन लोगों के पुरुषार्थ–चतुष्टय की प्राप्ति का सरल मार्ग सम्पूर्ण मानवों के व्यवहार का रम्य साधन तथा आनन्दानुभूति रूप चमत्कार उत्पन्न करने वाली होती है।

आचार्य मम्मट ने परम्परा प्राप्त काव्य प्रयोजनों का परिष्कार एवम् परिमार्जन करके उनका निरूपण इस प्रकार किया है –

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृतये कान्तासमिम्ततयोपदेशयुजे।। 1/2

आचार्य मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन माने हैं– यशप्राप्ति, अर्थप्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अनिष्ट–निवारण, अलौकिक आनन्दानुभूति तथा कान्तासम्मित उपदेश। इनमें यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, एवम् अनिष्ट निवारण का सम्बन्ध मुख्यतः कवि से है, जबकि भोश का सम्बन्ध मुख्यतः सहृदय से।

जायसी के काव्य में इन भारतीय काव्यशास्त्र के काव्य प्रयोजन की परम्पराओं के तत्व विद्यमान हैं।

(1) यश प्राप्ति :–

यश की कामना जिसे लोकैषणा की भावना भी कहा जाता है मनुष्य की महत्वपूर्ण कामना है। अतः यश काव्य सृजन की प्रमुख प्रेरक शक्ति स्वीकार की जा सकती है। जायसी का भी मुख्य उद्देश्य यश प्राप्त कर

अमर हो जाना है। वे अपनी यश आकाँक्षा को छिपा न सके तथा उन्होंने ''पदमावत के कारण जायसी की कीर्ति हिन्दी संसार में अक्षय बनी रहेगी।''[3]

ओ मन जानि कवित्त अस कीन्हा।
मकु यह रहै जगत मह चीन्हा।।
– – – – – – – – – – – – – – – – –
केई न जगत जस बेचा केई न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम सुमिरै दुई बोल।।[6]

(2) स्वाभाविक एवम् सहज अनुभूति :–

जायसी के पद्मावत में ऐतिहासिकता एवम् कल्पना का अद्भुत–अपूर्व मिश्रित रूप है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि ''पदमावत में जायसी ने दो–चार ऐंतिहासिक नाम भर लिए हैं, शैली उनकी वही अपभ्रंश के वर्णनात्मक चरित प्रधान काव्यों की है, जिनमें काव्य–निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना–विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम, सम्भावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम।.....उल्लासित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, या विलसित तथ्यावली की ओर कम। ऐतिहासिक व्यक्तियों को काल्पनिक तथा पौराणिक नायक बनाने की भारतीय इतिहास में एक चिर–परिचित प्रथा रही है। वस्तुतः इतिहास को इस देश में आधुनिक अर्थों में कभी नहीं लिया गया।.....जायसी के रत्नसेन में, तथ्य और कल्पना का–फैक्ट्स और फिक्शन का–अद्भुत योग हुआ है।''

जायसी ने प्रकृति एवम् मानवीय वर्णनों में स्वाभाविक चित्रण एवं सहज अनुभूति विद्यमान है। मानसरोवर वर्णन, सिंहलद्वीप वर्णन, बसन्त खण्ड आदि में वर्णन काल्पनिक होते हुए भी प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हो मनोरम चित्र उपस्थित करते हैं। यथा :–

मानसरोदक देखिअ काहा। भरा समुँद अस अति अवगाहा।
पानि मोति अस निरमर तासू। अंम्रित वानि कपूर सुबासु।।
लंक दीप के सिला अनाई। बाँधा सरबर घाट बनाई।।
खँड–खँड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी।।
फूला कँवल रहा होइ राता। सहस सहज पंखुरिन्ह कर छाता।।
उलथहिं सीप मोति उतिराहीं। चुगहिं हंस औ केलि कराहीं।।
कनक पंखि पैरहिं अति लोने। जानहु चित्र संवारे सोने।।[7]

(3) करूणा एवं संवेदनशीलता :–

जायसी अत्यन्त कल्पनाशील एवम् संवेदनशील कवि थे। उन्होंने पदमावती और नागमती की विरहानुभूतियों का हृदयद्रावक अंकन किया है। इनका विरह वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी, मधुर, गम्भीर और निर्मल है। जायसी सांसारिक प्राणी अवश्य थे किन्तु उन्हें संसार एवं जीवन के प्रति मोह नहीं था। उनके जीवन में प्रेमाभाव एवं सुखाभाव ने ही उनकी इस वेदना को प्रेरणा दी। जायसी ने अपनी करुण अनुभूति को नागमती के विरह के माध्यम से अभिव्यक्त किया है यथा :–

सुवा काल होइ लै गा पीऊ। पिउ नहिं लेत लेत बरु जीऊ।।

सारस जोरि किमि हरी मारि गएउ किन खग्गि
झुरि–झुरि पाँजरि धनि भई विरह के लागी अग्गि।[8]

(4) अलौकिक आनन्दानुभूति :-

काव्य का परम लक्ष्य लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति ही माना है। आचार्य मम्मट ने इसे सम्पूर्ण प्रयोजनों में प्रमुख तथा राजानक कुन्तक ने पुरुशार्थ से भी बढ़कर माना है। जायसी ने अलौकिक आनन्दानुभूति को कविता का श्रेष्ठ गुण माना है जिसका रचना की सफलता में महत्वपूर्ण स्थान है इसी प्रकार जायसी ने भी अपने विषय में लीन होकर काव्य रचना का आस्वादन कर अलौकिक आनन्दानुभूति को प्राप्त किया है।

''सब कर मरम गोसाई जानइ, जो घट–घट मँह नित।''[9]

(5) लौकिक आध्यात्मिक प्रेम का समन्वय :-

आचार्य शुक्ल जी के अनुसार, ''पद्मावत महाकाव्य की कथा भारतीय है, किन्तु इसमें प्रेम की पद्धति भारतीय न होकर फारसी है।'' वे यह भी मानते हैं कि ''लौकिक प्रेम के वर्णन के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की गम्भीर व्यंजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य है''। पदमावत का कथ्य बाह्य रूप से लौकिक अवश्य है, वास्तविक रूप में यह आध्यात्मिक ही है। इसमें सूफी परम्परा के अनुसार नायक रत्नसेन जीवात्मा है और नायिका पदमावती ब्रह्म है। हीरामन तोता गुरु है जो जीवात्मा को परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग दिखलाता है। जायसी ने स्वयं पदमावत के उपसंहार में स्पष्ट किया है :–

गुरु सुवा जो पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमति यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न यहि चित बंधा।।
राघवदूत सोइ भौतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।।
प्रेम कथा यहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझे बारहु।।

पदमावत लौकिक प्रेम की आधारशिला पर खड़ा भव्य आध्यामिक प्रासाद है। इसमें कवि–कल्पना, भावुकता, रहस्यात्मकता और आध्यात्मिकता का उत्तम निदर्शन हुआ है। जायसी का पदमावत प्रेम की अदभुत मंजूषा है। कवि ने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम का सोपान माना है तथा इसकी व्यंजना में भारतीय तथा अभारतीय दोनों ही पद्धतियों को अपनाया है। कवि का मानना है कि संसार में प्रेम से बढ़कर कुछ नहीं है। प्रेम ही मनुष्य को वैकुण्ठ का अधिकारी बनाता है।

(6) रहस्य भावना :-

जायसी सूफी सन्त थे और सूफी मत को इस्लामी रहस्यवाद की संज्ञा दी गयी है। जायसी ने रहस्य साधना का प्रचार करने के लिए भी 'पदमावत की रचना की, क्योंकि जायसी स्वयं रहस्य साधना के पुजारी थे और ब्रह्म को 'अलख अरूप अबरन'[10] मानकर ही 'परगट गुपुत सो सरब बियापी'[11] स्वीकार करते थे तथा यह कहते थे कि 'धरमी चीन्ह चीन्ह नहिं नहिं पापी[12] अर्थात उस ब्रह्म को केवल धर्मात्मा ही मानते हैं पापी नहीं जान पाते। जायसी में रहस्य भावना के अत्यन्त सरस मार्मिक और उदात्त रूप में मिलती है। डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत ने जायसी के रहस्वाद के छः प्रकार बतलाये है– (1) भावात्मक, (2) आध्यात्मिक, (3) प्रकृतिमूलक (4) यौगिक, (5) अभिव्यक्तिमूलक, (6) तंत्र–मंत्रमूलक।

जायसी की रहस्यवादी भावना में व्यापकता, मौलिकता, अभिव्यंजना में नवीनता आदि विशेषताओं के दर्शन

होते हैं। जिससे उन्होंने अध्यात्म जैसे नीरस विषय को सरल भावों में अधिष्ठित कर रहस्यवाद को सर्वग्राह्य बना दिया है।

(7) वर्णन वैविध्य :–

जायसी बड़े प्रतिभाशाली सूफी संत थे। उनका 'पदमावत' प्रबन्धकाव्य में वर्णनों की विविधता मिलती है। ''उन्होंने विविध ग्रन्थों का तो उतना अध्ययन नहीं किया था, जितना की लोक का अध्ययन किया था। वे बहुश्रुत और बहुज्ञ थे। उन्होंने जन–जीवन से पूर्णतया सम्पर्क स्थापित करके लौकिक ज्ञान प्राप्त किया था और वे जन सम्पर्क के द्वारा विविध विशयों का ज्ञानार्जन किया करते थे। इसी कारण उनका 'पदमावत' प्रबन्ध–काव्य उनके प्रखर पांडित्य एवम् अदृभुत लौकिक ज्ञान का भंडार है। इसमें कवि ने जीवन एवं जगत की पाठशाला में अध्ययन करके जितना भी लौकिक ज्ञान प्राप्त किया था उसका विषद निरूपण किया है और अपनी उर्वर प्रतिभा एवम् व्युत्पन्नमति का अत्यन्त प्रभावशाली परिचय दिया है। वैसे तो कवि ने अपने को पंडितों का 'पिछलगा' ही बतलाया है, परन्तु कवि 'पिछलगा' नहीं है, उसके हृदय में भाव रत्नों का अद्भुत भंडार है। उसकी बुद्धि में अलौकिक ज्ञान का भंडार है, उसके मस्तिष्क में अद्भुत विचारों का भंडार है और उसकी जिह्वा में सरस एवम् अमूल्य प्रेम का मधु भरा हुआ है। इसीलिए जायसी ने 'पदमावत' में ज्योतिष–शास्त्र, शकुन–शास्त्र, सामुद्रिक–शास्त्र, सूप–शास्त्र, रसायन–शास्त्र, स्वपन–शास्त्र, वस्त्र, शृंगार–आभरण, पशु–पक्षी आदि का विशद निरूपण है।''[13]

जायसी का काव्य विषयक दृष्टिकोण पूर्ववर्ती हिन्दी कवियों की अपेक्षा व्यापक एवं साहित्यिक रहा है। जायसी ने अपने विशद पांडित्य एवम् विस्तृत लौकिक ज्ञान का परिचय देते हुए अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। जायसी के काव्य में कथा संगठन के अतिरिक्त अभिव्यंजना विधान का भी सुन्दर रूप मिलता है। सुगंठित कथा–विधान, प्रकृति एवं प्रेम की रम्य योजना, सरस एवम् सरल भाषा प्रभावी कल्पनाशीलता यही वर्णन कवि के पांडित्य–प्रदर्शन एवम् व्यावहारिक के भी द्योतक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 104
2. डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 157
3. डॉ0 चातक एवं प्रो0 राजकुमार शर्मा, पृ0 119
4. डॉ0 सुधा सक्सेना– जायसी की बिम्ब योजना, पृ0 422
5. वक्रोक्तिजीवित, 1/3–5
6. पदमावत पद संख्या 651
7. वही – पद संख्या 31
8. वही – पद संख्या 650/ 6 दोहा
9. जायसी ग्रन्थावली, मनमोहन गौतम, पृ0 12
10. पदमावत 7/1
11. वही 7/2
12. वही 7/2
13. पदमावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ0 372

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 259-261

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

करूणा भाभी

कमलेश तोमर

टी जी टी–हिंदी, शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली।

आज नींद नहीं आ रही पता नही क्यों कुछ बेचैन सा है। करवटें बदलते बदलते 3 बज गए। एकाएक दिमाग में करुणा भाभी का ख्याल आया स्मृति की धुंधली तस्वीरों और यादों को टटोला तो उनकी कहानी को लिखने का मन हुआ और बैठ गई हाथ में पेन और डायरी लेकर.....।

चिलचिलाती धूप थी मैं बस के इंतजार में आजादपुर बस स्टैंड पर खड़ी थी तभी बस आई और सभी बस की तरफ दौड़े। मैं भी अनायास ही दौड़ पड़ी। बस रुकी उसमें से एक दुबली पतली औरत उतरी उसके हाथ में थैला और गोदी में बच्चा था। उतरते ही वह बस में से बच्चों को भी उतारने लगी किसी की इंसानियत जागी और उसने बच्चों को उतारने में उसको औरत की सहायता की सभी बच्चे नीचे उतरने के बाद वह उन्हें गिनने लगी एक दो तीन चार पांच और चिल्लाई अरे! शोभा कहां गई?

शोभा ने आवाज लगाई "मम्मी मैं यहां हूं मैं सबसे पहले उतार गई थी"।

इस बात को करीब 15 दिन बीत गए तभी मुझे वह औरत फिर दिखी वह हमारे ही बगल के फ्लैट में रहती थी उनका नाम करूना था उनकी रसोई मेरे कमरे के सामने थी जिसमें से करुणा भाभी हमेशा काम करती दिखाई देती थी दो देवर सास ससुर पति और उनके 6 बच्चे इसलिए उन्हें एक पल भी चौन नहीं मिलता था कभी–कभी चिल्लाने की आवाज आती थी अरीओ करुणा कहां मर गई देख सारा दूध निकल गया कहां ध्यान रहता है तेरा। बेचारी भाभी की यह सुनकर जान सूख जाती थी चेहरा पीला पड़ जाता था वह दबी दबी आवाज में कहती माजी गोलू को सुलाने गई थी। उस सीधी–सादी अवतार स्वरूप भाभी को मैंने कभी किसी से किसी बात का विरोध करते नहीं देखा।

मैंने सुना था कि जब भाभी दुल्हन बन कर आई थी तो बहुत ही सुंदर थी नजाकत से भरी हुई लेकिन समय बीतने के साथ–साथ भाभी 35 की उम्र में 45 साल की नजर आने लगी थी।

एक दिन भाभी बाजार से सामान लेने जा रही थी उन्होंने अपने पल्लू को सिर पर रखा हुआ था और

एक तरफ से दाहिनी आंख को छुपा रखा था अचानक उनके हाथ से कुछ सामान गिरा और पल्लू भी हट गया मैंने देखा उनकी आंख बिल्कुल नीली और सूजी हुई थी। मैंने हिचकिचाते हुए उनसे पूछ ही लिया;

भाभी ये आंख में क्या हो गया?

अरे दीदी कुछ नहीं।

मैने कहा, कुछ क्यों नहीं आपकी तो पूरी आंख पर सूजन है।

वो मैं सीढ़ियों से फिसल गई थी, भाभी ने कहा।

भाभी तो चली गई लेकिन मेरे मन के मंथन को उजागर कर गई कि क्यों हम औरतें किसी के शोषण को छुपाती फिरती है क्या इसलिए कि कोई हमें ही कसूरवार ठहराएगा। या फिर यह डरकी यदि पति का घर छोड़ दिया तो समाज हमें नही छोड़ेगा। कब तक हम प्रताड़ना कलह और हिंसा का शिकार बनी रहेंगी। यह सोचकर भाभी के लिए आगे बढ़कर कुछ करने का मन किया लेकिन अगले ही पल मन मसोसकर रह गई।

फिर इधर उधर से पता चला कि उनके पति शराब पीकर आते हैं और उनसे पूरी रात पैर दबवाते हैं सारे दिन की के कामों से थकी भाभी को जब पैर दबाते दबाते नींद आ जाती तो वह उद्दंड आदमी सीधा लात चलाता है चाहे वह भाभी को कहीं भी लगे। यह बात सुनना मेरे दिल को चुभने दे गया मन किया कि समाज की व्यवस्थाओं से भीड़ जाऊं लेकिन पता नहीं क्यों मैं भाभी की कुछ भी मदद नहीं कर पाई एक असहनीय पीड़ा और विरोध मन में भरकर मैं चुपचाप रह गई।

कुछ दिनों बाद हमने वह सरकारी फ्लैट छोड़ दिया और अपने गांव लौट आए धीरे–धीरे में भाभी को भी भूल गई।

कुछ समय बाद मुझे पता चला की भाभी नहीं रही पता नहीं उनको क्या बीमारी हुई कि वे लड़खड़ा कर चलने लगी और धीरे–धीरे उन्होंने चारपाई पकड़ ली। अंतिम समय में उनकी सास ने ही उनकी सेवा की भाभी से बेड से उठा भी नहीं जाता था आंटी ही उनके बच्चों और भाभी की देखभाल करती थी। इतनी कम उम्र में भाभी इस संसार को छोड़कर चली गई लेकिन मेरे मन में कुढ़न, एक दिल को भेद देने वाली टीस और वेदना

देकर चली गई कि मैं भाभी के लिए कुछ भी नहीं कर पाई।

क्या भाभी की मौत का जिम्मेदार उनकी सास थी पति था कम उम्र में पैदा हुए छः बच्चे, बेटे की लालसा, समाज के ताने या फिर भाभी का कम पढ़ा लिखा होना।

अब जब मैं अपने विद्यालय में छात्राओं को पढ़ते हुए और बेहतर प्रदर्शन करते देखती हूं तो मेरी आंखो में अलग ही चमक होती है किहांये बच्चियां

जरूर करुणा भाभी जैसी सभी औरतों को इंसाफ दिलवाएंगी।

यदि मैं इन्हें पूर्ण रूप से सक्षम, शारीरिक वमानसिक रूप से समाज में अपने आपको स्थापित करने लायक बना दूंगी तो शायद करुणा भाभी को सच्ची श्रद्धांजलि दे पाऊं।

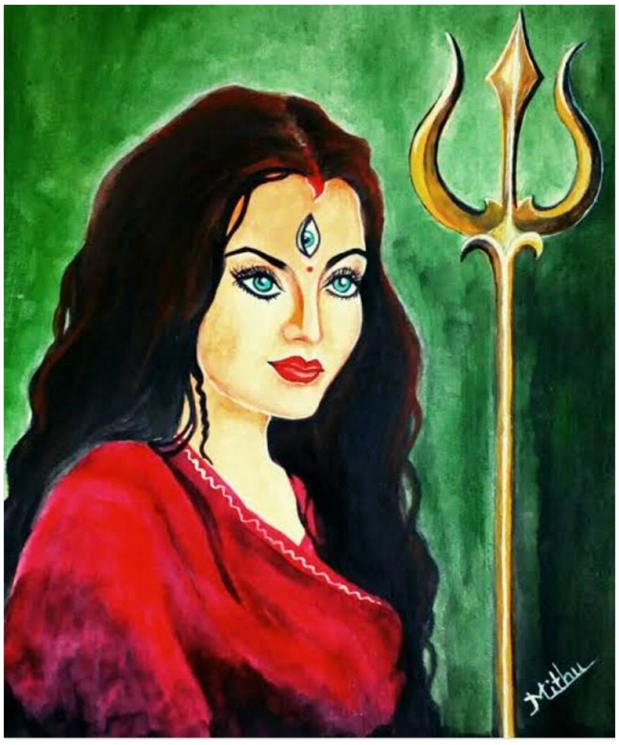

Mobile no- 9650939525

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 262-265

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुस्लिम बंजारा समुदाय की परिवर्तनशील परिस्थिति का आर्थिक अध्ययन

नाजमीन
शोधार्थी

प्रस्तावना :–

किसी भी समुदाय की सामाजिक आर्थिक स्थिति के निर्धारण में आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। मुस्लिम बंजारा समुदाय के संदर्भ में एक सामान्य दृष्टि है, कि यह आर्थिक रूप से अधिक सबल नहीं है। क्योंकि इस समुदाय में आज भी व्यवसाय का स्वरूप आदि स्रोतो में अधिक परिवर्तन नहीं है तो भी युवा पीढ़ी इस परिवर्तन को धीरे–धीरे स्वीकार कर रही है। परंपरागत व्यवसाय के स्थान पर अन्य व्यवसाय भी उनकी आजीविका का स्रोत बन रहे हैं। डॉ0 ए0 आर0 देसाई का कथन किसी भी समुदाय के सामाजिक तथा सांस्कृतिक आर्थिक विकास पूर्ण आवश्यकता है। इसके विपरीत आज जनजातियों में निर्धनता किसी भी दूसरी समाज की तुलना में कहीं अधिक है।[1]

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखण्ड राज्य के कुमांऊ मण्डल में स्थित नैनीताल जिले के रामनगर क्षेत्र में निवास करने वाले मुस्लिम बंजारा समुदाय की परिवर्तनशील परिस्थिति का आर्थिक अध्ययन करना है। जिसके अर्न्तगत मुख्य व्यवसाय, पारिवारिक आय, बचत के क्षेत्र, श्रण के आधार, व्यवसाय की स्वतन्त्रता का अध्ययन किया गया है।

साहित्य पुनरावलोकन सी0ए0वैली 1983 की पुस्तक ''रूलर्स टाउन्समैन एण्ड बाजार्स नार्थ इंडियन सोसाइटी इन द ऑफ ब्रिटिश एक्सपेंशन'' में भी व्यापारिक वर्णन मिलता है।[2]

बंजारो के बारे में वर्णन करने वाले विद्वानों में सर्वप्रथम एरियन का नाम आता है जिसको क्रूक ने 1974 पृष्ठ 52 ने अपने ग्रन्थ में उर्द्वत किया है।[3]

जहांगीर ने अपनी पुस्तक तुजुक जहांगीर 1863–64 में बंजारो के बारे में वर्णन किया है। इन्होने भी बंजारो के व्यापार कार्यो के लिए प्रयोग किये जाने वाले साधनों पर प्रकाश डाला है।[4]

शोध प्रविधि प्रस्तुत शोध पत्र जनपद नैनीताल के हल्द्वानी क्षेत्र में निवास करने वाले मुस्लिम बंजारा समुदाय के विशिष्ट संदर्भ में है। कुमांऊ मण्डल के जनपद नैनीताल के क्षेत्र हल्द्वानी के चुनाव का अधार इस क्षेत्र में रहने वाले मुस्लिम बंजारा समुदाय की सामाजिक और आर्थिक स्थिति रही है। जनपद की कुल जनसंख्या वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मुस्लिम जनसंख्या 64,255 है। जिसमें 33,763 पुरूष, 30,492 महिलायें

शामिल है जिसमें मुस्लिम बंजारो की संख्या 1780 है 1015 पुरूष 765 महिलायें शामिल है। अध्ययन विषय की प्राकृति, अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में आंकडो के संकलन हेतु मुख्यतः साक्षात्कार एवं अनुसूची एवं प्रविधि का प्रयोग अधिक प्रंसगिक है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में निर्देशन विधि के देव निदर्शन पद्वति का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में सूचना ग्रहण हेतु अध्ययन क्षेत्र के 52 उत्तरदाताओं का चूनाव प्रस्तावित है। सूचनादाताओं के रूप में परिवार के मुखिया को केन्द्र बिन्दु माना गया है।

अध्ययन क्षेत्र का संक्षिप्त विवरण उत्तराखण्ड राज्य भारत का पर्वतीय राज्य है। हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं से निर्मित प्राकृतिक सौन्दर्य परिपूर्ण पर्वतीय राज्य है। यह प्रदेश महान हिमालय, लघु हिमालय तथा उप हिमालय अर्थात शिवालिक पर्वत श्रेणियों से निर्मित है। 67 प्रतिशत (लगभग) पार्वत्य भारत के उत्तर में स्थित यह प्रदेश 28° 42 से 31° 28′ उत्तरी अक्षांश तक 77° 35 से 18° 05 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम 358 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण 320 किलोमीट है। इसके पूर्व में काली नदी तथा पश्चिम मे टोंस नदी क्रमशः पूर्वी एवं पश्चिमी सीमा रेखा का निर्माण करती है। उत्तराखण्ड दो मण्डलो कुमाऊ व गढ़वाल से मिलकर बना है।[5]

कुमाऊं की भौगोलिक स्थिति 28°51—30°49उत्तरी अक्षांश तक व 77°43—81°31 पूर्वी देशांतर के मध्य है तथा कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 21,032 वर्ग किलोमीटर है।[6]

कुमाऊं के उत्तर में चीन का तिब्बत क्षेत्र व पूर्व में नेपाल की सीमा है। संपूर्ण कुमाऊं में घने वन है और यह हमेशा से ही कुमाऊं में आएगा महत्वपूर्ण स्त्रोत रहे हैं तथा खस जाति कुमाऊं की मूल निवासी मानी जाती है 13,017 वर्ग किलोमीटर में फैले हुए कुमाऊं में विशाल पर्वत और नदियां का अधिकार है नंदा देवी (24380 फिट) यहां सबसे ऊंची चोटी है या गढ़वाल और पिथौरागढ़ के सीमांत पर स्थित है। इसके पास ही त्रिशूल (22369 फिट) चोटी है जो गढ़वाल व कुमाऊं की सीमा में स्थित है तथा पिंडारी ग्लेशियर 20150 फीट की ऊंचाई पर है। पिथौरागढ़ का यह ग्लेशियर एशिया का सबसे ऊंचा ग्लेशियर है तथा कुमाऊं की सबसे बड़ी नदी काली नदी है सन 2001 की जनगणना के अनुसार कुमाऊं की जनसंख्या 35,63,969 है।[7]

सारणी सं0 1

उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय

क्र0 सं0	40 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाता		युवा उत्तरदाता (40 वर्ष से का आयु)		कुल योग	
अनाज व्यापार	18	69.23	10	38.47	28	53.85
नमक व्यापार	03	11.55	02	07.69	05	09.63
मसाला व्यापार	01	03.84	—	—	01	01.92
पल्लेदारी	02	07.69	—	—	02	03.84
बगीचे	02	07.69	05	19.23	07	13.46
नौकरी	—	—	02	07.69	02	03.84
अन्य कार्य	—	—	07	26.92	07	13.46
	26	100.00	26	100.00	52	100.00

उपरोक्त सारण से स्पष्ट होता है कि 53.85 प्रतिशत उत्तरदाता का मुख्य व्यवसाय अनाज है जबकि 13. 46 प्रतिशत उत्तरदाताओं का व्यवसाय बगीचों का है 09.63 प्रतिशत उत्तदाता मशालों का व्यापार करते है। केवल 03.84 व 01.92 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो पल्लेदारी व नमक का व्यापार करते है। 13.46 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य व्यापार को करते है तथा 03.84 प्रतिशत उत्तरदाता नौकरी करते है। इस संदर्भ में केवल युवा उत्तरदाताओं ने ही प्रत्युत्तर दिये है जिसमें वर्तमान में नमक व पल्लेदारी का कार्य युवा उत्तरदाताओं में नही किया जाता। अनाज व्यापार में भी 40 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत अधिक है। जो इस तथ्य का प्रतीक है कि युवा उत्तरदाता में आधुनिक विकास का प्रभाव व परिवर्तन अधिक हो रहा है।

सारणी सं0–2

पारिवारिक आय के संदर्भ में उत्तर दाताओं के प्रत्युत्तर

क्र0 सं0	प्रत्युत्तर का स्वरुप	40 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाता		युवा उत्तरदाता (40 वर्ष से कम आयु)		कुल योग	
1.	10000	18	69.25	03	11.53	21	40.39
2.	10000 से 20000	03	11.53	04	15.38	07	13.46
3.	20000 से 30000	03	11.53	10	38.49	13	25.00
4.	30000 से 40000	02	07.69	06	23.07	08	15.39
5.	50000 से अधिक	—	—	03	11.53	03	05.76
		26	100.00	188	100.00	52	100.00

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 40.39 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 10,000 है। जबकि 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 20,000 से 30,000 है। 13.46 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 10,000 से 20,000 है। 15 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जिनकी मासिक आय 30,000 से 40,000 है जिनमें युवा उत्तरदाताओं का प्रतिशत अधिक है। 05.76 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जिनकी मासिक आय 50,000 तक है। इस संदर्भ में भी केवल युवा उत्तरदाताओं ने प्रत्युत्तर दिया है। इससे भी उल्लेखनीय यह है कि 40 वर्ष से अधिक आयु वाले अधिकांश 69.25 प्रतिशत उत्तरदाता की आय केवल 10,000 है। जो इस तथ्य का प्रतीक है कि युवा उत्तरदाता की आय में भी बढोत्तरी हुई है।

सारणी सं0–3

बचत के संदर्भ में उत्तर दाताओं के प्रत्युत्तर

क्र0 सं0	प्रत्युत्तर का स्वरुप	40 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाता		युवा उत्तरदाता (40 वर्ष से कम आयु)		कुल योग	
1.	हां	07	26.92	18	69.23	25	48.08
2.	नही	19	73.08	08	30.77	27	52.92
		26	100	26	100	52	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 48.08 प्रतिशत उत्तरदाता बचत कर पाते है जबकि 52.92 प्रतिशत उत्तरदाता बचत नहीं कर पाते है। तथ्य से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता बचत नहीं कर पाते। इससे भी उल्लेखनीय यह है कि 40 वर्ष से अधिक आयु वाले 73.08 प्रतिशत उत्तरदाता बचत नही कर पाते, वहीं अधिकांश युवा 69.23 प्रतिशत उत्तरदाता बचत कर पाते है। जो इस तथ्य का प्रतीक है कि युवा उत्तरदाता में आधुनिक विकास एवं परिवर्तन हो रहा है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

1. उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं के मुख्य व्यवसाय में परिवर्तन आया है।
2. 40 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाता की तुलना में युवा उत्तरदाता अधिक बचत कर पाते है। इन्हीं का आय स्तर भी बढ़ा है।
3. बंजारा जैसी विविधता भरी जाति अथवा वर्ग के लिए सरकार द्वारा विकास योजनायें चालायी जानी चहिए तथा इन्हे सामाजिक विकास के लिए भी प्रयास करने चाहिए।
4. अनाज व्यापार करने वाले बंजारो के लिए ऐसी विकास योजनायें चलायी जानी चाहिए जिससे वह अपने व्यापार को आधुनिक रूप दे सकें और अपने सैकड़ों वर्षो से करते आ रहे व्यापार को आधुनिक रूप दे सके और अधिक लाभ कमा सकें। दूसरी और कमजोर बंजारा वर्गो के लिए रोजगार सृजन पर बल दिया जाना चाहिए।

शोध सारांश :-

किसी भी समुदाय की सामाजिक स्थिति के निर्धारण में आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। मुस्लिम बंजारों का मुख्य व्यवसाय अनाज है परन्तु वर्तमान में युवा उत्तरदाता अनाज व्यवसाय से अन्य व्यवसाय को भी कर रहे है जिससे इनके आय के स्तर बड़ रहे है तथा आर्थिक स्थिति में भी सुधार आया है। 40 वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तरदाताओं की तुलना में युवा उत्तरदाता को श्रण की आवश्यकता कम होती है तथा यही उत्तरदाता बचत भी कर पाते है तथा सरकार द्वारा इनके द्वितीय प्रोत्साहन से सम्बन्धित योजनायें चलायी जानी चाहिए तथा सरकार द्वारा इन्हें व्यवसाय के लिए भी श्रण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अग्रवाल जी के ''जनजातिय समाज का समाजशास्त्र''।
2. सी0ए0वैली 1983 की पुस्तक ''रूलर्स टाउन्समैन एण्ड बाजार्स नार्थ इंडियन सोसाइटी इन द ऑफ ब्रिटिश एक्सपेंशन''।
3. क्रूक विलियम ट्राइल्स एण्ड कास्ट्स ऑफ नोर्दन एण्ड वेस्टर्न प्रोविन्सेज ऑफ अवध 1974
4. जहांगीर तुजुक जहांगीर 1863–64
5. पाण्डे बद्री दत्त ''कुमांऊ का इतिहास'' अल्मोडा बुक डिपो 1937
6. पाण्डे त्रिलोचन ''कुमांउनी लोक साहित्य की पृष्ठभूमि, साहित्य भवन इलाहाबाद।
7. रूवाली के0 डी0 कुमांउनी हिन्दी शब्दकोष ग्रन्थायन सर्वोदय नगर अलीगढ 1977

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 266-268

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुषम बेदी की कहानियों में अपनत्व की खोज में छटपटाता मन और अजनबियत से जूझती हकीकत की जिंदगी

राधारानी भट्टाचार्य

सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी), डाइट राजेन्द्र नगर, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, दिल्ली।

स्वातंत्रत्योत्तर हिन्दी कहानी जगत मे प्रोफेसर सुषम बेदी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। अपनी सशक्त लेखन कला और भावाभिव्यक्ति के जरिए उन्होंने न केवल प्रवासी हिन्दी साहित्य में, वरन साहित्य की मुख्यधारा में भी खुद को सशक्त रूप से स्थापित किया है।

पराई भूमि को अपना बनाकर, अपनी मातृभूमि से दूर रहने वालों की आँखों में अपनत्व के खोज की छटपटाहट का जो दर्द दिखाई देता है, उसे सुषम जी ने अपनी लेखनी से एक जीवंत काया प्रदान किया है। उनके नारी पात्र ससक्त हैं, स्वतंत्र हैं। जीवन को अपनी इच्छा और अपनी शर्तों पर चलाने की क्षमता रखते हैं और चलते भी हैं, फिर भी एक खालीपन उन्हे सालता रहता है। खुद को न समझे जाने की पीड़ा से वे अंदर ही अंदर जूझती हैं।

'संगीत पार्टी' की नायिका अचला ने वैसे तो अपने बेटे को ममत्व का चादर शायद ही कभी ओढ़ाया हो, पर उसकी अवहेलना से मन तार–तार होने देती है। पति से शिकायत रही कि वह उसे और उसकी भावना को समझता ही नहीं, उसे कभी खुद से खुद के लिए जी ने नहीं देता, पर पति को एकाकीपन में छोड़कर खुद आगे निकल जाती है। तब खयाल नहीं रहता की पति को भी उसी के साथ की और भावनात्मक संबल की उतनी ही जरूरत है जितनी उसे। पति को कभी वह यह बात समझा नहीं पाई कि उसे दूसरे पुरुषों का उसके लिए आकर्षित होना अच्छा लगता है, पर इसका यह मतलब नहीं कि वह उनके लिए समर्पित है।

यह दूसरी बात है कि उसने पति को समझाने में ज्यादा वक्त ज़ाया करना ठीक नहीं समझा और निकल पड़ी अपने रास्ते। ता–उम्र मन और तन दोनों को किसी ऐसे की खोज में भटकते रहने देती है जो उसे प्यार और मुक्ति एक साथ दे सके। पर जब यही बात खुद उसके ऊपर लागू की जाए तो? उसे बेटे के लिए दायित्व नहीं निभाने। उसे अपने यौवन पथ का कंटक मान उस पर अपनी खीज मिटानी है। पर बड़े होकर जब वही बेटा उसकी अवहेलना करे, तो वह इसी उधेड़ बुन में लगी रहे कि यह उसकी सास के बहकावे के कारण है या पति के ! बेटे की इस घोषणा से कि वह अपनी पत्नी पर अपनी मां का साया भी नहीं पड़ने देना चाहता, अचला का मन ज़ख्मी हो, अस्तित्व खुद पर प्रश्न उठाने लगता है। खुद को पूरी तरह बिखरने से बचाने के लिए खुद ही सवाल करती है कि बेटे ने भले ही उसे अपनी शादी में शामिल न होने की हिदायत दे दी हो, पर क्या वह अपनी माँ की जगह किसी और को दे पाएगा?

सवाल के भेष में खुद को खुद से दिया गया यह दिलासा मरहम लगाने और ध्यान बताने की कोशिश तो करता है, पर अपना सच तो अपने अडिंग विशाल रूप में बिना टससेमस हुए सामने ही खाद्य है, आँख मिलाकर। अचला न आँख मिलाने की हिम्मत जुटा पाती है न आँख चुराने की। उधर बेटे की शादी है। इधर वह अपने को निरर्थक संगीत पार्टी में उलझाए हुए है। मेहमानों को खाना खिलाते हुए वह अपने दायित्व निर्वहन करने का संतोष लेना चाहती है। पर मेहमानों की बधाइयाँ भी उसे चुभ जाती है और सवाल भी। खुद ही सोचती है, बताया ही क्यों। बेटी नीली की वह चहेती है, सिर्फ इस वजह से क्योंकि उसे पूरी आजादी दे रखी है। नीलीमा के समर्थन में है, और इसीलिए भाई की शादी में भी नहीं जाती। पर क्या सच सिर्फ इतना ही है? अगर यह सच होता तो भी शायद अचला को थोड़ी कम तकलीफ होती। पर वह खुद ही अपने सवालों के भवर में गोते खा रही है। नौकरी उसे मिल गई, अच्छे पद पर। पर योग्यता से नहीं। इसीलिए वह घबरा रही है कि यह नौकरी चली गई तो पता नहीं अगली कैसी मिले, "हर बार तुक्का नहीं लगता" "वह खुद से कहती है और भारती को कुछ चाहते, कुछ न चाहते हुए भी बली का बकरा बना देती है। ग्लानि है उसे, पर उससे ज्यादा तसल्ली है खुद की नौकरी बचा लेने की।

सच से भागते हुए, संगीत पार्टी की शाम के रूप में एक झूठी खुशगवार दुनिया अपने आसपास बुन लेती है। इसे आयोजन में खुद को इस कदर डुबाती है कि भूल पाए जिस तरह के व्यक्ति की उसे तलाश है, उससे आज तक नहीं मिल पाई है। और इस तलाश को तलाशते हुए जाने कितने ही अधूरे संबंध बना चुकी है। और इन सब बातों को परदे की आड़ में छुपाने की कोशिश करती है, संगीत पार्टी के आयोजन से। हर एक गायक को, चाहे वह कितना भी बेसुरा क्यों न हो, लता, आशा, किशोर और रफी की उपाधि से नवाज कर उनका मनोबल बढाती है और बार–बार सर उठाते प्रश्न को रोकने का असफल प्रयत्न करती है, कि क्या ये सब भी भीतर से उतने ही खोखले है, जितनी वह।

'अजेलिया के रंगीन फूल' की मिसेज मिलर हर हिन्दी प्रश्न का जवाब भी अंग्रेजी में ही देती है, भले ही बीस साल अमेरिका में रहने के बावजूद भी उनकी अंग्रेजी से पंजाबी लहजा ही निकलता हो। हिंदुस्तान और हिंदुस्तान वालों के लिए कोई अपनत्व नहीं है, अमेरिका को दिल से अपना चुकी है वे, हिंदुस्तानियों की आदतों पर कोफ्त है उन्हे और अमेरिका के विकास की चिंता में घुलती रहती है। अमेरिका उनका अपना है, वे अमेरिका की है, पर उन्हे इस बात का मलाल है, किनिक से शादी के बीस वर्ष बाद भी लोग उनसे यह सवाल पूछते है कि वह कहाँ से है। उन्हें कभी भी 'हममें से एक' के भाव से नहीं देखा जाता।

'सड़क की लय' की नेहा के पास मम्मी पापा का साथ, अन्कन्डिशनल प्यार और सपोर्ट सब है। वह एक आर्किटेक्ट है, सती प्रथा पर फिल्म बना रही है। चौबीस साल की होने चली है, वर्जिन है और मम्मी पापा के साथ ही रहती है। अपनी जिंदगी और अपने दोस्तों के बारे में मम्मी पापा से खुलकर बात कर पाती है। कितनी सौंधी भारतीय खुशबू है ! पर समस्या यहाँ भी है। शादी। नेहा अभी गृहस्थी में रमना नहीं चाहती, न उसके पास फुरसत है। परमा को लगता है बिना गृहस्थी पूरी जिंदगी नहीं गुजर सकती। नेहा की सहेली अंशुल का उदाहरण माँ के सामने जब तब मुँह बाये आ खड़ा होता है। भला यह भी कोई उम्र है सन्यासिन बन जाने की। माँ किसी भारतीय लड़के से नेहा की शादी नहीं करना चाहती क्योंकि भारतीय लड़कों को अमेरिका आकर बदलते हुए वे देख चुकी हैं। इसलिए वे चाहती हैं कि नेहा अपनी पसंद से शादी करे। लेकिन वे शादी से पहले 'साथ रहने'

की इजाजत कभी नहीं देंगी।

नेहा को पता नहीं, उसे पीटर से सचमुच प्यार है या नहीं, पर वह खास है, पापा कहते है तो यह प्यार ही है शायद। प्यार का भले ही पता न हो पर नेहा को यह भली–भांति पता है कि वह शादी के बिना उसे छूने की इजाजत नहीं देगी और पीटर शादी के बारे में तभी कुछ सोचेगा जब उसे पूरी तरह जान जाएगा। उधेड़ बुन यहाँ भी है, उलझन भी है। पर मम्मी पापा का प्यार भरा साथ, अपने प्रफेशन और पैशन के प्रति लगाव और समर्पण नेहा को न टूटने देता है न बिखरने। लेकिन, हर कहानी की नायिका इतनी सौभाग्यशाली नहीं है कि अपनों के स्नेह से आप्लावित रह सके और अजनबियत की छटपटाहट से खुद को बचा पाए।

सन्दर्भ सूची :–

1. बेदी, सुषम, सड़क की लय और अन्य कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, 2015
2. खारी मनीष, सुषम बेदी के कथा साहित्य में प्रवासी जीवन की समस्याएं, http ://www.sahchar.com 2018 / 04 / 05
3. कुशवाहा, डॉ. अमित कुमार सिहं, बेदी के कथा साहित्य में प्रवासी जीवन, रिसर्च गेट, https://www.researchgate.
4. सक्सेना, डॉ. शैलजा जीवन–स्थितियों की गाथाकार सुषम बेदी : विशेष संदर्भ 'सड़क की लय और अन्य कहानियाँ', साहित्य कुंज
5. शर्मा, डॉ. विशाला, प्रवासी दुनिया : प्रवासी विमर्श और सुषम बेदी का उपन्यास, अपनी माटी, मार्च 2017

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 269-271

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Matriarchy

Dr. Deepshikha Sharma
Principal, Ganpati Institute of Science and Technology.

Introduction :-

Matriarchy is a type of society which is led or controlled by women. In matriarchy the mother ortheoldest women of the family is the head of the family & she is often known as Matriarch. The matriarchal system is the gift of nature & matriarchal society is liberal when it goes to research & experimentation. Matriarchy system revolves around the principle of mother rule. In matriarchy women hold all the powers & they have the power of chief, Social privilege, leadership, moral authority & control over property. Today virtually there is no field in which women has not proved their capacitywhether it administration, teaching, politics, engineering, defence etc. as women are not lessthan men in any manner. In India women are worshipped in the form of wisdom, health, power which signifies that women are even more stronger as compared to men in manyfields/forms. Matriarchy is a concept where women rule and women are the main leader/karta of the family, matriarchy witnessed since a long time and it's still prevalent in many parts of ournation like Kerala, Assam, Meghalaya, Nagaland and other parts of North East. In matriarchythe leadership and authority lies in the hands of women.

Key Word :-

1. **Karta-** Senior most member of the family having wide powers of management andcontrol over family. Often known as manager/head of the family.
2. **Polyandry-** A practice or tradition in which a woman can be married to more thanoneman at the same time. Eg- Panchali of Mahabharata.
3. **Polygamy -** Custom of having more than one wife at the same time.
4. **Matrilineal -** A system in which kinship is traced through maternal line. The property and wealth is passed from mother to daughter.
5. **Monogamy -** Custom of being married to only one individual at a specific time.

Meaning A type of social organization in which female is head of the family and society, and descent kinship is traced through the female line. Matriarchy was first established as word and given a meaning in year 1881 in English. Theoriginal meaning of matriarchy was "a govt. by mother" later it

was recognised as female dominating social system.

Nature of Matriarchy :-

The ownership is done by the females of the house for eg. The property, ancestral properties, immobile & mobile property. The children get their title from their mother not from father. The property is passed from the mother to their daughter. In matriarchy, societyis pretty liberal & open minded as they give more opportunity, power to women & it is more progressive in nature. In matriarchy all type of marriages are permitted whether it polyandry, monogamy, polygamy these all forms of marriages are acceptable in matriarchal society. Matriarchy is a type of society which is led or controlled by women. In matriarchy the mother or the oldest women of the family is the head of the family & she is often known as Matriarch. In matriarchy the governance of the society is in the hands of the women. Female dominanceis prominent. They make all the decisions in the family. Females hold all the positions of power and authority. It includes - social - political -economic.

Some example of Matriarchy :-

1. In the Mosuo community of Southwest of China near Burmese border where matriarchyis still in practice it is known as the Land where women rule. Mosuo community around 40,000 people they practice Buddhism. Where the women are considered as the head of house & property is given from mother to daughter. In this community the grand mother has the utmost power in the family.
2. The Umoja community of Samburu district in Kenya practice matriarchy since 1990. this village is entirely matriarchal in nature. Its often called as women village and menare banned in this village. Women earn their livelihood through tourism and hold the ultimate supreme power.
3. The Akans of Ghana in West Africa are matrilineal in nature Akans are the largest ethnic group of Ghana.
4. **In India Kerela's Matrilineal System :-** The Nair community, the property passes from mother to daughter & not from father to son. In the kingdomTranvoncore the king's sister is queen & the queen's children will get the throne and in present day also the Nairs of Kerala practice matriarchy.
5. **In the states of Meghalaya :-** Khasi and Garo tribes the Matrilineal systemis operated and practised in which the wealth and property is passed from mother to daughter rat her father to son. In Khasi & Garo community the women have the responsibility to further propagate their blood line and clan name.

Definitions :-

1. According to Oxford dictionary Matriarchy is a social system that gives power & authority to women rather than men.
2. According to Encyclopedia Britannica Hypothetical social system in which the mother or a female elder has absolute authority over the family or group.

Merits / advantages of Matriarchy :-

1) In matriarchal society, women are very much supported and they are not neglected as in the patriarchal society.
2) The path of development is open for women, like they are free to work.
3) In matriarchal society, women are given better Status than men. The living example of matriarchal society is United Kingdom- Queen Elizabeth.
4) The Leader of family is already decided so there is no chance of dispute or Question who rules.

Demirities/Disadvantages :-

1. Men of the society are treated unequally.
2. The System completely disregard the role of men.
3. Men Becomes victims of exploitation & harassment.
4. In Matriarchal Society men are completely neglected & their opinion is also neglected.
5. Some women use their power in wrong sense.
6. Men are not involved in the decision making at all.

Refrence :-

1. Gender, School and Society- Girish Pachori.
2. Gender school and societ Dr. Vineeta Rana, Dr. Neerja, Dr. Kavita Bansa
3. Wikipedia.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2022 Page No. : 272-276

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्र निर्माण में छत्तीसगढ़ी गजल

डॉ. (श्रीमती) हरिणी रानी आगर

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शास. बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

श्रीमती माग्रेट कुजुर

सहायक प्रध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय धरमजायगढ़ जिला– रायगढ़ (छ.ग.)

शोध सारांश :-

छत्तीसगढ़ी साहित्य में गजल एक नवीन विधा के रूप में अवतरित है। यहाँ के गजलकारों में मुकुन्द कौशल का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है। लोकजीवन, लोक संस्कृति, कृषक जीवन, नारी जीवन, रीति–रीवाज, पर्व–त्यौहारों से अभिभूत होकर आपने अपने गजल को हृदयस्पर्शी ढंग से गाया है जिसमें मानवीय पीड़ा एवं संवेदनाओं को बहुत ही बखूबी के साथ उकेरा है, आपके गजलों का आकाशवाणी से कई बार प्रसारण हो चुका है। छत्तीसगढ़ की जनता आपके गजलों को श्रम में प्रेम में, कर्म में, धर्म में गुनगनाती हैं छत्तीसगढ़ की महिला गजलकार शकुन्तला शर्मा ने अपने गजलों में सामाजिक समस्याओं, देश–प्रेम, ग्रामीण जीवन, नारी जीवन, मंहगाई, मादक पदार्थों का सेवन आदि विषयों पर गजल लिखा है। इसी प्रकार बलदेव साहू जी के गजल सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं को लेकर लिखी गई है जो आज के समाज में हमें दिखाई देते हैं। माधुरी डड़सेना मुदिता जी ने छत्तीसगढ़ी गजल के माध्यम से छत्तीसगढ़ी भाषा को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। छत्तीसगढ़ी गजल के क्षेत्र में अनेक नवीन गजलकार गजल लिख रहे हैं जो गजल के सुन्दर भविष्य का संकेत है।

गजल काव्य का एक प्रकार है इसका मूलस्वरूप अरबी है यह अरबी से फारसी में और फारसी से उर्दू में प्रविष्ट हुआ है। उर्दू से इसे हिन्दी में लाने का श्रेय प्रसिद्ध कवि एवं गलजकार दुष्यंत कुमार को दिया जाता है और इसे हिन्दी से छत्तीसगढ़ी में लाने का श्रेय मुकुन्द कौशल को दिया जाता है। वर्तमान छत्तीसगढ़ी साहित्य जगत में मुकुन्द कौशल एक बहु चर्चित नाम है। 7 नवम्बर 1947 को मुकुन्द कौशल जी का जन्म दुर्ग जिले में हुआ था आपको साहित्य एवं संगीत विरासत में ही मिली है। आप उर्दू एवं गुजराती में शायरी करते हैं, आपकी गजलों में उर्दू की गजलों की इसका फरमान नहीं है अपितु आपके गजलों की विषय–वस्तु में वे तेवर दिखाई देती है जो दुष्यंत कुमार के गजलों में है। कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं व्यंग्य, कहीं प्रतीक तो कहीं प्रकांतर रूप में सामाजिक विषमता को कोसा है एवं छत्तीसगढ़ की आम जनता को सचेत एवं सावधान किया है।

छै बित्ता के मनखे देखौ, का का जिनिस बिसा लेथे।
आगी पानी पवन अकासा, भुंइया तको नंगा लेथे।।

उक्त पंक्तियों का भावार्थ यह है कि यह मनुष्य जाति छः बालिश्त का है लेकिन वह अपनी शक्ति सामर्थ से न जाने कितनी वस्तुएं खरीद लेता है यहाँ तक कि आकाश, अग्नि, जल, पवन, मिट्टी यहाँ तक कि धरती को भी वह अपने वश में कर लेता है। अर्थात यहाँ पर गजलकार ने मनुष्य की ऊर्जा, शक्ति एवं पराक्रम को इंगित किया है।[1]

सन् 1970 में आपकी गीतों ने छत्तीसगढ़ जनमानस में काफी लोकप्रियता अर्जित की है और आज भी जनमानस आपकी गीतों को गुनगुनाते हैं। आपने आल्हा, चंदैनी, फाग, ददरिया, करमा, सोहर जैसे पारंपरिक एवं लोक सौंदर्य बोध से सुसज्जित छंदो की धरातल में अपनी कलम चलायी है। आपने छत्तीसगढ़ी गीतों का परिमार्जन एवं नवशिल्पीकरण का कार्य किया है। अतः यह कहना उचित ही होगा कि आपने करमा, ददरिया से छत्तीसगढ़ी गजल के क्षेत्र में काबिलें तारीफ सफर किया है।

मुकुन्द कौशल जी कलम के अद्भुत जादूगर माने जाते हैं आपके छंदो में कसावट, बिम्बों व प्रतीकों में विविधता एवं गीतों व गजलों में एक नया रूप होता है, आपकी गजलें जादूई सीमा के पार होती है। गजल के संबंध में अनेक विचार एवं तर्क दिये जाते हैं लेकिन यथार्थ यह है कि हृदय में उठने वाली दुःख दर्द पीड़ा को भाब्दों में व्यक्त करने का नाम ही गजल है। आपके गजलों में मुहावरों का सुंदर प्रयोग अर्थ में बोधगम्यता के साथ–साथ सम्पूर्ण शब्दों और कहावतों में छत्तीसगढ़ी माटी की सोंधी महक आती है। कौशल जी की गजलें छत्तीसगढ़ अंचल वासियों के लिए अमूल्य उपहार है। आपने नये गजलकारों को एक नयी दिशा एवं नयी मंजिलें तैयार की है जिससे छत्तीसगढ़ी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में गजल का एक नया इतिहास बनेगा।

छत्तीसगढ़ी साहित्य में गजल एक नवीन काव्य रूप में वर्तमान समय में जोर पकड़ता जा रहा है। इस संबंध में डॉ. मनीष दीवान के अनुसार गजल को सांकेतिक रूप में डॉ. विनय कुमार पाठक ने गजरा शब्द से अभिहित किया है देवधरदास महंत ने लरलरिया का एवं रामेश्वर वैष्णव ने 'गजलिहा' शब्द नाम देकर चित्रांकन किया है। जिसमें गजरा शब्द अधिक तर्कसंगत एवं सार्थक प्रतीत होती है कारण गजरा से अभिप्राय रंग–बिरंगे फूलों से गूँथी हुई माला होती है जिसमें बहुरंगी पुष्पों की भांति विविध मनोभाव, अनुभतियाँ एवं विचार पारस्परिक रूप से गूँथी हुई हैं। जिसकी सुगंध एवं सौंदर्यता अलग तरह की होती है। डॉ. विनय कुमार पाठक कृत छत्तीसगढ़ी गजरा कवि सम्मेलनों एवं आकाशवाणी के प्रसारण में अपनी लोकप्रियता को स्थापित की है जैसे–

तोर मन बासी अउ मोर तन मन नून हे।
तोर बिन गोई ये जिनगी सून हे।।[2]
चारों डहर सवाल उगे हे, मूड़ उचाए करगा कस।
यैला लू के सफल किसन्हा, हर जुवाब सिरजा लेथे।।

मुकुन्द कौशल जी के उक्त गजलकार का भावार्थ यह है कि चारों तरफ प्रश्न उठ रहे हैं जैसे (व्यर्थ घास करगा) खेतों में उग जाता है जिसे किसान उखाड़कर फेंक देता है, और अपनी फसल की रक्षा कर फसल की बढ़ौतरी के लिए रास्ता साफ कर लेता है। उसी तरह मानव भी अपनी सभी प्रश्नों का उत्तर स्वयं तैयार कर लेता है गजलकार ने यहाँ मनुष्य की बुद्धि एवं विवेक की प्रशंसा की है।

पीरा, अपने आप टघल जाथे बेरा के ढरकत ले।
ऊँखरे हवय जमाना संगी, जै पीरा संग गा लेथे।।

इसका भावार्थ यह है कि समय का काम होता है बीत जाना अर्थात सुबह से शाम हो जाती है उसी प्रकार से मनुष्य की पीड़ा दुःख दर्द भी पिंघल जाता है। अर्थात् समय के साथ दुःख भी कम हो जाता है और वे मनुष्य जो दुःख व पीड़ा के समय गीत गा लेते हैं जमाना भी उसी का है।

हिजगा–पारी के बाजार मां, परमारथ के मोल कहाँ।
हांस के गुरतुर शाखा बोलय, उही परमपद पा लेथे।।

गजलकार यहाँ यह प्रश्न करते हैं, कि ईर्ष्या द्वेष के बाजार में परोपकार का क्या मूल्य है? ऐसी विषम बाजार में जो मनुष्य हँसकर मीठी बोली बोल लेता है मानों वह यहाँ परमपथ को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् इस संसार में केवल प्रेमयुक्त वाणी का ही महत्व है।

समय पड़े हे सम्हरे बर अऊ, चिक्कन कोरे गाथे बर।
चतुरा मन हर ठंऊका बेरा, चूंदी ला पटिया लेथे।।

प्रस्तुत गजल का भावार्थ का यह है, कि सजने सँवरने और अच्छे वस्त्र पहनने के लिए अभी बहुत समय है और चेहरे को सँवारने चोटी गूँथने और बाल को सँवारने के लिए बहुत समय है लेकिन जो चतुर नारी होती है वह सही समय पर अपने बालों को सँवार लेती है।

दिन दुकाल ला हाँस के सहिथे, छत्तीसगढ़ के भुंइया हर।
महतारी मन गरा–धूंका, अंचरामां गठिया लेथे।।

छत्तीसगढ़ महतारी आकाल आभाव को हँस–हँस कर सह लेती है। लेकिन धरती माँ ही जो हर प्रकार की बीमारियों और आभाव को अपने आँचल में बाँध लेती है।[3]

छत्तीसगढ़ के महिला गजलकारों में भाकुन्तला शर्मा जी का नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है 'बूड मरय नहकौनी दय' आपकी प्रसिद्ध गजल संग्रह है। जिसकी निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत है–

खेत बेंच के बिहाव कर दिस, बपरा किसान अब का खावय।
ससुरार म बेटी भूखी मरत हे, बूड मरय नहकौनी दय।।

उक्त पंक्ति में शकुन्तला जी ने बताया है कि खेत बेचकर धरती पुत्र किसान ने अपनी बेटी का विवाह कर दिया है और उसके पास खाने के लिए कुछ नहीं है अब उधर बेटी ससुराल में भूख मर रही है। अर्थात् कष्टों से घिरी हुई है और विफलता के बाद भी पिता मूल्य चुकाने पर मजबूर है।

देश–भक्ति के खातिर जे ह, जिनगी अपन समर्पित कर दिस।
वोकरे पागी ल तीरत हावय, बूड मरय नहकौनी दय।।

प्रस्तुत गजल ने शकुन्तला जी ने देश के वीर जवानों एवं शहीदों के लिए सम्मान व्यक्त किया है वे कहती हैं कि लोग देश के सेनानियों को सम्मान देने से तो रहे बल्कि उनकी इज्जत उतारने से भी बाज नहीं आते।

लइकई ले बस बुता करत हे, मन भर भरे हे डर अऊ भय।
अपनेच घर के बनिहारिन बपरी, बूड मरय नहकौनी दय।।

इस गजल के माध्यम से शकुन्तला जी यह बताना चाहती हैं कि हमारे छत्तीसगढ़ की महिलाएँ बच्चे को गोद में लेकर काम में दिन–रात लगी रहती है और मन में ससुराल के लोगों को लेकर भय पाली रहती है वह अपने ही घर में बेचारी नौकरानिन की तरह कार्य करती है।

आस लगा के बइठे हावस, हमरों कौनो पूछइया हे।
जेन बेटा ला पाले–पोसे, परान उही लेवइया हे।।[4]

छत्तीसगगढ़ के उभरते हुए गजलकार बलदेव राम साहू ने अपने छत्तीसगढ़ी गजल में बताया है कि मैं इस आशा–विश्वास से हूँ कि मेरा कोई पूछ परख रखने वाला है जिस बेटा को मैने पाल–पोसकर बड़ा किया है आज वही मेरे प्राण लेने को आतुर है।

जेन खूँटा ला धरे हावस, उही हर होगे हे सरहा।
सरवन बन के कौन तोला, तीरथ–बरत करइया हे।।

गजलकार कह रहे हैं कि मैने जिस खंभा को पकड़ा था वह खंभा सड़ गया है और श्रवण कुमार की तरह बन कौन? मुझे तीर्थ यात्रा कराएगा। अर्थात गजलकार यह बताना चाहते हैं कि आज माता–पिता अपने पुत्र को पाल–पोसकर बड़ा करते है आज वही पुत्र उनको कष्ट पहुँचाने के लिए नहीं चुकता है।[5]

छत्तीसगढ़ी गजल के महिला गजलकार माधुरी डड़सेना मुदिता जी ने अपने छत्तीसगढ़ी गजल में परदेश गए पिया को संबोधित करते हुए इस प्रकार से भावों को व्यक्त किया है–

सुन मोर मयारू रे रद्दा तोर जोहत हौं।
कब आबे तैं परदेशी तन मुरदा ल ढोवत हौं।।

गजलकार कहती हैं कि हे परदेशी मैं तेरे आने के लिए रास्ता को देख रही हूँ, और मैं अपने इस तन को मुरदे की तरह ढो रही हूँ।

आँखी पथरागे हे सुक्खा परगे आँसू।
तै सुध लमा लेना पाना कस डोलत हौं।।

गजलकार कह रहीं है कि मेरी आँखे रास्ता निहारते–निहारते थक गयी है, आँखों से आँसू सूख गये हैं तू थोड़ा भी मेरा ध्यान कर मेरी स्थिति सूखे पत्ते की तरह कमजोर हो गई है।

जर जाय जवानी ये कइसन के भरोसा अब।
गुन–गुन के मरे जी हर आगी म समोवत हौं।

उक्त पंक्ति में गजलकार कहती हैं कि मेरा भरोसा टूट रहा है और यह जवानी नष्ट हो रहा है, और मैं हरपल तुम्हारा ध्यान धरकर जी रही हूँ जो ऐसा लग रहा है जैसा कि मैं अपनी आत्मा को आग में समाये जा रही हूँ।

दिन रात मयारू के मुखमुँधरा झूलत हे।
सुरता के कटोरा मा आँसू ल निचोवत हौं।।

गजलकार कह रही हैं कि दिन–रात परदेशी तेरा मुख मण्डल मेरे आँखों में झूलता रहता है, और मेरे आँख से निकलने वाले आँसुओं को तेरे याद रूपी कटोरा में सहेज के रखी हूँ।

नदिया नरवा अँगना मोला अब चिढहाथे।
जिनगी कचरा होगे हीरा तोला खोजत हौं।।

गजलकार कहती है कि नदियाँ, नरवा, आँगन मुझे चिढ़ा रहे हैं और कह रहे है कि तुम्हारी यह जिन्दगी कचरे के समान हो गये हैं लेकिन तब भी मेरा परदेशी हीरा मैं तुझे खोज रही हूँ।

करिया म बँधाये मन तुलसी बिरवा आघू।
सब आस करे पूरा पानी ला रितोवत हौं।।

विरहणी कहती है कि मेरा मन तेरे कसमों में बंधा हुआ है और मैं रोज तुलसी के पौधे के पास जाकर अपने आस को स्मरण करती हूँ और नित्य ही उसमें पावन जल को सींचती हूँ।[6]

गजल के क्षेत्र में निशीथ पाण्डेय प्रबंधन शास्त्री जो छत्तीसगढ़ी गजल के क्षेत्र में नवीन उत्कर्ष के साथ गजल का सृजन कर रहे हैं। छत्तीसगढ़ की साहित्य भूमि गजल के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं से भरा एवं भविष्य उज्ज्वल है।

संदर्भ :–

1. डॉ. वनिता खरे शोध प्रबंध पं. सुन्दरलाल शर्मा विश्वविद्यालय बिलासपुर 2012.
2. डॉ. श्रीमती कल्पना डाहाके शोध प्रबंध पं. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.) सन् 2016
3. जनपदीय भाषा–साहित्य छत्तीसगढ़ी, छत्तीसगढ़ी राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी पं. रविशंकर विश्वविद्यालय परिसर रायपुर, सन् 2013 पृ. 46–47.
4. बूड मरय नहकौनी दय, वैभव प्रकाशन अमानीपारा चौक, पुरानी बस्ती रायपुर, प्रथम संस्करण 2016, पृ. 07.
5. gurtur goth – http:// gurtur goth.com>cg-gazal.
6. छत्तीसगढ़ी महिला गजलकार मुदिता डड़सेना व्यक्तिगत संपर्क से प्राप्त।

पता –
श्रीमती माग्रेट कुजूर
सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शास. महाविद्यालय धरमजयगढ़, जिला– रायगढ़ छ.ग. 496116
मो. न.– 9669213973

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

नाम - डॉ. पवन कुमार

जन्म - गाँव- ब्रम्हीपुर, पोस्ट-अर्जुनपुर, जिला-सतना, म.प्र., वर्ष 1981

शिक्षा - आई.टी.आई. (रेडियो. टी. वी./इलेक्ट्रॉनिक्स), पी.जी.डी.सी.ए., बी. एड. (शिक्षा स्नातक), स्नातकोत्तर- (हिंदी, अंग्रेजी, शिक्षाशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान), राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण (हिंदी एवं शिक्षा शास्त्र, समाजशास्त्र), इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली से पी.एच. डी.-हिंदी की उपाधि)

सम्मान एवं पुरस्कार :-

1. हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा हिंदी रचना प्रतियोगिता पुरस्कार 2017, प्रथम स्थान
2. शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली द्वारा एक्सीलेंस इन एजुकेशन अवार्ड 2017
3. मास्टर्स एथेलेटिक्स एसोसिएशन दिल्ली द्वारा वर्ष 5 हज़ार मीटर स्पर्धा में द्वितीय स्थान 2019
4. राष्ट्रभाषा विकास परिषद्, पुणे एवं महात्मा गाँधी राष्ट्रभाषा प्रचार संस्था, महाराष्ट्र द्वारा सम्मानित
5. नवसृजन हिंदी रत्न सम्मान 2019
6. अरबिंदो सोसाइटी द्वारा टीचर्स इनोवेशन अवार्ड
7. इंटरनेशनल टीचर्स प्राइड अवार्ड 2021
8. बृजलोक अकादमी, उत्तर प्रदेश द्वारा आदर्श शिक्षक पुरस्कार
9. भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम) अहमदाबाद एवं नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, सिंगापुर से प्रशिक्षण प्राप्त इत्यादि।

प्रकाशन/संपादन :-

लॉक अनलॉक परलोक (काव्य संग्रह), पूस की दोपहर (काव्य संग्रह), उन्मुक्त परिंदे (साझा काव्य संग्रह), पल्लव, कंठिका, इफेक्टिव टीचर 2021, टाइम मैनेजमेंट ऑफ़ स्कूल प्रिंसिपल्स- शोध कार्य, हिंदी कहानियों में आदिवासी जीवन : समाजशास्त्रीय अध्ययन, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी विशेषांक- बोहल शोध मंजूषा, अगस्त 2022

प्रकाशकाधीन

प्रवासी हिंदी साहित्य और डायसपोरा विशेषांक - बोहल शोध मंजूषा, अक्टूबर 2022

वेबिनार एवं सेमिनार

विभिन्न शोध पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों में 20 से अधिक लेख प्रकाशित, राष्ट्रीय एवं स्थानीय समाचार पत्रों में समय-समय पर लेख, कविताएँ प्रकाशित, 100 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार/वेबिनर में सक्रिय भागीदारी तथा पेपर प्रेजेंटेशन।

सम्प्रति - सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी, मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, राजेंद्र नगर, नई दिल्ली-110060

संपर्क सूत्र- 8447003240 अणुडाक - pawankbhardwaj@gmail.com

नाम - मीरा विश्वकर्मा

जन्म - गाँव- देवरी कला, रीठी , जिला-कटनी, म.प्र., वर्ष 1986

शिक्षा - बी. एड. (शिक्षा स्नातक), केन्द्रीय शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण (प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर) स्नातकोत्तर- (हिंदी, समाज शास्त्र), राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण (हिंदी एवं समाज शास्त्र) चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, हरियाणा से एम. एड. उपाधि।

प्रकाशन/संपादन :-

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी विशेषांक- बोहल शोध मंजूषा, अगस्त 2022

वेबिनार एवं सेमिनार :-

50 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार/वेबिनर में सक्रिय भागीदारी तथा पेपर प्रेजेंटेशन।

संपर्क सूत्र- 9650044715

अणुडाक - meeravishvkarma100@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115